SHRI SWAMI LAKHSMIRAM TRUST SERIES.
No. 3

ABHĪNAVAM PRASŪTITANTRAM

A TEXT-BOOK OF

MIDWIFERY IN SANSKRIT

(Non-pathological part)

By

Ayurvedacharya

Pt. Damodar Sharma Gaud, A. M S.

Assistant Professor, of Ayurved

Member of the Faculty of Ayurved.

Banaras Hindu University

FIRST EDITION

With 116 Illustrations

Published by

Pt Shyamsundar Sharma, M. A

Secretary

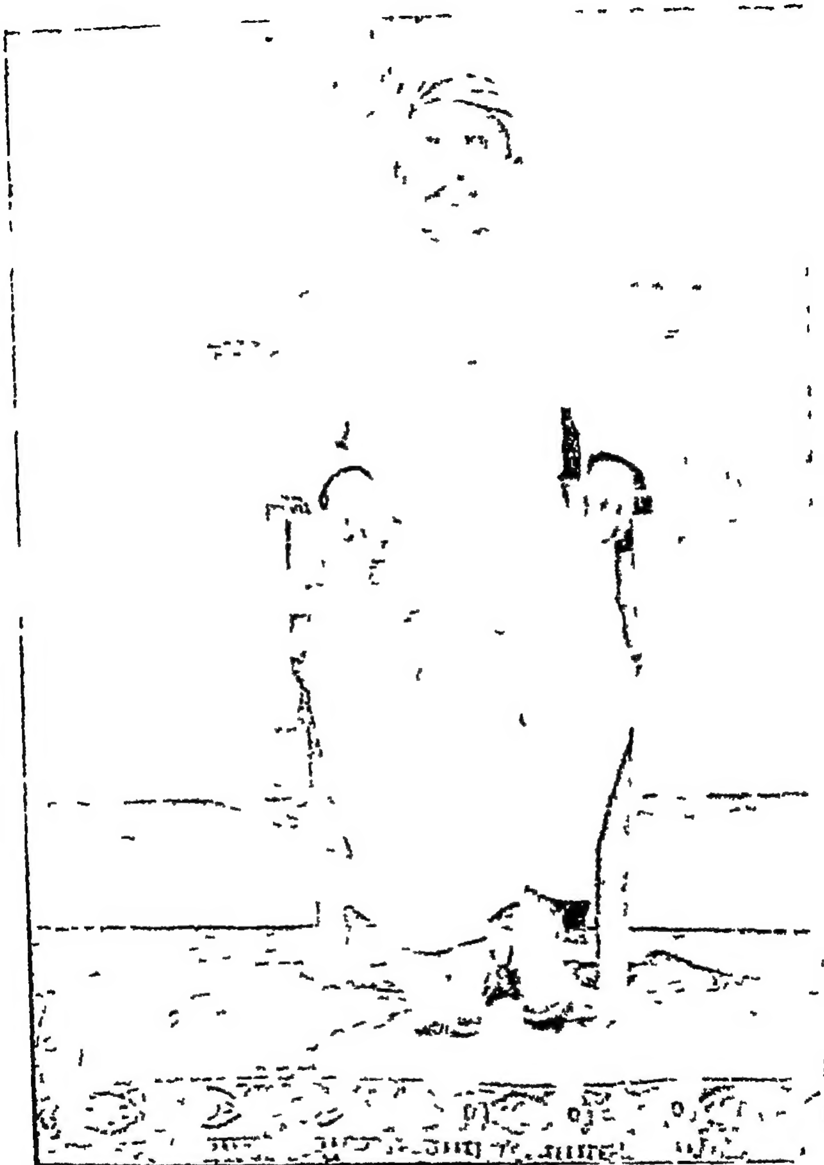
Swami Lakshmiram Trust

1950

Price Rupees Ten only

श्रीभ्रातृचरणेषु

समर्पणम्



प० गजाननशर्मा व्याकरणतीर्थ ।

भ्रातस्ते चरणान्तिके स्थिरधिया याराधिता भारती,
यच्चापि त्वदनुग्रहादिह भिषग्विद्या समासादिता ।
तत्सर्वं कृतविच्चया त्वदनुज मा प्रेरयत्युच्चकै,
त्वत्पाणावुपहर्त्तुमल्पकमिमं ग्रन्थं, प्रसीदाग्रज ॥



ग्रन्थकर्त्ता ।

(१) व्रजमोहनस्वर्णपदकम् (सर्वप्राथम्ये)

(२) कविराजधर्मदासस्वर्णपदकम् (चरके)

(३) स्वामिलक्ष्मीरामस्वर्णपदकम् (चरके)

प्रकाशकस्य विज्ञप्तिः।

जयपुरराज्यस्य सुप्रसिद्धाश्चिकित्सकचूडामणयो दादूपथपरिव्राजका आयुर्वेदमार्त्तण्डाः श्रीलक्ष्मीरामस्वामिमहाभागाः १९८१ तमविक्रमवत्सरस्य विजयदशम्या (१७-१०-३२) निरीक्षणसङ्घ (ट्रस्ट) मेकं नियम्य दशसहस्राधिकलक्षानुमितमुद्राणां राजकीयसुरक्षितधनम् (गवर्नमेन्ट सिक्यूरिटीज्), पादोनलक्षद्वयमितमुद्राणाञ्च गृहारामादिकं तदधीनमकार्षुः। राजरक्षितधनस्य वृद्धिः (कुसीदम्), गृहादीनां भाटकञ्च प्रतिवर्षं ७०००) सप्तसहस्रमुद्रामितं भवति। स्वामिमहाभागानामुद्देश्यमनुसृत्य औषधालय-आतुरालय-विद्यालयादीनां संरक्षणे, निर्धनविद्यार्थिनां वृत्त्यादिना साहाय्यसम्पादने दादूसम्प्रदायस्यायुर्वेदग्रन्थानाञ्च प्रकाशनादिष्वनेकविधधर्मकार्येषु विद्योन्नतिकार्येषु च सोऽयमायो व्येति।

आयुर्वेदद्वारैव श्रीमद्भिः स्वामिमहाभागैर्धनमिदमर्जितमित्यायुर्वेदस्यैवोन्नतिर्विशिष्याभीष्टा तेषाम्। सङ्घाधिकृते निधि (फण्ड) धने त्रिंशतिसहस्रमुद्राः स्वामिभिरेतदुद्देश्येन पृथङ् नियमिताः, यदस्य निधेर्वृद्धि (सूद)-द्रव्येण आयुर्वेदसम्बन्धिनवीनपुस्तकनिर्मातृभ्यो विद्वद्भ्यः पुरस्काररूपेण साहाय्यं दीयेत, प्राचीनार्वाचीनानाञ्चामुद्रितानामायुर्वेदग्रन्थानां प्रकाशनमनुष्ठीयेत। अनेनैव द्रव्येण सोऽयम् 'अभिनवं प्रसूतितन्त्रम्' इत्याख्यो ग्रन्थो मुद्रापयित्वा विदुषां सेवाया समुपस्थाप्यते।

प्रयोगप्रधानस्यायुर्वेदशास्त्रस्याध्यापनशैल्यपि प्रायोगिकाभ्याससहचरितैव स्यादिति निश्चयेऽपि साम्प्रतमायुर्वेदजगति उपयुक्तपाठ्यग्रन्थानामभाव एव तथाविधशैलीसम्प्रसारणे प्रथमः प्रतिबन्धहेतु। प्रसूतितन्त्रविषये एतमभावमंशतः परिहरन् सोऽयं ग्रन्थो भारतवर्षे प्रधानायुर्वेदमहाविद्यालयपाठ्यविषयेषु समुचितमादरं लप्स्यत इति द्रढीयान् विश्वासो न। अथ च संस्कृतभाषा विविधभाषाक्रान्तिषु गणनातीतकालतः सत्स्वपि तत्तेषु परिवर्त्तनेषु स्थेमानमालम्बमाना यथावदर्थप्रकाशकतया आयुर्वेदवाङ्मयसुरक्षायै दृढमञ्जूषायितेति कृत्वा प्रसूतितन्त्रविषयकमपि विज्ञान संस्कृतोपनिबद्धमाकल्पं सुरक्षित स्यादिति संस्कृतभाषायामेव ग्रन्थोऽयम-

स्माभिर्निर्मापित । ग्रन्थस्यास्य लेखने आयुर्वेदमार्त्तण्डानां श्रीयादवजी महोदयानां सम्मतिमनुसृत्य पं० श्रीदामोदरगौड ए० एम्० एस्० महोदया निरीक्षकसङ्घेन प्रेरिता पुरस्कृताश्च । ग्रन्थोऽय त्रिकालावाधितं ज्ञानं करामलकमिव विमृशतामृपीणां मूलवाक्यान्याधारतयोररीकृत्य लेशोक्तस्य विशेषोक्तमिवाचरन् न पूर्वजाना ज्ञानमाक्षिपति किन्तूपबृंहयतीति सन्दर्भं प्रत्यक्षीकृत्य विद्वद्भिर्वैद्यमहानुभावैरनुभूयेत । एतस्य-प्रस्तावनालेखने आयुर्वेदाचार्या डा० श्रीभास्कर गोविन्द घाणेकर, वी० एस्०-सी०, एम्० वी० वी० एस्० महोदया सकलमपि विवेचनीय वस्तु प्रकाशितवन्त इति तदध्ययनेन परिज्ञास्यत एव ।

किञ्च, गभीरार्थानुशीलने संस्कृतानभिज्ञानां छात्राणा हिन्दीभापया सौकर्य जायत इति विमृश्य हिन्दीभापायामपि प्रसूतिविपयको ग्रन्थ एक. डा० श्रीवामनकृष्ण पटवर्धन, ए० एम्० एस्० महोदयं प्रेरयित्वा अस्माभिर्निर्मापित. । स चापि मुद्रितप्राय सत्वरमेव प्रकाशमेष्यति ।

श्रीमन्तो यादवजी त्रिविक्रमजी महोदयाः स्वामिमहाभागानां परमप्रिया सुहृद । स्वामिमहाभागै ट्रस्टपत्रे यदिदं विशिष्य निर्दिष्टं यत् यावज्जीव श्रीयादवजीमहाभागानामेवानुमत्या ग्रन्था प्रकाश्येरन् । ग्रन्थस्यास्य निर्माणाय प्रेरका प्रस्तुतरूपेणोपस्थितौ च प्रधानहेतुभूता-स्तेऽपि स्वाशीर्वचोभिरिममलङ्कुर्वन्तीति तान्प्रति कोटिशो धन्यवादान् समर्पयाम । श्रीमतामेवानुग्रहेणाय श्रीस्वामिलक्ष्मीरामनिधिग्रन्थमाला-यास्तृतीयं कुसुम सोऽयं ग्रन्थो वैद्यजगत. समक्षमुपस्थाप्यते । मार्मिका विद्वांसो ग्रन्थमिमं बहुतरमाद्रियेरन्निति आशास्महे । आयुर्वेदपाठ्यक्रमोप-युक्तग्रन्थप्रणयनदिशायां सोऽयं प्रथम उपक्रमो निरीक्षकसङ्घस्य समुत्साहवर्धनाय, स्वामिमहाभागाना सदुद्देश्यपूर्त्तये च प्रभवेदिति चराचर गुरु परमेश्वरं निमार्य प्रार्थयामहे । इति—

गणगौरी बाजार
ता० १—७—५०

विदुषामाश्रव.—
श्यामसुन्दरशर्मा,
श्रीस्वामिलक्ष्मीरामट्रस्टमन्त्री,
जयपुरम् ।



निधिसंस्थापका:

श्रीस्वामिलक्ष्मीराममहोदयाः (जयपुरम्)

निरीक्षणसङ्घस्य वर्त्तमानाः पदाधिकारिणः

पूज्य यादवजी महाराजका आशीर्वाद

आयुर्वेदमें स्वर्गवासी महामहोपाध्याय कविराज श्रीगणनाथसेन सरस्वतीजी ने प्राचीन और अर्वाचीन ज्ञानधाराओंका समन्वय करके सर्वप्रथम संस्कृतभाषामें प्रत्यक्षशारीर और सिद्धान्तनिदान ये दो स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे हैं। तदनन्तर संस्कृतभाषामे उस श्रेणीका स्वतन्त्र-ग्रन्थ लिखनेका यह द्वितीय प्रयास है। आयुर्वेदसाहित्यमें प्रसूतितन्त्र पर कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नहीं है। आयुर्वेदाचार्य्य पण्डित श्रीदामोदरशर्मा गौड़ने यह ग्रन्थ लिखकर इस अभाव की पूर्ति की है। प० दामोदरजी गौड़ काशीहिन्दूविश्वविद्यालयके आयुर्वेदिक कालेजके प्रसूतितन्त्रके अध्यापक और संस्कृतभाषामें सिद्धहस्त लेखक हैं। यह ग्रन्थ इस समय सर्व आयुर्वेदमहाविद्यालयों में प्रसूतितन्त्रके अध्यापनके लिए पाठ्यग्रन्थतया स्वीकृत होनेके योग्य है। आशा है कि प्रान्तीय आयुर्वेदिक बोर्ड और आयुर्वेदमहाविद्यालयोंके सञ्चालक इस ग्रन्थको पाठ्यपुस्तकके रूप में स्वीकृत कर लेखक और प्रकाशक के उत्साहको बढावेंगे और अन्य लेखकोंको भी ऐसे उत्तम ग्रन्थ लिखने के लिए आकर्षित करेंगे।

यह ग्रन्थ लिखकर प० दामोदरजी ने आयुर्वेदकी बड़ी सेवा की है। आशा है कि वे व्यवच्छेदन-शारीर आदि अन्य विषयों पर भी ऐसे उत्तम ग्रन्थ लिखकर आयुर्वेदसाहित्य की उन्नति करते रहेंगे। मैं भगवान् धन्वन्तरि से उनके दीर्घायुष्य और आरोग्यकी कामना करता हूँ।

बम्बई] वैद्य यादवजी त्रिक्रमजी आचार्य

१४–६–५०

प्रस्तावना

आयुर्वेदाचार्य

श्री भास्कर गोविन्द घाणेकर

बी० एस्-सी०, एम्० बी० बी० एस०

मनुष्यों के स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य से सम्बन्धित शास्त्र को वैद्यक शास्त्र कहते हैं। आज संसार मे अनेक वैद्यक शास्त्र प्रचलित हैं। इन सब वैद्यक शास्त्रों के अपूर्ण और पूर्ण करके दो विभाग किये जा सकते हैं। जिस वैद्यक में केवल रोगोत्पत्ति की अपनी विशिष्ट उपपत्ति का तथा तदनुरूप उनकी चिकित्सा का विवरण होता है उसको अपूर्ण वैद्यक या चिकित्सापद्धति (-pathy) और जिसमें रोगोत्पत्ति और रोगचिकित्सा के अतिरिक्त वैद्यक के अन्य अनेक मूलभूत सिद्धान्तो तथा विषयों का विवरण होता है उसको पूर्ण वैद्यक शास्त्र कह सकते है। डा० हानेमान की समचिकित्सा पद्धति (Homeopathy), डा० शूस्लर की जीवरसायनचिकित्सा पद्धति (Twelve tissue remedies), डा० कुन्हे की जलचिकित्सा पद्धति (Hydropathy) तथा इस प्रकार की अन्य अनेक चिकित्सा पद्धतियाँ अपूर्ण वैद्यक के उदाहरण हैं और आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक शास्त्र, जो लोकप्रिय परिभाषा मे एलोपैथी के नाम से प्रसिद्ध है, पूर्ण वैद्यक का उदाहरण है।

वैद्यक के दो प्रकार

भारतवर्ष में भी प्राचीन कालसे अनेक वैद्यक शास्त्र प्रचलित रहे है। इनमे मन्त्रतन्त्रवैद्यक, रसवैद्यक, सिद्धवैद्यक अपूर्ण वैद्यक के उदाहरण हैं। बहुतेरे आयुर्वेद विरोधी तथा आयुर्वेद से अनभिज्ञ लोग आयुर्वेद को भी एक त्रिदोषाधिष्ठित विशेष चिकित्सापद्धति बतलाते है तथा समझते हैं। परन्तु यह उनका मिथ्या प्रचार है या भ्रम है। आयुर्वेद, जैसे कि उसकी

आयुर्वेद, परिपूर्ण वैद्यक हैं

परिभाषा[1] में स्पष्ट किया गया है, आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक के समान एक सर्वाङ्ग परिपूर्ण वैद्यक शास्त्र है। केवल अन्तर इतना ही है कि सहस्रावधि वर्षोंका प्राचीन होने के कारण पाश्चात्य वैद्यक के समान वह सविस्तर न होकर बहुत कुछ संक्षिप्त और खण्डित है। परन्तु इस क्षति की पूर्ति उसकी गहराई से हो जाती है जो पाश्चात्य वैद्यक की गहराई से कई गुना अधिक है।

स्वस्थ मनुष्यों के स्वास्थ्य की रक्षा करना तथा व्याधिपीड़ितों की व्याधियों का निराकरण करना ये आयुर्वेद के दो[2] प्रयोजन होते हैं। स्वास्थ्यरक्षा के प्रथम प्रयोजन में वैद्यकीय मूलभूत सिद्धांतों का तथा आधारभूत विषयों का समावेश होता है और व्याधिपरिमोक्ष के द्वितीय प्रयोजन में चिकित्सा के सिद्धान्तों का तथा चिकित्सा की सम्पूर्ण साधन सामग्री का विवरण किया गया है। इन प्रयोजनों में जो विषय समाविष्ट हुए हैं वे आठ-आठ अङ्गों में विभक्त किये गये हैं। इनमें चिकित्सा के अष्टांग विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं और उन्हीं के कारण आयुर्वेद 'अष्टाङ्ग आयुर्वेद' कहलाता है।

आयुर्वेद के दो प्रयोजन

स्वास्थ्यरक्षा विभाग में ऐसे विषय समाविष्ट किये गये हैं जिनके ज्ञान से स्वस्थ मनुष्य अपने स्वास्थ्य की रक्षा करके रोगों से बच जाते हैं। इन विषयों के निम्न आठ अङ्ग होते हैं। (१) सूक्ष्म शारीर (Metaphysical aspect of body)—इसमें सांख्य तथा अन्य दर्शनों के अनुसार सृष्टि का विकास, चतुर्विंशतितत्वात्मक शरीर की उत्पत्ति इत्यादि सूक्ष्म तथा अतीन्द्रिय विषयों का विवरण किया जाता है। (२) स्थूल या प्रत्यक्ष शारीर (Anatomy)—इसमें शवच्छेदन से प्राप्त पाञ्चभौतिक स्थूल शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्गों का तथा धातूपधातुओं का विवरण होता है। (३) दोषधातुमलविज्ञान

---

(१) हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥ चरक ॥

(२) इह खलु आयुर्वेदप्रयोजनम्, व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्ष स्वस्थस्य रक्षणं च ॥ सुश्रुत ॥

(Physiology)—इसमें वातादि दोष, रसादि धातु, पुरीषादिमल इनकी उत्पत्ति, प्राकृत कार्य इत्यादि का विवरण होता है। (४) आहार विज्ञान (Diatetics)—इसमें सम्पूर्ण नैसर्गिक तथा मनुष्य-कृत आहार्य द्रव्यो के गुण धर्मों का तथा उनके हिता-हित संयोगो का विवरण होता है। (५) देशकाल विज्ञान (climate and meteorology)—इसमें देश के अनूपादि विभाग, वर्ष के ऋतु, चन्द्र, सूर्य का तथा देश के विभागो का तथा विविध ऋतुओं का स्वास्थ्यास्वास्थ्य से सम्बन्ध इत्यादि विषयों का विवरण होता है। (६) जनपदोद्ध्वंसनीय (Epidemology and prevention of diseases)—इसमें महामारी के या सामूहिक रूप में फैलकर जनपदो का विध्वंस करने वाले रोगो के कारणो का तथा उनसे बचने के उपायों का विवरण होता है। (७) स्वस्थवृत्त (Personal hygiene)—इसमें प्रात-विधि, व्यायाम, स्नान, भोजन, धूम्रपान, वस्त्र-धारण, निद्रा, मैथुन इत्यादि वैयक्तिक स्वास्थ्यरक्षा से सम्बन्ध रखनेवाले विषयो का विवरण होता है। (८) वैद्यकीय सद्वृत्त (mental hygiene and medical ethics)—इसमें स्वास्थ्य-रक्षा की दृष्टि से कायिक, वाचिक और मानसिक आचार विचार उच्चार इत्यादि अनेक व्यावहारिक विषयों का समावेश होता है।

स्वास्थ्य रक्षा के अष्टाग

व्याधिपरिमोक्ष के भी स्वास्थ्यरक्षा विभाग के समान आठ[3] अङ्ग होते हैं। ये अङ्ग बहुत प्रसिद्ध होने के कारण केवल इनके नाम नीचे दिये जाते हैं। (१) कायचिकित्सा (General medicine (२) शल्यचिकित्सा (Surgery) (३) बालचिकित्सा या कौमारभृत्य (४) भूत-विद्या (Mental diseases) (५) विषचिकित्सा (Toxicology) (६) शालाक्य या उर्ध्वाङ्गचिकित्सा (७) वाजीकरण और (८) रसायन

चिकित्सा के अष्टाग

---

(३) कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजराविषान् ।
अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता ॥ अष्टाङ्गहृदय ।

चिकित्सा का विस्तार बहुत अधिक हो जाने के कारण सहस्त्रावधि-वर्ष पहले आयुर्वेद महर्षियों ने उसको विषयानुसार उपर्युक्त आठ अङ्गों में विभक्त किया। इसलिये ये आठों अङ्ग चिकित्सा की दृष्टि से महत्व के हैं। परन्तु तरतम भेद की दृष्टि से इनमे कौन सा अङ्ग श्रेष्ठ हैं इसका विवेचन इस ग्रन्थ की दृष्टि से उचित तथा उपर्युक्त होने के कारण यहाँ पर किया जाता है। कायचिकित्सक[४] नित्योपयोगिता और व्यापकता के आधार पर, शल्यचिकित्सक[५] आशुक्रियाकरण और यन्त्रशस्त्रादि के उपयोग के आधार पर तथा अन्य तन्त्रकार अन्य कारणों के आधार पर अपने-अपने तन्त्र को श्रेष्ठ बताते हैं और उस दृष्टि से उनका कथन ठीक भी है।

चिकित्सा का श्रेष्ठ अङ्ग

परन्तु जिस नरदेह की चिकित्सा के लिये ये अङ्ग बनाये गये हैं उस नरदेह का उत्पत्तिस्थान जो योनि, उसमें उसका अवतरण और जन्मोत्तर सवर्धन इनका विवरण तथा इनके रोगो की चिकित्सा का विचार जिस अङ्ग में किया गया है वह अङ्ग अर्थात् कौमारभृत्य मुझे और अङ्गों से अधिक श्रेष्ठ मालूम होता हैं। इसलिये काश्यपसंहिताकारों[६] ने अपने तन्त्र की श्रेष्ठता प्रदर्शित करने के लिये जो विचार प्रदर्शित किये हैं उनसे मैं पूर्ण सहमत हूँ।

कौमारभृत्य की श्रेष्ठता प्रदर्शित करने के लिए ऊपर जो विचार-प्रणाली प्रकट की गयी है उसकी यथार्थता सिद्ध करने के लिये कौमार-भृत्य के विषयों की संक्षिप्त सूची पाठकों के सामने रखना आवश्यक है। क्योंकि न कौमारभृत्य या कुमारतन्त्र शब्द से, न चरक सुश्रुत में

---

(४) नित्योपयोगि दुर्बोध सर्वाङ्गव्यापि भावत ॥ अष्टाङ्गसङ्ग्रह ॥

(५) अष्टास्वपि चायुर्वेदतन्त्रेष्वेतदेवाधिकमभिमतमाशुक्रियाकरणा-द्यन्त्रशस्त्रक्षाराग्निप्रणिधानात् सर्वतन्त्रसामान्याच्च ॥ सुश्रुत ॥

(६) किं चास्याद्यं तन्त्रमिति ?

कौमारभृत्यमष्टाना तन्त्राणामाद्यमुच्यते ।
आयुर्वेदस्य महतो देवानामिव हव्यप. ॥

अनेन हि सर्वाधनमितरे चिकित्सन्ति ॥ काश्यपसंहिता ॥

वर्णित उसकी परिभाषा[७] से तदन्तर्गत विषयों का पता लगता है।

कौमार भृत्य के विषय

इसकी यथार्थ परिभाषा हारीतसंहिता[८] में मिलती है और उसकी यथार्थता का प्रत्यय अभी हाल में प्राप्त और प्रकाशित काश्यपसंहिता के अवलोकन से प्राप्त होता है। उसके अनुसार कौमारभृत्य में योनिव्यापत्तन्त्र (Diseases of women) प्रसूतितन्त्र (Midwifery) और बालतन्त्र या कुमार-तंत्र (paediatrics) इन तीन तन्त्रों का मुख्यतया समावेश होता है।

प्राचीन काल मे आयुर्वेद का बहुत विस्तार था, उसके प्रत्येक अंग की और उसके साथ कौमारभृत्य की अनेक स्वतन्त्र संहिताएँ थीं तथा प्रत्येक अंग के और उसके साथ कौमारभृत्य के विशेषज्ञ[९] तथा विशेष व्यवसायी थे। आगे चलकर इनका लोप हो गया। आज जो इनी गिनी

लेखक और ग्रन्थ कैसे हों

संहिताएँ उपलब्ध हैं। वे सब की सब प्रतिसंस्कृत या खण्डित हैं। अर्थात् कौमारभृत्य और प्रसूतितन्त्र इसके लिए अपवाद नहीं है। इस प्रकार यद्यपि आयुर्वेद का बहुत कुछ संकोच हो गया तथापि उसकी गहराई में विशेष अन्तर न पडा। इसलिए आज आयुर्वेद को ऐसे कलाकारों की आवश्यकता है जो उपलब्ध आयुर्वेद वाङ्मयमहोदधि मे गोता लगाकर उसके अच्छे अच्छे सिद्धान्तरूप मौक्तिकों को ग्रहण करके उनसे आधुनिक अभि-रुचि के अनुसार ग्रन्थ रूप बढ़िया आभूषण बना सके। यह कार्य संस्कृत के पण्डित, उपलब्ध आयुर्वेद वाङ्मय के ज्ञाता तथा आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक तथा विज्ञान से परिचित लेखको द्वारा ही हो सकता है।

---

(७) कौमारभृत्यं नाम कुमारभरणधात्रीक्षीरदोषसंशोधनार्थं दुष्ट-स्तन्यग्रहसमुत्थाना च व्याधीनामुपशमनार्थम् ॥ सुश्रुत ॥

(८) गर्भोपक्रमविज्ञान सूतिकोपक्रमस्तथा ।
बालाना रोगशमन ज्ञेयं बालचिकित्सितम् ॥ हारीतसहिता ॥

(९) आपन्नसत्वाया कौमारभृत्यो गर्भगर्मणि प्रजनने च वियतेत ॥ कौटिल्य ॥ कुमारभृत्यैः कुशलैरनुष्ठिते ॥ रघुवंश ॥

अभिनव प्रसूतितन्त्र आयुर्वेद के अधिष्ठान पर अधिष्ठित प्राचीन प्रसूतितन्त्र का आधुनिक अवतार है। इसको पढ़ते समय आधुनिक ग्रन्थों की सरलता तथा सुन्दरता के साथ प्राचीन संहिताओं की गम्भीरता की भी झलक मिलती है। पाठक स्वयं इसका अनुभव कर सकते हैं। इसके लेखक मेरे चिरपरिचित मित्र तथा सहाध्यापक पण्डित दामोदर शर्मा गौड़ हैं। आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के आयुर्वेद महाविद्यालय में लगभग पन्द्रह वर्षों से इस विषय के अध्ययन अध्यापन का कार्य कर रहे हैं। इससे अधिक आपकी योग्यता का परिचय कराने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए अन्त में मैं आपको ऐसे सुन्दर ग्रन्थ के निर्माण के लिए बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि भविष्य में भी ऐसे सुन्दर ग्रन्थ लिखकर आप आयुर्वेद की सेवा करते रहेंगे। इति शम्।

ज्येष्ठपौर्णिमा
संवत् २००७

भास्कर गोविन्द घाणेकर

अभिनवं प्रसूतितन्त्रम् ।

प्रथमसंस्करणे ग्रन्थकर्त्तुर्वक्तव्यम् ।

ननु साम्प्रत सर्वत्र शिक्षणालयेपु वेदोऽयमायुषो विषयक्रमप्रविभक्त-स्तन्त्रान्तरोपबृंहितश्च पाठ्यते। किन्तु तादृशपाठ्यपुस्तकानामभावाच्छा-त्राणामध्यापकानाञ्च कार्य्ये कीदृशो महान् प्रतिबन्धः समुपस्थितो भवतीति नाविदितगोचरं विदुषाम् । नैक तत्पुस्तक, यत्र प्राचा सूत्रात्मकवचासि प्रतीचा व्याख्यानवचनानि च साकल्येन सङ्गृहीतानि यथाक्रम सङ्ग्रथि-तानि च स्यु· । एक एव विपय. प्राच्यपाश्चात्यभेदेन विभिन्नकाले विभि-न्नाध्यापकैर्विभिन्नरीत्या च पाठितश्छात्राणां न केवलं बुद्धिभेदं जनयति, तेपा बुद्धिमाकुलीकरोत्यपि । एतद्दोपनिराकरणधियैव परमादरणीया आयुर्वेद-मार्त्तण्डा. श्रीयादवजी त्रिकमजी आचार्य्यमहोदया वार्धक्येऽपि स्वयमु-त्सहमाना. परांश्चोत्साहयन्त पाठ्यपुस्तकानां निर्माणोपक्रमे कीदृक् प्रयतन्त इत्यपि सुविदितमेव भिषजा भिषग्बुभूपूणा च समेपाम् ।

दुष्करं चैतत् कर्म । तत्र स्वय प्रवृत्तोऽपि श्रीयादवजीमहाभागै स्वर्गी-यैग्र न्थनिर्माणदिशि प्रक्षुण्णनववर्त्मभिमहामहोपाध्याय-कविराज-श्रीगण-नाथसेन-शर्म-सरस्वतीमहोदयैश्च भृशं समुत्साहितस्तेषामेव सरणिमनुसरन् कौमारभृत्याङ्गप्रत्यङ्गभूत प्रसूतिविषयमालम्ब्य सम्पदात्मकं ग्रन्थमिमं यथा-कथञ्चित् पूरितवान् । प्रसङ्गोपात्तो मूढगर्भस्तु प्रपञ्चित· । अत्र वेदितव्य-विषयाणा यावच्छक्य सुविस्तरं वर्णनं विहितम् । विषयसम्पोषणानि आर्षवचनानि मध्ये मध्ये यथास्थलं ससङ्केत निवेशितानि । विस्तृतानि विशिष्टानि च प्राचा वचांसि प्रसङ्गान्ते "भवन्ति चात्र, अथाहुः प्राञ्चः" इत्येव सङ्कलितानि । चित्राणि च प्रचुराणि विषयावबोधसहायकानि संयो-जितानि । पत्राणामधस्तात् पुराणाना नवीनानाञ्च संज्ञानामाङ्ग्लपर्याया

उपयोगिटिप्पण्यानि चापि प्रदत्तानि। सोऽयं छात्रानध्यापकाँश्च कियदप्युपकरोति चेत् सफलो मे परिश्रम । प्रोज्झित व्यापत्प्रकरण च कालान्तरे विप्रसूतितन्त्राख्ये स्वतन्त्रे तन्त्रे निबन्धास्मि । येभ्यश्च पुस्तकेभ्यश्चित्रादयोऽत्र गृहीतास्तेषा प्रकाशकाना ग्रन्थकर्त्तॄणा च महदुपकृतिभार मन्ये ।

किञ्च ग्रन्थोऽय १९४२ तमे ईशाब्दे बीजरूपेण मुद्रणालये समाहितोऽपि नानाप्रत्यवायै. सन्ततिरस्यासम्यग्वहनादन्तर्गान्तरोपविष्टक स्थिति गत इव अल्पाल्पेन लेखनीतेजसा मुद्रणयन्त्रतेजसा च मन्द मन्द माप्यायमानो वर्षनवकेन वहिरेतीति नून—"त स्त्री प्रसूते सुचिरेण गर्भं पुष्टो यदा वर्षगणैरपि स्यात्" इति चरकोक्तिश्चरितार्था भवति ।

अथ च सूचीपत्रपरिशोधनपत्रादीनि प्रकाशनत्वरणवशान्नात्र योजितानीति पाठकै र्क्षन्तव्यम । पारिभाषिकशब्दानामनुक्रमणिका तु ग्रन्थान्ते सपृष्ठाङ्कनिर्देश नियोजिता। तत्र च कचित् क्वचित् सञ्ज्ञाशब्दा परिशोधिता अपि। तदेव प्रयत्नेन साधितेऽपि कार्य्येऽस्मिन् दृष्टिदोषाद् मुद्रणदोषाद् मादृशाल्पज्ञजनप्रज्ञादोषाद्वा यत्र यत्र स्खलन स्यात् तत्र तत्र करुणापरैर्गुणैकपक्षपातिभिर्विद्वद्भि सशोधनीयम्, सूचनीयश्चाह येनाचिरेणैव प्रकाशयिष्यमाणे सस्करणान्तरे तत्सर्वं निराकृतं भवेत्। इति—

२८ मम्मोलीकोठी
असीसङ्गम
काशीक्षेत्रम
महाशिवरात्रि
२००६

निवेदयते
विदुषा विधेयो
दामोदर-शर्म्म-गौडः ।

विषयोल्लेखः

शारीरखण्डं प्रथमम्

प्रथमोऽध्यायः

द्वितीयोऽध्यायः

तृतीयोऽध्यायः

चतुर्थोऽध्यायः

पञ्चमोऽध्यायः

षष्ठोऽध्यायः

गर्भखण्ड द्वितीयम्

प्रथमोऽध्यायः

द्वितीयोऽध्यायः

तृतीयोऽध्यायः

चतुर्थोऽध्यायः

पञ्चमोऽध्यायः

षष्ठोऽध्यायः

गर्भिणीखण्डं तृतीयम्

प्रथमोऽध्यायः

द्वितीयोऽध्यायः

तृतीयोऽध्यायः

चतुर्थोऽध्यायः

———

प्रसवखण्डं चतुर्थम्

प्रथमोऽध्यायः

द्वितीयोऽध्यायः

तृतीयोऽध्यायः

चतुर्थोऽध्यायः

पञ्चमोऽध्यायः

षष्ठोऽध्यायः

सप्तमोऽध्यायः

अष्टमोऽध्यायः

नवमोऽध्यायः

दशमोऽध्यायः

सूतिकाखण्डं पञ्चमम्

प्रथमोऽध्यायः



नमो भगवते धन्वन्तरिदेवाय ।

ग्रन्थकर्त्तुर्निवेदनम्

यस्मिन् सर्वं यत सर्वं यः सर्वं सर्वतश्च यः ।
यश्च सर्वमयो नित्यं तस्मै सर्वात्मने नम ॥१॥
भावयामि भवं देव भवानीसहित विभुम् ।
यत्कृपालेशमात्रेण पुसः स्यादहितं हितम् ॥२॥
नमश्चाथ महर्षिभ्यस्तेभ्यो लोकहिताय यै ।
निरन्तरं तपस्तप्त्वा प्रोक्तो वेदोऽयमायुष. ॥३॥

* * *

स्वतन्त्रे भारते वर्षे राजस्थानेऽतिविश्रुते ।
मुकुन्ददुर्गवास्तव्यो भारद्वाजाख्यगोत्रकः ॥४॥
हरदेवसुतो विप्रः सुन्दरीगर्भसम्भवः ।
गजाननानुजो गौडः शर्मा दामोदर सुधीः ॥५॥
महर्षेर्मालवीयस्य हिन्दूना मानवर्धने ।
विश्वविद्यालये काश्यामध्यापकपदे स्थित ॥६॥

* * *

नत्वा गुरुपदद्वन्द्वं दृष्ट्वा तन्त्राण्यनेकशः ।
छात्राणामुपकाराय तनुते तन्त्रमुत्तमम् ॥७॥
नव्यायुर्वेदसंसिक्ता प्राच्यायुर्वेदभूमिजा ।
फल प्रसूतितन्त्राख्य सूते मे धिषणालता ॥८॥

आयुर्वेद. क गम्भीर क मेऽल्पविषया मति ।
तथापि चापलादस्मि कर्तुं किमपि साहसम ॥९॥
शास्त्राणि सम्मुखीकृत्य प्रत्नानि नूतनानि च ।
ग्रथ्नामि नवक ग्रन्थं तुष्यतात् सुरभारती ॥१०॥

*　　*　　*

आयुर्वेदो महाँस्तस्य गरिमाऽद्यापि पूर्ववत् ।
दृष्टस्तदेककेशस्य चेपाद् विज्ञानवारिधौ ॥११॥
यथास्थल निमग्नानि प्राचामिह वर्चांसि तु ।
स्वयं स्वगौरवं वक्ष्यन्त्युद्धृत्योद्धृत्य दर्शनात् ॥१२॥

*　　*　　*

उन्नतात् पूर्वदेशाद्या आपगा पश्चिमानना ।
ताभि· सम्पूरितो भाति प्रोच्छल पश्चिमोदधि ॥१३॥
संयोगात्तत्र प्राप्तानि यान्यार्षवचनानि वै ।
अवगाह्य विमृश्यानि रत्नानीव सुकोविदै ॥१४॥
नैसर्गिकाण्यमूल्यानि सुप्रभाणि महान्ति च ।
क्षारोदकेऽन्यथा किं स्यात्फल गम्भीरमज्जने ॥१५॥

———

अभिनवं प्रसूतितन्त्रम् ।

प्रसूतिशारीरखण्डम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातः श्रोणिविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

प्रसूतिशारीरमिति स्त्रीश्रोणिशारीरम्, यदपेक्ष्यते प्रसवविज्ञानाय । श्रोणिनाम त्रिकनितम्बवङ्क्षणोपलक्षित कट्यूरुमध्यगो देशः सान्तर्गुहो, यमाश्रित्यावतिष्ठन्ते स्त्रिया अन्तर्जननाङ्गानि सह बस्त्यादिभिः सुरक्षितम् । निर्मीयते चैषा श्रोणिचक्रनिर्मापकैश्चतुर्भिरस्थिभिर्दृढस्नायुबद्धैराभ्यन्तर-पेशीविशेषैश्च । अथ चास्याः पेशीविरहितायाः कङ्कालश्रोणिः, तदन्वि-तायाश्च मांसलश्रोणिरिति द्विविधं संज्ञानं वर्णनासौकर्याय ।

कङ्कालश्रोणिः ।

अस्थीनि :—श्रोणिकङ्कालश्चास्थिचतुष्टयविनिर्मितम् । तत्र द्वे श्रोणि-फलके, एक त्रिकास्थि, अनुत्रिकास्थि चैकमिति चत्वारि श्रोणिचक्रनिर्मापका-ण्यस्थिना भवन्ति । प्राञ्चस्तु पुनः श्रोणिफलकद्वयस्य पुरःस्थं भागद्वयं सन्धानिकासन्धितं पृथगेवाभिमुखं कटीसन्धानकारकं तिर्यगस्थीति कृत्वा पञ्चकमस्थ्नामाहु., भगास्थि चेति तस्य संज्ञा । यदुच्यते—

प्रसूतिशारीरम् Obstetrical Anatomy श्रोणिः Pelvis श्रोणिचक्रम् Pelvic girdle कङ्कालश्रोणि. Bony or Static Pelvis. मांसलश्रोणिः Dynamic Pelvis.

"श्रोण्या पञ्च, गुदभगनितम्बेषु चत्वारि, त्रिकसंश्रितमेकम्"

—सु० शा० ५

"द्वे श्रोणिफलके, एकं भगास्थि पुंसां मेढ्रास्थि च" इति।

—च० शा० ७

श्रोणिफलकम्—तदेतत् कपालभूयिष्ठं बृहदस्थिफलकम् अस्थित्रितयसंयोगादारच्यते जघनकपालम्, कुकुन्दरास्थि, भगास्थि चेति। तत्र, आविंशतिवर्षमेषामवयवानां वङ्क्षणोदूखले तरुणास्थिव्यवधानकृतम् पार्थक्यं दृश्यते। यौवने चैतेषां परस्परं संयोगो वंक्षणोदूखलस्थेन रेखात्रितयेन सूचितलक्षणः। प्रौढे तु वयसि त्रयाणामंशानां सङ्घातादेकीभावो रेखात्रयविलोपश्च।

जघनकपालं नामोर्ध्वतनोंशो विस्तृतपक्षाकारः। तस्य परिधिभूता धारा जघनधारा नाम। सा अग्रतः पूर्वोर्ध्वकूटे पश्चिमतश्च पश्चिमोर्ध्वकूटे पर्यवसिता। मध्ये च जघनधारायास्तुङ्गप्रदेशो जघनचूडा नाम। कपालस्य ईषत्खातगर्भम् आभ्यन्तरतलन्तु जघनोदरसंज्ञम्, श्रोणिपक्षिण्या पेश्याः प्रभवस्थानम्। तदध साम्नि च वस्तिगुहोर्ध्वसीमभूता रेखा वक्ररेखा नाम। तत्रैव च भगकुकुन्दरास्थिभ्यां संयोगस्थले उत्सेधः श्रोणिकङ्कतिकोत्सेधः। जघनकपालाभ्याञ्च महाश्रोण्याः पार्श्वभागौ निर्मीयेते।

कुकुन्दरास्थि नामाधस्तनोंशोऽर्धचन्द्रप्रायः कुकुन्दरपिण्डेन कुकुन्दरकण्टकेन चोपलक्षितः। लघुश्रोण्याः पार्श्वभागौ कुकुन्दरास्थिभ्यां निर्मीयेते। वक्रिमविशेषाच्च कुकुन्दरास्थि क्रोडे पतित गर्भशिरः पुरो घूर्णयति।

श्रोणिफलकम् Hip Bone जघनकपालम् Ilium जघनधारा Iliac Crest पूर्वोर्ध्वकूटम् Anterior Superior Iliac Spine जघनचूड़ा Highest point of Crest जघनोदरम् (जघनखातम्) Iliac Fossa वक्ररेखा Arcuate Line श्रोणि कङ्कतिकोत्सेध. Iliopectineal Eminence कुकुन्दरास्थि Ischium कुकुन्दरपिण्डकम् Ischial Tuberosity कुकुन्दरकण्टकम् Ischial Spine

भगास्थि नाम भगाद्यधिष्ठानभूतः श्रोणिफलकस्य पुरस्तनोशः। तदेतत् इतरभगास्थ्ना कृतसन्धानं लघुश्रोण्याः पुरोभागं निष्पादयति। अस्थ्नश्च त्रयो भागा भवन्ति मुण्डम्, उत्तरशृङ्गम्, अधरशृङ्गञ्चेति। तत्र मुण्डे भगशिखा, उत्तरशृङ्गे च भगतीरणिका (वस्तिकण्ठिका रेखा) सलक्षणीया। उत्तराधरशृङ्गाभ्याञ्च क्रमशो भगास्थि जघनकपालेन कुकुन्दरेण च संयुज्यते। भगास्थिकुकुन्दरास्थिभ्यां मण्डलीकृतं गवाक्षाकारमन्तरालञ्च श्रोणिगवाक्षं नाम।

त्रिकास्थि नाम न्युब्जपृष्ठं श्रोणिफलकयोरन्तरालस्थं त्रिकोणप्रायम् अस्थिफलकम्, त्रिककशेरुकापञ्चकसङ्घातनिष्पन्नम्। सहानुत्रिकेण चेद् लघुश्रोण्याः पश्चिमभागं निर्मोति। त्रिकास्थ्न ऊर्ध्वसन्धेयपृष्ठस्य पूर्वधारा तु 'त्रिकोष्ठ'सञ्ज्ञया व्यवह्रियते। अस्थ्नः पक्षतिप्रायावंशौ च त्रिकपक्षौ नाम। पूर्वपृष्ठे स्थितानि छिद्राणि तु त्रिकपूर्विकाणां नाडीनां निर्गमाय। एता एव त्रिकनाड्यः प्रसवकाले गर्भशिरःसम्पीडिताः सक्थ्नोरुद्वेष्टनं प्रायशो जनयन्ति।

अनुत्रिकास्थि च नाम त्रिकास्थ्नोऽधःस्थितस्त्रिकोणाकृतिः काकचञ्चुसन्निभोऽस्थिसङ्घातः, क्षुद्रकशेरुकाचतुष्टयसंयोगेन निष्पन्नः। तेनैतेन लघुश्रोण्याः पश्चिमाधरभागो निर्मीयते।

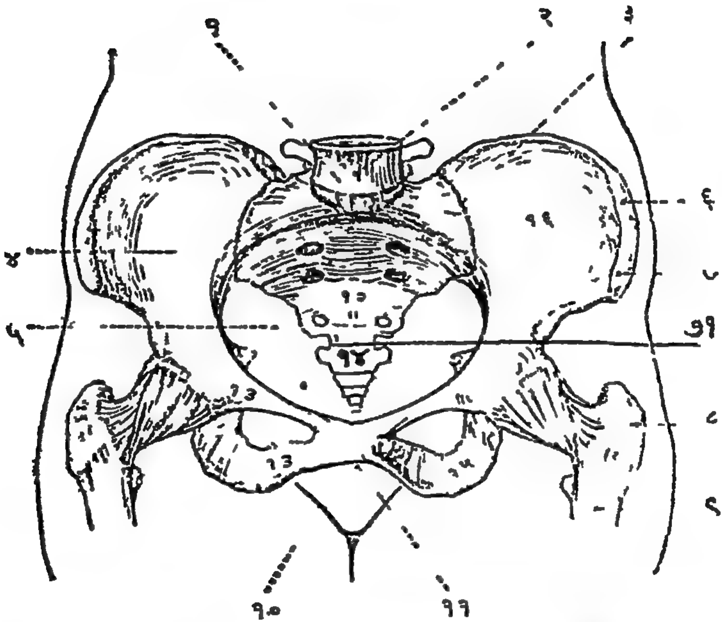
सन्धयः—चत्वारः सन्धयो भवन्ति परस्परमेषामस्थ्नां सन्धानात्। तत्र श्रोणिफलकद्वयस्य पश्चिमतस्त्रिकास्थ्ना संयोगात् वामदक्षिणभेदेन द्वौ

भगास्थि Pubes भगशिखा Pubic Crest. भगतीरणिका Pecten Pubis श्रोणिगवाक्षम् Obturator foramen त्रिकास्थि Sacrum. त्रिकोष्ठम् Promontary. त्रिकपक्षः Ala of Sacrum. अनुत्रिकास्थि Coccyx.

सन्धा त्रिकजघनसन्धी नाम, पुरतश्च फलकद्वयस्य परस्पर सन्धानादेक- सन्धिः भगसन्धानिका नाम, त्रिकानुत्रिकयोर्मलनाच्च सन्धिः त्रिकानु- त्रिकसन्धिरिति सन्धिचतुष्टयं सामान्येन व्याख्यातम्भवति ।

[१ चित्रम्]

कङ्कालश्रोणिः ।



१—त्रिकोष्ठम् । २—पञ्चमी कटिकशेरुका । ३—त्रिकजघनसन्धि । ४—जघनकपालम् । ५—श्रोणिगुहा । ६—जघनधारा । ७—पूर्वोर्ध्व- कूटम् । ८—महाशिखरकम् । ९—ऊर्ध्वस्थि । १०—भगसन्धानिका । ११—भगतोरणिका । १२—त्रिकास्थि । १३—भगास्थि । १४—अनु- त्रिकास्थि । १५—कुकुन्दरास्थि । १६—जघनोदरम् । १७—त्रिकानु- त्रिकसन्धि ।

त्रिकजघनसन्धिः Sacro-iliac Joint. भगसन्धानिका Symphisis Pubis त्रिकानुत्रिकसन्धि Sacro-coccygeal Joint

सन्धयश्चैते प्रायेण दृढ़प्रतरा अपि उत्तरगर्भकाले रक्तातिसञ्चारहेतुकेन स्नायुमार्दवेन श्लेष्मधरकलापुटकाभिव्यक्त्या च भवन्ति पुनरीषच्चलाः, जनयन्ति च प्रसवसौकर्यं तत्र तत्रावकाशदानेन। यथा, अवतरता हि गर्भशिरसा यदा त्रिकोष्ठं सम्पीड्यते तदा तत् किञ्चिद् पश्चादपसरति, श्रोणिकण्ठिकां रेखामतिक्रान्ते च शिरसि पुनः प्रतिनिवर्त्तते स्वस्थानम्। ततश्च पश्चिमतः पीड्यमाने त्रिकनिम्नभागे पुरतोऽप्येतत् प्रतिक्षिप्यते। एव पूर्वापरमान्दोलित त्रिकास्थि लघुश्रोण्याः प्रवेशद्वारं निर्गमद्वारञ्च ह्रसयति विवर्धयति वा यथाक्रमम्। सोऽयम् त्रिकजघनसन्धाने गतिसम्भवस्य प्रभावः। एवमेव चानुत्रिकमपि पश्चिमतोऽपसार्यमाणं प्रसवकाले निर्गमद्वारपथं प्राङ्गुलमित विवर्धयति। भगसन्धानिकापि च गर्भिण्या भवति किञ्चन विकसनक्षमा।

अथाहुः प्राञ्चः—

१—त्रयः सन्धयः कटीकपालेपु।

२—शिरःकटीकपालेषु तुन्नसेवन्य.।

३—असपीठगुदभगनितम्बेपु सामुद्गाः*। सु० शा० ५

स्नायवः—सन्ति चात्र काश्चन स्नायवः सन्धिस्नायुभ्यो भिन्ना या विशेषतः श्रोणिकङ्कालमारचयन्ति तत्तदन्तरालपूरण्य·। तद्यथा—त्रिकपिण्डीया, त्रिककण्टकीया, वंक्षणिका, गवाक्षकला चेति। तत्र पूर्वे द्वे यथादेशसयुक्ते त्रिकनितम्बान्तराल पश्चिमत· पूरयत·, रचयतश्च कुकुन्दरद्वारं गृध्रसीद्वारञ्च। तृतीया पुनर्जघनकपालस्य पूर्वोर्ध्वकूटे

---

* अंसपीठेत्यत्र वशपीठेति असकूटेति वा पाठपरिवर्त्तनं कार्यम्, प्रत्यक्षविरोधापत्तेरिति नव्याः।

त्रिकपिण्डीया Sacrotuberous Lig त्रिककण्टकीया Sacrospinous Lig वंक्षणिका Inguinal Lig गवाक्षकला Obturator membrane

भगास्थ्नो भगकूटे च तिर्यक् निबद्धा तत्रत्यमन्तरालं पूरयति रचयति च वङ्क्षणदरीसञ्ज्ञं कुहरं पुर:सक्थिकानां धमनीशिरानाडीपेशीनां निर्गमाय। चतुर्थी तु स्नायुः श्रोणिगवाक्षमाच्छादयति। इति।

श्रोणिकङ्कालञ्चैतत् ऊर्ध्वतने महायतनेऽधस्तने गर्भाशयतने च प्रदेशे मध्यस्थया श्रोणिकण्ठिकया रेखया विभज्यमानं क्रमशो महाश्रोणिः (गौणी श्रोणिर्वा) लघुश्रोणिश्चेति (मुख्या श्रोणिर्वा) स्थलभेदेन द्वेधा भिद्यते। व्यवहारे तु श्रोणिशब्दो लघुश्रोणिमात्रपर:। श्रोणिकण्ठिका च रेखा त्रिकोष्ठ त्रिकपक्षधारा-वक्ररेखा भगतीरणिका-भगशिखानां सम्मेलनतः प्रादुर्भूता लघुश्रोण्या प्रवेशद्वारं क्रोडीकरोति।

महाश्रोणि —अस्या पुनरान्तरतलं जघनखाताङ्कितं श्रोणिपक्षिण्या पेश्या समाच्छादितं च भवत्युपधानकल्पम्, यदाश्रित्य वर्तते गर्भाशयो गर्भेणाधिवृद्धः। निर्गलनिकाकृतिश्च महाश्रोणिर्गर्भशिरो लघुश्रोण्याः प्रवेशद्वाराभिमुखं प्रणुदति। अथ चास्या व्यासमानमपि प्रायो लघुश्रोण्या व्यासमानेन सह नियतान्तरमिति महाश्रोण्या प्रसवप्रयोजनं वर्णितं भवति।

लघुश्रोणि —एषा पुनः पुरतो भगास्थिभ्यां,पश्चिमतस्त्रिकानुत्रिकाभ्यां, पार्श्वतः कुकुन्दरास्थिभ्यां त्रिकपिण्डीयत्रिककण्टकीयस्नायुभिश्च सीमिता प्रवेशद्वारम्, श्रोणिगुहा, निर्गमद्वारञ्चेति त्रिविधस्थलेषु विभज्यते प्रसववर्णनासौकर्य्याय। अस्या: पुरःसीमा सार्धैकतो द्विप्राङ्गुलमाना, पश्चिमसीमा च सार्धचतु प्राङ्गुलतः पञ्चप्राङ्गुलमिता वक्राऽयता च।

तत्र प्रवेशद्वारं नाम श्रोणिकण्ठिकया रेखया प्रावृतं गुहाया ऊर्ध्वतलम्। निर्गमद्वारञ्च पुनर्गुहाया अधस्तलप्रदेशो रूपतश्चतुर्भुजं, य

महाश्रोणि Greater or False Pelvis लघुश्रोणिः Lesser or True Pelvis श्रोणिकण्ठिका रेखा Brim of Pelvis निर्गलनिका Funnel. प्रवेशद्वारम् Inlet निर्गमद्वारम् Outlet.

पुरतो भगसन्धानिकया भगाधरशृङ्गयोश्चाधरधाराभिः, पार्श्वतः कुकुन्दरपिण्डाभ्याम्, पश्चिमतोऽनुत्रिकाग्रेण त्रिकपिण्डीयत्रिककण्टकीयाख्यस्नायूनामधोधाराभिश्च सीमितं। सोऽयं देशः कुकुन्दरपिण्डयोजन्या कल्पितरेखया पूर्वापरतस्त्रिकोणद्वये विभज्यते 'मूत्रजननत्रिकोणम्' 'पायव्यत्रिकोण'ञ्चेति यथासङ्ख्यं, तत्तदवयवाना तथावस्थानदर्शनात्। श्रोणिगुहा (वस्तिगुहा वा) नाम उभयद्वारमध्यगतोऽवकाशः प्रधानाश्रयोऽन्तर्जननावयवाना सबस्तिमलाशयम्। अस्या सीमचतुष्टयन्तु लघुश्रोणिसीमकृतमिति कङ्कालश्रोण्यांख्याता भवति।

मांसलश्रोणिः।

शरीरे पुनः पेश्यादयो मृदुभागाः कङ्कालश्रोण्या अन्तराकाश ह्रसयन्ति स्वस्वस्थानमास्थिता, निर्मान्ति च पुनः श्रोणितलभूमि पुरतो वक्ष्यमाणाम्। तत्रोपश्रोणिकण्ठं दृश्येते कटिलम्बिन्यौ नाम दीर्घे पेश्यौ, याभ्या ह्रस्यते प्रवेशद्वारस्यानुप्रस्थो व्यासः। अन्त्रगुहञ्च गुहापथः शुण्डिकया श्रोणिगवाक्षिण्याऽन्तःस्थया मलाशयमूत्राशयगर्भाशयादीना प्राचीरैश्च सङ्कीर्यते।

श्रोणितलभूमिः—सेयं निर्गमद्वारमाच्छाद्य स्थिता श्रोण्यास्तलभूमिर्यां निर्भिद्य वर्त्तन्ते योनिगुद मूत्रप्रसेकश्च सुधृतम्। निर्मीयते चैषा समुदयाद्देषां भावानामधःक्रमेण—

(१) उदर्या कला।

(२) उदर्यकलाबहिःस्थ मेदः।

(३) श्रोणिगुहान्तरीया कला।

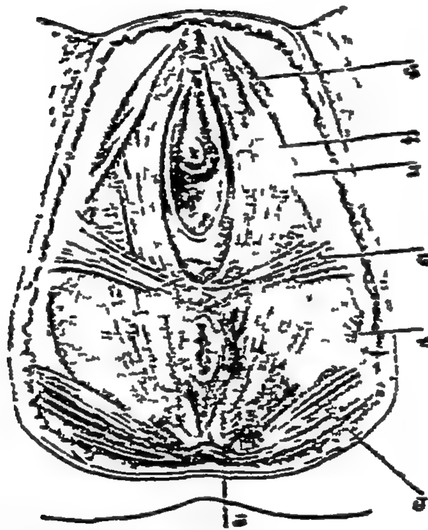
मूत्रजननत्रिकोणम् Urogenital Triangle पायव्यत्रिकोणम् Anal Triangle श्रोणिगुहा Pelvic Cavity

श्रोणितलभूमिः Pelvic Floor मूत्रप्रसेकः Urethra १ Peritoneum. २ Extraperitoneal fatty tissue ३ Pelvic fascia.

(४) पायुधारण्यौ अनुत्रिकिण्यौ च पेश्य (श्रोणिप्राचीरा) ।
(५) पायुधारण्या अध पृष्ठाच्छादनी कला पायव्या नाम ।
(६) मूलाधारकला (त्रिकोणिका स्नायुनी) ।
(७) भगशिश्निकाया शृङ्गद्वयम्, भगालिन्दीये प्रहर्षपिण्डिके च ।
(८) मूलाधारस्या काश्चन उत्ताना पेश्य ।
(९) मूलाधारस्य मेदोवराया प्रावरण्या अन्त स्तर ।

[२ चित्रम्]

श्रोणितलभूमि ।



क—शिश्निकाप्रहर्षणी । ख—योनिद्वारसङ्कोचनी । ग—शिश्निकासंहर्षणी । घ—योनिमूलच्छदा । च—पायुधारिणी । छ—नितम्बगरिष्ठा गरिष्ठा । ज—गुदसङ्कोचनी बाह्या ।

---

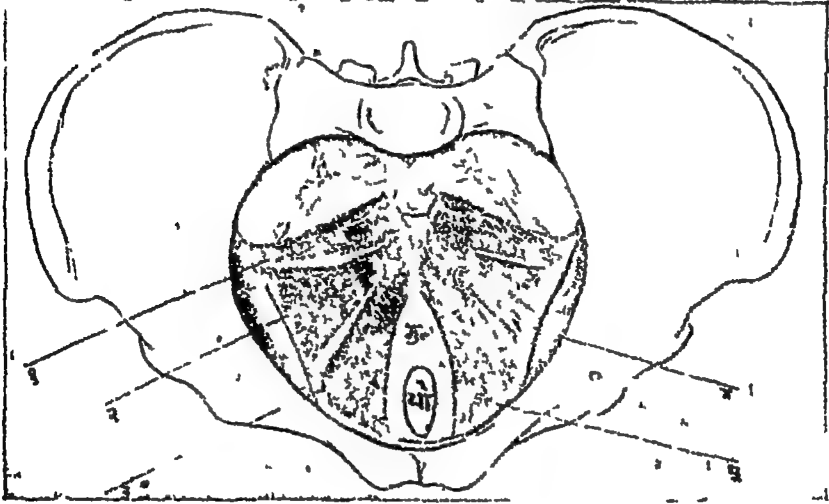
४ Levatores ani and Coccyge. (Pelvic diaphragm) ५ Fascia covering lower surface of levatores ६ The perineal membrane (Triangular Ligament) ७ Crura of clitoris and bulbs of vestibule ८ Superficial perineal muscles ९ Deep membranous layer of superficial fascia of perineum (Colles's fascia)

(१०) तस्या एव प्रावरण्या बहिःस्तरो गुदकौकुन्द्रीयेण मेदःपिण्डेन सहित ।

(११) त्वक् चेति ।

[३ चित्रम्]

श्रोणिप्राचीरया ऊर्ध्वतलम् ।



अत्र पायुधारण्याख्यपेश्या भागत्रय यथावद्दर्शितम् ।

१—कुकुन्दरानुत्रिकिणी । २—जघनानुत्रिकिणी । ३—भगानुत्रिकिणी । ४,५—धवलरेखा । गु —गुदम् । यो.—योनिः ।

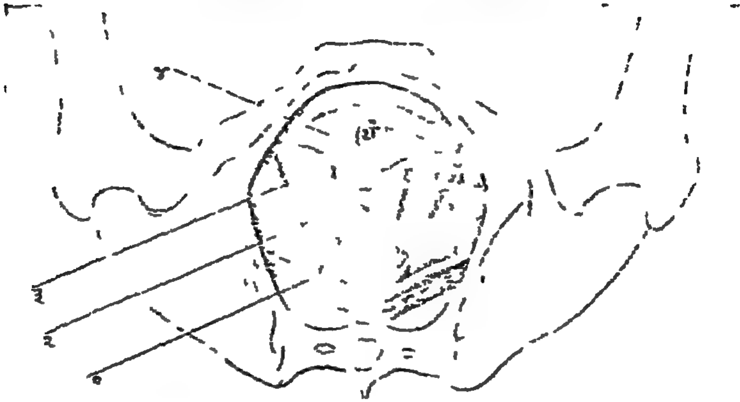
साऽसावञ्जलिसमाकारा तलभूमिः श्रोणिप्राचीरया पेश्या प्रचेष्टमाना सम्यग् विवर्त्तयति गर्भं प्रसूयमानमिति विशेषप्रयोजना ।

---

१० Superficial fatty layer of superficial fascia, ११ Skin

[४ चित्रम्]

श्रोणिप्राचीराया अधरतलम् ।



अत्रापि पायुधारण्या. खण्डत्रय दर्शितम् ।

१—कुकुन्दरानुत्रिकिणी । २—जघनानुत्रिकिणी । ३—भगानुत्रिकिणी । ४—मूलाधारस्था पेश्य । गु—गुदम् । यो—योनिः ।

प्राञ्चस्तु पुनराहु —

"अपत्यपथे चतस्र, (पेश्य) तासा प्रसूतेऽभ्यन्तरतो द्वे,
मुखाश्रिते वाह्ये च वृत्ते द्वे" इति*

—सु० शा० ५

श्रोणिमापनम् ।

तत्र खलु श्रोण्या विविधव्यासमानानि मीयन्ते श्रोणिमापकेन यन्त्रेण वाह्याभ्यन्तरत, येन श्रोणिमानविपर्यस्तकृता मूढगर्भ उत कष्टप्रसवो वा

* अभ्यन्तरतो द्वे Two halves of pelvic diapragm, वाह्ये च द्वे Sphincter vaginae muscles (ते एव च वाह्ये द्वे योनिकर्णिकाख्ये इति भावमिश्र) श्रोणिमापनम् Pelvimetry श्रोणिमापकम् Pelvimeter.

भवितेति प्रागभिज्ञायते । अभिज्ञाते च तत्त्वे तथैवोपक्रम्यमाणा स्त्री शर्मं लभत इति स्पष्टमस्योपयोगित्वम् । अतएव च प्रथम प्रसवित्र्याः स्त्रिया नियमेन श्रोणिमापन विधीयते कुशलैर्भिषग्जनैरिति । व्यासाश्च खलु स्थानभेदेन निर्दिश्यमाना भवन्त्येते परिज्ञेयाः—

तत्र बाह्यश्रोणिव्यासाः पुन. पञ्च, तद्यथा—

(क) जघनधारान्तरालिक — जघनधाराबहिरोष्ठयोर्मध्यगतो विस्तृततमो व्यासः सार्धदशप्राङ्गुलत एकादशप्राङ्गुल यावत् ।

(ख) पुर कूटान्तरालिक.—पूर्वोर्ध्वजघनकूटयोर्मध्यगोऽवकाशः सार्धनवप्राङ्गुलमानतो दशप्राङ्गुलमान. ।

(ग) शिखरकान्तरालिक'—ऊर्वस्थ्नो महाशिखरकयोर्मध्यगतो व्यासो द्वादशप्राङ्गुलतः सार्धद्वादशप्रागुलमानः ।

(घ) कटिसन्धानिकान्तरालिकः—पश्चमकटिकशेरुकाकण्टकाग्रतो भगसन्धानिकाया ऊर्ध्वधारा यावत् स्थितः सार्धसप्तप्रागुलमानतोऽष्टप्रागु-लमानोऽवकाश. ।

(ङ) पश्चिमकूटान्तरालिकः—पश्चिमोर्ध्वकूटयोरन्तरालश्चतुः प्रांगुलमित' ।

आभ्यन्तरश्रोणिवासास्तु तावन्नव—उपप्रवेशद्वारम्, अन्तर्गुहम्, उपनिर्गमद्वारञ्चेति स्थानत्रयेऽनुदीर्घानुप्रस्थतिरश्चीनभेदत्रयेण व्यासनिर्देशात् । तिरश्चीनव्यासस्य प्रतिस्थलं वामदक्षिणभेदेन द्विविधत्वेऽपि तिरश्चीनत्वसामान्याद्दैर्घ्यसामान्याच्चैकत्वेन ग्रहः । अथ व्यासाः—

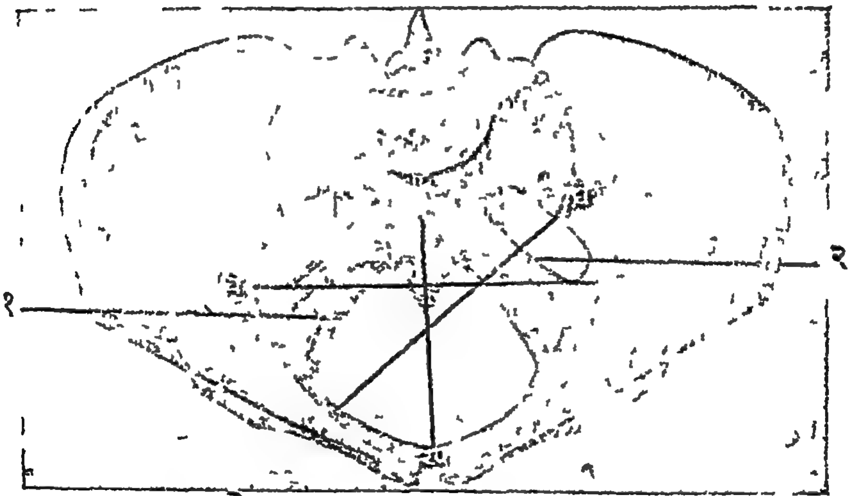
(क) Inter-cristal diameter (ख) Interspinous diameter (ग) Inter-trochanteric (घ) External conjugate or Baudelocque's diameter. (ङ) Posterior interspinous (प्रागुलशब्दश्चात्र तन्त्रे सर्वत्र 'इञ्च'परो ज्ञेयः) ।

प्रवेशद्वारम्

(१) अनुदीर्घः—त्रिधा चाय स्थाननिर्देशभेदेन वर्ण्यते, तद्यथा
(च) त्रिकोष्ठमध्यत सन्धानिकाग्र यावत् ४¾ मित
(छ) त्रिकोष्ठमध्यतः सन्धानिकापृष्ठोर्ध्वं यावत् ४" मित
(ज) त्रिकोष्ठमध्यतः सन्धानिकाधर यावच्च ४¾" मित
(२) तिरश्चीन.—द्विविधश्चाय वामदक्षिणभेदेन, स्वपार्श्वगतात त्रिकजघनसन्धानादारभ्य परपार्श्वगत श्रोणिकङ्कतिकोत्सेध यावत् प्रसृत. ४¾" मितश्च ।
(३) अनुप्रस्थ·—वक्ररेखामध्यगतो विस्तृततमोऽवकाशः ५" मित ।

[५ चित्रम्]

प्रवेशद्वारगता श्रोणिव्यासा. ।



क, ख—अनुदीर्घव्यास । ग, घ—तिरश्चीनव्यासो वामः । च, छ—अनुप्रस्थव्यासः । १—त्रिकपिण्डीया स्नायु· । २—त्रिककण्टकीया स्नायु ।

---

(१) Anteroposterior (च) Anatomical Conjugate or Conjugata Vera. (छ) Obstatrical or available conjugate (ज) Diagonal conjugate (२) Oblique, (३) Transverse

अन्तर्गुहम्

(४) अनुदीर्घः—[त्रयोऽप्येते तृतीयत्रिककशेरुकाया

(५) तिरश्चीनः—सन्धानिकापश्चिममध्यभागस्य चान्त-

(६) अनुप्रस्थः—राले यथास्थिताः ४½" मिता भवन्ति]

निर्गमद्वारम्

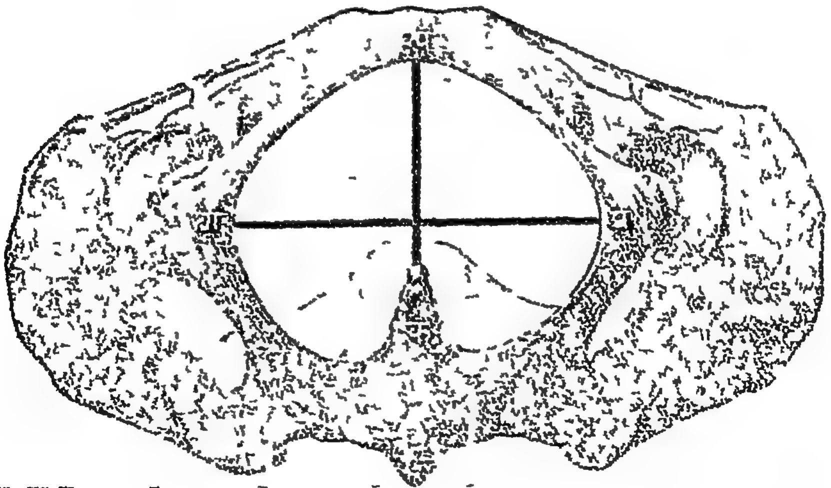
(७) अनुदीर्घः—अनुत्रिकस्य यथास्थितस्याग्रतः सन्धानिका-
धरं यावत् ४" मितः, अनुत्रिके पश्चिमतोऽ-
पसृते तु ५" मितो भवति ।

(८) तिरश्चीनः— त्रिकपिण्डिकस्नायोर्मध्यतो भगाधरशृङ्ग-
मध्य यावत् ४½" मित· ।

(९) अनुप्रस्थ·—कुकुन्दरपिण्डान्तःपृष्ठयोरन्तरालः ४' मितः ।

[६ चित्रम्]

निर्गमद्वारगतौ श्रोणिव्यासौ ।



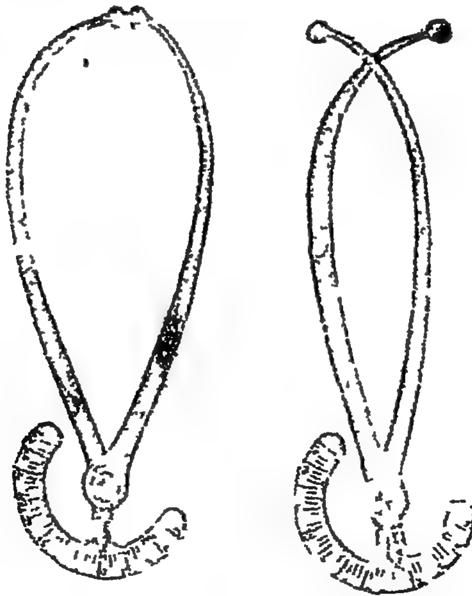
क, ख—अनुदीर्घव्यास. । ग, घ—अनुप्रस्थव्यासः ।

स्मर्त्तव्यञ्चात्र—जघनधारान्तरालिके पुर कूटान्तरालिके च व्यासे प्राङ्गुलमितो यो मानभेदः स स्थिरसाम्य., सूचयति च जघनधारावक्रिम्णः श्रोण्याश्च प्राकृतदशाम् । वैषम्यं तु पुन. सङ्कुचितश्रोणीकाया आयतश्रो-

णीकाया वा क्रिया दृश्यते। तत्राय विशेषः, उभयोर्निश्चितमानभेदस्य हीनत्वे श्रोण्यायामः, मानभेदस्य तथात्वेऽपि व्यासद्वयस्य हीनमानत्वे श्रोणि-सङ्कोच इत्यनुमीयते। जघनवारान्तरालिकश्च व्यास श्रोणिप्रवेशद्वारग-तादनुप्रस्थव्यासात् द्विगुणप्राय। एव कटिसन्धानिकान्तरालिको व्यासः प्रवेशद्वारस्यानुदार्वव्यासात् सार्धत्रिप्राङ्गुलाधिक इति वाह्यश्रोणिमापने-नापि आभ्यन्तरश्रोणिव्यासमान शक्यमनुमातुमिति। आभ्यन्तरश्रोणि-मापनञ्च यथार्थमानप्रदर्शकमपि कष्टतमो विधिर्भवति, मूर्च्छितायामेव क्रिया यन्त्रसम्प्रयोगदर्शनात्। श्रोणिमापनयन्त्रप्रयोगश्च प्रत्यक्षकर्मा-भ्यासेऽभ्यसनीयो, नेह विस्तरभिया प्रपञ्चित ।

[७ चित्रम्]

वाह्यश्रोणिमापने प्रयुज्यमानम् श्रोणिमापनयन्त्रम् ।



प्राञ्चश्चात्र—

(१) पुरुषोरःप्रमाणविस्तीर्णा स्त्रीश्रोणिः*

(२) द्वादशाङ्गुलो भगविस्तारः ।—सु० सू० ३५

(३) षोडशाङ्गुलविस्तारा कटी ।—च० वि० ८

(४) जघनमुरसा तुल्य प्रशस्यत इत्येके ।—का० सू० २८

---

* हृदयादूर्ध्वं कण्ठस्याधः पुरुषोरो द्वादशाङ्गुलम्, तत्प्रमाणा स्त्रीश्रोणि, केचित्तु चतुर्विंशत्यङ्गुलविस्तारमुरः । श्रोणिरत्र ऊरुसन्धेरधस्तात् स्मरमन्दिरोपरितनभाग इति डल्हणः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातो वहिर्जननाङ्गविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

वहिर्जननाङ्गानि नाम स्वभावतो भगोष्ठयोरपसारणेन च चक्षुपा दृश्यमाना. केचन जननावयवा । तेषाञ्च 'भगम्' 'वहिर्भगम्' वेति सामान्यो व्यपदेश. । तदिद योन्या प्रथमावर्त्तभूत भग विभागशो विविच्यमानं निम्नावयवं भवति क्रमविशेषेण—

भगपीठम् ।
पूर्वसन्धानम ।
भगशिश्निका ।
भगालिन्द ।
मूत्रप्रसेकद्वारम् ।
योनिद्वारम ।
योनिच्छदा कला ।
भगालिन्दखात ।
भगाञ्जलिका ।
पश्चिमसन्धानम् ।
मूलपीठम् ।

बृहद्—भगोष्ठम् ।
लघु—भगोष्ठम् ।
योनिद्वारिका प्रहर्षपिण्डिका ।
योनिद्वारिको ग्रन्थि. ।

योनिद्वारिका प्रहर्षपिण्डिका ।
योनिद्वारिको ग्रन्थिः ।
लघु—भगोष्ठम् ।
बृहद्—भगोष्ठम् ।

तत्र—

भगपीठं कामपीठं वा भगसन्धानिकापुरःस्थो मृदुमेदुर' समुत्सेधो यौवने रोमशो नाम । एतदेव च पुनर्नग्नोत्थिताया स्त्रिया केवल दृश्यते बहिर्जननावयवेपु ।

वहिर्जननाङ्गानि External Genitals भग बहिर्भग वा Vulva or Pudendum भगपीठम् Mons Pubis

बृहद्भगोष्ठद्वयं नाम—ओष्ठसमाकारं भगदारिकामुभयतः कपाटभूत किञ्चित्स्थूलकोमल भगपीठान्मूलपीठ यावत्प्रगतश्चावयवद्वयम्। तदेतद् बहिर्लोमशत्वचाऽन्तश्च कोमलतनुत्वचा परिवृत मेदोधमनीसिरानाड़ी-पूतिग्रन्थितन्तुजालकगर्भं भवति। उपलभ्यन्ते चात्र कानिचन स्वतन्त्र-पेशीसूत्राण्यपि।

पुरतश्चौष्ठद्वयं मिथः सयुज्यमान पूर्वसन्धानम्, पश्चिमतस्तु क्रमशो मेदःक्षयाद्धीयमानस्थौल्य तथैव पश्चिमसन्धानमारचयति। सर्वदा-ऽनुपलम्भाच्च प्रायिकमेतत् पश्चिमसन्धानम्। कौमारे च बृहद्भगोष्ठयोः प्रायश सान्निध्यादितरे ये भगावयवाः सुलीनास्तिष्ठन्ति त एवासकृत्प्रसूतायाः प्रौढ़े वा वयसि मेदःक्षयेण तयो. पार्थक्यात् स्फुटदर्शना भवन्ति। अतएव च तदा वायुवस्त्रादियोगादन्तर्भगोष्ठयोर्वर्णविपर्ययः खरता च।

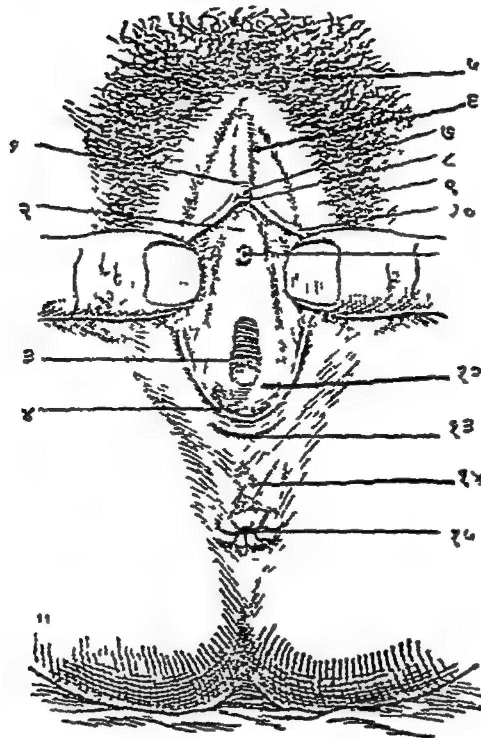
यस्तावत् पुंसामण्डकोपः, तस्यैवाण्डविरहितस्य द्विधा भिन्नस्य च बृहद्भगोष्ठद्वये परिणाम इति गर्भव्याकरणविदः।

लघुभगोष्ठे नाम—एकैकतो द्व्यङ्गुलमात्रायतौ बृहद्भगोष्ठान्तर्निगूढौ कोमलतनुस्निग्धार्द्रत्वचा विनिर्मितौ शतपत्रवर्णप्रायौ निर्लोमशौ पूतिग्रन्थि-स्वेदग्रन्थिबहुलौ च त्रिकोणाकृती स्वल्पावयवौ। एते पुन' पुरतो द्विधा विभज्य भगशिश्निकां चावेष्ट्य संयुज्यमाने शिश्निकाच्छदम् उपरितन शिश्निकाप्रबन्धनं चाध'स्तन रचयत.। पश्चिमतस्त्विमे स्तोकायतने भगाञ्जलिकाया बृहद्भगोष्ठयोर्वा कदाचन निबद्धे स्तः। नाड़ीजालभूयस्त्वा-च्चात्र कामसंवेदनम्।

बृहद्भगोष्ठे Labia Majora भगदारिका Pudendal Cleft पूर्वसन्धानम् Anterior Commissure पश्चिमसन्धानम् Posterior Commissure लघुभगोष्ठे Labia Minora or Nymphae. शिश्निकाच्छदम् Prepuce of the clitoris शिश्निकाप्रबन्धनम् Fraenulum Clitoridis,

[८ चित्रम्]

स्त्रिया बहिर्जननाङ्गानि ।



१—शिश्निकाच्छद । २—भगालिन्द. (पूर्वभाग·) । ३—योनिद्वारम् । ४—भगालिन्दखात । ५—भगपीठाच स्थित पूर्वतन्वानम् । ६—भगशिश्निका । ७—शिश्निकामुण्डम् । ८—शिश्निकाप्रबन्धनम् । ९—बृहद्भगोष्ठम् । १०—लघुभगोष्ठम् । ११—मूत्रप्रसेकद्वारम् । १२—योनिच्छदा कला । १३—पश्चिमतन्वानम् । १४—मूलपीठम् । १५—गुदम् ।

भगालिन्दो (भगद्वारं वा) नाम—त्रिकोणाकृतिरवकाशदेशो लघुभगोष्ठयोरन्तराले स्थित, योनिद्वारमूत्रप्रसेकद्वाराभ्यामनुविद्धश्च । भग-

भगालिन्द Vestubule

शिश्निका चास्य शिखरमधितिष्ठति । मूलदेशश्चास्य योनिद्वारस्याधस्ताद् भगाञ्जलिकाया उपरिष्टाच्च (उभयोर्मध्य इति यावत्) वर्त्तमानो नौकाकृतिः 'भगालिन्दखात'सञ्ज्ञः ।

भगशिश्निका पुनः—पूर्वसन्धानस्याधःस्थितः प्राङ्गुलदीर्घो हर्षणशील: शिश्नस्थानीयश्च स्त्रीणामवयवविशेषः । शिश्निका चेयं द्वाभ्यामेव दण्डिकाकाराभ्यां पेशीभ्यां निर्मिता, शिश्नदण्डाया मूत्रप्रसेकधरायास्तृतीयपेश्या अत्राभावदर्शनात् । अतएव नीरन्ध्रोऽयमवयवः । ते च शिश्निकापार्श्विके नाम पेश्यौ परस्परसंयुक्ते शिश्निकाया न्युब्जं गात्रं रचयतः । पश्चिमतस्तु तयोर्मूलद्वयं मिथोवियुक्तं, भगाधरशृङ्गयोरधस्तादुभयतः सम्बद्धं, शिश्निकाप्रहर्षणीपेशीसूत्रैः समावृतं च शिश्निकाशृङ्गसंज्ञम् ।

गात्रस्य पुरःप्रान्तच्छादनश्छत्राकसदृशोऽवयवस्तु शिश्निकामुण्डं शिश्निकामणिर्वा नाम, शिश्निकाच्छदेन शिश्निकाप्रबन्धनेन चोपलक्षितः । आच्छादनप्रबन्धनयोर्ह्रस्वत्वादेव च शिश्निकागात्रस्य वक्रीभावः । सेयं भगशिश्निका सकलकामनाडीमुखविचुम्बिता कन्दर्पलीलावसरे विशेषेण हर्षभूमिर्भवति ।

मूत्रप्रसेकद्वारं तावत्—सार्धैकप्राङ्गुलदीर्घस्य योनेः पुरःप्राचीरे सम्बद्धस्य मूत्रप्रसेकस्य योनिद्वारोपरिष्टाद् भगशिश्निकाधस्ताच्च स्थितं निर्गममुखम् । तदेतन्मुखमुद्रणैः पेशीसूत्रैः परितः स्थितैः सुसंवृतं वलीराजिभिरुपलक्षितमुद्गतमिव संलक्ष्यते । अस्य पार्श्व एव चोभयतो मूत्रप्रसेकपार्श्विकनलिकाग्रन्थिमुखं सूक्ष्ममप्युन्मुच्यमानं क्वचिद् द्रष्टुं शक्यम् ।

भगालिन्दखातः Vestibular Fossa or Fossa Navicularis भगशिश्निका Clitoris. गात्रम् Body. शिश्निकाशृङ्गे Crura Clitoridis शिश्निकामुण्डम् Glands मूत्रप्रसेकद्वारम् External Urethral Orifice मूत्रप्रसेकपार्श्विकनलिकाग्रन्थी Para-urethral tubular glands

नलिकाग्रन्थिद्वयञ्चैतन् मूत्रप्रसेकस्य पार्श्वयोस्तन्मासप्राचीरिकायामुपलभ्यते पौरुषग्रन्थिस्थानीयम्।

योनिद्वारं नाम—योनिमुखं, मूत्रप्रसेकद्वारस्याधस्तात् वर्त्तमानम्। तच्च कौमारे योनिच्छदाख्यया कलया निम्नार्धभागे प्रावृत निगूढञ्च लघुभगोष्ठयुगलेन। प्रौढे तु वयसि तत्कलाविलोपेन भगोष्ठापसरणेन च स्फुटदर्शनम्।

योनिच्छदा कला पुन—वृत्ता वक्रचन्द्राकारा वा शिथिला कला कौमार्ये योनिमुखस्य साकल्येनांशतो वा प्रावरणी। सा कचिदेकच्छिद्रा बहुच्छिद्रा वा, स्थूला तन्वी वेति विविधस्वरूपा। स्तरद्वयवती चेषा कला। तत्र बहिस्तरो भगत्वचाऽन्तस्तरस्तु योनिश्लेष्मलत्वचया सानुबन्ध.। स्तरयोरन्तराले च वर्त्तन्ते सूक्ष्मा सिराधमन्यो नाड्य पेशी-सूत्राणि च।

एषा प्राय. पुरुषसयोगेन यौवने भिद्यते, विदीर्यते च साकल्येन प्रथमप्रसवकाले। ततश्च तदवशेषा 'योनिच्छदाङ्कुर' भूता उपलभ्यन्ते।

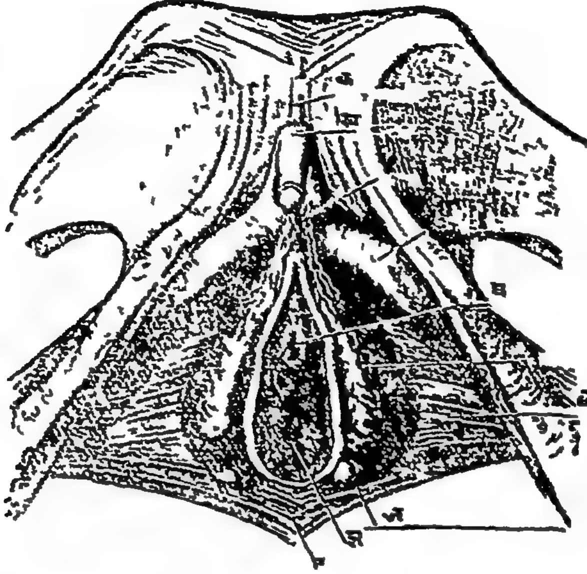
भगाञ्जलिका च—कोमलतनुत्वग्भागोऽञ्जलिनमाकार, पुर स्थितो भगालिन्दस्यास्य। सेय पार्श्वतो लघुभगोष्ठाभ्यामनुबध्यते।

योनिद्वारिकौ ग्रन्थी तु—योनिद्वारस्योभयतः स्थित योनिसङ्कोच-न्याख्यपेश्या निगूढ च ग्रन्थियुगलम्। अस्य सूक्ष्म नलिकामुख भगा-लिन्दे योनिद्वारसमीपत (योनिच्छदलघुभगोष्ठयोरन्तराले) उन्मुच्यते। स्रावश्चास्य पीतपिच्छिल कामकाले नि स्रुत स्त्रीशुक्रमित्याचक्षते केचन साम्प्रदायिका।

योनिद्वारम् Vaginal Orifice योनिच्छदा कला Hymen योनिच्छदा-ङ्कुराणि Carunculae Hymenales भगाञ्जलिका Frenulum Labiorum or Fourchette योनिद्वारिकौ ग्रन्थी Greater Vestibular Glands (Bartholin).

[९ चित्रम्]

वहिर्भगस्य केचन निगूढा अवयवाः ।



क—शिश्निकामूलधरा स्नायु । ख—भगशिश्निका । ग—पिण्डका-योजन लघुशिराजालम् । घ—शिश्निकाश्रृङ्गम् । (गकारघकारौ चित्रे न चित्रितावपि रेखाक्रमेण स्वयमुन्नेयौ) ध—मूत्रप्रसेकद्वारम् । च—योनि-द्वारिका प्रहर्षपिण्डिका (चकारोऽय यथास्थानं रेखाक्रमेण स्वयमूह्यः) छ—त्रिकोणिका स्नायुः । ज—योनिद्वारिको ग्रन्थि. । झ—योनिद्वारं योनिच्छदा कला च । ट—मूलपिण्डकातलम् ।

योनिद्वारिके प्रहर्षपिण्डके नाम—जलौकाकारं, पूर्वतस्तनु पश्चिमतश्च स्थूलं, प्राङ्गुलदीर्घं, योनिद्वारस्योभयतस्त्रिकोणिकाख्यस्नायोरघस्तलं योनिभित्तेश्च वहिस्तलमाश्रित्य संस्थितं, योनिसङ्कोचन्याख्यपेश्या समाच्छादितं च शिरागुच्छद्वयम् । तदेतत् पिण्डकाद्वय मूत्रप्रसेकद्वारस्याग्रतः

योनिद्वारिके प्रहर्षपिण्डके—Vestubular Bulbs.

पिण्डिकायोजनिकास्थलघुसिराजालकद्वारेण परस्परं सम्बध्यते। सिराजालकञ्चेद् पुरस्तात् भगशिश्निकाधस्तले प्रसृत शिश्निकामुण्डेन सानुबन्धनम्। प्रसवकाले पिण्डिकाविदरणे च विशेषेण रक्तस्रुति।

यस्तावत् पुंसां शिश्नमूलपिण्डिका, सैव योन्या मूत्रप्रसेकेन च द्विधा भिन्ना प्रहर्षपिण्डिकाद्वये परिणतेति सूक्ष्मदृशः।

मूलपीठ पुनः—शास्त्रेऽस्मिन् पायुभगान्तरालग सेवन्यङ्किता देश। त्वच उपरिष्टाच्चास्य वर्त्तते मूलपिण्डिका नाम तन्तुमेदोभूयिष्ठ, साधक प्राङ्गुलायतोऽवयवविशेष। पिण्डिकाया पुरःसीम्नि स्थित योन्या पश्चिम प्राचीरं, पश्चिमसीम्नि च गुदनलिकाया, प्राचीरमग्रिमम्। सा चेय सेवनीसूत्रिकासङ्गकतनुकण्डरागर्भा कासाञ्चन पेशीना निवेशाभूमिर्भवति।

पिण्डिकायोजनिका—Commissure of the Bulbs (Pars intermedia) शिराजालकम्—Venous Plexus, शिश्नमूलपिण्डिका—Bulb of penis मूलपीठम्—Obstatrical Perineum मूलपिण्डिका—Perineal Body सेवनीसूत्रिका Fibrous raphe

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातोऽन्तर्जननाङ्गविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अन्तर्जननाङ्गानि तावत्—श्रोणिगुहान्तर्गताः केचन जननावयवाः, ये नाम विशेषतो गर्भप्रसवप्रयोजना भवन्ति । योनिर्गर्भाशयो बीजस्रोतसी बीजग्रन्थियुगलञ्चेति तेषां प्रविभागः । तत्र—

योनिरन्तर्भगं वा नाम—वक्रीभूय पुरोऽधःप्रसृतो नलिकाविशेषः पेशीकलामयः, गर्भाशयेनोर्ध्वं बहिर्भगेन चाधस्तात् सम्बद्धः । सेयं सन्निहितपूर्वापरप्राचीरतया न्यूनावकाशाऽपि सति प्रयोजने विशेषेण (द्विगुणं यावत्) विकसनक्षमा । स्वल्पमुखोऽन्तर्महाशुषिरश्चावकाशस्तु योनिमार्गोऽपत्यपथो वेति संज्ञायते । स्वल्पमुखता च योन्याः सर्वेषां तत्प्राचीराणां त्रिकोणत्वात् परिज्ञेया । तदेतदन्तर्भगं व्यावर्त्तस्य योनिसामान्यस्य द्वितीय आवर्त्त इति प्राञ्चः ।

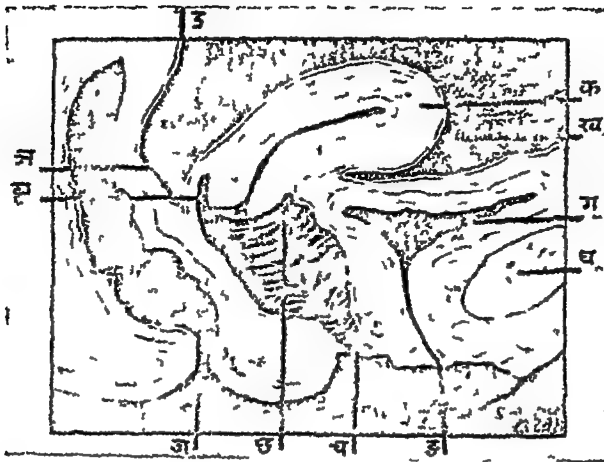
योन्याः पुरःप्राचीरं सार्धद्विप्राङ्गुलं, दीर्घतरं पश्चिमप्राचीरञ्च त्रिप्राङ्गुलतः सार्धत्रिप्राङ्गुलं यावत् प्रमितम् । ऊर्ध्वभागस्त्वस्या गर्भाशयग्रीवां संवेष्टयति, ग्रीवा च पुनरन्तर्विष्टा विभाजयति स्वपरिगतं योन्यवकाशं चतुर्षु कोणेषु—पूर्वम्, (उत्तानतमम्) पश्चिमम्, (गम्भीरतमम्) वामं, दक्षिणञ्च (नातिगभीरम्) योनिकोणमिति ।

व्यतिकरस्तु पुनर्योन्याः पुरतो वस्तिमूलं मूत्रप्रसेकश्च, पार्श्वतः पायुधारण्याख्यपेशीयुगलं गवीन्यौ च, पश्चिमतश्च मूलपिण्डिका

अन्तर्जननाङ्गानि Internal Genital Organs योनिरन्तर्भगं वा Vagina. योनिमार्गः Vaginal Cavity or Passage योनिकोणानि Vaginal fornices व्यतिकरः Relation

[१० चित्रम्]

श्रोण्या अनुलम्बच्छेद'।



क—गर्भाशय.। ख—गर्भाशयवेष्टनी उदर्या कला। ग—मूत्राशय। घ—भगसन्धानिका। ङ—मूत्रप्रसेकद्वारम्। च—योनिद्वारम्। छ—अग्रिमं योनिकोणम्। ज—गुदविवरम्। झ—पश्चिम योनिकोणम्। ञ—योनिगुदान्तरीय गुदगर्भाशयान्तरीय वा स्थालीपुटम्। ड—उदर्या कला।

गुदनलिका योनिगुदान्तरीय स्थालीपुटकञ्चेति। अनुगर्भाशये धमन्यौ तु योनिपार्श्वकोणयोरुपरिष्टाद् वर्त्तते, अनुभूयते च तत्र तयो. स्पन्दनं, विशेषेण तु गर्भकाले।

निर्माणतस्तु पुनश्चतुर्धा स्तरविभागो योनिप्राचीरस्य सलक्ष्यतेऽन्तर्बहिःक्रमेण, तद्यथा—

(१) अन्त स्तर कलामयो नाम—अनुप्रस्थगताभिर्बहुभिर्वलिराजिभिरुपलक्षित श्लेष्मग्रन्थिविरहितस्त्वग्विशेष.। प्रजातासु च स्त्रीपु

---

(१) Inermost Mucous Coat वलिराज्य' Rugae

वलिराजीना विलोपः। अस्माच्च स्तरादम्लोपस्नेहो, जीवाणुविघातकरः स्यन्दमानो योनिमार्गमभिरक्षति। पुरःपश्चाच्चात्र मध्यरेखाया दृश्यतेऽनुदैर्घ्यं वलिराजिद्वयम्। ते एते योनिस्तम्भिके वलिस्तम्भिके वा नाम।

(२) उपान्त.स्तरो हर्षणतन्तुमयो नाम—यत्र बहवो रक्तप्रणालिकाः संयोजकतन्तुषु वितता दृश्यन्ते। स्तरश्चायं योनिद्वारिकाभ्यां प्रहर्षपिण्डिकाभ्यामनुबद्ध इत्यवधेयम्।

(३) मध्यस्तर: पेशीमयो नाम—योऽभ्यन्तरतो वृत्तैर्बाह्यतश्चानुदैर्घ्यं स्वतन्त्रपेशीसूत्रैर्विनिर्म्मितः। योनिद्वारसमीपे तु योनिसङ्कोचन्या मूत्रद्वारसङ्कोचन्याश्च पेश्याः सूत्राण्यपि स्तरस्यैतस्य बलाधानाय सम्पद्यन्ते।

(४) वहिःस्तर. सौत्रतन्तुमयो नाम—अधिष्ठानभूमिः शोणितवहाना प्रणालिकाना वातनाड़ीनाञ्च। सिराजालकानि चात्र भूम्ना दृश्यन्ते, विशेषेण च पार्श्वयो ।

पोषणञ्च पुनर्योन्याः सम्पद्यत आभिर्धमनीभिरुत्तराधरक्रमेण—

(क) अनुगर्भाशयाया धमन्या योनिगा. प्रशाखाः।

(ख) अनुयोनिका नाम धमनी, अधरवस्तिगास्थानीया।

(ग) मध्यमाया गुदान्तिकाया गुदोपस्थिकायाश्च शाखाप्रतानाः।

प्रतिनिवर्तते च रक्त सिराभिरधिश्रोणिकयोराभ्यन्तर्य्यो. सिरयो.। रसायन्यश्चापि योन्या अधिश्रोणिकेषु वङ्क्षणिकेषु च रसग्रन्थिषु प्रविष्टाः। तत्राय विशेषः—अधरदेशरसायन्यो भगरसायनीभिः सहिता वङ्क्षणिकान्,

---

योनिस्तम्भिके Columns of the Vagina

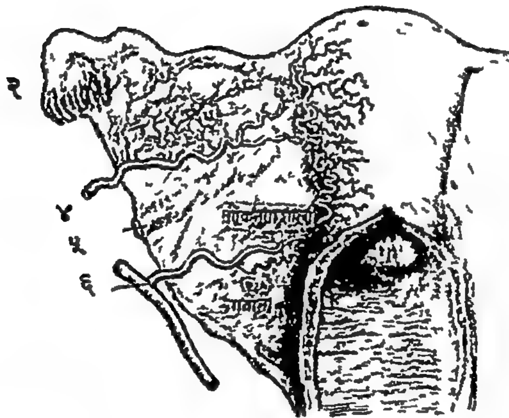
(२) Submucous Layer of Erectile Tissue. (३) Middle Muscular Coat (४) Outermost Coat of Connective Tissue (क) Vaginal branches of the uterine artery (ख) Vaginal (Inferior Vesical) artery (ग) Branches of the middle rectal & internal pudendal arteries वङ्क्षणिका: Inguinal glands

मध्यदेशरसायन्योऽधिश्रोणिकानधरान्, उत्तरदेशरसायन्यश्च गर्भाशयरसायनीसहिताः पक्ष्वन्धनिकामार्गेणोत्तरानधिश्रोणिकान् रसग्रन्थीन् गाहन्त इति।

गर्भाशयो नाम—अधरपश्चिमाभिमुखं नुन्नतुम्बिकाकारो दृढस्थूलप्राचीरः पूर्वापरतश्चिपिटप्रायो मांसमयोऽवयव, शून्योदरोऽधिष्ठानभूतश्च गर्भस्य। धरेत्यपि चास्य सञ्ज्ञा। सोऽयं श्रोण्या गुदवस्त्योरन्तराले पुरस्तादानतो मनाक् वक्रीकृततनुश्चाऽवतिष्ठते। द्वेधा चास्य प्रविभाग कल्पितो योजनिकाऽभिधेन सङ्कीर्णमध्यभागेन, गात्र ग्रीवा चेति। तत्र—

[११ चित्रम्]

स्त्रिया अन्तर्जननाङ्गानि।



१—गर्भाशयस्य स्कन्धभागः। २—बीजवाहिन्याः पुष्पितप्रान्तः। ३—बीजग्रन्थिः। ४—अनुबीजग्रन्थिका धमनी। ५—रज्जुबन्धनिका। ६—अनुगर्भाशयिका धमनी। ७—योनिमार्ग (योनिपुरोभित्ति विदार्य दर्शित) ८—ग्रीवाया अन्तर्योनिकभागो बहिर्मुखोपलक्षित.।

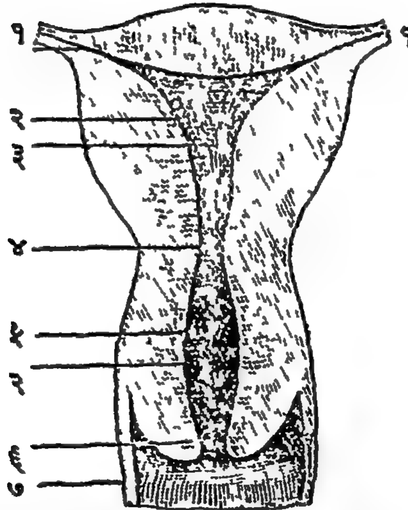
अधिश्रोणिका अधरा Hypogastric glands. अधिश्रोणिका उत्तरा Iliac glands. गर्भाशयः Uterus योजनिका Isthmus

गात्रं तावत् त्रिकोणाकारो भागो योजनिकाया उपरितनः । महायतनस्यास्य स्कन्धदेशे च पार्श्वकोणयोर्बीजवाहिस्रोतोद्वयमुन्मुच्यते तदनुवद्धम् । तत्र स्कन्धस्योत्तरधारा अप्रजातासु समा स्तोकेन नतमध्या वा दृश्यते, प्रजातासु च पुनः स्पष्टमुन्नतोदरा ।

ग्रीवा च गात्रानुगता स्वल्पायतना योजनिकाया अधस्तात् स्थिता । अन्तर्विशति चेयं योनौ तत्पूर्वप्राचीर निर्भिद्य स्तोकेन । अतएवास्या द्वावंशौ भवत ऊर्ध्वयोनिकोऽन्तर्योनिकश्चेति । तर्क्वाकारा ग्रीवागुहा च ग्रीवासरणिरित्युच्यते । अनुवध्यते चैषा प्राङ्गुलमाना योनिगुहया

[१२ चित्रम्]

गर्भाशयस्याभ्यन्तरम् ।



१।१—बीजवाहिन्योर्द्वारद्वयम् । २—गर्भाशयप्राचीरम् । ३—गात्रगुहा । ४—ग्रीवान्तर्मुखम् । ५—ग्रीवासरणि । २ द्रुमपत्रप्रतानवत् संलक्ष्यमाणा वलीराज्य पत्रप्रतानिकासञ्ज्ञा. । ६—ग्रीवाबहिर्मुखम् । ७—योनिप्राचीरम् ।

गात्रम् Body स्कन्धः Fundus. ग्रीवा Cervix ऊर्ध्वयोनिकोंऽशः Supra-vaginal Portion अन्तर्योनिकोंऽशः Vaginal Portion ग्रीवासरणिः Cervical Canal.

पूर्वापरोष्ठद्वयलक्षितेन वहिर्मुखेन, सार्धप्राङ्गुलमानया गात्रगुहया चान्तर्मुखेन। एवञ्च सार्धप्राङ्गुलद्वयपरिमाणा गर्भाशयगुहेति फलितम्। वहिर्मुखञ्च स्त्रीणा रक्तवह स्रोतो वहिर्मुखम्। यदुच्यते—"स्त्रीणामपराणि च त्रीणि, द्वे स्तनयोरधस्ताद् रक्तवहञ्च" इति सु० शा० ५ अ०। सेय श्रोवासरणि. प्रायेण सवृतमुखा श्लेष्मार्गलिकया प्रतिरुद्धमार्गा च तिष्ठति रज कालादृतुकालाच्चान्यत्र। यदुच्यते—

नियत दिवसेऽतीते सङ्कुचत्यम्बुज यथा।
ऋतौ व्यतीते नार्यास्तु योनि सत्रियते तथा॥ सु० शा० ३

योनिर्गर्भाशय इति डल्हण.। विवृताविवृतमुखत्व हि योनेर्गर्भग्रहणाग्रहणहेतुस्तच्च वायो क्रियावत कालमहायस्यायत्तमिति च प्रासङ्गिकोऽरुणदत्त (वा० शा० १)

वेधप्रहर्षणीयाणि तु पुन पूर्णवयस्काया मार्धतोलकद्वयभारस्य गर्भाशयस्य क्रमेणैकप्राङ्गुलद्विप्राङ्गुलत्रिप्राङ्गुलप्रमाणानि भवन्ति। प्राङ्गुलवेधस्तु योजनिकाऽन्तिके ज्ञेय, अन्यत्र तु प्राङ्गुलार्धमान। तदेतन्मानमप्रजाताया स्त्रिया उक्तम्, प्रजातायास्तु किञ्चिदधिकं भवति। गर्भिण्याश्च पुनर्यथागर्भमभिवर्धते।

प्राञ्चश्चात्र—

(१) स्त्रीणां गर्भाशयोऽष्टम।

(२) पित्तपक्वाशययोर्मध्ये गर्भशय्या, यत्र गर्भस्तिष्ठति।

(३) शङ्खनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्त्ता सा प्रकीर्त्तिता।
तस्यास्तृतीये त्वावर्त्ते गर्भशय्या प्रतिष्ठिता॥
यथा रोहितमत्स्यस्य मुख भवति रूपत।
तत्संस्थानां तथारूपां गर्भशय्यां विदुर्बुधाः॥—सु० शा० ५

वहिर्मुखम् External Os अन्तर्मुखम् Internal Os (२) 'पित्तपक्वाशययोर्मध्ये' इत्यत्र 'वस्तिपक्वाशययोर्मध्ये' इति पाठो न्याय्य' (गणनाथसेनमहोदया)। तत्संस्थानाम् = अल्पमुखामन्तर्महाशुषिरामितिडल्हण।

(४) स्त्रीणां तु वस्तिपार्श्वगतो गर्भाशयः सन्निकृष्ट.।

—सु० चि० ७

(५) भगस्याधः स्त्रिया वस्तिरूर्ध्वं गर्भाशयः स्थित ।
गर्भाशयश्च वस्तिश्च महास्रोत.समाश्रितौ ॥

—वैतरणः (डल्हणेनोद्धृतः)

निर्म्माणं पुनर्गर्भाशयस्य तिसृभिः प्राचीरिकाभिर्वृतिभिवा सम्पद्यते। तत्र—

परिवेष्टिकवृतिर्नाम—बाह्या प्राचीरिका परिवेष्टिन्या कलयोदर्यया निर्मीयते। सेय कला पुरस्तादवतीर्यमाणा वस्तेरुत्तर पश्चिम च समाच्छाद्य पुनरूर्ध्वं प्रस्थिता सोपाङ्गं गर्भाशयशरीर पूर्वतः प्रावृणोति, अवतरति च पुनस्तथैव गर्भाशयस्य शरीरम्, ऊर्ध्वयोनिक ग्रीवाभाग योनिप्राचीरांशञ्च पश्चिमतः समाच्छादयन्ती। एवञ्चास्या द्विगुणीभावो गर्भाशयसन्धारणाय जायते। ततश्चैषा गुदनलिकादीन् प्रावृण्वती पुनरूर्ध्वं प्रतिष्ठते। इत्थञ्च पुरस्ताद् गर्भाशयस्य वस्तिगर्भाशयान्तरीयम्, पश्चाच्च योनिगुदान्तरीयं नाम (गुदगर्भाशयान्तरीय वा) स्थालीपुटद्वय निष्पद्यते। अनयोरेव च गर्भाशयधरौ पूर्वापरांशौ यथाक्रमम् अग्रिमा पश्चिमा च बन्धनिकेति सञ्ज्ञायेते। अथ च गर्भाशयप्रावरणकाले द्विगुणीभूतया कलयैव पार्श्वगतया पक्षबन्धनिकानाम. गर्भाशयप्रबन्धनमुभयतो विरच्यते।

पैशिकवृतिर्नाम—मध्यमा प्राचीरिका गर्भाशयस्थौल्यायतना प्रधानाश्रया च नाडीसिराधमनीरसायनीनाम्। स्वतन्त्रपेशीतन्तवश्च निविड सन्निविष्टा एका मासपेशीरिव लक्ष्यमाणा अपि गर्भावस्थाया त्रिधा

परिवेष्टिकवृत्ति Serous Coat (Perimetrium) वस्तिगर्भाशयान्तरीय स्थालीपुटम् Vesico-uterine Pouch योनिगुदान्तरीय गुदगर्भाशयान्तरीयं वा स्थालीपुटम् Recto-vaginal or Recto-uterine Pouch पैशिकवृतिः Muscular Coat or Myometrium

-महितास्त्रिषु स्तरेषु स्फुटं प्रतीयन्ते। तत्र वहि स्तरोऽनुदैर्घ्यसूत्रमय., अन्त.स्तरोऽनुप्रस्थसूत्रमय, मध्यमस्तरश्च परस्पराविष्टतिरश्चीनसूत्र-मय इति।

श्लैष्मिकवृतिर्नाम—आभ्यन्तरप्राचीरिका कलामयी तनुश्लेष्मस्राविग्र-न्थिबहुला सूक्ष्मरोमान्विता ग्रन्थिस्रोतोऽनुविद्धा च। लोम्ना गतिप्रवाहश्च वहिर्मुख.। उपस्नेहश्च तरल पय.समो मृदुक्षारप्रतिक्रिय स्रवति। ग्रीवागतो नि स्रवस्तु घनपिच्छिल। ग्रीवाभागे च पुरः पश्चात् मध्यरेखा-यामनुदैर्घ्यमवस्थिते द्वे वलिस्तम्भिके, ताभ्याश्चोर्ध्वं तिर्यक् प्रोद्गता वलीराजय पत्रप्रतानिकासंज्ञा सलक्ष्यन्ते। ता एता गर्भाशयमुखसंवरण-काले परस्परमाविष्टा ग्रीवासरणिमवरुन्धन्ति। धृतगर्भायाश्च स्त्रिया' कलेय किञ्चिद् विपरिणता 'गर्भधरा कला' इत्यभिधीयते।

गर्भाशयवन्धनिका—चत्वारि तावद् वन्धनिकाना युगलानि भवन्ति गर्भाशयसन्धारणाय, याभि. पूर्णयो रिक्तयोर्वा गुदवस्त्योरवस्थाभेदेन पूर्वापरत ईषन् प्रचलन्नपि यथास्थानं गर्भाशयो ध्रियते। ताश्च पुनर्द्वे पक्षवन्धनिके, द्वे रज्जुवन्धनिके, द्वे त्रिकगर्भाशयिके वन्धनिके, एकाऽग्रिमा वन्धनिका एका च पश्चिमा वन्धनिकेति भवन्त्यष्टौ। तत्र—

पक्षवन्धनिके नाम—गर्भाशयधरे प्रवन्धन्यौ उदर्याख्यकलाया द्विगुणीभावादारचिते गर्भाशयपार्श्वयो पत्रवदायते च। ते इमे एकतो गर्भाशयपार्श्वे, इतरतश्च श्रोणिभित्तौ त्रिकजघनसन्धानस्याग्रत सलग्ने, मध्यप्राचीरवत् स्थिते, वस्तिगुहां पूर्वापरयोरंशयोर्विभाजयन्त्यौ, तानेतान् गर्भाशयानुबद्धान् सयोजकधातुनिगूढानवयवान् निजस्तरद्वयान्तराले सन्धारयत—बीजवाहि स्रोत, रज्जुवन्धनिका, बीजग्रन्थिः सप्रवन्धन,

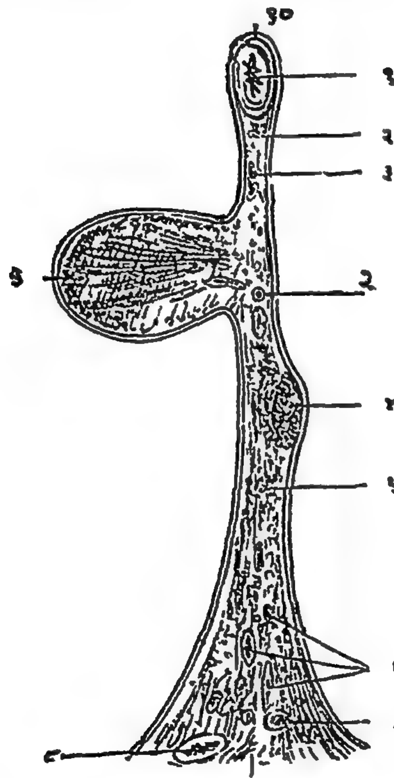
---

श्लैष्मिकवृति Mucous Coat or Endometrium पत्रप्रतानिका. Arbore Vitae गर्भधरा कला Decidua पक्षवन्धनिका Broad Ligament

बीजग्रन्थिगा धमनी सिरा च, सिराजालकम्, नाड्यः, रसायन्यः, अनुगर्भाशयिका धमनी सिरा च, गवीनी, स्वतन्त्रपेशीसूत्राणि चेति।

[१३ चित्रम्]

पल्लवन्धनिकाया अनुलम्बच्छेदः।



१—बीजवाहिस्रोत। २—अनुबीजग्रन्थिकाया धमन्या. स्रोतोऽनुगा शाखा सशिरा। ३—अधिबीजकोषिकोऽवयव. २—अनुबीजग्रन्थिका धमनी ४—रज्जुबन्धनिका। ५—सयोजकतन्तुराशिः। ६—अनुगर्भाशयाः सिरा.। ७—अनुगर्भाशया धमनी। ८—गवीनी। ९—बीजग्रन्थिः। १०—उदर्या कला।

संयोजकधातुश्चात्र परिवेष्टनकलाया स्तरद्वयान्तराले वर्तमानो गर्भाशयं परितो वेष्टयति, उपलभ्यते च विशेषेण पक्षबन्धनिकातलदेशयो., अनुगर्भाशयिके धमन्यौ परित., बस्तिगर्भाशयग्रीवयोर्गुदगर्भाशयग्रीवयो-श्चान्तराले, त्रिकगर्भाशयिकबन्धनिकयोश्च । तत्र पक्षबन्धनिकातल-देशयोरनुगर्भाशयिकधमन्यौ परितः स्थित संहतप्राय. संयोजकधातुराशिरेव गर्भाशय वस्तुत. सन्धारयति। अतएव 'ग्रीवाधरबन्धनिका' इत्यपि तदभिधान श्रूयते ।

रज्जुबन्धनिके नाम—रज्ज्वाकारे गर्भाशयस्य पुर.कर्पण्यौ बन्धनिके उदर्याख्यकलावृते पञ्चपाङ्गुलदीर्घे च। एकैका च बन्धनिका गर्भाशय-पार्श्वतो मूलकोणाद् बीजवाहिस्रोतोनिबन्धनस्थलस्याग्रतो निम्नतश्च निर्गत्य, पक्षबन्धनिकापूर्वस्तर समुत्थापयन्ती, पुरस्तादूर्ध्वं पार्श्वतश्च वक्रीभूय प्रसृता, अन्तर्वंक्षणीयच्छिद्रपथेन वंक्षणसुरङ्गायां प्रविश्य बहिर्वं-क्षणीयच्छिद्रेण च बहिरागता, छिद्रोत्तरशृङ्गे बृहद्भगोष्ठे सन्धानिका-पुरोभागे च निवेशमाप्नोति । ते इमे पेशिस्नायुसूत्रभूयिष्ठे वृषणबन्धनि-काभ्यां स्फुट सादृश्यमावहत इति गर्भव्याकरणविद ।

त्रिकगर्भाशयिके नाम ह्रस्वप्राये गर्भाशयस्य पश्चात्कर्षण्यौ पेशी-स्नायुसूत्रभूयिष्ठे उदर्यावृते च बन्धनिके, ये पुनर्मध्ययोजनिकासमीपतो गर्भाशयात् समुद्भूय पार्श्वापरतः प्रसृते गुदनलिकां क्रोडीकृत्य त्रिकपुर-स्त्यायां प्रावरण्यां निविष्टे भवत, त्रिधा विभाजयतश्च योनिगुदान्तरीय स्थालीपुट वाममध्यदक्षिणभागेषु ।

संयोजकधातु Connective tissue-the parametrium ग्रीवाधर-बन्धनिका Transverse Ligament of the Cervix रज्जुबन्धनिके Round Ligaments वंक्षणीयच्छिद्रम् Abdominal ring (Internal & External) वृषणबन्धनिका Spermatic Cord त्रिकगर्भाशयिके Sacro—uterine Ligaments

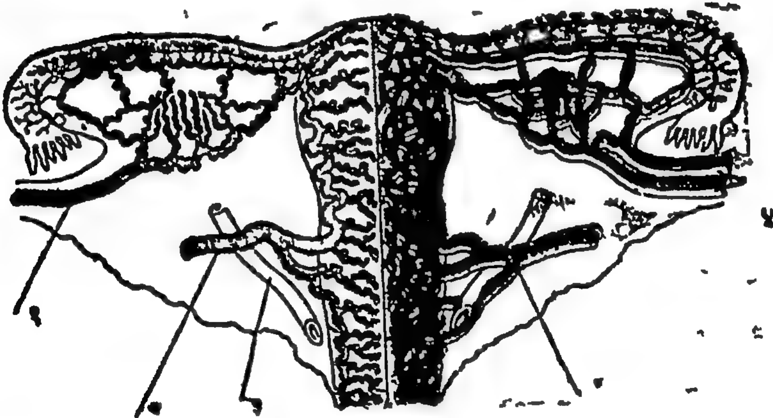
अग्रिमा पश्चिमा च बन्धनिके उदर्याख्यकलाया एव द्विगुणीभावादारचिते पूर्वोक्तस्थालीपुटद्वयस्य पूर्वापरांशभूते इत्युक्तं प्राक् । ते एते नामतो प्रबन्धन्यावपि न याथार्थ्येन गर्भाशयधारणक्षमे ।

पोषणं तावद् गर्भाशयस्य सम्पद्यतेऽनुगर्भाशयिकयोरनुबीजग्रन्थिकयोश्च धमन्योः शाखाप्रतानैः । तत्र—

अनुगर्भाशयिका नाम धमनी अधिश्रोणिकाया आभ्यन्तर्याः सम्भूय, पक्षबन्धनिकायास्तलदेशमनुसरन्ती, वस्त्यभिमुखीं गवीनीमुल्लङ्घ्य, गर्भाशयग्रीवाया अन्तिके द्वयोः शाखयोर्विभज्यते । तत्राद्या प्रधाना शाखा

[१४ चित्रम्]

सपरिकरस्य गर्भाशयस्य रुधिराभिसरणम् ।



१—अनुबीजग्रन्थिका धमनी । २—अनुगर्भाशया धमनी । ३—गवीनी । ४—अनुगर्भाशया सिरा । ५—अनुबीजग्रन्थिके सिरे ।

गर्भाशयपार्श्वे कुटिलगत्योर्ध्वं प्रसरन्ती,गर्भाशयस्य पूर्वं पश्चिम स्थलदेशाच्चोभयतः शाखाप्रदानेन पुष्णन्ती, मूलकोणान्तिके त्रिधा विभज्य शाखयैकया

अग्रिमा पश्चिमा च बन्धनिके Anterior & Posterior Ligaments.

अनुगर्भाशयिका धमनी Uterine artery

गर्भाशयस्कन्धभागमन्यया बीजवाहिस्रोतसो मूलप्रान्त पुष्णाति संयुज्यते चापरयाऽनुबीजग्रन्थिकया धमन्या सह। द्वितीयाऽधोमुखी गौणी तनुशाखा तु गर्भाशयग्रीवाया: पूर्वापरदेशावनुशाखाभिः सन्तर्पयति।

सेयमनुगर्भाशया धमनी स्वपार्श्वीयाया अनुबीजग्रन्थिकाख्यधमन्या., अनुयोनिकाख्यधमन्या:, एवं स्वनामिकाया अपरायाश्च धमन्याः सशाखानुशाखाभिर्धमनीचक्रमारचयति, परितो बीजग्रन्थी योनि गर्भाशयञ्च। सर्वासाञ्चासा धमनीनां विशेषेणायतनवृद्धिर्दृश्यते भृतगर्भायां नार्य्यामिति विशेष।

अनुबीजग्रन्थिका धमनी तु औदर्यमहाधमन्या: सम्भूय श्रोण्यामवतरन्ती, पक्षबन्धनिकायाः शिखरदेशे बीजवाहिस्रोतसोऽधस्तात् तदनुक्रममवस्थिता, बीजग्रन्थिं बीजवाहिस्रोतश्च बहुभिरनुशाखाभि. पुष्णन्ती, गर्भाशयस्य पार्श्वकोणेऽनुगर्भाशयिकया धमन्या सयुज्यते।

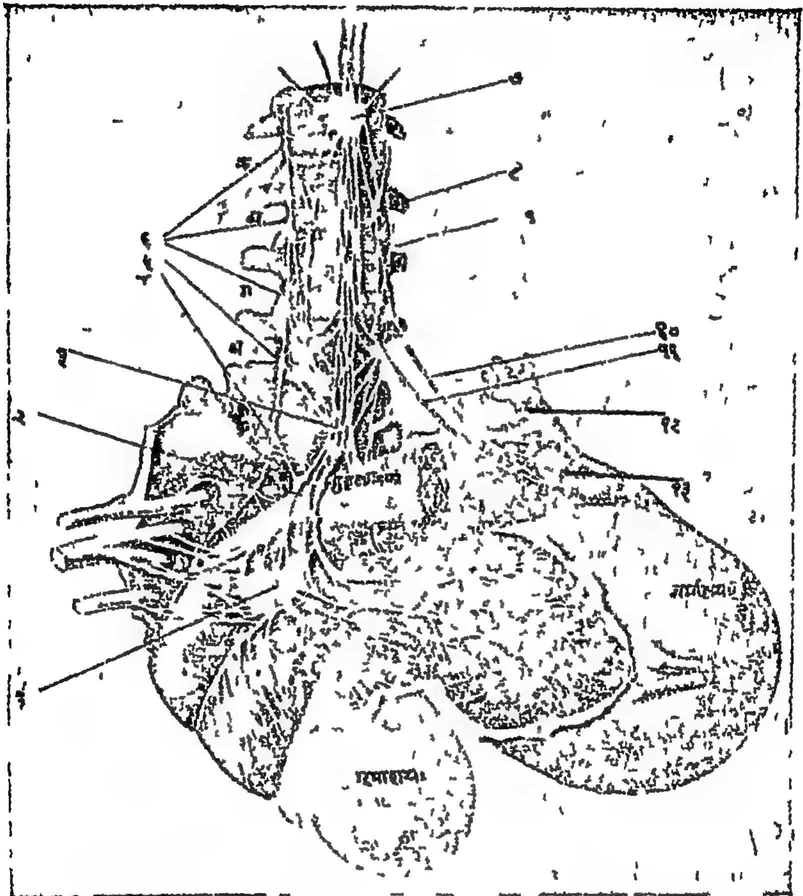
सिराश्च पुनर्धमन्यनुवर्त्तिन्यस्तथासञ्ज्ञा भवन्ति, रचयन्ति च तावदनुगर्भाशयिक सिराजालम्। तत्र, अनुगर्भाशयिका सिराऽधिश्रोणिकायामाभ्यन्तर्यां, दक्षिणाऽनुबीजग्रन्थिका सिराऽधरायां महासिराया, वामाऽनुबीजग्रन्थिका सिरा तु पुनर्वामानुवृक्कायां सिरायामुन्मुच्यते।

नाड्यस्तु पुनरधिवस्तिकान्नाडीचक्रात् वस्तिगुहान्तरीयनाडीचक्राभ्याञ्च प्राधान्येन सम्भवन्ति। द्वितीयतृतीयचतुर्थानुत्रिकनाडीभ्यो निर्गतानामपि कतिपयसूत्राणामत्र सद्भाव। सर्वाश्चैता गर्भाशयग्रीवापश्चिमत' स्थिते ग्रैवनाडीगण्डे बलाधानकरेऽवगाह्य गर्भाशये प्रसरन्ति। तत्राय विशेष —नाडीचक्रसम्भूता हि नाड्यो गर्भाशयस्यानुप्रस्थसूत्राणां प्रचेष्टन्योऽनुत्रिकनाड्यस्त्वनुदैर्घ्यसूत्राणाम्। तदेतत् परिगर्भाशय नाडीचक्रम् अपानवायो' क्रियासाधनभूतमिति तद्विदः।

अनुबीजग्रन्थिका धमनी Ovarian artery अधिवस्तिक नाडीचक्रम् Hypogastric plexus, वस्तिगुहान्तरीये नाडीचक्रे Pelvic plexuses ग्रैवनाडीगण्डम् Cervical ganglion

[१५ चित्रम्]

गर्भाशयानुगा नाड्य. ।



१—दक्षिण ग्रव नाडीगण्डम् । २—दक्षिण वस्तिगुह्यान्तरीय नाडी-चक्रम् । ३—अधिवस्तिक नाडीचक्रम । ४,५,६—अनुकटिका नाम नाडी-ग्रन्थयः । ७—अर्धेन्दुग्रन्थिर्मणिपूरग्रन्थिर्वा । ८, ९—परिवृक्क नाडीग्रन्थि-द्वयम् । १०,११—परिवीजग्रन्थिक नाडीचक्रम् । १२—बीजवाहिस्रोतः । १३—बीजग्रन्थिः । क, ख, ग, घ—कटिकशेरुकाः ।

गर्भाशयस्कन्धभागमन्यया बीजवाहिस्रोतसो मूलप्रान्तं पुष्णाति संयुज्यते चापरयाऽनुबीजग्रन्थिकया धमन्या सह । द्वितीयाऽधोमुखी गौणी तनुशाखा तु गर्भाशयग्रीवायाः पूर्वापरदेशावनुशाखाभिः सन्तर्पयति ।

सेयमनुगर्भाशया धमनी स्वपार्श्वीयाया अनुबीजग्रन्थिकाख्यधमन्या., अनुयोनिकाख्यधमन्याः, एव स्वनामिकाया अपरायाश्च धमन्याः प्रशाखानुशाखाभिर्धमनीचक्रमारचयति, परितो बीजग्रन्थी योनिं गर्भाशयञ्च । सर्वासाञ्चासां धमनीनां विशेषेणायतनवृद्धिर्दृश्यते धृतगर्भायां नार्य्यामिति विशेष· ।

अनुबीजग्रन्थिका धमनी तु औदर्यमहाधमन्या. सम्भूय श्रोण्यामवतरन्ती, पक्षबन्धनिकायाः शिखरदेशे बीजवाहिस्रोतसोऽधस्तात् तदनुक्रममवस्थिता, बीजग्रन्थिं बीजवाहिस्रोतश्च बहुभिरनुशाखाभि. पुष्णन्ती, गर्भाशयस्य पार्श्वकोणेऽनुगर्भाशयिकया धमन्या सयुज्यते ।

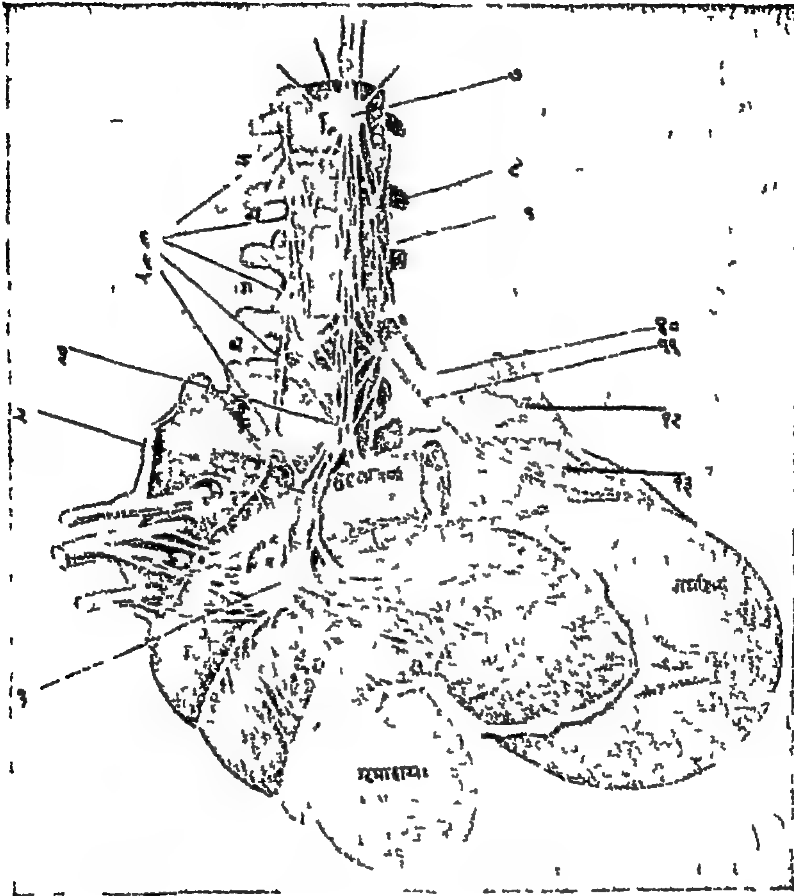
सिराश्च पुनर्धमन्यनुवर्त्तिन्यस्तथासञ्ज्ञा भवन्ति, रचयन्ति च तावदनुगर्भाशयिकं सिराजालम् । तत्र, अनुगर्भाशयिका सिराऽधिश्रोणिकायामाभ्यन्तर्यां, दक्षिणाऽनुबीजग्रन्थिका सिराऽधरायां महासिरायां, वामाऽनुबीजग्रन्थिका सिरा तु पुनर्वामानुवृक्काया सिरायामुन्मुच्यते ।

नाड्यस्तु पुनरधिवस्तिकान्नाड़ीचक्रात् वस्तिगुदान्तरीयनाडीचक्राभ्याञ्च प्राधान्येन सम्भवन्ति । द्वितीयतृतीयचतुर्थानुत्रिकनाडीभ्यो निर्गतानामपि कतिपयसूत्राणामत्र सद्भाव । सर्वाश्चैता गर्भाशयग्रीवापश्चिमत· स्थिते ग्रैवनाडीगण्डे बलाधानकरेऽवगाह्य गर्भाशये प्रसरन्ति । तत्राय विशेष —नाड़ीचक्रसम्भूता हि नाड्यो गर्भाशयस्यानुप्रस्थसूत्राणां प्रचेष्टन्योऽनुत्रिकनाड्यस्त्वनुदैर्घ्यसूत्राणाम् । तदेतत् परिगर्भाशय नाडीचक्रम् अपानवायोः क्रियासाधनभूतमिति तद्विदः ।

अनुबीजग्रन्थिका धमनी Ovarian artery अधिवस्तिक नाड़ीचक्रम् Hypogastric plexus, वस्तिगुदान्तरीये नाडीचक्रे Pelvic plexuses ग्रैवनाड़ीगण्डम् Cervical ganglion

[१५ चित्रम्]

गर्भाशयानुगा नाड्यः ।



१—दक्षिण ग्रव नाडीगण्डम् । २—दक्षिण वस्तिगुदान्तरीय नाडीचक्रम् । ३—अधिवस्तिक नाडीचक्रम । ४,५,६—अनुकटिका नाम नाडीग्रन्थयः । ७—अर्धेन्दुग्रन्थिर्मणिपूरग्रन्थिर्वा । ८, ९—परिवृक्क नाडीग्रन्थिद्वयम् । १०,११—परिबीजग्रन्थिक नाडीचक्रम् । १२—बीजवाहिस्रोतः । १३—बीजग्रन्थिः । क, ख, ग, घ—कटिकशेरुकाः ।

रसायन्यश्चापि गर्भाशयस्य तदुत्तरदेशसम्भवा औदर्यमहाधमन्यनुवर्त्तीन् रसग्रन्थीन्, मध्यदेशप्रभृता अधिश्रोणिकान् बाह्यान् (उत्तरान्) रसग्रन्थीन् रज्जुबन्धनिकापथेन वङ्क्षणीयानुत्तानांश्च रसग्रन्थीन्, अवरदेशोद्भवास्तु पुनरधिश्रोणिकान् सामान्यान् आभ्यन्तरांश्च रसग्रन्थीन् गाहन्ते।

बीजवाहिन्यौ बीजस्रोतसी वा नाम षडङ्गुलप्राय स्रोतोयुगम गर्भाशयपार्श्वकोणाभ्यां विनिःसृत्य बहि पश्चाच्च बाहुवत् प्रसृतम्, पक्षबन्धनिकयोः शिखरोच्चदेशे स्थितम्, क्रोडीकृतबीजग्रन्थिकम्, उदर्य्यामहाकोषे पुष्पितमुखेन चोन्मुच्यमानम्। आभ्यामाह्वियन्ते मासि मासि बीजग्रन्थिगात्रभेदनिर्गतानि स्त्रीबीजानि। यदुच्यते —"आर्त्तववहे द्वे, तयोर्मूलम् गर्भाशय" (सु० शा० ९) इति।

स्थानाकृतिभेदेन च तयोश्चतुर्धा प्रविभाग इत्थम्—(१) आद्या गर्भाशयाविष्टो भागः प्राङ्गुलार्धप्रायो गर्भाशयप्राचीरिका निभिद्य स्थित, सूक्ष्मशरेपिकाप्रवेशार्हस्रोतोमुखेन गर्भाशयगुह्ययाऽनुबद्धः। (२) द्वितीयो गर्भाशयस्य पार्श्वकोणाद्बहिर्गतः समप्रस्रोतम आन्तरवृत्तायाशप्रमाणो वृत्तकठिन सङ्कीर्णस्रोतोऽवकाशत्वात् योजनिकासद्दृ.। (३) तृतीयो भागस्तु तनुप्राचीरोऽखिलस्रोतसोऽर्धभागनिर्मापक स्फारीभूतत्वात्

औदर्यमहाधमन्यनुवर्त्तिनो रसग्रन्थयः Aortic glands अधिश्रोणिका बाह्या रसग्रन्थय External iliac glands उत्ताना वङ्क्षणीया रसग्रन्थय Superficial inguinal glands अधिश्रोणिकाः सामान्या आभ्यन्तराश्च रसग्रन्थय Common iliac and Internal iliac glands बीजवाहिन्यौ बीजस्रोतसी वा Oviducts or Fallopian tubes – गर्भाशयाविष्टो भागः Intra-uterine or Interstitial part योजनिकाभागः Isthmus

कलसिकासंज्ञः। (४) चतुर्थस्तावत् पश्चान्मुखः पुष्पितप्रान्तो नाम भागः प्रस्फुटितकूष्माण्डपुष्पसमो भेरीसमाकारो वा। स्रोतोमुखञ्चास्य उदर्यामहाकोषे उन्मुच्यमानं प्रायेण जीवितदशायां स्रोतसः पैशिकप्राचीरिकासङ्कोचात् संवृतं तिष्ठति। परिधौ त्वस्य विषमानेकप्रवर्धनानि संलक्ष्यन्ते। प्रवर्धनानामन्यतमञ्च विशेषेण प्रवृद्धं कोरोदरं बीजग्रन्थिना लग्नं स्त्रीबीजानां पथप्रदर्शकभूतञ्च बीजकुल्यासंज्ञम्।

निर्मीयेते च बीजस्रोतसी बहिरुदर्यया कलया मध्येऽनुदैर्घ्यानुप्रस्थैः पेशीसूत्रैरन्तश्च श्लैष्मिककलया निर्ग्रन्थिकया बलीराजिसमन्वितया सूक्ष्मरोमान्वितया च। रोम्णाञ्च गतिप्रवाहो गर्भाशयाभिमुखः।

बीजग्रन्थी नाम श्रोणिप्राचीरसन्निधौ गर्भाशयपार्श्वतः पत्त्रबन्धनिकास्तरद्वयान्तराले वर्त्तमानं चटकाण्डसमाकारं बीजकोषयुगलम्, पत्त्रबन्धनिकायाः पश्चिमस्तरे गभीरखाताङ्किते च तिर्यगधिसंश्रितम्। तयोरेकैकश्च ग्रन्थिरेकतो बीजकुल्यया इतरतश्च गर्भाशयाभिमुखे प्रान्ते रज्ज्वाकारेण ह्रस्वप्रबन्धनेन संलग्नः पुष्पितप्रान्तेन गर्भाशयेन च यथाक्रमं प्रतिबध्यते। प्रबन्धनञ्चैतत् द्वित्राङ्गुलदीर्घं पेशीस्नायुसूत्रभूयिष्ठं मूलतो रज्जुबन्धनिकाया एवाङ्गभूतं बीजकोषबन्धनिकासंज्ञम्। अस्ति चात्र प्रबन्धनमेकमन्यदपि येनाऽयं बीजकुल्याभिमुखे प्रान्ते धार्यतेऽनुबीजग्रन्थिकसिराधमन्यादिगर्भेण। उत्तोलनी बन्धनिकेति च तत्संज्ञा। तदिदं बन्धनं पत्त्रबन्धनिकाया एवांशभूतं ज्ञेयम्।

पूर्वतश्चास्मिन् ग्रन्थौ लक्ष्यते खातं बीजग्रन्थिद्वारं नाम। अनुबीजग्रन्थिकानां नाडीसिराधमनीरसायनीनाञ्च तेनैव पथा प्रवेशनिर्गमौ।

कलसिकाभागः Ampulla पुष्पितप्रान्तः Infundibulum or Fimbriated extremity प्रवर्धनानि Fringe like processes or Fimbriae बीजकुल्या Fimbria ovarica. बीजग्रन्थी Ovaries बीजकोषबन्धनिका Ovarian Lig उत्तोलनी बन्धनिका Suspensory Lig of the ovary or Infundibulo-pelvic Lig बीजग्रन्थिद्वारम् Hilum of the ovary

मानतश्चैव प्रायेण तोलकार्धभार सार्धमाङ्गुलदीर्घः पादोनमाङ्गुलायतः प्राङ्गुलत्र्यष्टमाशस्थूलश्च।

सुश्रुते तु "अन्तर्गतफल"शब्देन बीजकोषयोरभिधानं दृश्यते, तद्यथा—

पुंसः पेश्यः पुरस्ताद्याः प्रोक्ता लक्षणमुष्कजाः।*
स्त्रीणामावृत्य तिष्ठन्ति फलमन्तर्गतं हि ताः॥

—सु० शा० ५

निर्माणं पुनर्बीजग्रन्थेस्तदुपादानभूतेन बीजग्रन्थिवस्तुना सम्पद्यते। तच्च द्विविधम्, अन्तर्वस्तु बहिर्वस्तु चेति। तत्र—

अन्तर्वस्तु नाम ग्रन्थेरभ्यन्तरतः स्थितो नाडीसिराधमनीरसायनी-बहुलः पेशीस्नायुतन्तुमयो भागविशेषः। तदाश्रित्य च वर्त्तते बहिर्वस्तु।

बहिर्वस्तु पुनर्ग्रन्थेर्बाह्यभागनिर्मापकं कार्यकरमवयवं सञ्जननत्वच-श्वेतावरणस्य क्षेत्रवस्तुनो बीजगर्भपुटकानाञ्च सङ्घातभूतं। तत्र सञ्जनन-त्वङ् नाम बीजकोषस्य आवरणभूता कला बीजग्रन्थिद्वारे उदर्याच्छ-कलयाऽनुबद्धा च। स्त्रीबीजानां तत्पुटकानाञ्चेयं मूलभूमिरिति प्रसिद्धिः। पुटकानि तु क्षेत्रवस्तुनः समुद्भवन्तीति केचित्। क्षेत्रवस्तु पुनः सयोजक-धातुकोषाणुमयी नाडीसिराधमनीरसायनीबहुला बीजपुटकानामाधारभूमिः सञ्जननत्वचोऽधस्ताद् वर्त्तमाना। क्षेत्रवस्तुन ऊर्ध्वभागस्तु सन्तहत श्वेतवर्णत्वात् श्वेतावरणसंज्ञः। बीजगर्भपुटकानि पुनः स्त्रीबीज धराणि पुटकानि पुष्टापुष्टभेदेन विभिन्नरूपाणि।

---

* तथाप्यत्र कविमर्शे म० म० गणनाथसेनमहाभागैरपि प्रपञ्चितं मतमिदम्, यथाहि—"नव्यमतेन तु स्त्रीणां शिश्नवृषणाभावेऽपि तत्स्थानापन्न'भग-शिश्निकाबीजकोष'यो सन्त्येव कतिचित् पेशीसूत्राण्यद्यपरप्रायाणि इति सुविदितं शारीरविदाम्। तानीह प्राचामभिप्रेतानीति सुवचम्" इति।

अन्तर्वस्तु Medulla बहिर्वस्तु Cortex सञ्जननत्वक् Germinal Epithelium क्षेत्रवस्तु Stroma. श्वेतावरणम् Tunica albuginea. बीजगर्भपुटकानि Ovarian (Graafian) follicles

तत्र क्षेत्रवस्तुनोऽभ्यन्तरे बहुशः प्रकीर्णानां सिकताकणानामिव सहस्राधिकानां सूक्ष्मस्त्रीबीजानां तनुपुटकावृतानां सन्निवेशदर्शनात् विचित्रमस्य विधातुर्निजकृत्यभिरक्षणकौशलमिति विभावयन्तु सुधियः। अथ च जन्मकाले लक्षप्रायाणामपि (सप्ततिसहस्राणामिति केचित्) यौवने पञ्चत्रिंशत्सहस्रमेषामवशिष्यते, शेषाणान्तु तत्रैव परिक्षयः। एष्वपि परिपुष्टबीजानां चतुःशतमेव बहिर्निक्षिप्यते। तत्रापि च दशानां द्वादशानां वा प्रायेण साफल्यम्। प्रत्यृतुकालञ्च प्राय एकस्माद् बीजग्रन्थेरेकस्यैव स्त्रीबीजस्य निर्गमः।

——

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातो गर्भबीजविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

द्विविधं हि गर्भबीजम्, स्त्रीबीजं पुम्बीजञ्चेति । ते च यथाक्रमं बीजग्रन्थेर्वृषणग्रन्थेश्च परिणतौ कोषाणुविशेषौ । गर्भजन्म तु तयोः संयोगादेव । तत्र परिपक्वानि बीजान्येव गर्भजननसमर्थानि भवन्ति, तस्मात्, तत्स्वरूपविज्ञानाय बीजपुटकविज्ञानं बीजागमविज्ञानं बीजविपाकविज्ञानञ्च नूनमपेक्ष्यम् । तदेवात्र च क्रमशो विस्तरेण वर्ण्यते ।

बीजपुटकानि ।

बीजगर्भपुटकानि पुनः स्त्रीबीजधराणि पुटकानि पुष्टापुष्टभेदेन विभिन्नरूपाणीत्युक्तं प्राक् । परिपक्वानीषत्पक्वान्यपक्वानि चेति पुटकानां त्रैविध्यम् । बीजग्रन्थिच्छेदे तु त्रिविधानामपि यथादेशमेषामवस्थानदर्शनम् । प्रतिपुटकञ्च कोषाणुविशेषः स्त्रीबीजमेकं (क्वचिद्द्वे ततोऽधिकान्यपि वा) पुटकेनाभिरक्षितं तेनैव च परिपुष्यमाणमवतिष्ठते ।

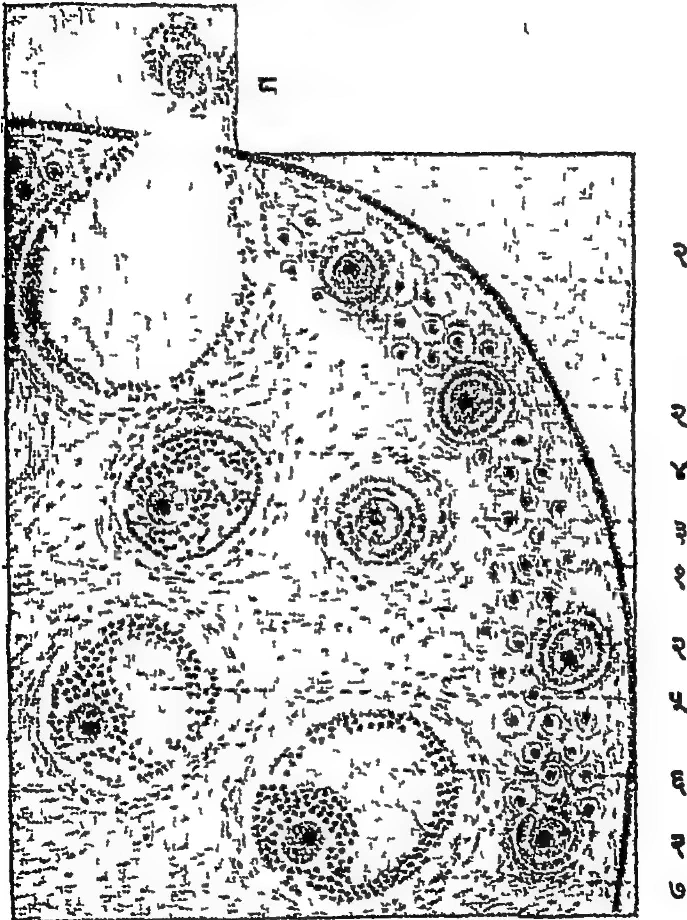
तत्र यानि अपक्वानि तानि श्वेतावरणस्याधस्तात् क्षेत्रवस्तुनः परिधिभागे उत्तानस्थितानि दृश्यन्तेऽन्तर्गतबीजवेष्टनानां संयोजकतन्तुकोषाणूनां स्तरैकनिर्मितानि सिकताकणरूपाणि । ईषत्पक्वानि च तेषामेव बीजवेष्टककोषाणूनां सविभागवर्धनादनेकस्तरमयानि । कोषाणवस्त्वेते कणिकाधराः । अतएव च कणिकाधरकोषाणुनिष्पन्नत्वात् पुटकप्राचीरिकायाः कणिनी स्तरिकेति संज्ञानम् । परिपक्वानि पुनः क्रमशोऽन्तर्द्रवनिचयात्

अपक्वानि Youngest, Earliest, Immature or Primordial Follicles पक्वानि Larger or More advanced Follicles परिपक्वानि Full ripe or Fully mature Follicles

प्रवृद्धायतनानि, आङ्गुलीयककाकाराणि, सम्पुष्टबीजानि, बहिःस्थितस्य परिवेष्टकस्य क्षेत्रवस्तुनः सङ्घातान्निष्पन्नेन पुटककञ्चुकाख्यवेष्टनान्तरेण वेष्टि-

[१६ चित्रम्]

बीजागमक्रिया ।



१—अपक्वानि बीजगर्भपुटकानि । २—पच्यमानानि बीजगर्भपुटकानि । ३—ईषत्पक्व बीजगर्भपुटकम् । ४—परिपच्यमान बीजगर्भपुटकम् । ५,६—परिपक्वे बीजगर्भपुटके । ७—क्षेत्रवस्तु (पुटककञ्चुका) । ८—पुटकभेदान्निर्गत स्त्रीबीजम् ।

तानि च । पुटककञ्चुकानाञ्च द्वेधा स्तरविभागो दृष्टः, बहिःस्तरोऽन्त-स्तरश्चेति ।

पुटकद्रवस्तु कणिन्याः स्तरिकाया अन्तश्चीयमानः स्तरिकामिमां द्विधा विभाजयति परिसरीयभागे परिबीजभागे च । तत्र परिसरीयभागः पुटक-परिसरान्तर्वेष्टनभूत., परिबीजभागस्तु बीज परित पिण्डीभूय स्थितो बीजपीठिकासञ्ज्ञ । स्त्रीबीजस्य समन्तात् क्रमविशेषेण कृतससञ्जनाना बीजपीठिकाकोषाणूना तु विसारिमण्डलमिति सञ्ज्ञा साकल्येन । मण्ड-लस्यान्तश्च स्वच्छरूप इतरोऽपि स्थूलः स्तर एको वेष्टनभूत स्त्रीबीजस्य बीजावरणसञ्ज्ञो बीजवलयसञ्ज्ञो वा । तच्च बीजपीठिकाकोषाणूनामुप-स्नेहेन जातमिति विशेषविद ।

स्त्रीबीजन्तु प्राङ्गुलस्य सविंशशतांशानामेकेन तुल्यप्रायमानम् ($\frac{१}{१२०}$") चिद्रसोपादानम् । तत्र चिद्रसस्य बाह्यो भागस्तनुस्वच्छो भवति, आन्तरश्च सान्द्र । सान्द्रता च पोषकयल्ककणसङ्कुलत्वाज्ज्ञेया । सान्द्रचिद्रसे च वर्त्तते चित्कणिकागर्भं चित्केन्द्रम् ।

बीजबीजावरणयोर्मध्ये द्रवपूर्णोऽन्तरालदेशस्तु परिबीजावकाशसञ्ज्ञ । बीजविपाककाले विसृष्टानि ध्रुवगात्राणि चास्मिन्नेवावकाशे वर्त्तन्ते । एवञ्च परिपक्वबीजपुटकस्य स्तरविभागो बहिरन्तःक्रमेणेत्थ फलित —

पुटककञ्चुका {
(१) बहिःस्तर ।
(२) अन्त स्तरः ।

स्त्रीबीजम् Ovum or Female gamete चिद्रस Protoplasm पोषकयल्कः Nutritive yolk पुटककञ्चुका Theca folliculi (१) Outer layer or Tunica fibrosa (२) Inner coat or Tunica vasculosa

मुख्यपुटकम् ।
- (३) कणिनी स्तरिका ।
- (४) पुटकद्रवः ।
- (५) बीजपीठिका ।
- (६) विसारिमण्डलम् ।
- (७) बीजावरणम् ।
- (८) परिबीजावकाशः ।
- (९) तनुचिद्रसः ।
- (१०) सान्द्रचिद्रसः ।
- (११) चित्केन्द्रम् ।
- (१२) चित्कणिका ।

स्त्रीबीजम् । (९–१२)

बीजागमः ।

परिपच्यमानानि तु बीजपुटकानि प्राक् क्षेत्रवस्तुनि गभीरं निमज्ज्य तिष्ठन्ति । काले चैषामन्यतमं परिपक्वं सदूर्ध्वमागत ग्रन्थिगात्रे पिडकोद्गम इव संलक्ष्यते । ऊर्ध्वमनागतानामभिन्नानां वा तु परिक्षयोऽन्तरेव ।

तत्रान्तर्द्रवप्रचयेन, आर्त्तवकाले बीजग्रन्थौ रक्तसञ्चारपरिवृद्ध्या, ग्रन्थिगतानां पेशीसूत्राणां प्रचेष्टनेन चोत्तंसितस्य बीजपुटकस्य समुत्सन्नो भागः प्रवृद्धान्तर्भारसम्पीडितः क्रोथमाप्नोति । सहैव च बीजपीठिकाकोषाणूनामपि तदा तनुप्रश्लथभावः । ततश्च प्रक्वथितं पुटकं भिद्यते, स्त्रीबी-

---

मुख्यपुटकम् Follicle proper (३) Stratum granulosum (४) Liquor folliculi (५) Discus proligerus or Cumulus Oöphorus (६) Corona radiata (७) Ovolemma, Zona radiata or Zona pallucida (८) Perivitelline space (९) Cytoplasm (१०) Deutoplasm (११) Nucleus or Germinal vesicle (१२) Nucleolus or Germinal spot

जस्य च प्रश्लथबीजपीठिकाकोषाणुभिर्विमुक्तस्य विसारिमण्डलमण्डितस्य पुटकद्रवेण सह बहिरुदर्यामहाकोषे निक्षेपः । सेयं बीजगर्भपुटकानां परिपाकक्रिया पुटकविदरणात् बीजनिर्गतिश्च बीजागमपदाभिधाना साकल्येन । तत्र परिपक्वानि पुटकानि बाल्येऽपि लभ्यन्ते, किन्तु पुटकविदरणात् बीजनिर्गतिस्तु प्राय' प्राप्तयौवनाया एव दृष्टा ।

एव निक्षिप्तञ्च स्त्रीबीज प्रायेणाह्रियते बीजवाहिस्रोतसो मुखे, बीजकुल्याचेष्टनबलेन बीजवाहिस्रोतोरोम्णां गतिवेगाज्जनिताभिरुदर्यामहाकोषजलसोकाद्रववीचिभिर्वाऽन्तर्नीयमानम् । अनाहृताना तु महाकोष एव विलोप. । बीजवाहिनीपथेन च त्रिचतुर्दिवसेषु सप्तदिनेषु वा गर्भाशयप्रवेशः पुम्बीजेन ससृष्टस्य दैवयोगादससृष्टस्य वा स्त्रीबीजस्य । तत्र पुम्बीजससृष्टस्य प्रायेण गर्भाशयेऽवस्थान तदससृष्टस्य तु रज.काले रजसा सह योनिमुखान्निर्गमः ।

बीजनिर्गमानन्तरञ्च विदीर्णपुटकस्य तथा रोहण भवति यथा स्वल्पतमं व्रणलक्ष्म सम्पद्येत । तत्र विदीर्णपुटकं पुटकद्रवस्य बीजस्य च सहसा निःसरणात् व्यपगतोत्तसन पुटककञ्चुकाबहि स्तरस्य पेशीसूत्राणामाकुञ्चनेन प्रपीडितञ्च ह्रस्वायते, पूर्य्यते च पुटककञ्चुकान्तःस्तररक्तवाहिनीनां परिस्रुतेन रक्तेन । कदाचित्तु रक्तातिस्रवो जायमानो रक्तस्रुतिलक्षणान्यपि जनयति, विशेषेण च शूलम् । आयतनह्रासाच्च कणिनी स्तरिका सह पुटककञ्चुकान्तःस्तरेण प्रशिथिला सती वलीराजिसवलिता सञ्जायते । विदारमुखसमीपे च पुटककञ्चुकाबहि स्तरः सङ्कुचित. सन् पश्चात्कृष्टो पुटककञ्चुकान्त स्तर कणिनीं स्तरिकां चोद्वर्त्तयति । परिस्रुतं रक्तञ्च स्कन्दति ।

ततश्च पुटककञ्चुकान्त'स्तरस्य कणिकाधरा. संयोजकतन्तुकोषाण्नो विभज्य बहुशो वर्धमाना. सह केशिकाङ्कुरैरन्तः प्रसरन्ति । कणिकाः

बीजागम, Ovulation

स्तरिकायाः कोषाणवश्चापि प्रोच्छूना भवन्ति। सर्वे चैते कोषाणवः सम्प्रति पीतपदार्थकणवच्चिद्रसाः पीतवर्णत्वात् पीतकोषाणुसंज्ञाः। सोऽयं पीतकोषाणुमयः स्तरो बाह्यतः पुटककञ्चुकयाऽवरुद्धगतिः केवलमन्तरेव वर्धमानः, प्रशिथिलत्वाच्च वलीराजिभिरुपलक्षितः पीडयति मध्यगतं रक्तस्कन्दम्, पूरयति च पुटकगर्तं पक्षावधिना कालेन। रक्तस्कन्दश्च शनैः शनैरन्तर्लीयते। एवं परिणतस्य च निर्बीजपुटकस्य सम्प्रति पीतपिण्डम्, बीजकिणपुटमिति वा सञ्ज्ञानम्।

अत उत्तरञ्चैतत् पीतपिण्डं भाविपरिणामायापेक्षते गर्भस्याधानमनाधानं वा। तत्राऽसति गर्भाधाने पूर्णोत्कर्षं गतस्य पीतपिण्डस्यापकर्षः प्रारभते द्वित्रदिनात् प्राक् भाविन्या रजःस्रुतेः। अपकर्षस्तु तावत् कोषाणूनां चित्केन्द्रविलोपः, स्वरूपहानिः स्वच्छशुक्लपदार्थं परिणतिश्चेति। ततश्च शनैः शनैः सौत्रिकतन्तुरूपतामधिगच्छतोऽवशीर्यमाणस्य च कियता कालेन (द्वित्रमासं यावत्) स्वल्पतने मध्यनिम्ने व्रणलक्ष्मणि परिणामः। श्वेतपिण्डमिति च तत्सञ्ज्ञानम्।

सति गर्भाधाने तु आतृतीयमाचतुर्थं वा मास पूर्णोत्कर्षावस्थमेव बीजकिणपुटं तिष्ठति वर्धते वा परमपि स्तोकेन। ततश्च पूर्ववदेवापकर्षः श्वेतपिण्डनिर्माणञ्च, मन्दतरमिति तु विशेषः। एवञ्च प्रसवात् परं द्वित्रमासं यावदपि क्षीणशक्तिकस्य पीतपिण्डस्योपस्थितिर्ज्ञातुं शक्या।

कार्यदृष्ट्या च पीतपिण्डस्यान्तररसः पोषणकग्रन्थेः पूर्वपिण्डान्तररसेन भ्रूणान्तररसेन च प्रेर्यमाणः सम्पादयति कार्यजातमेतत्। तद्यथा—

पीतपदार्थः Lutein substance पीतकोषाणवः Lutein Cells. पीतपिण्ड बीजकिणपुट वा Corpus Luteum अपकर्षः Degeneration स्वच्छशुक्लपदार्थः Hyaline substance श्वेतपिण्डम् Corpus albicans.

आर्त्तवनिरोध., गर्भतल्पनिर्माणे साहाय्यम्, गर्भस्थैर्यसम्पादनम्, स्तनयो. स्तन्योत्साह, प्रतिवान्तिनिरोध, प्रसवकाले परिहीणशक्तितया प्रसवनिवृत्तावानुकूल्यम् अपरिहीणशक्तितया वा कदाचित् कालातीतस्थापन गर्भस्येति ।

वीजविपाकः ।

विपक्व स्त्रीवीजमेव गर्भोत्पादने क्षमम्, एवं पुम्बीजमपि । वीजस्यायतनवृद्धि क्षयविभजनमक्षयविभजनञ्चेति पाकस्वरूपम् । विपाककाले वीजस्य चित्केन्द्रे चिद्रसे च परिवर्त्तनानि जायन्ते । चित्केन्द्रे वर्णपदार्थ परिवर्त्तते । वर्णपदार्थश्च वर्णतन्तुरूप. । मानवशरीरे प्रतिकोषाणु वर्णतन्तूनामष्टचत्वारिंशत् सख्या नियता । वशगुणानुवृत्तिश्च वर्णतन्तूनधिकृत्य वर्त्तते, एव स्त्रीत्वपुस्त्वरूपलिङ्गजननमपि वर्णतन्तुहेतुकमेवेति मन्त्या. । स्त्रीवीजगताना ४८ वर्णतन्तूना मध्ये तन्तुद्वय लिङ्गजनकं 'स्त्र'-शब्दवाच्य च ।

तत्र पुरा वर्णतन्तवो वृद्धिं गच्छन्ति, तत प्रत्येक तन्तुर्द्वितीयेन तन्तुना मिलित्वा तन्तुसख्यामर्धयति । एवं मेलनाच्च चतुर्विंशतितन्तव सम्पन्नाः । तेष्वेक. 'स्त्र'तन्तु 'स्त्र'तन्तुद्वयमेलनप्रभव इति विशेष । इयं तन्तुमेलनक्रिया च सम्पत्स्यमानस्य क्षयविभागस्य पूर्वोपक्रमभूता ज्ञेया । चिद्रसपरिवर्त्तनेन च वीजकोषाणोभृशमायतनवृद्धि पोषकयल्कपदार्थनिचयश्च ।

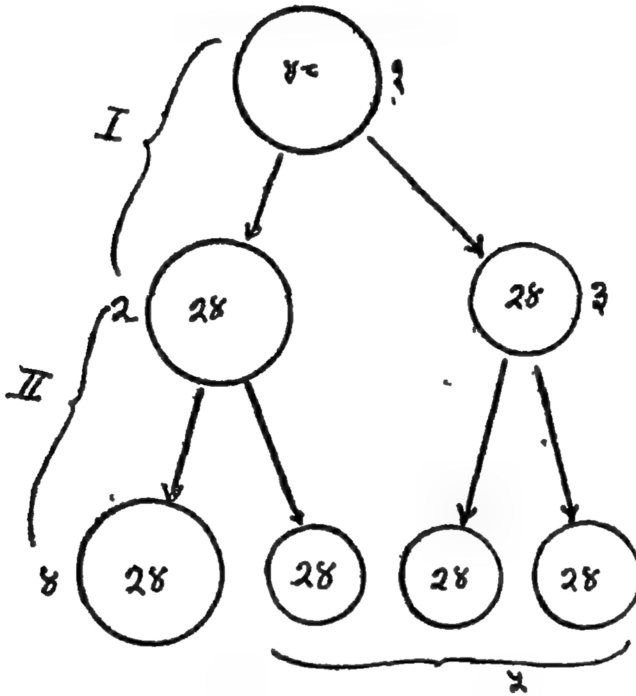
एव वृद्धि गत स्त्रीवीजन्तु साम्प्रतमुत्सुक्के प्रविभागाय । विभागकाले च युग्मीभूता वर्णतन्तवो वीजस्योर्ध्वध्रुवदेशसमीपे व्यवस्थिता द्विधा भज्यन्ते । तेषामेकोऽर्ध ऊर्ध्वध्रुवदेशगतो ध्रुवदेशमुद्गमयति, अपरोऽर्धश्च मध्यगभागं प्रति प्रतिष्ठते । चिद्रसोऽपि विभज्यमानो ध्रुवदेशे चोदी-

वीजविपाक Maturation of the ovum आयतनवृद्धि. Increase in size क्षयविभजनम् Heterotypical or Reduction division अक्षयविभजनम् Homotypical mitosis वर्णपदार्थ Chromatin. वर्णतन्तव Chromosomes लिङ्गजनकतन्तु Sex chromosomes

न्यान् शेषभागे च द्राघीयान् सम्पद्यते । ततश्चोद्गतो भागः २४ वर्णतन्तुयुक्तः स्वल्पचिद्रसात्मको मूलभागात् पृथग् भवति परिबीजावकाशदेशे

[१७ चित्रम्]

स्त्रीबीजविपाकप्रक्रिया ।



I—त्रयविभजनम् । II—अत्रयविभजनम् । १—प्राथमिक स्त्रीबीजम् । २—द्वैतीयक स्त्रीबीजम् । ३—प्रथम ध्रुवगात्रम् । ४ परिपक्व स्त्रीबीजम् । ५—ध्रुवगात्राणि ।

च सन्तिष्ठते । सोऽयं पृथग्भूतो लघुभागः 'प्रथमं ध्रुवगात्रम्' शेषो मूलभागश्च द्वैतीयकस्त्रीबीजमिति सञ्ज्ञायते । आद्यस्त्रीबीजगताना ४८ वर्णतन्तूना संख्यार्धत्रयाच्चैष त्रयविभागक्रमः ।

प्रथम ध्रुवगात्रम् First polar body. द्वैतीयक स्त्रीबीजम् Secondary Oocyte

ततश्च द्वतीयकस्त्रीबीजे पुनरपि तथैव व्यवस्थिताः २४ वर्णतन्तवः पूर्ववदेव चिद्रसेन सह द्विधा विभज्य पृथग्भूता द्वितीयं ध्रुवगात्रं निर्मान्ति। शेषो बृहत्तरमूलभागस्तु सम्प्रति परिपक्वस्त्रीबीजसञ्ज्ञः। द्वैतीयकस्त्रीबीजगताना २४ वर्णतन्तूना सख्याया अर्धत्वाच्चैष अर्ध-यविभागक्रम.।

प्रथम ध्रुवगात्रमपि प्राय एवमेवार्धयविभागं प्राप्नोति। इत्थञ्चैकेन स्त्रीबीजकोषाणुना चत्वारो बीजकोषाणव उत्पन्ना.। तेषां परिपक्वस्त्री-

[१८ चित्रम्]

वर्द्धितायतनं पुम्बीजम्।

बीजाख्यस्य कोषाणुविशेषस्यैव गर्भारम्भकत्वं नत्वन्येषामिति विशेष.। सर्वञ्चैतत् पुटकविवरणात्पूर्वमेव निष्पद्यत इत्येके। अन्वयनिभजन तु पुटकविदारणान्निर्गतबीजे जायत इत्यन्ये।

पुम्बीजविपाकोपीदृगेव। पुम्बीजन्तु वृषणग्रन्थे परिणत कोषाणुविशेपश्च तुरङ्ग। शिरो, ग्रीवा, गात्रं, पुच्छञ्चेति च तद्-ङ्गानि। शुक्रे तु शुक्रकीटाणुरूपाणि पुम्बीजानि सहस्रश. समुपलभ्यन्ते। पुच्छबलेन चैतेषां महच्चाञ्चल्यम्, अतएव योनितो गर्भाशये गर्भाशयाच्च बीजवहस्रोतसि रोम्णां प्रतिप्रवाहमप्येषां प्रवेश। बीजवाहिन्या स्रावश्च पुम्बीजेभ्यो विशेषेण रोचते। सोऽयं रागविशेष एव



१—शिर। २—ग्रीवा। ३—गात्रम्। ४—पुच्छम्।

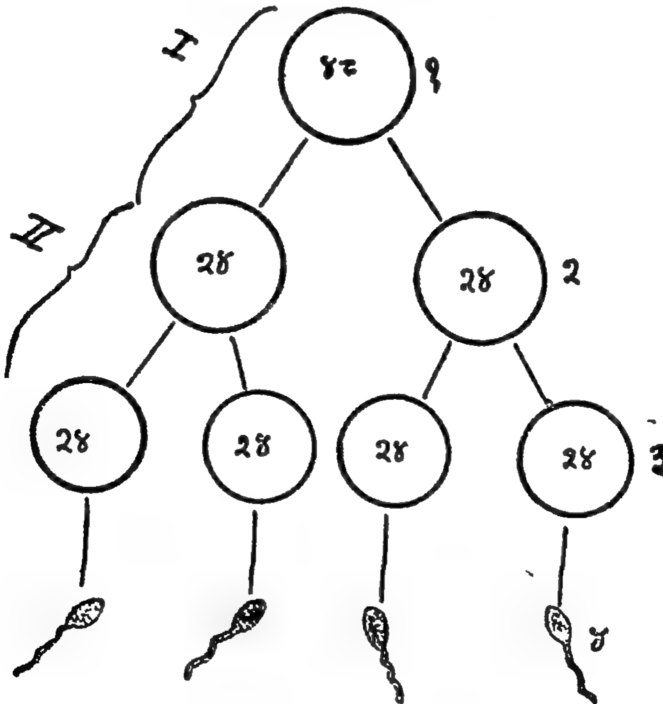
द्वितीय ध्रुवगात्रम् Second polar body परिपक्वस्त्रीबीजम् Mature ovum पुम्बीजम् Spermatozoon or Male gamete

शुक्रकोटाणूना बीजवहस्रोतोऽभिमुखीकरणे हेतुरिति साम्प्रतिकाः। अनु-कूलदशाया तु पुम्बीजानां कतिपयदिवसान् यावत् प्राणवत्त्वं गर्भोत्पादनसामर्थ्यञ्च प्रसिद्धम्। पुम्बीजविपाकस्य चेदं वैशिष्ट्यम्—

(१) चित्केन्द्रगतानां ४८ वर्णतन्तूनां 'मध्ये यल्लिङ्गजनकं तन्तुद्वयं, तयोरेकः 'ग्न'शब्दवाच्य इतरस्तु 'ज्ञ'शब्दवाच्य'। तन्तुमेलनावसरे च 'ग्न''ज्ञ'योरनयोः सयोगः। (२) न्नयविभजनक्रमे चिद्रसः समानप्राय एव

[१९ चित्रम्]

पुम्बीजविपाकप्रक्रिया ।



I—न्नयविभजनम्। II—अन्नयविभजनम्। १—प्राथमिकं पुम्बीजम्। २—द्वैतीयकपुम्बीजद्वयम्। ३,४—परिपक्वपुम्बीजचतुष्कम्।

-भागद्वये भज्यते न तु विपक्षे। पुंस्त्रीसूत्रस्य 'क' संज्ञकतन्तुद्वयस्य पृथग्भा-
-वाच्चैकस्मिन् भागे 'क' तन्तुरपरस्मिंश्च भागे 'ख' तन्तुरवस्थितो भवति।
एवञ्च २४ वर्णतन्तुमन्ती द्वे द्वैतीयिकपुम्बीजे प्राथमिकपुम्बीजात्सम्भवतः।
तत्रैकं 'क' तन्तुमत्, इतरच्च 'ख' तन्तुमदिति विशेषः। (३) अस्यविभज-
-नकाले तु प्रत्येकं द्वैतीयिकपुम्बीजात् तत्सदृशे एव द्वे परिपक्वपुम्बीजे जायेते।

एवञ्च प्राथमिकात् पुम्बीजादेकाच्चत्वारि परिपक्वपुम्बीजानि समुत्प-
-न्नानि, द्वे 'क' तन्तुयुक्ते द्वे च 'ख' तन्तुयुक्ते। सर्वथा चैतेषां गर्भोत्पादकत्व-
-मिति विशेषः।

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातो रजोविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

रजोभावो हि नाम चक्रक्रमः परिवर्त्तनाना स्त्रीशरीरे, यः पुनः प्रतिमास नियमेन यौवनादारभ्य रजोनिवृत्ति यावत् रजःस्रावरूपतया बहिर्लक्ष्यतेऽन्यत्र गर्भकालात्स्तन्यकालाच्च । स्तन्यकाले रजोलोपस्तु प्रायिक. । रजस्तु तावच्छ्लेष्मसम्मिश्र रक्तमेव गर्भाशयाच्च्यवमानम् । यदुच्यते सङ्ग्रहकारेण "रक्तमेव स्त्रीणा मासि मासि गर्भकोष्ठमनुप्राप्य त्र्यहं प्रवर्त्तमानमार्त्तवमाहु·" इति । आर्त्तव शोणित पुष्पमसृक् बीजरक्तं रजश्चेत्यनर्थान्तरम । कश्यपश्चापि—

... .स्त्रीणा गर्भाशयोऽष्टम· ॥
रजोवहा सिरा यस्मिन् रजः प्रविसृजन्त्यतः ।
पुष्पभूत हि तद्दैवान्मासि मासि प्रवर्त्तते ॥
हीनयोन्यास्तु बालाया· कायं गच्छति शोणितम् ।
अथ पूर्णस्वभावायाः काय योनिञ्च गच्छति ॥
धातुषु प्रतिपूर्णेषु शरीरे समवस्थिते ।
सञ्चित रुधिरं योनि. पुनः कालेन मुञ्चति ॥ इति ।

(स्वसंहिताया रक्तगुल्मविनिश्चयाध्याये)

तदिद रजः प्रथम प्रवर्त्तमान नार्या गर्भधारणयोग्यतां प्रजननक्षमत्वञ्च क्रियाविज्ञानदृष्टया सूचयति नतु शरीररचनाविज्ञानदृशा । प्रवृत्तिवयस्तु पुना रजोदर्शनस्य व्यक्तिजातिदेशाहारविहारभेदतो बहुधा भिद्यमानमपि

रजोभावः Menstruation, Menses, Catamenia, Monthly periods गर्भकाल Pregnancy स्तन्यकालः Lactation रजः Menstrual blood

प्रायशो देशेऽस्मिन त्रयोदशे चतुर्दशे वा वर्षे समायाति। उपचीयमाने च रजस्यन्येषामपि जातोत्तरवैशेषिकभावानामभिव्यक्ति। यदुक्त सुश्रुतेन—"रोमराज्यादयश्च विशेषा नारीणाम्, रजसि चोपचीयमाने शनैः स्तनगर्भाशययोन्यभिवृद्धिर्भवति" (सूत्र० १४)। शरीरदृष्ट्या तु गर्भधारणे प्रजनने च क्षमा पूर्णषोडशवर्षा भवतीति प्राच्या विंशतिवर्षप्रायेति च प्रतीच्याः यथादेशदर्शनं निरणैषु। उच्यते चात्र—

(१) पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्य्यौ तु जानीयात् कुशलो भिषक्॥

—सु० सू० ३५।

(२) ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते॥
जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥

—सु० शा० १०

(३) पूर्णषोडशवर्षा स्त्री पूर्णविंशेन सङ्गता।
शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्रेऽनिले हृदि॥
वीर्यवन्तं सुतं सूते ततो न्यूनाब्दयोः पुनः।
रोग्यल्पायुरधन्यो वा गर्भो भवति नैव वा॥

—वा० शा० १

(४) अथ खलु पुमानेकविंशतिवर्षः कन्याम् द्वादशवर्षदेशीयाम् विधिनोद्वहेत। तस्या षोडशवर्षाया पञ्चविंशतिवर्षः पुरुषः पुत्रार्थं प्रयतेत। तदा हि तौ प्राप्तवीर्य्यौ वीर्यान्वितमपत्यं जनयतः। इति।

—सग्रहशा० १

---

(३) प्रायिकञ्चैतत्, अर्वागपि साधुगर्भदर्शनादित्यरुणदत्तः।

(५) अथास्मै पञ्चविंशतिवर्षाय द्वादशवर्षां पत्नीमावहेत्, पित्र्य-
धर्मार्थकामप्रजाः प्राप्स्यतीति । (सु० शा० १०)

रजःस्रावकालः—मासि मासि त्रिरात्रं पञ्चरात्रं सप्तरात्रं वा रज उद्भूततयाऽनुबध्नातीति सिद्धान्तः, प्रायशश्च पञ्चरात्रम् । अथ नव्या अपि दिनद्वयान्न्यून दिनाष्टकादधिकञ्च प्रवर्त्तमान रजो न प्रकृतिरिति वदन्ति ।

आर्त्तवान्तरकालः—मासि मासि रजः स्रवतीति मासिकोऽयमार्त्तवान्तरकालः । मासीत्युपलक्षणम्, तेन द्वित्रदिनाना न्यूनाधिक्यमपि सम्भवति । रजोदर्शनदिवसादारभ्य आपुनारजोदर्शनदिवस कालपरिगणनेति व्यवहार । कालस्यास्य स्वकालेऽवस्थानं प्रकृतिर्विकृतिश्च पुनरतोऽन्यथा । श्रूयते च धर्मशास्त्र न्यूनतमकाल एकविंशतिदिवसमितो दृष्ट इति । तद्यथा—

अष्टादशदिनादूर्ध्वं स्नानप्रभृतिसंख्यया ।
यद्रजस्तु समुत्पन्नं तत्कालोत्पन्नमुच्यते ॥ इति ।

रजःक्षयः—आयुषो वर्षपञ्चाशत इतस्ततो हि रजः सहसा क्रमशो वा निवर्त्तते । क्षीणे रजसि प्रायो गर्भधारणशक्तेरपि परिक्षयः । विधवानामायाससेविनीना दुःखशीलानामचिरेण, सधवाना बहुप्रजानामलसानाञ्च चिरेण रजोनिवृत्तिर्दृष्टा । निवृत्तरजस्कायाश्च पुनः परिवर्त्तन्ते शारीरमानसा भावा अपि, तद्यथा—

---

(५) अत्र 'एकविंशतिवर्षाय' इति 'षोडशवर्षाम्' इति वा पाठ परिवर्त्त्यायुषो विरोधः परिहर्त्तव्यः । एवञ्च वैद्यके वरवध्वोर्वयोभेदो नववर्षमितो दृश्यते । जयमङ्गलाकारो यशोधरस्त्वाह—"चतुर्थादष्टम यावत् कनिष्ठा वत्सरे वरात् । कन्या परिणयेच्छ्रुस्ता नेतरातिवयाश्च या" इति ।

रजःस्रावकालः Period of flow or Menstrual habit आर्त्तवान्तरकालः *Inter-menstrual period or Menstrual type* रजःक्षयः Menopause (Climacteric)

स्तनयोनि धराबीजग्रन्थीना शीर्णता, क्षय ।
वृद्धिर्वा मेदसो धातो, वैम्नस्य, विग्नचित्तता, ॥
रोमोद्गमो मुखे रौक्ष्यमिति रूपविपर्यय ॥
निद्राक्षयो श्रम कम्पोऽरोचको बद्धविट्कता ।
हृत्स्पन्दोऽपस्मृतिर्ध्मोनमिति लिङ्गान्यपि क्वचित् ॥

आर्त्तवादर्शनम्—रजोदर्शनाद् रजःक्षय यावत् यदन्तराऽन्तरा रजसो निरोध, सोऽयमार्त्तवादर्शनसज्ञः । उपलभ्यते च तद् विशेषतो गर्भकाले स्तन्यस्रावकाले च ।

असृग्दर.—रज स्रावकाले तदतिरिक्तकाले वा योनिमुखादतिप्रसङ्गेन प्रवर्त्तमाने रुधिरे सज्ञेय प्राचां व्यवह्रियते । उक्तञ्चापि—

(१) तदेवातिप्रसङ्गेन प्रवृत्तम् अनृतावपि ।
असृग्दर विजानीयात, अतोऽन्यद्रक्तलक्षणात् ॥

—सु० शा० २

आर्त्तवाऽदर्शनम् Amenorrhoea असृग्दर Menorrhagia and Metrorrhagia

[*Menorrhagia —This denotes excessive bleeding at the* menstrual periods, and is a relative term Metrorrhagia — This signifies a discharge of blood from the uterus independent of menstruation —Bland-sutton & Giles]

(१.) अतिप्रसङ्गेन—अतिप्राचुर्य्येण दीर्घकालानुबन्धेन वा । अनृतौ अल्पमपि अदीर्घकालमपि प्रवृत्तम् असृग्दर विजानीयादित्यत्र डल्हण । विप्रतिपद्यन्ते चात्र केचित् "अनृतावल्पमप्यदीर्घकालमपि प्रवृत्तमसृग्दर विजानीयादिति डल्हणोक्तिस्तु न समीचीना, चरकोक्तप्रदरलक्षणे प्रमाणाधिक्यस्य मुख्यलक्षणत्वेनोक्तत्वात् प्रमाणाधिक्यस्वल्पकालानुबन्धित्वयोश्च परस्परमसङ्गतत्वा दिति । तन्न । (क)नहि चरके ऋत्वनृतुकृता भेदविवक्षा दृश्यते, न चापि डल्हणेन

(२) "अतिप्रसङ्गेनानृतावृतौ वा तदेवासृग्दरं प्रदरम्
व्यापदश्च रक्तयोनिसञ्ज्ञा लभते" इति ।

—सङ्ग्रहशा० १

(३) .. . . कुपितोऽनिलः ॥
रक्तं प्रमाणमुत्क्रम्य गर्भाशयगताः सिराः ।
रजोवहाः समाश्रित्य रक्तमादाय तद्रजः ॥
यस्माद् विवर्धयत्याशु रसभावाद्विमानता ।
तस्मादसृग्दरं प्राहुः, एतत्तन्त्रविशारदाः ॥

—च० चि० ३०

'अपि'शब्दद्वयं प्रयुञ्जता प्रमाणाधिक्यं दीर्घकालानुबन्धित्वञ्च निषिद्धम् । यत्र प्रमाणाधिक्यं तत्र दीर्घकालानुबन्धित्वमपीति तु न नियमः । (ख) अथ च ऋतौ स्वभावेन रजः प्रवर्तते नानृतौ, तथा च ऋतुस्वभावादपि प्रवर्तमानं रजो यथाविध प्रमाणाधिक्यमृतुकालजेऽसृग्दरे दर्शयति न तथाविधमनृतुकालप्रवृत्तेऽसृग्दरे । एवञ्च ऋतुकालप्रमाणसापेक्षा हि तत्राल्पप्रमाणता ज्ञेया । (ग) अन्यच्चापि, असृग्दरो हि लक्षणमात्रम् नतु व्याधिः । तत्रर्तुप्रवृत्तोऽसृग्दरः प्रायेण प्रकृतिकोपनिमित्तजः, अनृतुप्रवृत्तोऽसृग्दरस्तु नियत विकृतिविशेषनिमित्तज एव (Menorrhagia is an exaggeration of a physiological phenomenon, and may be of functional origin, but metrorrhagia is always due to some organic condition, and is essentially pathological —Bland-sutton & Giles) तथा च यथाविकारं तत्र स्वल्पाधिकप्रमाणत्व दीर्घादीर्घकालानुबन्धित्वञ्च दृष्टमित्यलं विस्तरेण । (ऋतुशब्दश्चात्र अप्रशस्तर्तुपरः; एवञ्चानृतुशब्देनेह स्वाभाविकरजःस्रावकालाद् भिन्नः कालो विवक्षित इत्यवधेयम्)

उक्तार्थे चात्र श्लोकाः—

(१) रसादेव स्त्रिया रक्तं रजःसंज्ञं प्रवर्त्तते ।
तद्वर्षाद्द्वादशादूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम् ॥
(सु० सू० १४)

तद्वर्षाद्द्वादशात्काले वर्त्तमानमसृक् पुनः ।
जरापक्वशरीराणां याति पञ्चाशतः क्षयम् ॥
(सु० शा० ३)

(२) मासि मासि रजः स्त्रीणां रसजं स्रवति त्र्यहम् ।
वत्सराद्द्वादशादूर्ध्वं याति पञ्चशतः क्षयम् ॥
(वा० शा० १)

(३) मासान्निष्पिच्छदाहार्त्ति पञ्चरात्रानुबन्धि च ।
नैवातिबहुलात्यल्पमार्त्तवं शुद्धमादिशेत् ॥
(च० चि० ३०)

(४) रजः सप्तदिनं यावदृतुश्च भिषजां वर ।
(हारीतः)

आर्त्तवचक्रम्—रजसो हि सूक्ष्मप्रवृत्ति सञ्चय-निर्हृतिभेदेनावस्थात्रयम्, यथाक्रमञ्चास्य पुनः पुनरावृत्तिदर्शनाच्चक्रसंज्ञा । तत्र प्रशस्तर्तुकाले सूक्ष्मत्वेनानुद्भूततया प्रवर्त्तमानं शोणितं 'नवशोणितम्', ऋतुकालोत्तरकाले च क्रमशः सञ्चीयमानं 'जीर्णशोणितम्' इत्यभिधीयते । उपचितञ्च पुनस्तद् अप्रशस्तर्तुकाले बहिरुद्भूततया स्रवति । अतः परं पुनः पूर्ववदित्येष क्रमः । फलितञ्चैतदपि यद् द्विविधं हि रजः उद्भूतम् (बहिःपुष्पम्) अनुद्भूतम् (अन्तःपुष्पम्) चेति । तत्रोद्भूतं नाम

---

(२) द्वादशादिति प्रायिकमेतत् एकादशवार्षिकायामपि स्त्रीणां रक्तप्रवृत्तिदर्शनात् । पञ्चाशतः क्षयमित्यत्राप्येवमेव चिन्त्यमित्यरुणदत्तः । आर्त्तवचक्रम् Menstrual cycle

यत्स्रावकाले (अप्रशस्तर्त्तुकाले) प्रवर्त्तते । अनुद्भूतं च तद्यन् प्रशस्तर्त्तु-कालमनुवध्नाति । अथ चानुद्भूतस्यैव रजसः पुसङ्गमे विसर्पतः शुक्र-ससर्जनेन गर्भारम्भकत्वमिति प्राञ्चः । यथाह चक्रपाणिः—(मासान्नि-ष्पिच्छदाहार्त्तीत्यादिश्लोकव्याख्यावसरे) "पञ्चरात्रानुवन्धीति, उद्भूततया पञ्चरात्रमनुवध्नातीति पञ्चरात्रानुवन्धि, द्वादशरात्रानुवन्धित्वादार्त्तव-कालस्य, किंवा द्वादशरात्रपर्यन्त गर्भारम्भकत्वमार्त्तवस्य न तु प्रवृत्ति"रिति । मधुकोशकारोऽप्याह—"पञ्चरात्रानुवन्धीति, पञ्चरात्र प्रभूतप्रवृत्त्याऽनु-वध्नातीत्यर्थः । अल्पप्रवृत्त्या पञ्चरात्रात्परतोऽप्यनुवध्नाति" इति । उक्तञ्च घृतपिण्डो यथैवाग्निमित्यादिश्लोकव्याख्यानकाले डल्हणेनापि—"ननु पुराणमार्त्तवमुपचयाद्दिनत्रय स्रुत्वा स्वयमेव निवृत्तं, नूतन त्वल्पं स्त्यानीभूतमिव प्रवर्त्तितुमक्षमम्, तत्कथमार्त्तवसञ्चारो येन तत्सृष्ट शुक्र गर्भजननसमर्थ भवतीत्याशङ्क्याह—

> घृतपिण्डो यथैवाग्निमाश्रित. प्रविलीयते ।
> * विसर्पत्यार्त्तव नार्यास्तथा पुसां समागमे ॥" इति ।

नव्यैस्तु पुनर्गर्भाशयकलायास्तत्तत्स्वरूपमवेक्ष्य चक्रमिदञ्चतुधो विभक्त विश्रान्तिकालः, स्रावपूर्वकालः, स्रावकालः, स्रावोत्तरकालश्चेति । तत्र—

विश्रान्तिकाल.—पड्रात्रमित । गर्भाशयकला चात्र अपरिवर्त्तित-रूपा स्वा प्रकृतिमनुवर्त्तते ।

स्रावपूर्वकाल —रजःस्रावकालात्प्राक् चतुर्दशदिवसमितोऽय कालः । गर्भाशयस्य श्लष्मधरा कला चात्र द्विगुणस्थूला (¼") वीजरक्तप्रपूरिता

---

* पुरुषसमागमो वीजागमक्रियाम् (वक्ष्यमाणाम्) उद्दीपयति, तेन च नियतकालात्पूर्वमपि स्त्रीवीजस्यागम इत्याधुनिकैरपि स्वीक्रियते । विश्रान्तिकालः Quiescent interval—the resting phase स्रावपूर्वकाल. Pre-menstrual or pregestational congestion—the constructive phase

श्लेष्मानुलिप्ता च भवति। सोऽयं प्राचां सञ्चयकाल.। धृतगर्भाया-श्चात परमियमेव कला चतुर्गुणस्थूला जायते। 'गर्भधरा कला' इति च तत्संज्ञानम्। विश्वामित्रश्चात्र—

सूक्ष्मकेशप्रतीकाशा बीजरक्तवहाः सिराः।
गर्भाशयं पूरयन्ति मासाद्बीजाय कल्पते॥ इति।

स्रावकाल —चतुष्पञ्चदिवसमित। अत्र बीजरक्तेनातिप्रपूरिता-कलाभागा यत्र तत्र विच्छिद्यन्ते, निःसरति च ततः कलाविदारस्थलेभ्यो ग्रन्थिमुखेभ्यश्च बीजरक्तम्। ग्रन्थिमुखेभ्यः श्लेष्मापि च्यवते। निर्गच्छति च तदेव बीजरक्त विच्छिन्नकलाभागान्वित श्लेष्ममिश्रञ्च रज.स्राव-रूपेण योनिमुखात्। कला चात्र पुनस्तनुतामुपैति।

आदिमध्यान्तभेदेन च स्रावकालस्य त्रैविध्यम्। तत्रादिकाल कतिपय-होरामितः श्लेष्मस्रुतिलक्षण। मध्यकालो द्विचतुर्दिनात्मक· शोणितस्राव-रूपः। शेषोऽन्तकालश्च दिनैकमानो दिनद्वयमानो वा शनै शनैर्हीयमान-शोणितस्रावतया पुनरावृत्तश्लेष्मस्रुतिलक्षणः। भवन्ति चात्र स्रावकाले—

वैचित्यमरतिं, ग्लानिं, शीतकम्प क्वचिच्, श्रम।
गौरव पक्ष्मवैवर्ण्य, मिति लिङ्गानि प्रायशः॥

सोय प्राचां निर्हरणकाल ऋतुरप्रशस्तो नाम। सुश्रुतश्चात्र—

मासेनोपचित काले धमनीभ्यां तदार्त्तवम्।
ईषत्कृष्ण विगन्धञ्च वायुर्योनिमुखं नयेत्॥ इति। (शा० ३)

स्रावोत्तरकालः—अयमपि चतुष्पञ्चदिवसमित। काले चास्मिन् विच्छिन्ना गर्भाशयकला शनै शनै प्रकृतिभावमापद्यते। सोऽयं कालो विश्रान्तिकालेन सहित प्राचां प्रशस्त ऋतु· सूक्ष्मप्रवृत्तिलक्षणः।

गर्भधरा कला., Decidua स्रावकालः Actual menstruation (or period of active blood loss—The destructive and bleeding phase स्रावोत्तरकाल. Postmenstrual—the reparative phase.

रजोभावहेतुः—वयःपरिणामकालस्वभावात् सूक्ष्मं स्थितस्य रजसः कालेऽभिव्यक्तिरिति प्राञ्चः। यथाह कश्यपो जातिसूत्रीयशारीरे—"यथा च पुष्पमध्ये फलमनिर्वृत्तं सुसूक्ष्ममस्ति नचोपलभ्यते, यथाचाग्नि दारुषु सर्वगतः प्रयत्नाभावान्नोपलभ्यते, तथा स्त्रीपुंसयोः शोणितशुक्रे कालावेक्षे स्वकर्मावेक्षे च भवतः। षोडशवर्षयोर्हि शोणितशुक्रयोर्मध्ये प्रभवतः; अर्वागपि यदाहारविशेषादारोग्याच्च पूर्णं भवत इति परिषत्" इति।

नव्यास्तु बीजग्रन्थितः समुद्भूयमान सूक्ष्मान्तःस्रावद्वय रजोभावे हेतुरिति वदन्ति। बीजग्रन्थ्योः क्रियाशीलता च पोषणकग्रन्थेः पूर्वपिण्डाब्जायमानं सूक्ष्मान्तःस्रावयुगलमपेक्षते। केचित्तु बीजग्रन्थिशासनकर एक एव पोषणकग्रन्थिपूर्वपिण्डान्तररस इत्यामनन्ति। पोषणकग्रन्थिरपि च स्वकर्मार्थं बाह्यतः प्रेरणां लभते। सा च रसपाकविधिना सह सम्बद्धा, विशेषेण च सुधारसपाकविधिना। स्त्रीणां रसपाकविधिस्तु (सुधाद्रव्यविषयकश्च प्राधान्येन) प्रतिमास चयापचयवानिति प्रामाणिकाः। दृश्यते च प्रतिमासं गर्भार्थमुपचीयमानः सुधाराशिरसति गर्भधारणे रजोद्वारेण बहिष्क्रियत इति। एवञ्च सुधारसपाककारिणोश्चुल्लिकाधिवृक्कग्रन्थ्योरपि पोषणकग्रन्थिप्रेरकत्वेन कार्येऽस्मिन् कारणता सिद्धा।

तत्रैको बीजग्रन्थिस्रावः परिपच्यमानबीजपुटकसम्भवः पीतपिण्डसम्भवश्च गर्भाशयस्य रक्तचयकरः स्तोकेन श्लैष्मिककलाया अभिवृद्धिकरश्च प्रसिद्धः। 'ऋतुसञ्जननरस' इति च तत्संज्ञानम्। अन्यो बीजग्रन्थिस्रावस्तु पीतपिण्डकोषाणूद्भवो रजःस्रावपूर्वकाले जायमानगर्भाशयपरिवर्त्तनाना प्रधानो हेतुरभिमतः। 'क्षेत्रसञ्जननरस' इति च तत्सञ्ज्ञा।

पोषणकग्रन्थिः Pituitary gland रसपाकविधिः Metabolism सुधारसपाकविधिः Calcium Metabolism चुल्लिकाग्रन्थिः Thyroid gland अधिवृक्कग्रन्थिः Supra-renal gland ऋतुसञ्जननरसः Oestradiol, Oestrin or Oestrogenic hormone क्षेत्रसञ्जननरसः Progestin or Progesterone

अथैव पूर्वपोषणिकास्रावयोरन्यतरः सम्पादयति बीजपुटकपाकभेदक्रियाम्, उद्दीपयति च ऋतुमञ्जननरसोत्पत्तिम्। इतरस्तु पोतपिण्डस्य पीतकोषाणूनां कार्योत्तेजकः क्षेत्रसञ्जननरसस्रुतिमुदीरयति। 'गर्भबीजानुगुणो रस' इति च तयोः सञ्ज्ञानम्। स्रावैकवादिनस्तु पुनराहु—एक एव पूर्वपोषणिकान्तररसो गर्भबीजानुगुणरससञ्ज्ञः स्त्रीधातुशोणिते वर्त्तमानो यथास्वमानं तत्तत् कार्यजातं निष्पादयति। तत्र हीनमानो बीजपुटकपाकभेदक्रियामृतुसञ्जननरसस्रुतिञ्च समुद्दीपयति, प्रवृद्धमानस्तु पुनः स एव पीतकोषाणूत्तेजकः सन् क्षेत्रसञ्जननरसनिर्माणं साधयतीति।

इमौ चात्र विशेषौ सततं स्मरणीयौ—(१) बीजग्रन्थेः पूर्वपोषणकग्रन्थेश्च विचित्रैव काचिन् अन्योन्यानुग्राहिता दृष्टा। तत्र प्रवृद्धमानः ऋतुसञ्जननरसः पूर्वपोषणिकायां गर्भबीजानुगुणरसस्रुतिमवसादयति, स चावसन्नो रसो बीजग्रन्थिं प्रत्यवसाद्य ऋतुसञ्जननरसक्षयं कुरुते, क्षीणमानश्च पुनरेष एव रसः पूर्वपोषणिकां समुत्तेज्य नूतनगर्भबीजानुगुणरसस्रुतिमुदीरयति, स चोदीरितो रसो बीजग्रन्थिं प्रत्युदीर्य नवीनर्त्तुसञ्जननरसाय कल्पते। अतः परं पुनः पूर्ववदेव क्रियाक्रमः। (२) पूर्वपोषणिकाया गर्भबीजानुगुणरसस्य बीजग्रन्थेरुपरि यादृशः पूर्णाधिकार इह वर्णितः, सोऽगृहीतगर्भाया एव परिज्ञेयः, गृहीतगर्भायास्तु पुनः सोऽधिकारः संसृष्टबीजस्य पोषकस्तरात् अपराया वहिर्जरायूत्तानस्तराच्च जायमानेन तादृशस्वभावेन आन्तररसविशेषेण (आन्तररसविशेषाभ्यां वा) भूम्नाऽपह्रियते। 'भ्रूणान्तररस' इति च तत्सञ्ज्ञानम्। तादृशस्वभावोऽप्ययं रसो भृशं पीतकोषाणू-

---

गर्भबीजानुगुणो रस Gonadotropic hormone अन्योन्यानुग्राहिता Reciprocal action संसृष्टबीजस्य पोषकस्तर Trophoblast of the fertilised ovum अपराया वहिर्जरायूत्तानस्तर Chorionic epithelium of the placenta भ्रूणान्तररसः Internal secretion produced by the young ovum

त्तेजको भवति, न च तद्वत् हीनाधिकमात्रया कार्यद्वयकर इति विशिष्यते। यथा यथा च निर्मीयमाणयाऽपरया सह बहिर्जरायूत्तानस्तरस्याभिवृद्धिस्तथा तथा ह्यस्यान्तररसस्यापि परिमाणवृद्धिर्जायते। कार्यतस्तु रसोऽयम् आर्त्तवनिरोधाय पीतपिण्डस्य पूर्णोत्कर्षावस्थानाय च प्रभवति।

एवञ्च रज.स्रावकालादनन्तरं पुना रजःप्रवृत्तिं यावत् सततमुपचीयमानस्य ऋतुसञ्जननरसस्य स्त्रीशरीरे य. क्रियापरिणाम. स आर्त्तवान्तरकालोत्तरार्द्धे जायमानक्षेत्रसञ्जननरसस्य क्रियापरिणामेन लब्धबलो भवति। तत्क्रियापरिणामस्वभावाच्च गर्भाशयस्य क्षेत्रीकरणक्रिया सम्पद्यते। तत्र सति गर्भाधाने भ्रूणान्तररसबलेन पीतपिण्डम् पूर्णोत्कर्षमेव सन्तिष्ठते, न च विच्छिद्यते तथाभूतात् पीतपिण्डात् क्षेत्रसञ्जननरसनिर्माणसन्ततिः। अविच्छिन्नप्रवाहश्च क्षेत्रसञ्जननरसो गर्भाशयपेशीनां प्रचेष्टनबल सविशेषमवसादयन् गर्भस्थैर्य्यकरो भवति। असति गर्भाधाने तु भ्रूणान्तररसबलाभावेन पीतपिण्डस्यापकर्षारम्भ क्षेत्रसञ्जननरसनिर्माणसन्ततेर्विच्छेदश्च। सहैव च पूर्वोक्तान्योन्यानुग्राहिताऽनुसारम् ऋतुसञ्जननरसस्यापि कालप्राप्तो मानक्षय.। एवञ्च रजःप्रवृत्तेर्दिनैकपूर्वं दिनद्वयपूर्वं वा बीजग्रन्थिस्रावद्वयस्य स्त्रीशोणितधातौ सहसा परिक्षयात् बीजरक्तप्रपूरिता गर्भाशयकला विच्छिद्यते। 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपाय:'।

रज स्वरूपम्—रजस्तु तावच्छ्लेष्मसम्मिश्र रक्तमेव गर्भाशयाच्च्यवमानमित्युक्त प्राक्। **निर्माणत:**—पुनस्तत् रसज पाञ्चभौतिकमाग्नेयञ्च। **वर्णत:**—शशासृग्लाक्षारसादिवत् आरक्तवर्णमीषत्कृष्ण वा। वर्णभेदश्चार्त्तवे प्रकृति (वातादि) भेदादेव भवतीति चक्रपाणि.। आद्यन्तयोश्च तनुस्रावरूपतया ईषत्पीतमिव संलक्ष्यत इति विशेषः। **स्पर्शतो**—निष्पिच्छम्, नातिपिच्छिलमिति यावत; ईषत् मृत्स्न तु भवत्येव श्लेष्मणा योगात्। **गन्धतो**—विगन्धम्, विशिष्टगन्धयुत दुर्गन्धरहितं वेति यावत्। **लक्षणतो**—

दाहार्त्तिशून्यम् । परिमाणतश्च—अष्टतोलकत पोडशतोलक यावत प्रमितम्। पञ्चतोलकतो विंशतितोलक यावदित्यपि केचित् ।*

न चेद् धातुशोणितवत् स्त्यायति, क्षारस्वभावश्च भवति। तत्र सुधाराशिप्राचुर्य रक्तस्कन्दकवस्तुनाऽभावश्चेति धातुशोणितादस्य वैशिष्टयम्। तच्च गर्भाशयश्लेष्मधरकलाप्रभावमूलम्। रक्तस्कन्दकवस्तुनोऽभावादेव रजो न स्कन्दात । कदाचिदुपलभ्यमान रज स्कन्दन तु ग्रन्थिभूतार्त्तवरूपा विकृतिरेव । अन्ये त्वाहु —"गर्भाशये रज. स्कन्निमेव वर्त्तते, शनैः शनैश्च तदेवाभिद्रुत योनिमुखान्निर्गच्छति। तत्र स्कन्दने विच्छिन्नगर्भाशयकलाभागेभ्य उत्पन्नः स्कन्दकवस्तुविशेषः, स्कन्दद्रवणे च गर्भाशयकलाग्रन्थीना श्लेष्मस्रावे वर्त्तमानो द्रावकवस्तुविशेष. कारणम्" इति ।

भवन्ति चात्र—

शशासृक्प्रतिम यत्तु यद्वा लाक्षारसोपमम् ।
तदार्त्तव प्रशसन्ति यद्वासो न विरञ्जयेत् ॥

—सु० शा० २ अ० ।

मासेनोपचित रक्तं धमनीभ्यामृतौ पुनः ।
ईषत्कृष्ण विगन्धञ्च वायुर्योनिमुखान्नुदेत् ॥

—वा० शा० १ अ० ।

गुञ्जाफलसवर्णञ्च पद्मालक्तकसन्निभम् ।
इन्द्रगोपकसङ्काशमार्त्तव शुद्धमादिशेत् ॥
मासान्निष्पिच्छदाहार्त्ति पञ्चरात्रानुबन्धि च ।
नैवातिबहुलात्यल्पमार्त्तवं शुद्धमादिशेत् ॥

—च० चि० ३० अ० ।

---

* अतएव (अनिश्चितपरिमाणत्वादेव) चरके मानविशेषमनुक्त्वा "नैवातिबहुलात्यल्पम्" इति सामान्याभिधानमेव कृतम् ।

क्षारस्वभावम् Alkeline in reaction रक्तस्कन्दकवस्तु Fibrin ferment स्कन्दकवस्तुविशेष Thrombokinase द्रावकवस्तुविशेषः Fibrolysin

*आर्त्तव शोणित त्वाग्नेयम्, अग्नीषोमीयत्वाद्गर्भस्य ।

—सु० सू० १४ अ० ।

सौम्यं शुक्रमार्त्तवमाग्नेयम्, इतरेषामप्यत्र भूताना सान्निध्यमस्त्यणुना विशेषेण, परस्परोपकारात परस्परानुग्रहात् परस्परानुप्रवेशाच्च ।

—सु० शा० ३ अ० ।

द्वावञ्जली तु स्तन्यस्य चत्वारो रजसः स्त्रियाः ।

—वा० शा० ३ अ० ।

रजःकार्यम्—त्रिविधं हि रजःकर्म स्त्रीशरीरस्य विशोधनम्, गर्भाशयस्य क्षेत्रीकरणम्, गर्भकृत्त्वञ्च । तत्र विशोधनं नाम निकृष्टतमरक्तनिर्गमात्, गर्भपोषणार्थं सञ्चितस्य सुधाराशेः प्रयोजनाभावेन परिक्षयाच्च स्त्रीधातुशोणितस्य संशोधनम् । क्षेत्रीकरणं पुनर्गर्भाशयस्य तत्कलास्थौल्येन संसृष्टबीजं यथा स्थिरमुपन्नञ्च भवेत्तथाऽस्य प्रसाधनम् । गर्भकृत्त्वं तु तावत् पुंसङ्गमे विसृष्टेन शुक्रेण संसृष्टस्याऽस्य स्पष्टमेव । यथाक्रमञ्चैषां रजःकर्मणां निर्ह्रियमाणेन, सञ्चीयमानेन, सूक्ष्मं प्रवर्त्तमानेन च रजसा सहान्वयो बोद्धव्यः । आहुश्च प्राञ्च —

नवे तनौ च सञ्जाते विगते जीर्णशोणिते ।
नारी भवति संशुद्धा पुंसा संसृज्यते तदा ॥

---

* आर्त्तव शोणित त्वाग्नेयमिति—सौम्येऽपि रसे तज्जमार्त्तवं धातुशोणित चाग्नेयमिति तु शब्दार्थः । अन्ये तु 'आर्त्तवशोणितम्' इति पठित्वाऽऽर्त्तवमेवाग्नेयम्, धातुशोणितञ्च पुनरनुष्णाशीतमित्यभ्युपगच्छन्ति । बीजाधारग्रन्थितो निर्गत स्त्रीबीजमप्याग्नेयमित्यष्टाङ्गशारीरकृता वारियरमहोदयानामभिप्रायः । उक्तञ्च तैः—

पुंबीजवद् बलासीय स्त्रीबीज पित्तयोगिना ।
पीतयल्केन पूर्ण स्यादत आग्नेयमुच्यते ॥ इति ।

रजः प्रसेकान्नारीणां मासि मासि विशुद्ध्यति ।
सर्वं शरीरं दोषाश्च न प्रमेहन्त्यत स्त्रियः ॥
(डल्हणोद्धृतौ तन्त्रान्तरश्लोकौ)

'रक्तलक्षणमार्त्तवं गर्भकृच्च' सु० सू० १५ अ० ।

नव्यास्तु वस्तुतः परिपक्वस्त्रीबीजस्यैव पुंबीजेन संसृष्टस्य गर्भकृत्त्व-मित्यामनन्ति । केचित्तु प्राचामुद्भूतानुद्भूतभेदमुपेत्य रजस उद्भूतस्यापि यथाकथञ्चिद् गर्भकारित्वं साधयन्त्येव । तद्यथा—"प्रत्यक्षतोऽस्य गर्भकृ-त्त्वाऽभावेऽपि शोणितमार्त्तवं बीजागमक्रियया सह सम्बद्धम्, उभयञ्चैक-योनिकम्, अन्योन्यापेक्षञ्चेत्युपलक्षणतया क्षेत्रीकरणक्रियाजनकत्वेन वा तस्य गर्भकृत्त्वम्" इति ।*

अथ प्रसङ्गानुरोधाद् रजसो रसजत्वाभिधाने स्वारस्यं प्रदर्श्यते प्राची-नदिशा—

ननु ऋतुकाले योनितः प्रवर्त्तमानं रक्तमेव रजःसंज्ञकं भवतीत्युक्तं प्राक् । रक्तञ्च खलु रसादेवाभिनिर्वर्त्तते । यथोच्यते "रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते" इति । तत्पुनरत्र "रसादेव स्त्रिया रक्तं रजःसंज्ञं प्रवर्त्तते," "मासि मासि रजः स्त्रीणां रजसं स्रवति त्र्यहम्" इत्यादिभी रसजत्वाभिधानस्य किं प्रयोजनमिति चेत् ? उच्यते—

(१) रजो हि रसाद्याहाररसात्परिणमतो जातमिति रसजं न तु रसधातोर्जातमिति बोधनार्थमिह रसजत्वाभिधानमित्यरुणदत्तः ।

(२) केदारकुल्यान्यायपक्षे हि सर्वसम्मते न केवलं रज एव अपि तु रक्तमप्याहाररसजमेवेति नात्र शङ्काऽवसरोऽपीत्यरुचिं प्रदर्शयन्तो निर्वृत्ति-कालभेदज्ञापनार्थं पुनरुक्तिरियमिति केचिद् भाषन्ते । अयञ्च तेषामभि-

* एकयोनिकत्वञ्च तयोर्बीजाधारग्रन्थिमूलकत्वेन सिद्धम् । बीजाधारग्रन्थि-रहिताया उभयमपि नोत्पद्यत इति सुपरीक्षितं नव्यैः । अन्योन्यापेक्षिता च न नियता, अन्वयव्यतिरेकाऽभावात्, रजोदर्शनं विनाऽपि बीजागमो दृष्टः, एवं सत्यपि रजोदर्शने न बीजागमः ।

प्राय:—एतच्च रजोरूप रक्त रसजन्यमपि धातुशोणितवन्न शीघ्र जायते किन्तु शुक्रवन्मासेनैवेति। यथोक्त सुश्रुतेन "स खलु त्रीणि त्रीणि कलासहस्राणि पञ्चदश च कला एकैकस्मिन् धाताववतिष्ठते, एवं मासेन रसः शुक्रीभवति स्त्रीणाञ्चार्त्तवम्" इति।

(३) अन्ये तु रजसो रक्तवत् सप्ताहेनैवोत्पत्तिं मन्यमाना आर्त्तवं नाम रसस्योपधातुरिति ख्यापनार्थमुक्तिरियमिति व्याख्यानयन्ति। उक्तञ्चापि —

रसात्स्तन्यं तथा रक्तमसृजः कण्डराः सिराः।
मांसाद्वसा त्वचः षट् च मेदसः स्नायुसन्धयः॥ इति।

स्तन्यादयश्च न धातुपदवाच्यास्ते हि शरीर धारयन्त्येव न तु किञ्चित् पुष्णन्ति। उक्त हि भोजे—

सिरास्नायुरजःस्तन्यत्वचो गतिविवर्जिताः।
धातुभ्यश्चोपजायन्ते तस्मात्त उपधातवः॥ इति।

अथाऽत्र केचिदाहु'—"एवं मासेन रसः शुक्रीभवति, स्त्रीणाञ्चार्त्तवम्" इत्यत्रार्त्तवशब्द' स्त्रीशुक्र एव वर्त्तते न तु रजसीति। तन्न। तत्रार्त्तवशब्दस्य रजोवचनत्वेनाप्युपपत्ते.। तद्यथा, तत्र मासेनार्त्तवस्य भवनमुपचयोऽभिप्रेतः प्रकाशश्च। यथाह शिवदासाचार्यः—"वस्तुतस्त्वार्त्तवस्य रक्तरूपता यद्यपि मासादर्वाग् भवति तथापि तस्यार्त्तवरूपता गर्भाशयप्राप्त्यैव। प्राप्तिस्तु मासेनैव भवतीति कृत्वा मासेनार्त्तवं भवतीति सुश्रुतेनोक्तम्" इति।

——

षष्ठोऽध्यायः ।

अथात ऋतुकालविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

ऋतुकाल ऋतूनां [illegible] कालविशेषो गर्भधारण-योग्यः स्त्रिया. पुरुषसंयोगेन [illegible] । सोऽयं [illegible] [illegible] । ऋतु [illegible] [illegible] । ऋतुर्हि द्विविधः [illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] [illegible] "ऋतुः [illegible]"—इति अमरः (नानार्थवर्गे)। अत्र मेदिनी— ऋतुः [illegible] [illegible]" इति। [illegible]—'ऋतुः [illegible]' इति।*

[illegible] षोडशरात्रिरिति [illegible] । आद्यं [illegible] [illegible] । [illegible] । नाहं [illegible], ऋतु [illegible] [illegible] । [illegible]

---

* ऋतुकालः Genetic period or Ovulation time. "ऋतु [illegible] [illegible]" —[illegible] ([illegible])। [illegible] —[illegible] ([illegible])।

गर्भजननशक्तिर्न क्षीयत इति तु सिद्धम्। अथ तद्वदृदृष्टार्त्तवोऽप्यस्तीत्येके रजोदर्शनबीजागमयोः (बहिःपुष्पान्तःपुष्पयोः) सहकालभावित्वस्याऽनियतत्वात्। कुमार्यां रजोदर्शनेन विनाऽपि गर्भधारणा दृष्टा; सूतिका चाऽपि कदाचित् पुनरार्त्तवदर्शनात् पूर्वमेव गर्भिणी भवति; नष्टार्त्तवायाः पाण्डुत्वादिरोगिण्या अप्याधीयते गर्भः; निवृत्तरजस्कायाश्चापि क्वचिद् गर्भसम्भव इत्येवञ्चात्र हेतूनुदाहरन्ति

तत्र प्राय आर्त्तवदर्शनदिवसात् पर द्वादशादिसप्तदशान्तदिवसानामन्यतमेष्वेव स्त्रीबीजागम—इत्येष एव कालो गर्भग्रहणयोग्य इति सुपरीक्षितं नव्यैः। षष्ठादात्रयोदश बीजागमकाल इत्यपि केचित्। अन्ये तु बीजागमकालो न नियतः, उदरविपाटनाऽवसरे आर्त्तवान्तरकालस्य प्रतिसमय बीजग्रन्थौ भेदोत्सुकबीजपुटकानां बहुभिर्दृष्टत्वादित्याहुः।

आहुश्च प्राञ्चः—

ऋतुस्तु द्वादशरात्र दृष्टार्त्तवो भवति। षोडशरात्रमित्यन्ये। शुद्धयोनिगर्भाशयार्त्तवाया मासमपीति केचित्। तद्वददृष्टार्त्तवोऽप्यस्तीत्यपरे।* (सङ्ग्रहशा० १)

ऋतुस्तु द्वादशरात्र भवति दृष्टार्त्तवः। तद्वददृष्टार्त्तवोऽप्यस्तीत्येके भाषन्ते। (सु० शा० ३)

"स्त्रीणामृतुर्भवति षोडशवासराणि"। (विदेहः)
"वर्षद्वादशकादूर्ध्वं यदि पुष्प बहिर्नहि।
अन्तःपुष्प भवत्येव पनसोदुम्बरादिवत्॥" (कश्यपः)

अन्यच्चापि—

ध्रुव चतुर्णां सान्निध्याद्गर्भः स्याद्विधिपूर्वकः।
ऋतुक्षेत्राम्बुबीजाना सामग्र्यादङ्कुरो यथा॥

---

* इति मतचातुर्विध्य, गर्भस्यानियतदर्शनादितीन्दुः।

नियत दिवसेऽतीते सङ्कुचत्यम्बुज यथा ।
ऋतौ व्यतीते नार्यास्तु योनि सन्त्रियते तथा ॥*

—सु० शा० २, ३ अ० ।

जलकर्षणबीजर्त्तुसंयोगात् सस्यसम्भव ।
युक्ति पड्धातुसंयोगाद्गर्भाणा सम्भवस्तथा ॥

—च० सू० ११ अ० ।

पद्म सङ्कोचमायाति दिनेऽतीते यथा यथा ।
ऋतावतीते योनि सा शुक्र नात: प्रतीच्छति ॥

—वा० शा० १ ।

ऋतुमती च नाम विगतजीर्णशोणिता नवरजस्का हि नारी ऋतुलक्षणयुता । यदुच्यते—

"गते पुराणे रजसि नवे चावस्थिते शुद्धस्नाता स्त्रियमव्यापन्नयोनि शोणितगर्भाशयामृतुमतीमाचक्ष्महे" इति—च० शा० ४ ।

पीनप्रसन्नवदना प्रक्लिन्नात्ममुखद्विजाम् ।
नरकामा प्रियकथा स्रस्तकुक्ष्यक्षिमूर्धजाम् ॥
स्फुरद्भुजकुचश्रोणिनाभ्यूरुजघनस्फिचम् ।
हर्षौत्सुक्यपरा चापि विद्यादृतुमतीमिति ॥

—सु० शा० ३ अ० ।

क्षामप्रसन्नवदना स्फुरच्छ्रोणिपयोधराम् ।
स्रस्ताक्षिकुक्षि पुस्कामा विद्यादृतुमती स्त्रियम् ॥

—वा० शा० १ अ० ।

---

* योनिशब्देन चात्र गर्भाशयग्रीवाऽभिप्रेता । ऋतुकाले योनिरपावृता तिष्ठतीति निदर्शकानि वचनान्यपि प्रसङ्गान्तरे दृश्यन्ते, तद्यथा—

स्त्रीणा चार्त्तवकाले तु प्रतिकर्म तदाचरेत् ।
गर्भासना सुख स्नेह तदादत्ते ह्यपावृता ॥ (च० सि० ९)
स्त्रीणामार्त्तवकाले तु योनिर्गृह्णात्यपावृते ॥ (वा० सू० १९)

ऋतुकालचर्या गर्भाधानविधिश्च ।

स्रावकालव्यवस्था ।

(१) ऋतौ प्रथमदिवसात् प्रभृति ब्रह्मचारिणी दिवास्वप्नाञ्जनाश्रुपातस्नानानुलेपनाभ्यङ्गनखच्छेदनप्रधावनहसनकथनातिशब्दश्रवणावलेखना-निलायासान् परिहरेत्। किं कारणम्? दिवास्वपन्त्याः स्वापशीलः, अञ्जनादन्धः, रोदनाद्विकृतदृष्टिः, स्नानानुलेपनाद् दुःखशीलः, तैलाभ्यङ्गात्कुष्ठी, नखापकर्त्तनात्कुनखी, प्रधावनाच्चञ्चलः, हसनाच्छ्यावदन्तौष्ठताल्जिह्व, प्रलापी चातिकथनात्, अतिशब्दश्रवणाद्बधिरः, अवलेखनात् खलति, मारुतायाससेवनादुन्मत्तो गर्भो भवतीत्येवमेतान् परिहरेत्।

दर्भसंस्तरशायिनीं करतलशरावपर्णान्यतमहविष्यभोजिनीं च त्र्यहं भर्त्तुः संरक्षेत्।

तत्र प्रथमे दिवसे ऋतुमत्या मैथुनगमनमनायुष्यं पुंसां भवति, यश्च तत्राधीयते गर्भः स प्रसवमानो विमुच्यते प्राणैः, द्वितीयेऽप्येवं सूतिकागृहे वा, तृतीयेऽप्येवमसम्पूर्णाङ्गोऽल्पायुर्वा भवति, चतुर्थे तु सम्पूर्णाङ्गो दीर्घायुश्च भवति।

---

(१) ब्रह्मचारिणीति, ऋतुदर्शनात्पूर्वं मासं ब्रह्मचर्यस्य वक्ष्यमाणस्य (अतः परं मासादुपेयादित्यनेन) विशिष्टप्रजोत्पादनं प्रयोजनम्। अस्मिंश्च ऋतुदर्शने दिनत्रयं ब्रह्मचर्यस्य स्वयमेवाचार्योऽग्रे प्रयोजनं कथयिष्यति (तत्र प्रथमे दिवसे मैथुनगमनमनायुष्यं पुंसां भवतीत्यादिना) इत्यत्र डल्हणः।

उन्मत्तो = वातलः शीघ्रकोपी उग्रस्वभाव इति वा यावत्। दिवास्वप्नादीनां स्वापशीलादीनां च परस्परं यः कार्यकारणभाव इह प्रदर्शितस्तस्य सोपपत्तिकं निर्धारणं तु न सुकरम्। स्त्रीणां मनोदशा भाविनमपि गर्भं प्रभावयतीति तु सुनिश्चितम्। यथाह चक्रपाणिः—"दृष्टश्च मानसानामपि भावानां भूतविशेषकरणे शक्तिविशेषः" इति (शा० २)। हविष्यं = सघृतशाल्योदनादि; क्षीरसंस्कृतं यवान्नमित्येके। स प्रसवमानो विमुच्यते प्राणैः = मृतगर्भजन्म (still born) इत्यर्थः। सूतिकागृहे वा = दशदिवसाभ्यन्तरं प्राणैर्विमुच्यत इति।

न च प्रवर्त्तमाने रक्ते बीज प्रविष्ट गुणकरं भवति, यथा नद्यां प्रतिस्रोतः प्लाविद्रव्य प्रक्षिप्त प्रतिनिवर्त्तते नोर्ध्वं गच्छति तद्वदेव द्रष्टव्यम्। तस्मान्नियमवतीं त्रिरात्र परिहरेत्। अतः परं मासादुपेयात्।

—सु० शा० २ अ०।

(२) तत पुष्पात् प्रभृति त्रिरात्रमासीत ब्रह्मचारिण्यध शायिनी पाणिभ्यामन्नमजर्जरात पात्राद् भुञ्जाना च। न च काञ्चिन्मृजामापद्येत।

—च० शा० ८

(३) तत पुष्पदर्शने प्रथमदिवसात् ब्रह्मचारिणी स्नानाद्यलङ्काररहिता दर्भसंस्तरशायिनी त्रिरात्रमासीत। पर्णशरावकरतलान्यतमेन यावक पयसा सिद्धमल्प कर्शनार्थमश्नीयात्। तीक्ष्णोष्णाम्ललवणानि च वर्जयेत्।

—सङ्ग्रहशा० १

गुणकरम् = गर्भाधानकर रूपवत्त्वसत्त्ववत्त्वचिरायुष्ट्वादिगुणकर वा।

कश्यपेऽपि जातिसूत्रीयशारीरे निजगाद—“रजस्वलायाश्चेत् प्रथमेऽहनि गर्भ आपद्येत त वातगर्भमाचक्षते विकलं वातपुष्पमिवोद्भिदाना, द्वितीयेऽहनि चेत् स्रसते च्यवते वा, तृतीयेऽहनि सूतिकासने म्रियते, न वा दीर्घायुर्भवति, हीनाङ्गश्च जायते, अत ऊर्ध्वमृतुर्द्वादशाह ब्राह्मणीनाम्, एकादशाह क्षत्रियाणाम्, दशाहं वैश्याना, नवरात्रमितरासाम्” इति।

(२) मृजामिति, मृजा = अङ्गसस्कार स्नानादिक'। (३) कर्शनार्थमिति, कर्शनेन रक्तशुद्धिर्मार्गशुद्धिर्नियत गर्भधारणा पुत्रोत्पत्तिश्च सम्भाव्यते। मातु पुष्टिकार्श्ययोर्गर्भधारणेन सह सम्बन्धविशेषोऽस्तीति तु नव्या अपि मन्यन्ते। दृश्यते च पशुलोके यत् गोमहिषीप्रभृतीनामृतुकाले यदि गर्भस्थितिर्न स्यात्तदा द्वितीयर्त्तुकाले द्वित्र्यादिनमल्पाहारप्रदानेन वृषमादिसयोगे सति नियत गर्भधारणेति। “कर्शन रक्तशुद्धये मार्गशुद्धये च”तीन्दु.। नियत गर्भधारणा पुत्रोत्पत्तिश्चे-

(४) ततः पुष्पेक्षणादेव कल्याणध्यायनी त्र्यहम्।
मृजालङ्काररहिता दर्भसंस्तरशायिनी ॥
क्षैरेयं यावकं स्तोक कोष्ठशोधनकर्शनम्।
पर्णे शरावे हस्ते वा भुञ्जीत ब्रह्मचारिणी ॥ —वा० श० १

स्नावोत्तरकालव्यवस्था।

(१) ततः शुद्धस्नाता चतुर्थेऽहन्यहतवाससा समलङ्कृता कृतमङ्गल-स्वस्तिवाचना भर्त्तारं दर्शयेत्। तत्कस्य हेतोः?—

त्याधुनिका'। स्मृतिश्चापि—"एवं गच्छन् स्त्रियं क्षामां मघां मूलं च वर्जयेत्। सुस्थ इन्दौ सकृत्पुत्रं लक्षण्य जनयेत् पुमान्" इति (याज्ञवल्क्यस्मृतिः)। अत्र मिताक्षराकारो विज्ञानेश्वरोऽप्याह—"क्षामता च तस्मिन् काले रजस्वलाव्रते-नैव भवति। अथ चेन्न भवति तदा कर्तव्या क्षामता पुत्रोत्पत्त्यर्थमल्पाऽस्नि-ग्धभोजनादिना" इति। तीक्ष्णोष्णाम्ललवणानि च वर्जयेदिति, रक्ताऽशुद्धि-भयादितीन्दुः, गर्भाशयरक्ताधिक्यकारितया गर्भाऽनवस्थानप्रसंगादिति च नव्याः।

(१) शुद्धस्नातामिति—शुद्धा जीर्णशोणितापगमेन, अनन्तर स्नातेति डल्हणः। तत्र जीर्णशोणितापगमेनान्तःशुद्धि स्नानेन च बहिःशुद्धिर्भवतीति ज्ञेयम्। श्रूयते चापि—रजस्वलायाः स्त्रिया रक्ते रजोविष भवति, स्वेद-स्तन्यमार्गाभ्याञ्च तदुत्सर्गः। अतएव रजस्वलाया हस्ते धृत पुष्पमचिरेणैव म्लायते, स्तन्यमपि च शिशोः कष्टकरं भवतीति। स्मृतयश्चात्र—

"रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला"—मनुः।

"साध्वाचारा न तावत् स्याद्रजो यावत्प्रवर्त्तते।
रजोनिवृत्तौ गम्या स्त्री गृहकर्मणि चैव हि" ॥—पाराशरः।

"स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्थेऽहनि शस्यते।
गम्या निवृत्ते रजसि नानिवृत्ते कथञ्चन" ॥—आपस्तम्ब।

"शुद्धा भर्त्तुश्चतुर्थेऽह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला।
दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽहनि शुद्ध्यति" ॥
—विज्ञानेश्वरोद्धृतम् स्मृत्यन्तरम्।

पूर्वं पश्येदृतुस्नाता यादृशं नरमङ्गना ।
तादृशं जनयेत्पुत्रं भर्त्तारं दर्शयेदतः ॥
ततो विधानं पुत्रीयमुपाध्याय समाचरेत् ।
कर्मान्ते च क्रमं ह्येनमारभेत विचक्षणः ॥

ततोऽपराह्णे पुमान् मासं ब्रह्मचारी सर्पिःस्निग्धः सर्पिःक्षीराभ्यां शाल्योदनं भुक्त्वा मासं ब्रह्मचारिणीं तैलस्निग्धां तैलमाषोत्तराहारां नारीमुपेयाद्रात्रौ सामादिभिरभिविश्वास्य, विकल्प्यैवं चतुर्थ्यां षष्ठ्यामष्टम्यां दशम्यां द्वादश्यांश्चोपेयादिति पुत्रकामः । अत परं पञ्चम्यां सप्तम्यां नवम्यामेकादश्यांश्च स्त्रीकामः । त्रयोदशीप्रभृतयो निन्द्याः ।

एषूत्तरोत्तरं विद्यादायुरारोग्यमेव च ।
प्रजासौभाग्यमैश्वर्य्यं बलञ्च दिवसेषु वै ॥
आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ ।
स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः ॥

ततो विधानं पुत्रीयमिति = पुत्रीयविधानन्त्वनुपदमेव चरकवचनैर्व्याख्यास्यते गयदासोक्तिर्वा अत्रैव डल्हणव्याख्याने द्रष्टव्या । मासं ब्रह्मचारीति = "निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु, स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् । ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्' ॥ इति मनुः । मासं ब्रह्मचारिणीमिति = पुंसो मासब्रह्मचारित्वेन स्त्रिया अपि ब्रह्मचारित्वे लब्धे मासं ब्रह्मचारिणीमिति यदुक्तं तन्मनः सङ्कल्पमात्रस्यापि निराशार्थमिति डल्हणः । एकादश्याञ्चेति = वाग्भटेऽष्टाङ्गसङ्ग्रहे धर्मशास्त्रे चैकादशमहो निन्दितम् । यदुच्यते "ऋतुस्तु द्वादश-निशाः पूर्वास्तिस्रोऽत्र निन्दिताः । एकादशी च"—वा० शा० १ । "एकादशीत्रयोदश्योस्तु नपुंसकम्"—सङ्ग्रहे । 'तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या । त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दशरात्रयः"—मनुः । चक्रपाण्युद्धृतो हारीतस्त्वाह— "चतुर्थीषष्ठ्यष्टमीद्वादशीषु गुणवन्तमायुष्मन्तं पुत्रं जनयति । पञ्चमीनवम्येकादशीषु कन्या गुणवती । सप्तम्यां दुर्भगां कन्यामिति ।"

देवताब्राह्मणपराः शौचाचारहिते रताः ।
महागुणान् प्रसूयन्ते विपरीतास्तु निर्गुणान् ॥
एवञ्जाता रूपवन्तः सत्त्ववन्तश्चिरायुषः ।
भवन्त्यृणस्य मोक्तार सत्पुत्राः पुत्रिणे हिता ॥

—सु० शा० २, ३ ।

(२) ततश्चतुर्थेऽहन्येनामुत्साद्य सशिरस्कं स्नापयित्वा शुक्लानि वासास्याच्छादयेत्, पुरुषञ्च । तत' शुक्लवाससौ स्रग्विणौ सुमनसावन्योन्यमभिकामौ संवसेतामिति ब्रूयात् । स्नानात् प्रभृति युग्मेष्वह.सु संवसेताम् पुत्रकामौ, अयुग्मेषु दुहितृकामौ । न न्युब्जा पार्श्वगता वा संसेवेत । न्युब्जाया वातो बलवान् स योनिं पीडयति । पार्श्वगताया दक्षिणे पार्श्वे श्लेष्मा स च्युत पिदधाति गर्भाशयम् (गर्भमिति पाठान्तरम्) । वामे पित्त पार्श्व तदस्याः पीडित विदहति रक्तशुक्रम् । तस्मादुत्ताना बीजं गृह्णीयात् । तस्या हि यथास्थानमवतिष्ठन्ते दोषाः । पर्याप्ते चैना शीतोदकेन परिषिञ्चेत् ।

तत्रात्यशिता क्षुधिता पिपासिता भीता विमना शोकार्त्ता क्रुद्धाऽन्यञ्च पुमांसमिच्छन्ती मैथुने चातिकामा वा न गर्भं धत्ते । विगुणां वा प्रजां जनयति । अतिबालामतिवृद्धां दीर्घरोगिणीमन्येन वा विकारेणोपसृष्टां वर्जयेत् । पुरुषेऽप्येत एव दोषा । अत. सर्वदोषवर्जितौ स्त्रीपुरुषौ संसृज्येयाताम् । सञ्जातहर्षौ मैथुने चानुकूलाविष्टगन्धं स्वास्तीर्णं सुखं शयनमुपकल्प्य मनोज्ञं हितमशनमशित्वा नात्यशितौ दक्षिणपादेन पुमान् वामपादेन स्त्री चारोहेत् । तत्र मन्त्रं प्रयुञ्जीत—

अहिरसि आयुरसि सर्वत' प्रतिष्ठाऽसि धाता त्वा ।
दधातु विधाता त्वा दधातु ब्रह्मवर्चसा भवेदिति ॥

---

(२) उत्साद्य = उद्वर्त्य । न्युब्जाम् = अधोमुखीम् । पर्याप्ते = समाप्ते । परिषिञ्चेत् = एना कृतरमणा स्त्रिय मैथुनश्रमोष्मप्रशमार्थं शीतोदकेन मुखनयनादिषु योनिषु च परिषिञ्चेत् (गङ्गाधर) ।

ब्रह्मा बृहस्पतिर्विष्णुः सोमः सूर्यस्तथाऽश्विनौ।
भगोऽथ मित्रावरुणौ पुत्रं वीरं दधातु मे॥

इत्युक्त्वा संवसेताम्।

सा चेदेवमाशासीत—बृहन्तमवदातं हर्यक्षमोजस्विनं शुचिं सत्त्वसम्पन्नं पुत्रमिच्छेयमिति, शुद्धस्नानात्प्रभृत्यस्यै मन्थमवदातयवानां मधुसर्पिर्भ्याम् संसृज्य श्वेताया गो सरूपवत्सायाः पयसाऽऽलोड्य राजते कांस्ये वा पात्रे काले काले सप्ताहं सतत प्रयच्छेत् पानाय। प्रातश्च शालियवान्नविकारान् दधिमधुसर्पिर्भिः पयोभिर्वा संसृज्य भुञ्जीत। तथा सायमवदातशरण-शयनासनयानवसनभूषणा च स्यात्। सायं प्रातश्च शश्वत् श्वेतं महान्तं वृषभमाजानेयं हरिचन्दनाङ्गदं पश्येत्। सौम्याभिश्चैनां कथाभि-र्मनोऽनुकूलाभिरुपासीत। सौम्याकृतिवचनोपचारचेष्टांश्च स्त्रीपुरुषानि-तरानपि चेन्द्रियार्थानवदातान् पश्येत्। सहचर्यश्चैनां प्रियहिताभ्यां सतत-मुपचरेयुः, तथा भर्त्ता। न च मिश्रीभावमापद्येयाताम्। इत्यनेन विधिना सप्तरात्रं स्थित्वाऽष्टमेऽहन्याप्लुत्य सशिरस्कं भर्त्रा सहाऽहतानि वस्त्राण्या-च्छादयेदवदातानि। अवदाताश्च स्रजो भूषणानि बिभृयात्।

तत ऋत्विक् प्रागुत्तरस्यां दिश्यागारस्य प्राक्प्रवणमुदक्प्रवणं वा देशम-भिसमीक्ष्य गोमयोदकाभ्यां स्थण्डिलमुपलिप्य प्रोक्ष्य चोदकेन वेदीमस्मिन्

अवदातम् = गौरवर्णम्। हर्यक्षम् = सिंहविक्रमम्। काले २ = सायं प्रातः। मन्थ = जलालोडितसक्तवः। शरणम् = गृहम्। शश्वत् = प्रतिदिनम्। आजानेयम् = कुलीनाश्वम्। हरिचन्दनम् = श्वेतचन्दनम्। अङ्गदोऽङ्गरागो बाहुभूषणं वा। इन्द्रियार्थानिति = इन्द्रियार्थाश्चाक्षुषा एव, पश्येदित्युक्तेः, किंवा पश्येदुपलभेत तेन श्रोत्रमनोभ्यामपि अवदातत्वग्रहणं लभ्यते। सप्तरात्रम् = न स्नानात्, किन्तु रजःप्रवृत्तित एव। प्रवणम् = निम्नम्, प्लवनमित्यपि पाठः। स्थण्डिलम् = पूजास्थानम्।

स्थापयेत् । ता पश्चिमेनानाहतवस्त्रसञ्चये श्वेतार्षभे वाऽप्यजिन उपविशेत् ब्राह्मणप्रयुक्त, राजन्यप्रयुक्तस्तु वैयाघ्रे चर्मण्यानडुहे वा, वैश्यप्रयुक्तस्तु रौरवे वास्ते वा। तत्रोपविष्टः पालाशोभिरैङ्गुदीभिरौदुम्बरीभिर्माधूकीभिर्वा समिद्भिरग्निमुपसमाधाय, कुशैः परिस्तीर्य, परिधिभिश्च परिधाय, लाजैः शुक्लाभिश्च गन्धवतीभिः सुमनोभिरुपाकिरेत्। तत्र प्रणीयोदपात्रं पवित्रं पूतम्, उपसंस्कृत्य सर्पिराज्यार्थम् यथोक्तवर्णानाजानेयादीन् समन्तत स्थापयेत्। ततः पुत्रकामा पश्चिमतोऽग्निं दक्षिणतो ब्राह्मणमुपविश्यानुलभेत सह भर्त्रा यथेष्ट पुत्रमाशासाना। ततस्तस्या आशासानाया ऋत्विक् प्रजापतिमभिनिर्दिश्य योनौ तस्याः कामपरिपूरणार्थम् काम्यामिष्टिं निर्वपेत्, विष्णुर्योनिं कल्पयत्वित्यनया ऋचा। ततश्चैवाज्येन स्थालीपाकमभिघार्य त्रिर्जुहुयात्, यथाम्नाय चोपमन्त्रितमुदपात्रं तस्यै दद्यात् सर्वोदकार्थान् कुरुष्वेति।

तत. समाप्ते कर्मणि पूर्व दक्षिणपादमभिहरन्ती प्रदक्षिणमग्निमनु परिक्रामेत्। ततो ब्राह्मणान् स्वस्ति वाचयित्वा सह भर्त्राऽऽज्यशेष प्राश्नीयात् पूर्वं पुमान्, पश्चात् स्त्री। नचोच्छिष्टमवशेषयेत्। ततस्तौ सह संवसेतामष्टरात्रम्। तथाविधपरिच्छदावेव स्याताम्। तथेष्टपुत्र जनयेताम्।

ताम् = वेदीम्। अजिनम् = चर्म। उपसमाधाय = वेद्यामग्निं सस्थाप्य। परिस्तीर्य = चतुर्दिक्षु कुशानास्तीर्य। परिधिभिः = बृहत्पलाशदण्डैश्चतुर्भिः। परिधाय = वेष्टयित्वा। पवित्र = स्वभावतो विशुद्धम्। पूतं = मन्त्रपूतम्। आज्यम् = होमार्हघृतम्। उपसस्कृत्य = मन्त्रै सस्कृत्य। अनुलभेत = ऋत्विक्प्रयुक्ता ऋत्विग्विधानमनुकुर्यात्। उपवेश्येति पाठे तु यथा पूर्वेणाग्निर्दक्षिणेन च ब्राह्मणः स्यात्तथा ब्राह्मण ब्रह्माणमुपवेश्य। अभिनिर्दिश्य = अभिमन्त्र्य। योनौ = अग्नौ। इष्टिम् = यागम् (कामेष्टिः = पुत्रेष्टि.) निर्वपेत् = कुर्यात्। स्थालीपाकम् = चरुम्। अभिघार्य = मिश्रीकृत्य। प्रदक्षिणम् = दक्षिणावर्त्तेन। अनु = ऋत्विजः (पतेश्च) पश्चात्। अष्टरात्रम् = अष्टमाहमारभ्याष्टरात्र पञ्चदशरात्र यावत्।

या तु स्त्री श्याम लोहिताक्ष व्यूढोरस्क महाबाहुश्च पुत्रमाशासीत, या वा कृष्ण कृष्णमृदुकेश शुक्लाक्षम् शुक्लदन्त तेजस्विनमात्मवन्तम्। एषोऽनयोरपि होमविधि, किन्तु परिवर्हो वर्णवर्जं स्यात्। पुत्रवर्णानुरूपस्तु यथाशी परिवर्होऽन्य कार्य.।

शूद्रा तु नमस्कारमेव कुर्यात् देवाग्निद्विजगुरुतपस्विसिद्धेभ्य। या या च यथाविध पुत्रमाशासीत तस्यास्तस्यास्तान्ता पुत्राशिषमनुनिशम्य तांस्तान् जनपदादीन् मनसाऽनुपरिक्रामयेत्।ताननुपरिक्रम्य या या येषा जनपदाना मनुष्याणामनुरूप पुत्रमाशासीत सा सा तेषा तेषां जनपदानामाहारविहारोपचारपरिच्छदाननुविधत्स्वेति वाच्या स्यादित्येतत्सर्वं पुत्राशिषा कर्म व्याख्यात भवति॥

—च० शा० ८

(३) चतुर्थेऽहन्युद्वर्त्तिता शीतसलिलस्नानानुलिप्तालङ्कृता शुक्लमाल्याम्बरा कृतमङ्गलस्वस्त्ययनैवंविधमेव भर्त्तारं पश्येदनन्यमनाः। तदा हि यादृशमेव पश्यति चिन्तयति वा तादृश प्रसूत इति।

तत स्नानात्पुनरपि गुणवत्पुत्रार्थी त्रिरात्रमुपेक्षेत। पुष्पदर्शनात् सप्तरात्रम्। अथाष्टम्यां दशम्या द्वादश्या वा रात्रौ पुत्रकाम सवसेत्। पञ्चम्या सप्तम्या नवम्यां वा दुहितृकाम। तासूत्तरोत्तरमायुरारोग्यैश्वर्य सौभाग्यबलवर्णेन्द्रियसम्पदपत्यस्य भवति। अत परन्तूत्तरोत्तरमेवायुरादीनां ह्रास।

परिवर्ह = शयनासनपुष्पादिपरिच्छद। यथाशी. = यथाकामम्। नमस्कारमेव = शूद्राया मन्त्रे होमे चानधिकारात्। पुत्राशिषम् = पुत्रकामनाम्। अनुनिशम्य = ऋत्विक् श्रुत्वा। अनुपरिक्रामयेत् = मनसा चिन्तयितुं ऋत्विक् वदेदित्यर्थ। (३) तादृश प्रसूत इति-अत्राह चरक·—"गर्भोपपत्तौ तु मन स्त्रिया य जन्तु व्रजेत्तत्सदृश प्रसूते" इति (शा० २)।

अथोपाध्यायः पुत्रीय विधानमाचरेत् । शूद्रायास्तु मन्त्रवर्जितम् । यादृशञ्च पुत्रमाशासीत तद्रूपवर्णचरितान् जनपदाननुचिन्तयेति स्त्री वाच्या । तज्जनपदाहारविहारोपचारपरिच्छदाश्चानुविदधीत ।

कर्मान्ते च पुमान् मास ब्रह्मचारी सर्पिःक्षीराभ्यां शाल्योदनमभिप्राश्य नात्याशितः सुखी स्रग्वी सुमनाः प्रोक्षिताङ्गः शुक्लनिवसनो मौहूर्तिकानुमते रात्रिभागे कल्याणानि चिन्तयानस्तदभिकामः स्वास्तीर्णे शयनं दक्षिणेन पादेन प्रागारोहेत् । तद्विधैव च प्रमदा कर्शिताङ्गी तैलमाषोत्तराहारा पूर्वं वामपादेन पुरुषस्य दक्षिणत. शय्यामधिरोहेत् । तत्र मन्त्रं प्रयुञ्जीत—"आयुरसि सर्वतः प्रतिष्ठासि धाता त्वा दधातु विधाता त्वा दधातु ब्रह्मवर्चसा भवेति । ब्रह्मा बृहस्पतिर्विष्णुस्सोमस्सूर्यस्तथाश्विनौ । भगोऽथ मित्रावरुणौ वीर दधतु मे सुतम्" । इति ।

ततः परस्पर सामभिरभिसान्त्व्य सहर्षमनुकूल संविशेताम् । पर्य्याप्ते चैना शीतोदकेन सहसा परिषिञ्चेत् ।

तत्रात्यशिता क्षुधिता पिपासिता भीता विमना· शोकार्त्ता क्रुद्धातिमेदुरान्यकामा व्यवायकामा वा न गर्भं धत्ते विगुण वा । तथा पुरुषोऽपि । नचासावधस्तिष्ठेत् । तथाहि स्त्रीचेष्टः पुमान् जायते पुंश्चेष्टा वा स्त्री । न च न्युब्जां पार्श्वगता वा सेवेत । न्युब्जाया वातो बलवान् स योनिं पीडयति । दक्षिणपार्श्वगतायाः श्लेष्मा पीडितच्युतः पिदधाति गर्भाशयम् । वामपार्श्वगतायास्तद्वत् पित्त विदहति रक्तशुक्ले । तस्मादुत्ताना बीज गृह्णीयात् । तथा हि यथास्थानमेव तिष्ठन्ति दोषाः ।

—सग्रह शा० १

(४) चतुर्थेह्नि ततः स्नात्वा शुक्लमालाम्बरा शुचिः ।
इच्छन्ती भर्तृसदृशं पुत्र पश्येत्पुरः पतिम् ॥
उपाध्यायोऽथ कुर्वीत पुत्रीय विधिवद्विधिम् ।
नमस्कारपरायास्तु शूद्राया मन्त्रवर्जितम् ॥
अवन्ध्य एव संयोगः स्यादपत्यञ्च कामतः ।

सन्तोऽप्याहुरपत्यार्थं दम्पत्योः सङ्गतं रहः ॥
दुरपत्यं कुलाङ्गारो गोत्रे जातं महत्यपि ।
इच्छेतां यादृशं पुत्रं तद्रूपचरितांश्च तौ ॥
चिन्तयेतां जनपदांस्तदाचारपरिच्छदौ ।
कर्मान्ते च पुमान् सर्पिः क्षीरशाल्योदनाशितः ॥
प्राग्दक्षिणेन पादेन शय्यां मौहूर्तिकाज्ञया ।
आरोहेत् स्त्री तु वामेन तस्य दक्षिणपार्श्वतः ॥
तैलमाषोत्तराहारा तत्र मन्त्रं प्रयोजयेत् ।

"अहिरसीत्यादि"

सान्त्वयित्वा ततोन्योन्यं संविशेतां मुदान्वितौ ।
उत्ताना तन्मना योषित्तिष्ठेदङ्गैः सुसंस्थितैः ॥
तथा हि बीजं गृह्णाति दोषैः स्वस्थानमास्थितैः ।

—वा० शा० १

(५) अथ शुद्धस्नाता (ता) स्त्रिय (स्त्री) चतुर्थेऽहनि स्नानगृहे श्वेतेन एवान्येन वाससाऽत्रगुण्ठ्यानवलोकयन्ती शुचिर्देवगृहं प्रविश्योद्घटाग्निं प्रज्वलन्तं घृताक्ततेनाभ्यर्च्य ब्राह्मणमीश्वरं विष्णुं स्कन्दं च सम्प्रेक्ष्याभिवाद्य, निष्क्रम्य सूर्यचन्द्रमसाविति, न तु प्रेतपिशाचरक्षांसि, शुद्धस्नातमात्रा हि स्त्री यं वा पश्यति मनसा वाऽभिध्यायति तादृशाचारवपुषं प्रायेण जनयति, तस्माद्देवगोब्राह्मणगुरुवृद्धाचार्यान् सतं पश्येत्, कल्याणमनाश्च स्यात् । न तु सन्ध्ययोः स्नानं मैथुनं वोपेयान्नान्यमना इति ॥

ततं ऋत्विक् पुत्रीयमिष्टिं निर्वपेत् । सिद्धमांसौदना वातघ्नौ (?) वाऽऽज्यभागौ, यवमय पुरोडाशोऽष्टाकपालो, व्रीहिमयश्चरु, उभौ वागायुर्युतौ प्रजायेते, नत्वदे क्षे, 'आब्राह्मन् ब्राह्मण' इति यजमानभागम-

---

परिच्छदो मनुजगवाश्वधनधान्यवस्त्रालङ्काररत्नरथायुधगृहोद्यानवीणापणवगायनशय्यास्तरणादि (अरुणदत्तः) ।

भिमन्त्र्य शेष दम्पती प्राश्नीयाताम्। श्वेत ऋषभोऽश्वो वा हिरण्य वा भिषजे सैव दक्षिणा, सैवमनाहिताग्नेः, शालाग्नौ नित्य होमं हुत्वा, तेनैव मन्त्रेण हुतशेषं तौ प्रा(श्नीतः)। शयनीये मृदुस्वास्तीर्णोपहितेऽस्यै भर्त्ता... त्र लक्ष्मणामद्भिरालोड्य, 'सोम' पवत' इत्येतेन शतजप्तेन सावित्र्या व्याहृतिभि' 'अयो देवीरुपसृज' इति मन्त्रेण नस्य दत्वा वामदेव्य जपित्वा, दक्षिणेन पार्श्वेन स्त्रिय शाययीत, वामपार्श्वेन पुमानूर्ध्वोत्तरेणोपशयीत। शनै प्रजार्थे चाचरेत्। बीजेऽवसिक्ते विधार्योवसर्पेत्। शीतोदकेन च शौचं कुर्यात्। तत ऊर्ध्वमग्निकर्मप्रतापायासव्यायामशोकादिवर्जनमिति ॥

सा चेदिच्छेद्गौरमोजस्विनं शुचिमायुष्मन्त पुत्रं जनयेयमिति, तस्या एव शुद्धस्नानात् प्रभृति शुक्लयवसक्तूना मधुघृताभ्या श्वेतायाः श्वेतपुंवत्साया गो. क्षीरेण ससृज्य मन्थ राजते पात्रे कांस्ये वा सदा पाययेत्, शालिगौरयवक्षीरदधिघृतप्राय च काले मात्रया अश्नीयात्, पुष्पाभरणवासासि च शुक्लानि बिभृयात्, सायं प्रातश्च श्वेतमश्व वृषभ वा पश्येत् सौम्यप्रियकथाभिरासीत, अनुकूलपरिवारा च स्यादिष्टमपत्य जनयति। या तु श्यामं लोहिताक्षं व्यूढोरस्क पुत्रमिच्छेत् कृष्ण वा तत्र तादृगुपचारो भोजनवसनकुसुमालङ्काराणा, तादृग्देशानुचिन्तन चेति। यवागूं तु कन्यार्थिनोभ्यो दद्यात्, क्षीरोदकतिलसिद्धास्तु वर्ण्या.। गौरश्यामकृष्णेभ्योऽन्ये वर्णा निन्दिता ॥

—जातिसूत्रीयशारीरे कश्यप ।

अथ विशेष'—*

अथाप्येतौ स्त्रीपुसौ स्नेहस्वेदाभ्यामुपपाद्य, वमनविरेचनाभ्या सशोध्य क्रमात् प्रकृतिमापादयेत्। सशुद्धौ चास्थापनानुवासनाभ्यामुपाचरेत्।

---

* विशेषश्चाय श्रेयसीं प्रजामिच्छद्भ्या पूर्वमनुसर्त्तव्यः, ततश्च ऋतुचर्याविधि.। क्रमात् = ससर्जनक्रमात्।

इत्यवरेड्ढ स्तुतैपवर्तुमुक्तितान्यान् दुवर्गानां पुत्रम्, क्रियं पुनरतैत-
मात्रान्यात्। इति।

—व० शा० ८

अथ दुड्डहस्वार्तवमणीनां निर्योद्गुस्तं लियुन्तुपल्नेङ्ग गिविवर् संशो-
ष्यात्मनानुवाहलान्याहुपान्देत्। निगेवदस्तु दूतर्हाग्ल्हिर्न्हुगौवक-
मल्कारे पुत्रम् दैहेन नागीं पितृन्देव नश्चैः। एवं हि सनातनुपथा
दुड्राजनायान्ते। इति।

मन्वादिशा० ६

अथ गर्भखण्डम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातो गर्भावक्रान्तिविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

यस्मिंश्च गर्भसंज्ञा ।

गर्भो हि नाम शुक्रशोणितजीवसंयोगः, आत्मप्रकृतिविकारसम्मूर्च्छना-विशेषश्चेतनाधिष्ठितो महाभूतानां विकारविशेषो वा कुक्षिगतः । पुम्बीजेन संसृष्टं हि स्त्रीबीजं गर्भाशयकलायां संस्थितमिति यावत् । यदुच्यते—

(१) शुक्रशोणितजीवसंयोगे तु खलु कुक्षिगते गर्भसंज्ञा भवति ।*

—च० शा० ४ ।

गर्भ· Fertilized ovum or Embryo * सम्यग्योगः संयोगः, तेन जीवस्यातिवाहिकशरीरेण योगो गृह्यते न त्वात्मनो व्यापकत्वेन योगः, किंवा विभुरात्मा सर्वगतत्वेन न याति तथापि यत्रास्य कर्मवशान्मनो याति तत्रैव चैतन्योपलब्धेरात्मापि गत इति व्यपदिश्यते । नव्यास्तु पुन —शुक्रे शोणिते च यौ पुम्बीजस्त्रीबीजरूपौ सूक्ष्मदेहधरौ जीवौ तयोः कुक्षिगते संयोगे गर्भसंज्ञा भवतीति व्याख्यानयन्ति । न चात्मा कुतश्चित् बाह्यत आगत्य शुक्रशोणित-संसर्गमवक्रामति, किन्तर्हि विश्वरूपस्य तस्य शुक्रे शोणिते च बीजरूपेण प्रारम्भत एव विद्यमानस्य गर्भबीजयो सम्मूर्च्छने संयुक्तचित्केन्द्रनिर्माणरूपा-वस्थान्तरगमनमात्रं जीवावक्रमणपदेन चेतनाधिष्ठानपदेन च सर्वत्राभि-प्रेतमिति तेषामभिप्रायः । शुक्रार्त्तवे हि विश्वरूपस्यात्मनो रूपद्रव्ये । यदुक्तं चरके—'चरतो विश्वरूपस्य रूपद्रव्यं यदुच्यते' इति (चि० २ अ० ४ पा०) । शुक्रं चेह प्रकरणगतत्वेनोक्तम्, तेनार्त्तवमप्यात्मनो रूपद्रव्यं ज्ञेयमिति चात्र चक्रपाणि । एवञ्च सूक्ष्मशरीरिणो जीवस्य मातृपितृगतौ द्वावंशौ भवत इति सिद्धम् ।

(२) शुक्रशोणितं गर्भाशयस्थमात्मप्रकृतिविकारसम्मूर्च्छितं गर्भ इत्युच्यते।

—सु० शा० ५।

(३) गर्भस्तु खलु अन्तरिक्षवाय्वग्नितोयभूमिविकारश्चेतनाधिष्ठानभूतः। एवमनया युक्त्या पञ्चमहाभूतविकारसमुदायात्मको गर्भश्चेतनाधिष्ठानभूतः। स ह्यस्य षष्ठो धातुरुक्तः।

—च० शा० ४।

यथा चानुपूर्व्याऽभिनिर्वर्त्तते कुक्षौ।

गर्भावक्रान्तिस्तु गर्भस्यावतरणक्रमस्तदभिनिर्वृत्तिप्रकारो वा। तत्र स्त्रीपुंसयोः संयोगे योनौ विसृष्टस्य शुक्रस्य गतिविशेषशालिनः पुम्बीजाख्या बीजभागा गर्भाशयमुखे प्रविश्य गर्भाशयकलारोम्णां बहिर्मुखचेष्टनशीलानां प्रतिप्रवाहमूर्ध्वमेव प्रसरन्ति, प्रविशन्ति च पुनः स्त्रिया बीजवाहिस्रोतसो मुखम्। अमी च शुक्रकीटाणव प्राकृतशरीरोष्मणि गर्भाशयबीजवाहिन्योर्मदुक्षारस्वभावे आस्रावे च प्रायो दिवसानामाचतुर्दशं प्राणवन्तो दृष्टाः। प्रजननशक्तिः पुनर्हीयते नवेति तु सन्दिग्धम्। प्रवृद्धशरीरोष्मा तीक्ष्णाम्लक्षारद्रव्याणि चैषामुपघाताय कल्पन्ते। तत्र पञ्चादिदशान्तप्रपलमिते काले प्राङ्गुलमानमार्गमिते प्रक्रामन्ति, प्राङ्गुलस्याष्टभागैकमानं वा प्रपलेनेति च परीक्षकाः।

गर्भावक्रान्तिः (Process of the fertilization & development of the foetus) :—गर्भस्यावक्रान्तिर्मेलकः उत्पत्तिरिति यावत्—चक्रपाणिः। तस्य (गर्भस्य) अवक्रान्तिः, उपगमनम् अवतरणमिति यावत्—डल्हणः। तस्य (गर्भस्य) अवक्रमणं प्राप्तिः, स्वरूपलाभः—इन्दुः। गर्भस्यावक्रान्तिरवक्रमणं सम्प्राप्तिः। यथाऽगर्भो गर्भतां सम्पद्यत इत्यर्थः—अरुणदत्तः। शुक्रकीटाणवः (पुम्बीजानि वा) Spermatozua प्रपलम् One minute

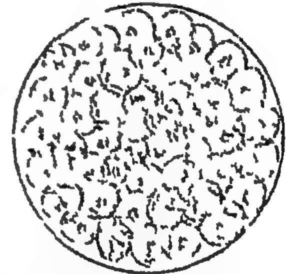
स्वभावतश्च तत्रैव स्रोतसः पुष्पितप्रान्तस्यान्तिके बीजग्रन्थितो यथाकालमागतं सिद्धं स्त्रीबीजं स्रोतोगतैरनेकशुक्रकीटाणुभिराक्रान्तमपि प्रबलतमेनैकेनैव पुम्बीजेन प्रायः संसृज्यते। संसर्जनप्रकारश्चेत्थम्—शुक्रकीटाणुर्हि स्वेन तीक्ष्णशिरःपिधानकेन विनष्टविसारिमण्डलस्य स्त्रीबीजस्य बीजावरणं निर्भिद्य आगात्रभागमन्तर्विष्टस्तच्चित्केन्द्रेण चैकतां गतः प्रजननकेन्द्रमेकं निर्माति। पुच्छभागस्त्वस्य बहिःशिष्टो विनश्यति लुप्यते च। एवं संसर्जनाच्च स्त्रीबीजे वर्णतन्तूनां सङ्ख्यामानं पुनरप्यष्टचत्वारिंशत्प्रमाणमभिजायते। तत्र 'क्ष'तन्तुमता पुम्बीजेन संयुक्तं स्त्रीबीजं कन्यां, 'ज्ञ'तन्तुमता युक्तञ्च पुत्रं जनयति। स्त्रीबीजन्तु सर्वदा 'क्ष'तन्तुमदेव।

जननस्तरनिर्वृत्तिः।

पुम्बीजेनेत्थं संसृष्टस्य सक्षुब्धचैतन्यस्य च स्त्रीबीजस्य सकेन्द्रश्चिद्रसः पुरुषोपहिता क्षुब्धप्रकृतिरिव परिणमन् द्विधा चतुर्धाऽष्टधा षोडशधा चेत्येवं क्रमशो विभज्य कोषाणुसङ्घातरूपः सम्पद्यते। सेयं कललावस्था नाम गर्भस्य। कोषाणुसमूहश्च बीजावरणाभ्यन्तर एव तद्वेष्टितः सन्तिष्ठते। अतः परं परिणमतश्च शनैः (गर्भाशयस्थापनादीषत्पूर्वकालं यावत्) बीजावरणविलोपः कायमानवृद्धिश्च।

[२० चित्रम्]

कललम्।



ततः कललमध्येऽवकाश उत्पद्यते द्रवपूर्णः। बुद्बुदावस्था चेयं गर्भस्य। कोषाणुसमूहश्च द्रवसम्पीडितस्तनुपरिसरीयभागे, पिण्डीभूयैकतोऽवस्थिते स्थूलसंहतान्तर-

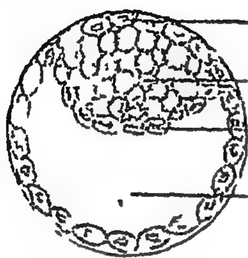
---

सिद्धम् Mature तीक्ष्णशिरःपिधानकम् Head Cap or Sharp perforatorium. प्रजननकेन्द्रम् (संयुक्तकेन्द्रं वा) Segmentation or Conjugation Nucleus जननस्तरनिर्वृत्तिः Formation of the Germinal Layers कललावस्था Mulberry mass or Morula बुद्बुदावस्था Blastocyst or Blastodermic Vesicle

भागे च द्वेधा विभज्यते। कतिपयकोषाणवश्च विरलावस्थानत्वाद्द्रवे प्लवमाना उभयोरन्तरालमधितिष्ठन्ति। तत्र वेष्टनभूतस्तनुपरिसरीयभाग' पोषकस्तर सामान्यवहि'स्तरो वा, स्थूल सहतान्तरभागश्च आन्तरपिण्डिका उत्पादपिण्डिका वेति सज्ञायते। अन्तरालगतस्य विरलकोषाणुवृन्दस्य तु प्राथमिकमध्यस्तरः सामान्यमध्यस्तरो वेति सज्ञानम। (२३ चित्रम)

[२१ चित्रम्]

बुद्बुदम् ।



१—पोषकस्तर । २—आन्तरपिण्डिका । ३—बुद्बुदावकाश ।

अतः पर परिणामतश्चामी विशेषा अभिनिर्वर्त्तन्ते, तद्यथा—

(१) पोषकस्तर स्तरिकाद्वये परिणमति। तत्रान्तरस्तरिका सावरणकोषाणुमयी वाह्यस्तरिका च निरावरणकोषाणुमयीति विशेष। पोषकस्तरादेव च शनै शनैर्जरायुकोरकाणा प्रादुर्भाव ।

(२) स्थलद्वयेऽन्तर्द्रवनिचयात् आन्तरपिण्डिकायां द्रवगर्भावकाशद्वय निष्पद्यते। तत्रोत्तानमवस्थितोऽवकाशो गर्भकोषसज्ञया, गभीरमवस्थि-

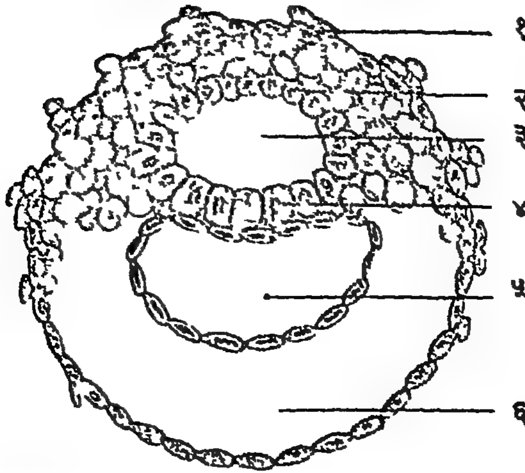
---

पोपकस्तर सामान्यवहि स्तरो वा Trophoblast or Extraembryonic Ectoderm आन्तरपिण्डिका उत्पादपिण्डिका वा Inner or formative Cell mass, Embryonic Cell mass, or Enclosed Ectoderm प्राथमिकमध्यस्तर सामान्यमध्यस्तरो वा Primary or Extraembryonic Mesoderm सावरणकोषाणुमयी पोषकस्तरिका Cytotrophoblast (Langhans' Layer) निरावरणकोपाणुमयी पोषकस्तरिका Plasmodial trophoblast (Syncytium) गर्भकोष· Amniotic Cavity, Ectodermal or Amnioembryonic Vesicle

तोऽवकाशश्च यल्ककोषसंज्ञया प्रथितः । उभयोः पर्यवकाशीया कोषाणुश्रेणी च यथाक्रम कौषिको बहि स्तर इति, कौषिकोऽन्तःस्तर इति च व्यपदिश्यते । अस्यैव च बहिःस्तरस्य गर्भकोषतलभूमिभूतो भागो

[२२ चित्रम्]

बुद्बुदस्य परिणामविशेषाः ।



१—पोषकस्तरः कोरकाविर्भावश्च । २—कौषिको बहि.स्तरः । ३—गर्भकोष' । ४—बहिर्जननस्तरः । ५—यल्ककोषः कौषिकान्तःस्तरप्राचीरः । ६—बुद्बुदावकाशः ।

बहिर्जननस्तरसंज्ञया, अन्तःस्तरस्य च यल्ककोषच्छदिभूतो भागः अन्तर्जननस्तरसंज्ञयाऽभिधीयते ।

(३) प्राथमिकमध्यस्तरोऽपि स्तरद्वये संविभक्त एकेन सावरणकोषाणुमयीं पोषकस्तरिकामन्तरावृणोति, अपरेण च पूर्वोक्तकोषद्वय-

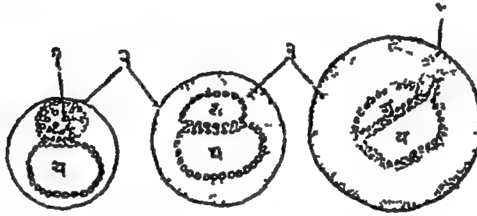
---

यल्ककोष Yolk Sac, Entodermal Vesicle, or Archenteron कौषिको बहिःस्तरः Amniotic Ectoderm कौषिकोऽन्त.स्तरः Archenteronic Entoderm बहिर्जननस्तरः Embryonic Ectoderm अन्तर्जननस्तरः Embryonic Entoderm

मास्तृणुते । पारिधो मध्यस्तरः कौषिको मध्यस्तरश्चेति च यथाक्रम तयो. संज्ञानम् । स्तरद्वयान्तरालस्तु द्रवपूर्णो महावकाशसञ्ज्ञः । अथ च कौषिकमध्यस्तरस्यैकदेश एव पूर्वोक्तजननस्तरयोरन्तराले प्रसृतो द्वैतीयक-मध्यस्तरसंज्ञा मध्यजननस्तरसञ्ज्ञा वा लभते ।

[२३ चित्रम्]

मध्यस्तरस्तत्परिणतिश्च ।



१—गर्भकोषस्य निर्माणोपक्रम । २—पोषकस्तर. । ३—प्राथमिक-मध्यस्तर । ४—गर्भवृन्तम् । ग—गर्भकोष । य—यल्ककोष ।

एवञ्च त्रयोऽपि जननस्तरा एकत्र सान्निध्येनावस्थिता इति सिद्धम् । अस्य च सन्निहितजननस्तरत्रयप्रदेशस्य भाविगर्भशरीरनिर्माणायतन-भूतत्वात् गर्भस्थलीति सञ्ज्ञानम् । सेय बुद्बुदावस्था नाम गर्भस्य सम्यग्व्याख्याता ।

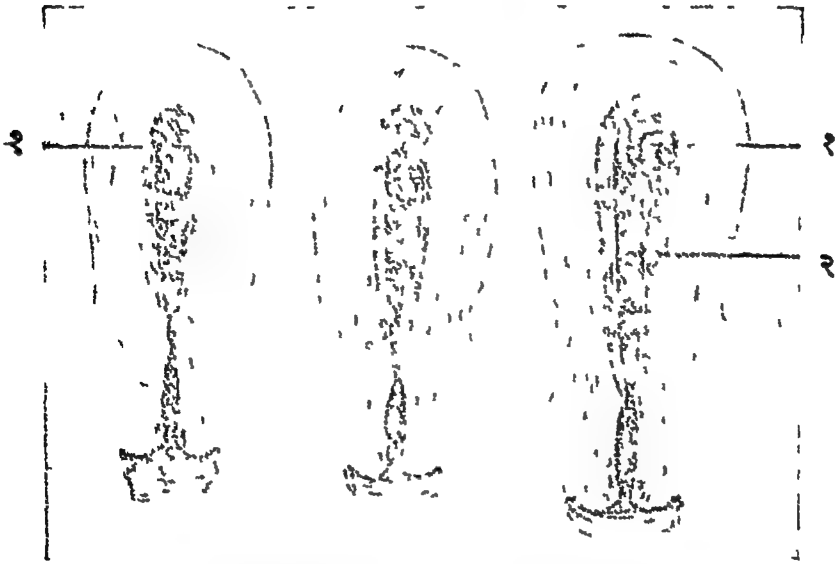
यथा यथा च महावकाशो वर्धते तथा तथा मध्यस्तरोपि आन्तरपिण्ड-कायाः (कोषद्वयपरिणताया) पोषकस्तरस्य च मध्ये प्रविशति निर्मोति च

पारिधमध्यस्तर Somatopleur कौषिको मध्यस्तरः Splanchnopleur महावकाश Magma Cavity or Extraembryonic Coelome द्वैतीयक-मध्यस्तरो मध्यजननस्तरो वा Secondary or Embryonic Mesoderm गर्भस्थली Embryonic Area or Shield

पुनर्गर्भस्थल्याः पश्चिमप्रान्तस्य पोषकस्तरस्य चान्तराले विशेषेण पुञ्जीभूय भावि गर्भवृन्तम् । (गर्भवृन्तम् आन्तरपिण्डकाकोषाणुनिर्मितमिति तु केचित्) । गर्भवृन्तमेव चाग्रे रक्तप्रणालिकाविष्करणेन नाभिनाले परिणमति ।

[२४ चित्रम्]

गर्भवपनप्रक्रिया ।



१—गर्भित स्त्रीबीजम् । २—गर्भधरा कला ।

एवं विपरिणमच्च स्त्रीबीजं शनैः शनैः स्रोतोमार्गमनुगच्छत् सप्ताहेन दशाहेन वा क्षेत्रीकृतप्रायं गर्भाशयं प्राप्नोति । गर्भाशये च प्रायस्तदुत्तर-भागस्य पूर्वे पश्चिमे वा प्राचीरे कलाया स्वेनैव (जरायुकोरकाणां धातुविलायकशक्तित्वात्) निखातस्य मातृरुधिराभिप्लुतस्य वपनगर्त्त-

---

गर्भवृन्तम् Belly stalk or Abdominal pedicle धातुविलायक-शक्तिः Histolytic Action वपनगर्त्तम् Implantation Cavity

स्यान्तर्निविशते, स्थिरीभवति च पुनर्गर्भधरकलावरणाब्जरायुकोरकसन्निवेशाच्च ।

वचनानि चात्र—

(१) ऋतुकाले सम्प्रयोगादेकरात्रोषित कलल भवति, सप्तरात्रोषित बुद्बुद भवति, अर्धमासाभ्यन्तरे पिण्डो भवति, मासाभ्यन्तरे कठिनो भवति ।

—गर्भोपनिषत् ।

(२) प्रथमेऽहनि रेतश्च सयोगात् कललञ्च यत् ।
जायते बुद्बुदाकारं शोणितञ्च दशाहनि ॥
घन पञ्चदशाहे स्यात् विशाहे मांमपिण्डकम् ।
पञ्चविशत्तमे प्राप्ते पञ्चभूतात्मसम्भव ॥
मासैकेन च पिण्डस्य पञ्चतत्त्व प्रजायते ॥

—हारीत (स्वसहितायाम) ।

(३) अव्यक्त· प्रथमे मासि सप्ताहात् कलली भवेत् ।

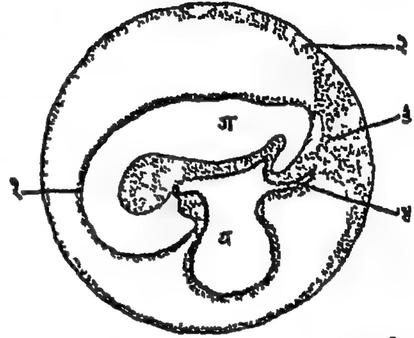
—वा० शा० १ ।

अत ऊर्ध्वं गर्भस्थल्या गर्भशरीरस्य विकासपद्धतिस्तु गर्भावक्रान्तिशारीरतो ज्ञेया । तन्त्रान्तरविषयत्वान्नेह प्रपञ्चिता । गर्भावक्रान्तिशारीर हि प्रचुरविज्ञेयत्वात् दुरूहत्वाच्च पृथगेव तन्त्रमामनन्ति भिषज । दृश्यन्ते चारम्भत एव गर्भविकसने विभक्तिपक्तिक्लित्तिसहतिवृद्धिरूपाः पञ्च व्यापारप्रक्रियाः । यथोक्त सुश्रुतेन—"त चेतनावस्थित वायुर्विभजति, तेज एन पचति, आप क्लेदयन्ति, पृथिवी सहन्ति, आकाश विवर्धयति, एवं विवर्धित स यदा हस्तपादादिभिरंगैरुपेतस्तदा शरीरमिति सञ्ज्ञा लभते" इति (शा० ५) । जननस्तरत्रयादभिनिर्वर्त्तमानान् भावविशेषाँस्त्वनुपदमेव वर्णयिष्याम । इदन्त्ववधेयम्—

प्रारम्भिको हि भ्रूणो यल्ककोषपृष्ठेऽवस्थितश्चिपिटशराविकाकृतिः सलक्ष्यते। गर्भकोषश्च ततो गर्भोदकवृद्ध्या सवर्धमानो भ्रूणशरीरं पूर्वापरतः पार्श्वयोश्च तथा सम्पीड्य वेष्टयति यथेदं द्विगुणीभूय अपावृतोदरा नलिकेव सञ्जायते। द्विगुणीभावकाले च भ्रूणनलिका तदैवापावृतमुदरं द्वारीकृत्य सन्निकृष्टं यल्ककोषैकदेशमपि स्वान्तर्नीत्वा क्रोडीकरोति। अन्ततो गत्वा च भ्रूणविग्रहः सर्वथैव गर्भकोषस्याङ्के पतित आच्छाद्यतेऽन्यत्र यल्ककोषभ्रूणनलिकयोर्मिथोऽनुबन्धस्थलात्। एवमाच्छाद्यमाने च महावकाशस्याप्येकदेशो भ्रूणान्तर्नीतो व्यवच्छिद्यते शेषभागेन, निर्मीयते च तेन भ्रूणस्य उरस्योदर्याऽवकाशः। शेषो महावकाशस्तु शनैः शनैर्जरायुद्वयमेलनात् विलुप्यते।

[२५ चित्रम्]

भ्रूणस्य द्विगुणीभावः।



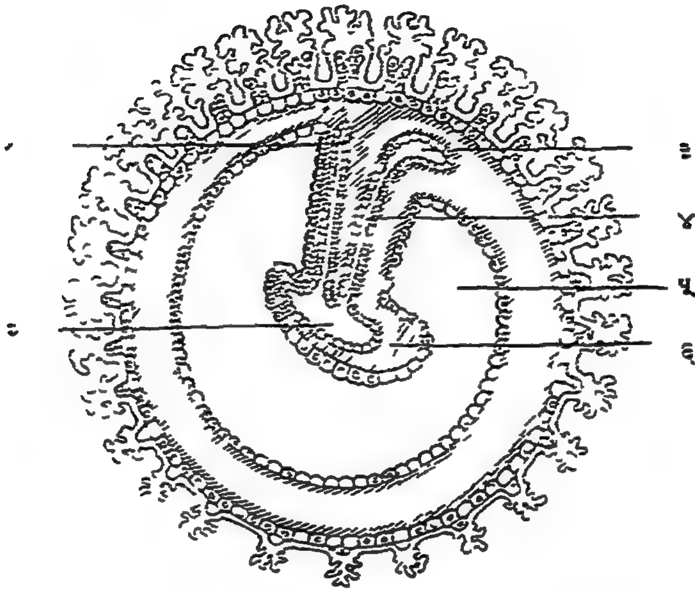
१—अन्तर्जरायुः। २—बहिर्जरायुः। ३—गर्भवृन्तम्। ४—अलिन्थ। ग—गर्भकोषः। य—यल्ककोष।

भ्रूणान्तर्गतेन यल्ककोषैकदेशेनैव च भाव्यन्नवहस्रोतो गर्भस्य निर्मीयते। शेषो यल्ककोषस्तु गर्भकोषवृद्ध्याऽपसार्यमाणो गर्भवृन्तस्यान्तिके नीतस्तदङ्गतां गच्छति, उपलभ्यते च गर्भनाभिनाले तदवयवभूतो हेतोरत एव। नालपुटकमिति च तत्सञ्ज्ञानम्। अनुबध्यते चैतत् भ्रूणान्तर्गतभागेन सह यल्कवाहिनीसञ्ज्ञया तनुदीर्घप्रणालिकया। प्रणालिका चेयं यल्ककोषस्यैव आकृष्य तनूकृतो ग्रीवाभागः।

चिपिटशराविका Flat disc अपावृतोदरा नलिकेव Like a tube open along its lower side भ्रूणनलिका Embryonic tube उरस्योदर्याऽवकाशः Pleuroperitoneal Cavity नालपुटकम् Umbilical Vesicle यल्कवाहिनी Vitelline duct.

[२६ चित्रम्]

भ्रूणस्य द्विगुणीभाव ।



१—अलिन्थ । २—भ्रूणान्तर्गतो यल्ककोष (भ्रूणान्त्रम्) । ३—नाभिपुटकम् । ४—यल्कवाहिनी । ५—गर्भकोष । ६—भ्रूणान्तर्नीतो महावकाशैकदेश ।

भ्रूणान्तर्गतयल्ककोषस्य च पश्चिमैकदेश उद्गत्य गर्भवृन्तान्त प्रविशति गोलनाकार न चोर्ध्वं पोषकस्तरेण सह गच्छन् इत एव समाप्यमान । अलिन्थ इति च तत्संज्ञानम् । भ्रूणान्तर्गतोऽलिन्थभागस्तु स्फारीभूता गर्भवस्तिं निर्मिमीते । वस्तेरूर्ध्वं मध्यरेखायामानाभिप्रसृता वस्तिवन्धनिका च पुनस्तस्यैव विशुष्को भाग, सम्यक् लक्षयति च वस्तिनाभिनालयोः प्राक्कालिक सम्बन्धविशेषम् ।

अलिन्थ Allantois. वस्तिवन्धनिका Urachus

अथेदमपि—गर्भकोषस्य वृतिभूता कोषाणुश्रेणिरेव अन्तर्जरायुकला निर्माति। सा च वृतिराभ्यन्तरतः कौषिकबहिःस्तरमयी बाह्यतश्च कौषिकमध्यस्तरमयी। एवं बहिर्जरायुरपि बाह्यतः सामान्यबहिःस्तरेण, आभ्यन्तरतश्च पारिधमध्यस्तरेण निर्मीयते। उभयत्र बहिर्मध्यस्तरयोरवस्थानविपर्यय इति वैशिष्ट्यम्। यथा यथा च गर्भकोषस्याभिवृद्धिस्तथा तथा तदभिव्याप्यमानस्य महावकाशस्य विलोपः, जरायुद्वयस्य मध्यस्तरयोर्मिथोमेलनादेकीभावश्च।

जननस्तरत्रयादभिनिर्वर्त्तमाना भावविशेषास्त्वित्थम्, तत्र—

बहिःस्तरात् {
- बहिस्त्वक्, मेदोग्रन्थिस्वेदग्रन्थिस्तनग्रन्थीनामुत्तानकलास्तरिका, केशा, नखानि च।
- दन्तच्छदलालाग्रन्थयः।
- अक्षिकर्णयोरुत्तानकलास्तरिका।
- दृष्टिमणिः, तारामण्डलपेशीसूत्राणि च।
- मुखनासयोर्गुदान्तभगयोश्चोत्तानकलास्तरिका, अधरगुदञ्च।
- समग्रं नाडीतन्त्रम्, ज्ञानेन्द्रियाणां नाडीतन्त्रात्मको भागः, पोषणिकाग्रन्थिश्च।

मध्यस्तरात् {
- संयोजकधातुः, रुधिरम्, अस्थीनि, तरुणास्थीनि, दन्ताश्च।
- स्नैहिककला (उदर्या, उरस्या, हृदयधरा कला च)।
- रक्तवहसंस्थानम्, रसवहसंस्थानञ्च।
- तारामण्डलपेशीसूत्राण्यतिरिच्य निखिलाः शारीरपेश्यः।
- प्लीहा, अधिवृक्कग्रन्थेर्बहिर्वस्तु च।
- अन्तर्जननाङ्गानि, गर्भबीजानि, वृक्कौ, गवीन्यौ च।

अन्त स्तरात् {
अन्नवहस्रोतस श्लेष्मलकला, तदनुबद्धग्रन्थीनाम्
यकृदग्न्याशयप्रभृतीनामुत्तानकलास्तरिका च ।
चुल्लिकोपचुल्लिकावालग्रन्थीनामुत्तानकलास्तरि का ।
मूत्राशयमूत्रमार्गयो॰ समप्रप्राया (वस्त्यन्तरीय त्रिकोण मूलाधारिकमूत्रप्रसेक च परिवर्ज्य) उत्तानकलास्तरिका ।
श्वसनयन्त्रस्य (फुस्फुसौ, श्वासनलिका, स्वरयन्त्रञ्च) उत्तानकलास्तरिका ।
}

गर्भधरा कला ।

अथैवमवस्थिते गर्भ गर्भाशयश्लेष्मलकला पोषकस्तरस्य प्रवृद्धधातु-विलायककर्मणा भृशमुद्वोधिता प्रतिकुर्वाणेव गर्भधरकलायां परिवर्तते । प्रतिक्रिया चेय परितो बीजवपनस्थल समुत्थिता क्रमेण निखिलामपि गर्भाशयकलामभिव्याप्नोति । तत्रार्त्तवचक्रस्य द्वादशादिसप्तदशान्तदिवसा-नामन्यतमो हि प्रायेण बीजागमकाल इति वर्णितचरम् । तथा च कालेऽस्मिन्नागत सस्पृष्ट च स्त्रीबीजं यदा गर्भाशयमवाप्नोति, तदा पूर्वत एव रज स्रावपूर्वकालिकीमवस्था गता (क्षेत्रीकृतप्रायां, यथाकालमाजिगमिषो-गर्भस्यातिथ्याय पूर्वत सन्नद्धा वेति यावत्) श्लेष्मलकलां पश्यति, उद्बो-धयति च तां तदन्तर्वर्त्तमान गर्भधरकलानिर्माणाय । दृष्टश्च कदाचिन्नि यतकालात् प्रागपि बीजागम॰ । सति त्वेवं गर्भधृता अकालप्राप्तस्याति-थेरातिथ्यमिव सर्वथा नूतन एवाय गर्भधरकलानिर्माणोपक्रम इति विशेष॰ ।

एष च तावत् गर्भधरकलायाः स्वरूपविशेषः—

(१) कलाया सयोजकधातुकोषाणवो (क्षेत्रवस्तुकोषाणव इति यावत्) बृहत्पीताभचित्केन्द्रवन्तु महत्कोषाणुषु परिवर्त्तन्ते । गर्भधरकला-

---

गर्भधरा कला Decidua गर्भधरकलाकोषाणव Decidual Cells.

कोषाणव इति च तेषा सञ्ज्ञानम् । धात्वाहारस्य पोषकस्तरस्य क्रियाप्रतिरोधिभूताश्चामी कोषाणव शोणितप्रणालिकामर्मोणि परित प्राधान्येन पुञ्जीभूय तान्यभिरक्षन्ति ।

(२) कलाग्रन्थयस्तु विशेषेण वृद्धिं गता व्यात्तमुखा विकसितग्रीवा विस्फारितोदरगश्च सञ्जायन्ते । नलिकाकृतयो ग्रन्थयश्चैते विवर्धनात् दीर्घीभूता गभीरभागेषु पूर्वापरतो द्विगुणीभूय स्वात्मनः सङ्गमयन्ति यथास्थानम् ।

(३) कलाया· केशिकाश्च रक्तसञ्चारवृद्ध्या रक्तातिपूर्णा विशेषेण स्फारीभवन्ति ।

(४) समग्रैव च कला स्थूलशूना प्रजायते प्राङ्गुलार्धवेधा च । अति प्रगल्भायास्तु पुनः पादोनप्राङ्गुलवेधः प्राङ्गुलाष्टभागसप्तकवेधो वा दृष्टः । आचतुर्थमासं च गर्भकलाया अभिवृद्धिकालः ।

(५) दृश्यते चानुलम्बच्छेदे कलाया गभीरभागो ग्रन्थिविस्फारितोदरावकाशबहुल उत्तानभागस्तु ग्रन्थिग्रीवामुखसन्धारणो गर्भधरकलाकोषाणुसङ्कुलः । यथाक्रमं चानयो· शुषिरस्तरो निबिडस्तरश्चेति संज्ञानम् ।

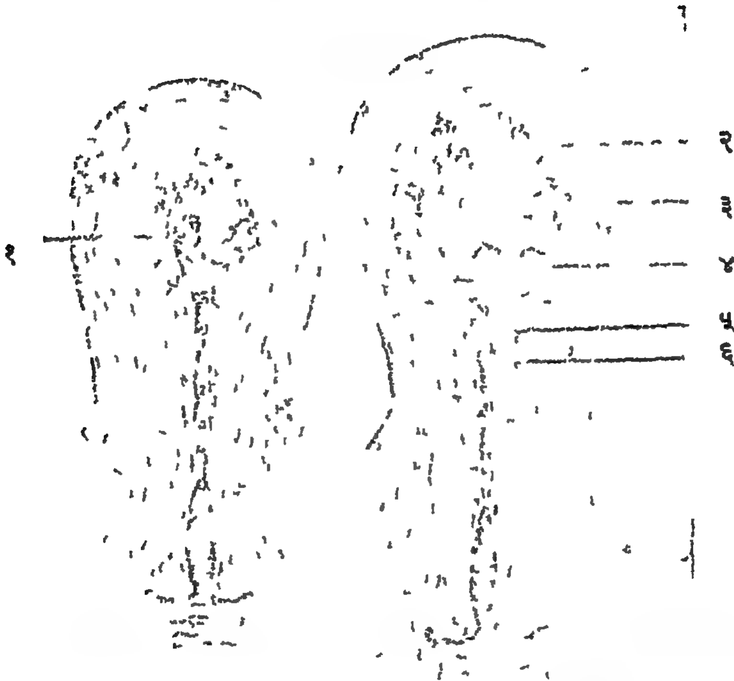
संस्थानविशेषाच्च गर्भकलायास्त्रिविधः सञ्ज्ञानभेदो दृष्ट. । तद्यथा—

वपनगर्त्तस्य तलभूमिगता कला (शुषिरस्तरमात्रावशेषा), यामधि श्रित्य गर्भो वर्त्तते साऽऽधारकला तलदैशिकी नाम, या च प्रवेशरन्ध्रमुपरुन्धाना गर्त्तविष्ट गर्भ सम्यगाच्छाद्य पिदधाति सा पिधानकला कौषिकी नाम; या च पुनरवशिष्टा सा पतनकला साधारणी परिसरीया वा नाम । ग्रीवासरण्याः श्लेष्मलकला तु गर्भधरकलाया न परिवर्त्तते । (२७ तमम्, २८ तमञ्च चित्रम्)

शुषिरस्तर Spongy layer. निबिडस्तर. Compact layer. तलदैशिकी Decidua Basalis or Placentalis कौषिकी Decidua Capsularis साधारणी परिसरीया वा Decidua Vera or Parietalis.

[२७ चित्रम्]

गर्भो गर्भधरा कला च ।

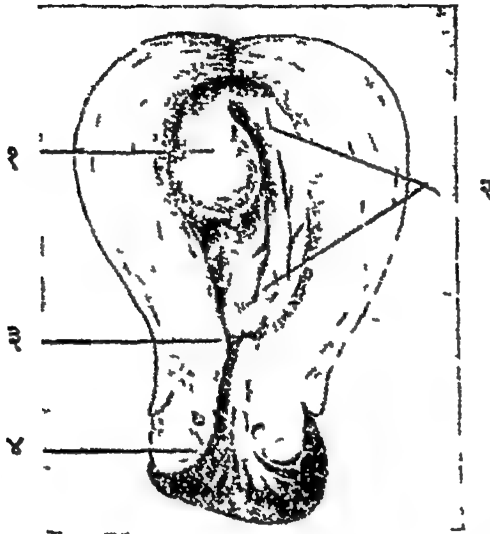


१—उपरुद्ध प्रवेशरन्ध्रम् । २—कोरकाः । ३—तलदेशिकी गर्भधर-कला । ४—कौषिकी गर्भधरकला । ५—गर्भाशयगुहा । ६—साधारणी गर्भधरकला ।

तत्र तृतीये मासि कौषिकी कला गर्भवृद्ध्याऽभिवर्धमाना तनूकृता च साधारण्या गर्भकलया ससज्यते । कला च साधारणी चतुर्थात् पर वर्धमानगर्भेण भृश सम्पीडनात् क्रमशोऽवशीर्यमाणा तनुतामुपयाति । कार्यतस्तु गर्भधरा कला गर्भतल्पनिर्माणम्, बालगर्भपोषणम्, स्वादृतः पोपकस्तरात् गर्भाशयपेश्यादिसरक्षणञ्च प्रसाधयति ।

[२८ चित्रम्]

गर्भो गर्भधरकला च।



१—कौषिक्या गर्भधरकलयाऽऽच्छादितो गर्भ.। २—साधारणी गर्भधर-कला। ३—अन्तर्मुखम् ४—बहिर्मुखम्।

प्राञ्चस्तु पुनर्गर्भावक्रान्तिमधिकृत्य विशेषमाहुः—

(१) पुरुषस्यानुपहतरेतसः, स्त्रियाश्चाप्रदुष्टयोनिशोणितगर्भाशयाया यदा भवति संसर्ग ऋतुकाले यदा चानयोस्तथैव युक्ते च संसर्ग शुक्रशोणितसंसर्गमन्तर्गर्भाशयगत जीवोऽवक्रामति सत्त्वसम्प्रयोगात् तदा गर्भोऽभिनिर्वर्त्तते।

—च० शा० ३।

(१) सत्त्वसम्प्रयोगः = आत्मनि नित्यानुबन्धस्य मनसो जवः। यदुच्यते—"युक्तस्य मनसा तस्य निर्दिश्यन्ते विभोः क्रिया" इति, "अस्ति खल्वपि सत्त्वमौपपादुक यज्जीव स्पृक्शरीरेणाभिसम्बध्नाति" इति च।

(२) यया चानुपूर्व्याऽभिनिर्वर्त्तते कुक्षौ तदनुव्याख्यास्याम —गते पुराणे रजसि नवे चावस्थिते शुद्धस्नाता स्त्रियमव्यापन्नयोनिशोणितगर्भाशयामृतुमतीमाचक्ष्महे । तया सह तथाभूतया यदा पुमानव्यापन्नबीजो मिश्रीभाव गच्छति तदा तस्य हर्षोदुदीरित. पर. शरीरधात्वात्मा शुक्रभूतोऽङ्गादङ्गात्सम्भवति । स तथा हर्षभूतेनात्मनोदीरितश्चाधिष्ठितश्च बीजरूपो धातु पुरुषशरीरादभिनिष्पत्योचितेन पथा गर्भाशयमनुप्रविश्यार्त्तवेन संसर्गमेति ।

तत्र पूर्वं चेतनाधातु सत्त्वकरणो गुणग्रहणाय प्रवर्त्तते । स हि हेतु कारण निमित्तमक्षर कर्त्ता मन्ता वेदिता बोद्धा द्रष्टा धाता ब्रह्मा विश्वकर्मा विश्वरूप पुरुष प्रभवोऽव्ययो नित्यो गुणी ग्रहण प्रधानमव्यक्त जीवो ज्ञ पुद्गलश्चेतनावान् विभुर्भूतात्मा चेन्द्रियात्मा चान्तरात्मा चेति ।

स गुणोपादानकालेऽन्तरिक्ष पूर्वतरमन्येभ्यो गुणेभ्य उपादत्ते, यथा प्रलयात्यये सिसृक्षुर्भूतान्यक्षरभूत सत्त्वोपादान पूर्वतरमाकाश सृजति,

---

(२) हर्षात् = हर्षादित्युपलक्षणम्, तेन हर्षादय अष्टावपि भावा गृह्यन्ते । यदुच्यते—

हर्षात्तर्षात्सरत्वाच्च पैच्छिल्याद्गौरवादपि ।
अणुप्रवणभावाच्च द्रुतत्वान्मारुतस्य च ॥
अष्टाभ्य एभ्यो हेतुभ्य शुक्र देहात् प्रसिच्यते ॥

—च० चि० २ ।

परः = सार परकालोत्पन्नो वा । शरीरधात्वात्मा = शरीरधातुरूप । शुक्रभूत. = शुक्रस्वरूप । सम्भवति = व्यज्यते नतूत्पद्यते । गुणग्रहणायेति = अत्र गुणशब्देन गुणगुणिनोरभेदोपचारात् गुणवन्ति भूतान्युच्यन्ते । किंवा, गुणोऽप्रधानम्, प्रधानञ्चात्मा, तद्व्यतिरिक्तानि च भूतानि गुणा । स हीत्यादि = हेत्वादयश्चात्मन. प्राधान्यख्यापका. पर्याया । पूर्यते गलति चेति पुद्गल (पृषोदरादित्वात्साधु) । स गुणेत्यादि = अयञ्च भूतग्रहणक्रम आगमसिद्ध एव, नात्र युक्तिस्तथाविधा हृदयङ्गमाऽस्तीति चक्रपाणि ।

तत क्रमेण व्यक्ततरगुणान् धातून् वाय्वादींश्चतुरः, तथा देहग्रहणेऽपि प्रवर्त्तमान. पूर्वतरमाकाशमेवोपादत्ते, ततःक्रमेण व्यक्ततरगुणान् धातून् वाय्वादिकाँश्चतुरः। सर्वमपि तु खल्वेतद् गुणोपादानमणुना कालेन भवति ।

—च० शा० ४ ।

(३) स आत्मा गर्भाशयमनुप्रविश्य शुक्रशोणिताभ्या सयोगमेत्य गर्भत्वेन जनयत्यात्मानम् ।

—च० शा० ३ ।

(४) तत्र स्त्रीपुंसयो. सयोगे तेज. शरीराद्वायुरुदीरयति। ततस्तेजोऽनिलसन्निपाताच्छुक्र च्युत योनिमभिप्रतिपद्यते सस्तृज्यते चार्त्तवेन। ततोऽग्नीषोमसयोगात् सस्तृज्यमानो गर्भाशयमनुप्रतिपद्यते। क्षेत्रज्ञो वेदयिता स्प्रष्टा घ्राता द्रष्टा श्रोता रसयिता पुरुष. स्रष्टा गन्ता साक्षी धाता

---

(४) तेजः = हृदयोत्तेजनात् समुद्भूता शक्तिः, जननाङ्गेषु विशेषेणाभिव्यज्यमाना। वायु' = कामकेन्द्राधिष्ठान. क्रियाशीलः पवन । रतिकाले च पञ्चेन्द्रियाणा स्वस्वविषये व्यापृतत्वेऽपि त्वगिन्द्रियं स्वविषये विशेषेण व्यापृत सद् वायुमुद्दीपयति। वचनञ्चापि—"स्पर्शनेऽभ्यधिको वायु स्पर्शनञ्च त्वगाश्रितम्" इति । तेजो ऽ ··च्युतमिति = सुरतलक्षणव्यायामजोष्मविलीनविद्रुतमनिलाच्च्युतमिति । योनिमभिप्रतिपद्यते = योनिमभितः सवत प्रतिपद्यते, तेन योनेस्तृतीयावर्त्तावस्थितगर्भशय्या प्रतिपद्यत इत्यर्थः। अन्ये तु 'गर्भाशयमनुप्रतिपद्यते' इत्यग्रे दर्शनात् योनिरत्रान्तर्भगम् न तु गर्भाशय इति व्याख्यानयन्ति, अभ्युपगच्छन्ति च योनावेव शुक्रशोणितससर्गम्। तदपरे न सहन्ते, अन्तर्गर्भाशयगतस्य शुक्रशोणितससर्गस्यैव गर्भकारणत्वात्। यथाह चक्रपाणिः (६७ पृष्ठे एकाङ्कितसन्दर्भस्य व्याख्यानकाले)—अन्तरित्यनेन गर्भाशयबाह्यगत ससर्गमकारण गर्भस्य निषेधयतीति। भावमिश्रोऽप्याह—"तत्ससृत्य व्यात्तमुख याति गर्भाशय प्रति। तत्र शुक्रवदायातेनार्त्तवेन युत

वक्ता च' कोऽसावित्येवमादिभि पर्यायवाचकैर्नामभिरभिधीयते, दैवसङ्गा-दत्नयोऽव्ययोऽचिन्त्यो भूतात्मना सहाऽन्वक्षं सत्वरजस्तमोभिर्दैवासुरैरपरैश्च भावैर्वायुनाऽभिप्रेर्यमाणो गर्भाशयमनुप्रविश्याऽवतिष्ठते।

—सु० शा० ३।

(५) गते पुराणे रजसि नवेऽवस्थिते शुद्धे गर्भस्याशये मार्गे च बीजात्मना शुक्लमविकृतमविकृतेन वायुना प्रेरितमन्यैश्च महाभूतैरनुगत-मात्तवेनाभिमूर्च्छितमन्वक्षमेव रागादिक्लेशवशानुवर्त्तिना स्वकर्मचोदितेन मनोजवेन जीवेनाऽभिसंसृष्टं गर्भाशयमुपयाति।

—सङ्ग्रहशा० २।

(६) शुद्धे शुक्रार्त्तवे सत्त्व स्वकर्मक्लेशचोदित।
गर्भ. सम्पद्यते युक्तिवशादग्निरिवारणौ॥

भवेत्॥' इति। गर्भाशयमनुप्रतिपद्यते' इत्यस्य पौनरुक्त्यं तु 'अनुर्भागेऽर्थे' इति कृत्वा तत्स्पृष्ट शुक्रार्त्तव गर्भाशयस्याशविशेष (वपनस्थलमिति यावत्) प्रपद्यते प्राप्नोतीति निर्वचनेन परिहरणीयम्। य. कोऽसाविति—'यः कः' इति सर्वनामपदद्वय तस्य दुर्बोधत्वज्ञापनार्थम्। असाविति सर्वनामपदं तस्य सर्वगतत्व सद्गुरूपदिष्टत्व च ज्ञापयति। दैवसङ्गात्=दैवस्य प्राक्तनजन्म-कर्मणो धर्माधर्माभिधानस्य सम्बन्धात्। भूतात्मना=भौतिकशरीरेण सूक्ष्मेण लिङ्गशरीरेणेत्यर्थ'। वायुना=मनोजवेन। (५) अन्यैश्च महाभूतैरिति= अन्यैश्च सूक्ष्मस्वरूपैर्मन.सहचारिभिस्तन्मात्राख्यैर्महाभूतैरिति।

(६) सत्व.=जीव.। कर्माणि=पूर्वजन्मार्जितानि शुभाशुभानि। क्लेशाः=अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशा। तत्र, अतथावस्तुनि तथेतिख्या-तिरविद्या; शरीराद्व्यतिरिक्त आत्मा नास्तीत्येव प्रत्यय अस्मिता, आत्मनो बुद्धेश्चाभेदग्रहो वाऽस्मिता. सुखानुशायी राग, अनुभूतसुखस्य तत्स्मृत्या तत्कारणप्राप्तौ स्पृहा राग इति वा, दु खानुशायी द्वेष अनुभूतदु खस्य तदुप-यनेषु तात्कालिकी जिघांसा वा द्वेष, अभिनिवेशो मोहः। गर्भः सम्पद्यते=

तेजो यथाऽर्करश्मीनां स्फटिकेन तिरस्कृतम् ।
नेन्धनं दृश्यते गच्छत् सत्वो गर्भाशयं तथा ॥

—वा० शा० १ ।

(७) जीवस्तु खलु भो सर्वगतत्वादीश्वरगुणसमन्वितः पूर्वशरीराच्चावक्रामति परशरीरं चोपक्रामति युगपत्, न कदाचिदपि बीजशोणितवाय्वाकाशादिमनोबुद्धिभिर्वियुक्तपूर्वः, सर्वगतत्वाच्च न कस्याञ्चिद् योनौ नोपपद्यते स्वकर्मफलानुभावादिति ।

—गर्भावक्रान्तिशरीरे कश्यपः ।

एतेन शुक्रार्त्तवयोः शुद्धिः (स्वाभाविकी औपाधिकी वा), ऋतुकालाऽभिगमनम्, स्त्रीपुरुषयोरपत्योत्पत्तिहेतुकर्मपरिणामादपत्यस्य जन्मग्रहणहेतुकर्मपरिणामाच्च जीवावक्रमणमिति गर्भनिदानसम्पदोऽपि व्याख्याता भवन्ति । भवन्ति चात्र—

(१) ध्रुवं चतुर्णां सान्निध्याद्गर्भः स्याद्विधिपूर्वकः ।
ऋतुक्षेत्राम्बुबीजानां सामग्र्यादङ्कुरो यथा ॥

—सु० शा० २ ।

(२) यथोक्तेन विधिनोपसंस्कृतशरीरयोः स्त्रीपुरुषयोस्तु मिश्रीभावमापन्नयोः शुक्रं शोणितेन सह समेत्याव्यापन्नमव्यापन्नेन योनावनुपहतायामप्रदुष्टे गर्भाशये गर्भमभिनिर्वर्त्तयत्येकान्तेन । यथा निर्मले वाससि सुपरिकल्पिते रञ्जनं समुदितगुणमुपनिपातादेव रागमभिनिर्वर्त्तयति, तद्वत् । यथा वा क्षीरं दध्नाऽभिषुतमभिषवणाद्विहाय स्वभावमापद्यते दधिभावं, शुक्रं तद्वत् ।　　　　—च० शा० ८ ।

शुक्रार्त्तवेऽधिष्ठानभूते गर्भत्वेन परिणमति । युक्तिवशात्—सकलसामग्रीसद्भावादिति भावः । अथ च न केवलं दृश्यत्वादृश्यत्वाभ्यां वस्तुसद्भावासद्भावो व्यवस्थाप्येते, किन्तर्हि तत्कार्याऽन्यथानुपपत्त्यापि वस्तुसद्भावो व्यवस्थाप्यत एवेति तात्पर्यम् ।

अथ लिङ्गभेदहेतुः ।

तत्र शुक्रबाहुल्यात् पुमान्, आर्त्तवबाहुल्यात् स्त्री, साम्यादुभयोर्नपुंसकम्, युग्मायुग्मदिनेषु च स्वभावत एव शुक्रार्त्तवयोर्बाहुल्याल्पीभावौ, एकादशी-त्रयोदश्योश्च साम्यमित्यस्ति सर्वजनविश्रुतो राद्धान्त आयुर्वेदस्य। योन्या भागविशेषे पतितं शुक्रम्, रतिकाले शुक्रार्त्तवयोः पूर्वापरविसर्गश्चापि हेतुत्वेन प्रोक्तः । बाहुल्याल्पीभावौ च गर्भबीजयोः ससर्जनकाले तन्निष्ठवीर्यशक्त्या ज्ञेयौ नतु राशितः । वचनानि चात्र—

(१) कार्याणाञ्च कारणानुविधायित्वात् तत्सभागता प्रतिपद्यते । तत एव च शुक्रस्य बाहुल्यात् पुमानार्त्तवस्य बाहुल्यात्स्त्री तयोः साम्येन नपुंसकम् ।

—सङ्ग्रहशा० २ ।

(२) तत्र शुक्रबाहुल्यात् पुमान्, आर्त्तवबाहुल्यात् स्त्री, साम्यादुभयोर्नपुंसकमिति । (सु० शा० ३)

(३) रक्तेन कन्यामधिकेन पुत्रं, शुक्रेण . । बीजात् समांशादुपतप्तबीजात् स्त्रीपुंसलिङ्गी । (च० शा० २)

(४) कारणानुविधायित्वात् कार्याणां तत्सभागता ।
नानायोन्याकृतीः सत्त्वो धत्तेऽतो द्रुतलौहवत् ॥

---

(१) कार्यं हि कारणस्य स्वरूपमनुगच्छति, तथा च तिलेभ्यस्तिला एव जायन्ते न माषाः । अत एव च कारणानुविधायित्वादेव पुंस्कारणस्य शुक्रस्य बाहुल्यात् पुमान् जायत इतीन्दुः ।

(२) यथा हि बीजमनुपतप्तं स्वां स्वां प्रकृतिमनुविधीयते व्रीहिर्वा व्रीहित्वं यवो वा यवत्वं तथा स्त्रीपुरुषावपि यथोक्तं हेतुविभागमनुविधीयत इति डल्हणः ।

(४) शुक्रस्य बाहुल्याद् बहुत्वात् सामर्थ्यलभ्यत्वाच्च । पुरेतो हि बलवदल्पं स्त्रीरजोऽभिभूय पुङ्गर्भस्य कारणतां यातीत्यरुणदत्तः ।

अत एव च शुक्रस्य बाहुल्याज्जायते पुमान् ।
रक्तस्य स्त्री तयोः साम्ये क्लीबः.. .. .. .. ॥

—वा० शा० १ ।

(५) युग्मेषु तु पुमान् प्रोक्तो दिवसेष्वन्यथाऽबला ।
पुष्पकाले शुचिस्तस्मादपत्यार्थी स्त्रियं व्रजेत् ॥

—सु० शा० ३ ।

तत्र युग्मासु रात्रिष्वल्पीभवत्यार्त्तवमयुग्मास्वाप्यायते ।
तस्मात्तासु क्रमात् पुत्रस्य दुहितुश्च जन्म ॥

—सङ्ग्रहशा० १ ।

युग्मेषु तु दिनेष्वासां भवत्यल्पतरं रजः ।
संयोगं तत्र या गच्छेत् सा पुमांसं प्रसूयते ॥
अयुग्मेषु दिनेष्वासां भवेद् बहुतरं रजः ।
संयोगं तत्र या गच्छेत् सा तु कन्यां प्रसूयते ॥

—विदेहः ।

अथ व्यवस्थितेऽप्येवं युग्मायुग्मदिवसकृतः कालप्रभावोऽपि नोपेक्ष्यो भवति, तत्प्रभावदर्शनात् । यदुच्यते—

"यदि त्वाहारानुरोधादयुग्मासु शुक्रस्याधिकता युग्मासु च न्यूनता स्यात्, ततः पुमान् स्त्र्याकृतिर्दुर्बलो हीनाङ्गो वा जायते, स्त्री च पुरुषाकृतिर्दुर्बला हीनाङ्गा वा । एकादशीत्रयोदश्योस्तु नपुंसकम्"

—सङ्ग्रहशा० १ ।

(६) मनोभवागारमुखेऽबलानां तिस्रो भवन्ति प्रमदाजनानाम् ।
समीरणा चान्द्रमसी च गौरी विशेषमासामुपवर्णयामि ॥
प्रधानभूता मदनातपत्रे समीरणा नाम विशेषनाडी ।
तस्या मुखे यत्पतितं तु वीर्यं तन्निष्फलं स्यादिति चन्द्रमौलिः ॥

या चापरा चान्द्रमसी च नाडी कन्दर्पगेहे भवति प्रधाना।
सा सुन्दरी योषितमेव सूते साध्वा भवेदल्परतोत्सवेषु॥
गौरीति नाडी यदुपस्थगर्भे प्रधानभूता भवति स्वभावात्।
पुत्रं प्रसूते बहुयाङ्गना सा कष्टोपभोग्या सुरतोपविष्टा॥
—भावमिश्र.।

(७) स्त्रीपुंसयोः सुसंयोगे यद्यादौ विसृजेत् पुमान्।
शुक्रं ततः पुमान् वीरो जायते बलवान् दृढ॥
अथ चेद्वनिता पूर्वं विसृजेद्रक्तपूर्वकम्।
ततो रूपान्विता कन्या जायते दृढसंहता॥
—दारवाही (अरुणोद्धृत)।

तन्त्यास्तु पुनराहु —

(क) 'ज्ञ'तन्तुमद्धि पुम्बीज स्त्रीबीजेन संयुक्त सन् पुत्रं जनयति, कन्याश्च 'न' तन्तुमत्। तथा च शुक्रबाहुल्यं नाम गर्भबीजयो संसर्गकाले स्त्रीबीजस्य 'ज्ञ'तन्तुमता शुक्रकीटेन योगः। 'न तन्तुमता योगे त्वार्त्तवस्यैव बाहुल्यम् स्त्रीबीजानां नियमेन 'न'तन्तुमत्त्वादित्येके।

(ख) अन्ये तु पुन स्त्रीबीजस्यैव लिङ्गजनकत्व मङ्गिरन्ते। तत्र दक्षिणबीजग्रन्थिनिर्गतानि स्त्रीबीजानि पुंस्त्वकराणि वामबीजग्रन्थिभवानि तु स्त्रीत्वकराणि। अथ च यदुच्यते चरकशारीरद्वितीये—

सव्याङ्गचेष्टा पुरुषार्थिनी स्त्री स्त्रीस्वप्नपानाशनशीलचेष्टा।
सव्याप्तगर्भा न च वृत्तगर्भा सव्यप्रदुग्धा स्त्रियमेव सूते॥
पुत्रं त्वतो लिङ्गविपर्ययेण ... ... इति।

तत्र 'सव्याप्तगर्भा (सव्येन पार्श्वेन आप्तो गृहीतो गर्भो यया सा) इति पदम् एतदभिप्रायपरकमेव किन्तु।

(ग) अपरे त्वाचक्षते कालविशेषसमागमे लिङ्गविशेष इति। तत्रा-घनवदिनेषु पुत्रम् ततो दशादिचतुर्दशान्तदिवसेषु कन्याऽथवा पुत्रम्

पञ्चदशादित्रयोविंशत्यन्तदिवसेषु कन्या, अतः परं गर्भधारणे तु पुन पुत्रमेव ।

(घ) इतरे त्वाहुः—द्विविधा हि शुक्रकीटाणवः, सबला निर्बलाश्च । तत्र सबलानामेव पुत्रोत्पादकत्वम् । अत एव च पुत्रकामेन योनिमुख एव शुक्रपातो विधेयो न तु गर्भाशयमुखमिति तदनुयायिनो भाषन्ते । तथा सति प्रायेण प्रबला एव शुक्रकोटाणवो विदूरं विघ्नबहुलं च योनि-गर्भाशयमार्गं प्रक्रम्य स्त्रीबीजेन सह संसजने समर्था भवन्ति । सोऽयं वादो भावमिश्रोक्तनाडीविचारेण सह संवदति ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातो गर्भोपादानविज्ञानीयमध्याय व्याख्यास्यामः ।

यद्विकारश्च गर्भो, यतश्च गर्भः सम्भवति ।

गर्भस्तु खलु प ञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः, आत्मप्रकृतिविकारसम्मूर्च्छितः, त्रिधातुको वा चेतनाविष्ट , मात्रादिषड्भावसमुदायसम्भवो वा निगद्यतेऽनया दिशा । तद्यथा—

पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायो गर्भ —शुक्र पाञ्चभौतिकम्, शोणितञ्च । जीवश्चापि लिङ्गशरीरोपलक्षित. सत्त्वसम्प्रयुक्तोऽतिसूक्ष्मैस्तन्मात्राख्यभूतैः सह शुक्रशोणितससर्गमवक्रामति । वर्धते च गर्भो मातुराहाररसेन पाञ्चभौतिकेनैव । एवञ्च चतुर्धा भूतससर्गो गर्भशरीरे दृष्ट—शुक्रज , शोणितजः, आत्मजः, रसजश्चेति । तत्राय विशेष —विभु निष्क्रियत्वाकाश देहान्तरानुगमने न परिगण्यते सर्वत्रोपलब्धेरतस्तदेकविधम्, शेषाणि पुनश्चत्वारि विकारभावात् सक्रियाणि देहान्तरानुगमने परिगण्यमानानि शुक्रजादिभेदेन षोडशविधानि चतुर्विधानि वा भवन्ति समूह्य सख्यानात् विभागशः सख्यानाच्च । तत्र भूमिरुपादानम्, इतरभूतानि तूपष्टम्भकानि । वैशेषिकी चेय दिक् । तथा च षड्धात्वात्मको गर्भ इति सिद्धम । षष्ठो धातुश्चात्मा समनस्क इहाभिप्रेत ।

भवन्ति चात्र—

(१) अस्मिन् शास्त्रे पञ्चमहाभूतशरीरिसमवाय· पुरुष इत्युच्यते ।

—सु० सू० १ ।

(२) गर्भस्तु खलु अन्तरिक्षवाय्वग्नितोयभूमिविकारश्चेतनाधिष्ठानभूत । एवमनया युक्त्या पञ्चमहाभूतविकारसमुदायात्मको गर्भश्चेतनाधिष्ठानभूत , स ह्यस्य षष्ठो धातुरुक्त. । —च० शा० ४ ।

(३) खादयश्चेतनाषष्ठा धातव पुरुष· स्मृतः।

—च० शा० १।

(४) रसात्ममातापितृसम्भवानि भूतानि विद्याद्दश षट् च देहे।
आप्यायते शुक्रमसृक्च भूतैर्यैस्तानि भूतानि रसोद्भवानि॥
चत्वारि तत्रात्मनि संश्रितानि स्थितस्तथात्मा च चतुर्षु तेषु।
भूतानि मातापितृसम्भवानि रजश्च शुक्रञ्च वदन्ति गर्भे॥
भूतानि चत्वारि तु कर्मजानि यान्यात्मलीनानि विशन्ति गर्भम्।
सबीजधर्मा ह्यपरापराणि देहान्तराण्यात्मनि याति याति॥
भूतैश्चतुर्भि· सहितः सुसूक्ष्मैर्मनोजवो देहमुपैति देहात्।
कर्मात्मकत्वान्नतु तस्य दृश्य दिव्य बिना दर्शनमस्ति रूपम्॥
स सर्वगः सर्वशरीरभृच्च स विश्वकर्मा स च विश्वरूपः।
स चेतनाधातुरतीन्द्रियश्च स नित्ययुक् सानुशयः स एव॥
अतीन्द्रियैस्तैरतिसूक्ष्मरूपैरात्मा कदाचिन्न वियुक्तरूप·।
न कर्मणा नैव मनोमतिभ्या न चाप्यहङ्कारविकारदोषै·॥
रजस्तमोभ्या हि मनोऽनुबद्ध ज्ञानाद्विना तत्र हि सर्वदोषा।
गतिप्रवृत्त्योस्तु निमित्तमुक्त मनः सदोषं बलवच्च कर्म॥

—च० शा० २।

(५) बीजात्मकैर्महाभूतैः सूक्ष्मैः सत्त्वानुगैश्च सः।
मातुश्चाहाररसजैः क्रमात् कुक्षौ विवर्धते॥

—वा० शा० १।

(६) महागुणमयेभ्यश्च खपवनतेजोजलभूम्याख्येभ्यो महाभूतेभ्यश्चेतनाधिष्ठितेभ्योऽभिनिर्वृत्तिरङ्गस्य। भूतानामेव च दृष्टादृष्टविविधकर्मवशादनेकरूपात् सन्निवेशविशेषादाकृतिप्रमाणस्नेहदीप्तिस्वरादीना सारूप्यमसारूप्य वा सूक्ष्मस्थूलतारतम्यभेदभिन्नमतिबहुप्रकारं निष्पद्यते।

—सङ्ग्रहशा० ५।

(७) रूपाद्धि रूपप्रभव प्रसिद्ध कर्मात्मकानां मनसो मनस्तः।
भवन्ति ये त्वाकृतिबुद्धिभेदा रजस्तमस्तत्र च कर्म हेतु.॥
—च० शा० २।

षड्धातुजानि त्वस्य :—

आन्तरिक्षास्तु—शब्दः शब्देन्द्रिय सर्वच्छिद्रसमूहो विविक्तता च (सु०) तत्रास्याकाशात्मकम्, शब्द. श्रोत्रं लाघव सौक्ष्म्य विवेकश्च (च०)

वायव्यास्तु—स्पर्श स्पर्शेन्द्रिय सर्वचेष्टासमूह. सर्वशरीरस्पन्दन लघुता च (सु०) वाय्वात्मकम्, स्पर्श. स्पर्शनं रौक्ष्य प्रेरणं धातुव्यूहन चेष्टाश्च शारीर्य.। (च०)

तैजसास्तु—रूप रूपेन्द्रिय वर्ण सन्तापो भ्राजिष्णुता पक्तिरमर्ष-स्तैक्ष्ण्य शौर्यञ्च। (सु०) अग्न्यात्मकम्, रूपं दर्शन प्रकाश पक्तिरौष्ण्यञ्च (च०)। पित्त मेधा चेति संग्रहेऽधिकम्।

आप्यास्तु—रसो रसनेन्द्रिय सर्वद्रवसमूहो गुरुता शैत्यं स्नेहो रेतश्च (सु०)। अवात्मकम्, रसो रसन शैत्यं मार्दव. स्नेहः क्लेदश्च (च०) श्लेष्मा च मेदश्च रक्त च मांसं चेति वृद्धजीवकीयेऽधिकम्।

पार्थिवास्तु—गन्धो गन्धेन्द्रिय सर्वमूर्त्तसमूहो गुरुता चेति (सु०)। पृथिव्यात्मकम्, गन्धो घ्राणं गौरवं स्थैर्यं मूर्तिश्च (च०) धैर्यमिति सङ्ग्रहेऽधिकम्।

चैतना (समनस्कात्मजा)—तस्य सुखदु खे इच्छाद्वेषौ प्रयत्न. प्राणापानावुन्मेषनिमेषौ बुद्धिर्मन सङ्कल्पो विचारणा स्मृतिर्विज्ञानमध्यवसायो विषयोपलब्धिश्च गुणाः। सात्त्विकास्तु—आनृशस्य सविभागरुचिता तितिक्षा सत्य धर्म आस्तिक्य ज्ञानम्

बुद्धिर्मेधा स्मृतिर्धृतिरनभिषङ्गश्च (सु०) शौचम् कृतज्ञता दाक्षिण्य व्यवसाय. शौर्यं गाम्भीर्यं शुक्लवर्त्मरुचि· भक्तिस्तमोगुणवैपरीत्यञ्चेति सङ्ग्रहेऽधिकम्। राजसास्तु—दु.खबहुलताऽटनशीलताऽधृतिरहङ्कारश्चानृतिकत्वमकारुण्यं दम्भो मानो हर्षः कामो क्रोधश्च (सु०) दुरुपचारताऽनार्यं शौर्यं मात्सर्यममितभाषित्व लोलुपत्वञ्चेति सङ्ग्रहेऽधिकम्। तामसास्तु विषादित्व नास्तिक्यमधर्मशीलता बुद्धेर्निरोधोऽज्ञान दुर्मेधस्त्वमकर्मशीलता निद्रालुत्वञ्चेति (सु०)। प्रमादः क्षुत्तृष्णा शोको मात्सर्यं विप्रतिपत्तिः परातिसन्धान सत्त्वगुणवैपरीत्यं चेति सङ्ग्रहेऽधिकम्।

प्राणापानौ निमेषाद्या जीवन मनसो गति.।
इन्द्रियान्तरसञ्चार· प्रेरण धारणञ्च यत्॥
देशान्तरगति· स्वप्ने पञ्चत्वग्रहणं तथा।
दृष्टस्य दक्षिणेनाक्ष्णा सव्येनावगमस्तथा॥
इच्छा द्वेषः सुख दु.ख प्रयत्नश्चेतना धृतिः।
बुद्धिः स्मृतिरहङ्कारो लिङ्गानि परमात्मन· ॥ (च०)
—सु० शा० १ । च० शा० १, ४ ।

तत्र खात्खानि देहेऽस्मिन् श्रोत्रं शब्दो विविक्तता।
वातात्स्पर्शस्त्वगुच्छ्वासा वह्नेर्दृग्रूपपक्तयः॥
आप्या जिह्वा रसक्लेदा घ्राणगन्धास्थि पार्थिवम्।
चैतनं चित्तमक्षाणि नानायोनिषु जन्म च॥
सात्त्विक शौचमास्तिक्य शुक्लधर्मरुचिर्मतिः।
राजस बहुभाषित्व मानक्रुद्दम्भमत्सराः॥
तामस भयमज्ञानं निद्रालस्य विषादिता।
इति भूतमयो देहः ... . ॥
—वा० शा० ३ ।

आत्मप्रकृतिविकारसम्मूर्च्छितो गर्भः—आत्मप्रकृतिविकारसम्मूर्च्छितश्चाय चतुर्विंशतितत्त्वात्मको गर्भो भवति साङ्ख्यदिशा। अत्र पुरुषो नाम पञ्चविंशः सूक्ष्मशरीरोपलक्षित शुक्रशोणितसंसर्गमवक्रामति। सूक्ष्मशरीरञ्च मनोबुद्ध्यहङ्कारदशेन्द्रियै. समन्वित तदाधारभूतै पञ्चतन्मात्राख्यै सूक्ष्मभूतैश्च समुत्थमिति अष्टादशतत्त्वात्मकम्, एकोनविंशश्च पुरुष., रसमातृपितृसम्भवत्वेन स्थूलभूतसमवायस्तु पूर्ववत् त्रियति चतुर्विंशति.। मूलप्रकृतिश्चेह विकारग्रहणात् पुरुषोपहिता बोद्धव्या, पुरुषसंसृष्टाया एव तस्या सर्गे प्रवृत्ते। तथा च शरीरसर्गेऽन्योन्यसंसृष्टयोस्तयोरन्य पिण्डवदेकोभावात्क तत्त्वम्, मोक्षाधिकारे प्रकृतिपुरुषयो. पृथग्ग्रहे तु पञ्चविंशतितत्त्वात्मको देह। किंवा, प्रकृतिरिह विकारग्रहणात् व्यक्त परिणता न तदतिरिक्ता भवतीति त्रयोविंशति, पुरुषस्तु चतुर्विंश, तत्सङ्घातश्चाय गर्भश्चतुर्विंशतिक एव। भवति चात्र—

ततश्च धातुभेदेन चतुर्विंशतिक स्मृत।
मनो दशेन्द्रियाण्यर्था प्रकृतिश्चाष्टधातुकी॥

—च० शा० १।

त्रिधातुको वा चेतनाविष्टो गर्भः—त्रिधातुको वा चेतनाविष्टो भवति गर्भ आयुर्वेददिशा। वायु पित्त कफश्चेति त्रयो धातव.। ते च देहधातारोऽन्योन्यसमवेता गर्भबीजयो सूक्ष्मबीजात्मनाऽवतिष्ठन्ते। शरीरे वर्धमाने तु त एव परिणमन्तो दोषधात्वादिरूपेण प्रत्यक्षतां यान्तीति। वचनञ्चापि—

वातपित्तश्लेष्माण एव देहसम्भवहेतव *। तैरेवाव्यापन्नैरधोमध्योर्ध्वसन्निविष्टै शरीरमिद धार्यत, आगारमिव स्थूणाभिस्तिसृभि, अतश्च त्रिस्थूणमाहुरेके। —सु० सू० २१।

---

* एवकारो भिन्नक्रम, तेन सम्भव एवेत्यर्थ। तेनापरेषामपि शुक्रशोणितजीवाना सम्भवहेतुत्वमविरुद्धम्। तत्र वातादय शुक्रशोणितगता प्रकृ-

मात्रादिषड्भावसमुदायसम्भवो वा गर्भ.—गर्भो हि मात्रादिषड्भावसमुदायात् सम्भवति। माता, पिता, आत्मा, सात्म्य, रस, सत्वञ्चेति च षट् भावा.। यदुच्यते—

(१) "मातृतः पितृत आत्मत, सात्म्यतो रसत सत्वत इत्येतेभ्यो भावेभ्य समुदितेभ्यो गर्भः सम्भवति"।

—च० शा० ४।

(२) "सर्वेभ्य एभ्यो भावेभ्य समुदितेभ्यो गर्भोऽभिनिर्वर्त्तते, मातृजश्चायं गर्भ पितृजश्चात्मजश्च सात्म्यजश्च रसजश्च अस्ति च खलु सत्वमौपपादुकमिति"।

(३) "एवमयं नानाविधानामेषा गर्भकराणा भावाना समुदयादभिनिर्वर्त्तते गर्भो यथा कूटागारं नानाद्रव्यसमुदायाद्यथा वा रथो नानारथाङ्गसमुदायात्। तस्मादेतदवोचाम—मातृजश्चाय गर्भ इत्यादि"।

—च० शा० ३।

तत्र माता पिता पुनरवश्यम्भाविकारणत्वात् गर्भोत्पत्तिहेतू उच्येते, नहि मातरं विना नच पितू ऋते (शुक्रशोणिताभ्या विनेति तात्पर्यम्) गर्भोत्पत्ति. स्यात्, विशेषतश्च जरायुजानाम्।

एवमात्माऽपि गर्भाशयमनुप्रविश्य शुक्रशोणिताभ्या संयोगमेत्य गर्भत्वेन जायत इति तस्यापि गर्भोत्पत्तौ हेतुत्वम्। यद्यपि तस्य पुनरात्मनोऽनादि-

---

तिस्थतया गर्भसम्भवहेतवो भवन्ति। एतदेव रज शुद्धौ शारीरे (शा० अ० २) प्रपञ्चेन वक्ष्यति। तथा "द्वितीये मासि शीतानिलोष्मभिरभिपच्यमानो घन. सञ्जायते" (शा० अ० ३) इति वचनात् कफपित्तानिलाना कारणत्वमुक्तम्। अन्ये तु शुक्रशोणितयोः सौम्याग्नेयत्वात् कफपित्ते वायुश्च संयोजक इति सम्भवहेतुता वदन्ति, तन्न शुक्रशोणितेन कफपित्तग्रहणममुख्यग्रहणत्वान्नाद्रियामहे—इति भानुमत्या चक्रपाणिः।

त्वान्न जन्मोपपत्तिस्तथापि सतो ह्यवस्थान्तरगमनमात्रमेव जन्मेति विवक्षितत्वान्न दोषः।

एवं सात्म्यमपि गर्भोत्पत्तौ हेतुत्वेनोपलभ्यते। नह्यसात्म्यसेवित्वमन्तरा स्त्रीपुरुषयोर्वन्ध्यत्वमस्ति, गर्भेषु वाऽप्यनिष्टो भावः।

रसश्चापि सम्यगुपयुक्तो हेतुर्भवति। नहि रसादृते मातुः प्राणयात्रापि स्यात्, किम्पुनर्गर्भजन्म।

अस्ति च खलु सत्वमपि उपपादुकत्वेन हेतुः, यज्जीवं स्पृक्शरीरेणाभिसम्बध्नातीति दिक्।

मात्रादिजास्त्वस्य—

(१) मातृजानि—त्वक् च लोहितञ्च मांसञ्च मेदश्च नाभिश्च क्लोम च यकृच्च प्लीहा च वृक्कौ च वस्तिश्च पुरीषाधानञ्चामाशयश्च पक्वाशयश्चोत्तरगुदञ्चाधरगुदञ्च क्षुद्रान्त्रञ्च स्थूलान्त्रञ्च वपा च वपावहनञ्चेति मातृजानि (च० शा० ४)।

मांसशोणितमेदोमज्जहृन्नाभियकृत्प्लीहान्त्रगुदप्रभृतीनि मृदूनि मातृजानि (सु० शा० ४)। गर्भाशयेति संग्रहे नामाधिक्यम्।

मृद्वत्र मातृजं रक्तमांसमज्जगुदादिकम्। (वा० शा० ३)

(२) पितृजानि:—केशश्मश्रुनखलोमदन्तास्थिशिरास्नायुधमन्यः शुक्रमिति पितृजानि (च०)।

केशश्मश्रुलोमास्थिनखदन्तसिरास्नायुधमनीरेतःप्रभृतीनि स्थिराणि पितृजानि (सु०)।

पैतृकं तु स्थिरं शुक्रं धमन्यस्थिकचादिकम्। (वा०)

(३) आत्मजानि:—तासु तासु योनिषूत्पत्तिरायुरात्मज्ञानं मन इन्द्रियाणि प्राणापानौ प्रेरणं धारणमाकृतिस्वरवर्णविशेषाः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ चेतना धृतिर्बुद्धिः स्मृतिरहङ्कारः प्रयत्नश्चेत्यात्मजानि (च०)। इन्द्रियाणि ज्ञानं विज्ञानमायुः सुखदुःखादिकञ्चात्मजानि (सु०)।

कामक्रोधलोभभयहर्षधर्माधर्मशीलतेति सङ्ग्रहे चरकादधिकम्।

(४) आरोग्यमनालस्यमलोलुपत्वमिन्द्रियप्रसादः स्वरवर्णबीजसम्पत् प्रहर्षभूयस्त्वञ्चेति सात्म्यजानि (च०)।

वीर्यमारोग्य बलवर्णौ मेधा च सात्म्यजानि (सु०)। आयुरोज इति सङ्ग्रहेऽधिकम्।

सात्म्यजं त्वायुरारोग्यमनालस्यं प्रभाबलम्। (वा०)

(५) शरीरस्याभिनिर्वृत्तिरभिवृद्धिः प्राणानुबन्धस्तृप्तिः पुष्टिरुत्साहश्चेति रसजानि (च०)।

शरीरोपचयो बल वर्ण. स्थितिर्हानिश्च रसजानि (सु०)।

रसजं वपुषो जन्म वृत्तिवृद्धिरलोलता। (वा०)

(६) भक्तिः शीलं शौच द्वेषः स्मृतिर्मोहस्त्यागो मात्सर्यं शौर्यं भयं क्रोधस्तन्द्रोत्साहस्तैक्ष्ण्यं मार्दव गाम्भीर्यमनवस्थितत्वमित्येवमादयश्चान्ये ते सत्त्वजा विकारा यानुत्तरकाले (शारीरचतुर्थे) सत्त्वभेदमधिकृत्योपदक्ष्यामः इति सत्त्वजानि (च० शा० ३)।

इत्येवं गर्भस्य मात्रादिजा भावा सम्यग् व्याख्याताः।

न चैतेषां पक्षाणां विरोधोऽस्ति। मातृजादिव्यपदेशेऽपि पञ्चमहाभूतविकारत्वमविरुद्धमेव। यथोच्यते स्वयमाचार्येण—"तत्रास्य केचिदङ्गावयवा मातृजादीनवयवान् विभज्य पूर्वमुक्ता यथावत्, महाभूतविकारप्रविभागेन त्विदानीमस्य तांश्चैवाङ्गानवयवान् कांश्चित् पर्यायान्तरेणापरांश्चानुव्याख्यास्यामः। मातृजादयोऽप्यस्य महाभूतविकाराः। तत्रास्याकाशात्मकम्.............." इत्यादि। (च० शा० ४)

एवं त्रिधातुकत्वेऽपि न विरोधः। तत्र वायुः खवाय्वोः प्रतिनिधिः, पित्तं तेजसः, बलासश्च वारिभुवोरिति। किंवा वातादिदोषाणामपि पाञ्चभौतिकत्वेन न दोषः। वचनमपि—"वायुरात्मनैवात्मा, पित्तमाग्नेयं, श्लेष्मा सौम्य इति"—सु० सू० ४२।

चतुर्विंशतिकस्तेऽपि न विप्रतिपत्तिः। तत्रात्मनि तुल्यवत्तत्त्वमनसां, पाञ्चभौतिके शरीरे च भूतेन्द्रियार्थानामवरोधः।

यस्मात्तु समुदयप्रभवः सन् स गर्भो मनुष्यविग्रहेण जायते, मनुष्यो मनुष्यप्रभव इत्युच्यते, तद्वक्ष्यामः—

तत्र जरायुजानामण्डजानां प्राणिनामेते गर्भकरा भावा यां यां योनिमापद्यन्ते, तस्यां तस्यां योनौ तथा तथारूपा भवन्ति। यथा—कनकरजतताम्रत्रपुसीसकान्यासिच्यमानानि तेषु तेषु मधूच्छिष्टविग्रहेषु। ते यदा मनुष्यबिम्बमापद्यन्ते तदा मनुष्यविग्रहेण जायन्ते। तस्मात् समुदायप्रभवः सन् गर्भो मनुष्यविग्रहेण जायते, मनुष्यश्च मनुष्यप्रभव इत्युच्यते तद्योनित्वात्।

यदुक्तम्—यदि च मनुष्यो मनुष्यप्रभवः, कस्मान्न जडादिभ्यो जाताः पितृसदृशरूपा भवन्तीति, तत्रोच्यते—यस्य यस्याङ्गावयवस्य बीजे बीजभाग उपतप्तो भवति, तस्य तस्याङ्गावयवस्य विकृतिरुपजायते, नोपजायते चानुपतापात्। तस्मादुभयोपपत्तिरप्यत्र। सर्वस्य चात्मजानीन्द्रियाणि, तेषां भावाभावहेतुर्दैवम्। तस्मान्नैकान्ततो जडादिभ्यो जाताः पितृसदृशरूपा भवन्ति॥

—च० शा० ३।

कश्यपोऽप्याह—जातौ जातौ खलु स्वभावात् प्रजाभिनिर्वर्त्तयिता भवति। स्वभावतो ह्यस्य धातुरस्माणुव, संयोगविभागचेष्टाभिकारा आकुञ्चनप्रसारणकोष्ठाद्यवयव धातुचेतनास्थानानि विभजन्ति। ममत्यके धातुरिव निषिक्तः पुरुषः पुरुषमभिनिर्वर्त्तयति गौर्गामश्वोऽश्वमेवमादि।

—जातिसूत्रीयशारीरे।

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातोऽपरादिविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अपरा, अमरा, आविला वा ।

अपरा नाम सञ्चरस्थानं मातृशोणितस्य, यतो हि गर्भो गर्भनाभिनालमुखेन पोषणादिमधिगच्छति । गर्भजा चेयमपरा मातृजा च । तत्रास्या गर्भभागः सकोरकबहिर्जरायुणा कोरकान्तरालैश्च मातृशोणितावकाशभूतैर्निष्पद्यते, मातृभागस्तु गर्भधरकलया तलदैशिक्या । एवञ्च, अपरानिर्वृत्तिविज्ञानाय कोरकाणां कोरकान्तरालानां च शोणितावकाशरूपाणां निर्माणविज्ञानं नूनमपेक्ष्यम् ।

तत्र खलु बद्‌बुदावस्थापन्नस्यैव संसृष्टस्त्रीबीजस्य गर्भाण्डापरपर्यायस्य पोषकस्तरात् समन्ततोऽङ्कुराणीव कोरका नाम लघ्वगर्भाणि प्रवर्द्धनानि समुद्‌भवन्ति । पोषकस्तरस्य स्तरिकाद्वयपरिणमनात् कोरकाणां शरीरमादौ पोषकस्तरिकाद्वयमयम् । परतश्च पोषकस्तरान्तरावरणत्वेन परिणमतो मध्यस्तरस्य प्रगमा अपि कोरकान्तः प्रविशन्ति 'कोरकसार'भूताः । मध्यस्तरे चास्मिन् सयोजकधातुरूपेण परिवर्त्तिते कालेन रक्तप्रणालिका आविर्भवन्ति गर्भवृन्तवाहिनीभिरनुवृत्ताः । तथा च पूर्णतो निर्वृत्तस्य बहिर्जरायुकोरकस्य अङ्गविभागः क्रमेणेत्थं फलितः —

कोरकः । { स्तरिकाद्वयमयः पोषकस्तरः (बहिःस्तरः) । सयोजकधातुरूपः कोरकसारः (मध्यस्तरः) । रक्तप्रणालिकाश्च वृन्तवाहिनीभिरनुगताः ॥

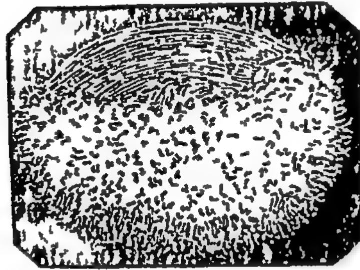
अपरा Placenta गर्भभागः Foetal part मातृभागः Maternal part कोरकाः Chorionic Villi कोरकसारः Core

कोरकाश्चैते प्रारम्भत एव तर्पणस्वभावबलेन मातृधातूपस्नेहात् पोषक-पदार्थानाददाना गर्भपुष्टिकरा भवन्ति। वपनगर्तेऽपि च बालगर्भाण्डम् एभिरेव कोरकैस्तरुरिव शाखास्वनेकधा विभज्यमानैर्गर्भधरकलाया निविष्ट-पद, गर्त्तस्थमातृरुधिरात् रुधिररसाद्वा पोषणाहारमाददानमवतिष्ठते।

एवञ्च मासेन गर्भाण्डस्य समग्रतलदेश· कोरकाञ्चितो रोमश इव लक्ष्यमाण कोरकैरेभिः कौषिक्या तलदैशिक्यां च गर्भधरकलायामभितः

[२६ चित्रम्]

द्वैमासिकं गर्भाण्डम्।



अत्र बहिर्जरायोर्विकोरक· सकोरकश्च स्थलभागो निदर्शितः।

प्रतिबद्धो दृष्ट। अत. परं तु गर्भाण्डवृद्ध्या यथा यथा कौषिकी कला प्रपाड्यते तथा तथा तदभिमुखाः कोरका अप्यवशीर्यमाणा विलुप्यन्ति। तथा च बहिर्जरायोर्द्विविधः स्थलभाग· फलितो विकोरक सकोरकश्चेति। तत्र कौषिककलाऽभिमुखो भागो विकोरक·, तलदैशिककलाभिमुखो भागश्च सकोरकः। सकोरके च जरायौ विवर्धमानाः कोरका. पार्श्वयोर्नैकासु शाखासु प्रविभज्य विसङ्ख्यायन्ते गहनीभवन्ति च।

- तर्पणम् Osmosis. विकोरको बहिर्जरायुः Chorion Laeve or Smooth Chorion सकोरको बहिर्जरायुः Chorion Frondosum or Shaggy Chorion

कोरकाश्चामी रक्तप्रणालीगर्भाः शोणितावकाशेषु मन्दं मन्दं सञ्चरति मातृरुधिरेऽवगाहन्ते गर्भरक्तवहाः। एवञ्च गर्भरुधिरमातृरुधिरयोस्तनु-कोरकप्राचीरेण व्यवहितयोरपि भावानामादानप्रदाने सामर्थ्यम्। कतिचि-त्त्वेषां तलदैशिक्या गर्भधरकलायां सम्यक् प्रतिबद्धा गर्भस्य स्थैर्यमप्या-वहन्ति। शेषास्तु प्रायेण मातृरुधिरे स्वातन्त्र्येण प्लवमानाः पोषणकर्माण एव। तथा च 'गर्भपुष्टिकरा' 'गर्भस्थैर्यकरा'श्चेति द्वैविध्यं कोरकाणा भण्यते कार्यदिशा।

कोरकान्तरालाश्च यथा शोणितावकाशेषु परिणमन्ति तदनुव्याख्या-स्यामः—तलदैशिक्या हि गर्भधरकलया सम्पर्कमागताः कोरका गभीर-पोषकस्तरिकाकोषाणूनां संख्याविवर्धनात् वर्धमानकायमाना गर्भधरकला निर्भिद्य सम्यक् प्रतिबध्यन्ते। कोरकान्तरालपतितः कलानिबिडस्तरस्तु पोषकस्तरयोगविलाय्यमानो विलुप्यतेऽन्यत्र गभीरभागात् प्रतिकुर्वतः सहृत्य स्थितात्। मूलपत्रिकेति च तत्संज्ञानम्। उत्तानपोषकस्तरिका च कोरकशरीरादभिनिष्पत्य मूलपत्रिकोपरि प्रतता कोरकेतरस्य समानस्त रिकयाऽनुबध्यते। इत्थञ्च तत्कोरकद्वयान्तराल उत्तानपोषकस्तरिकावृतिके शोणितावकाशे परिणतः। एवमन्यत्रापि। तथा च बहिर्जरायोर्गर्भधरकला-यास्तलदैशिक्याश्च मध्यपतितोऽन्तरालः कोरकावच्छिन्नोऽनेकेषु कोरकान्त-रालेषु मिथः सानुबन्धेषु शोणितावकाशेषु च परिवर्त्तते।

शोणितावकाशाश्चैते आदौ लघुरूपाः पोषकस्तरस्य धातुविलायक-कर्मणा कलाकेशिकाना मुखविवरणात् मातृरुधिरेण पूर्यन्ते रिच्यन्ते च। परतस्तु महावकाशेषु तेषु धातुविलयनात् विवृतमुखाभिर्गर्भाशयधमनीभि-रानीयमानं मातृशोणित प्रविशति निर्गच्छति च तेभ्यो बहिर्गर्भाशयसि-

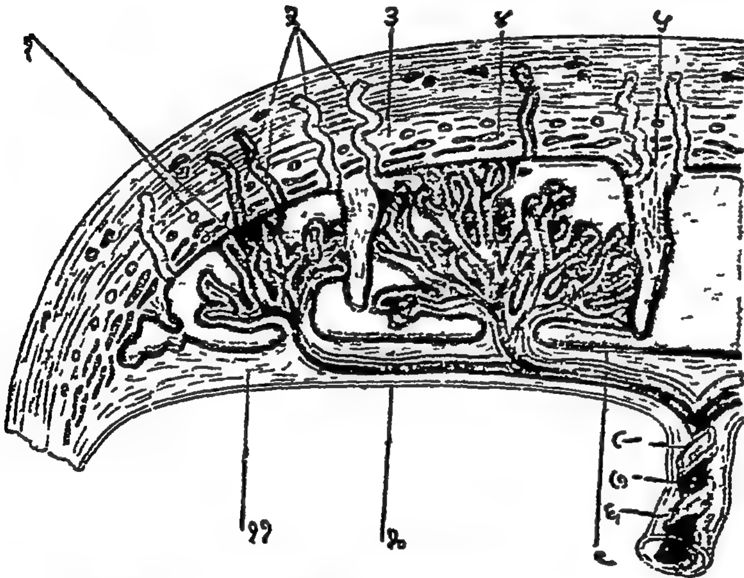
---

गर्भपुष्टिकराः Nutritve or terminal गर्भस्थैर्यकराः Fastening or Anchoring कोरकान्तरालः Intervillous Space शोणितावकाशः Blood spce. मूलपत्रिका Basal plate

राभिः प्रतिनीयमानम्। न चैषु रक्तं प्रवहमान स्त्यायति। अनुगर्भाशयाश्चेमा रक्तप्रणालिका· शुषिरकलास्तरं मूलपत्रिका च निभिद्य शोणितावकाशेषु प्रविशन्ति निर्गच्छन्ति वा तत.। मूलपत्रिका भिन्दन्तीना चासां पैशिकवृतिनाशात् रक्तकुल्यासु परिणति·।

[३० चित्रम्]

अपराच्छेद·।



१—कोरक.। २—अनुगर्भाशया रक्तप्रणालिका.। ३—मूलपत्रिका। ४—शुषिरकलास्तरः। ५—अपरास्तम्भिका। ६—नाभिनालम्। ७—नाभिसिरा। ८—नाभिधमन्यौ। ९—कोरकान्तरालस्य पोषकस्तरवृतिः। १०—अन्तर्जरायुः। ११—वहिर्जरायु·।

अथ च मूलपत्रिकातो वहिर्जरायु प्रति प्रस्थिताः केचन स्तम्भिकाकारा अवयवाः प्रलम्बन्ते अपरास्तम्भिकासंज्ञा., ये पुन. शोणितावकाश-

अपरास्तम्भिका Placental septum

कान्तारम् अनेकासु पिण्डिकासु विभाजयन्ति । परिधिपरिगतस्य शोणिताvकाशस्य तु गर्भाशयसिरानुबद्धस्य चक्रकुल्येति विशेषसञ्ज्ञानम् ।

तथा च प्रारम्भे परितो गर्भाण्डमारब्धनिर्माणोपक्रमाऽप्यपराऽनन्तरम् एकदेशे नियम्य निर्मीयत इति सिद्धम् । नियमनञ्चैतत् सार्धैकमासेन चाक्षुषविषयीभवन् तृतीयमासेन पूर्णं भवति । अधिकुरुते च पूर्णतो निर्वृत्ताऽपरा चतुर्भागैकदेशं त्रिभागैकदेशं वा गर्भाशयस्य । प्रायशश्च गर्भाशयस्कन्धे तत्सन्निधौ पूर्वं पश्चिमे वा गर्भाशयप्राचीरेऽपरासंस्थितिर्दृष्टा ।

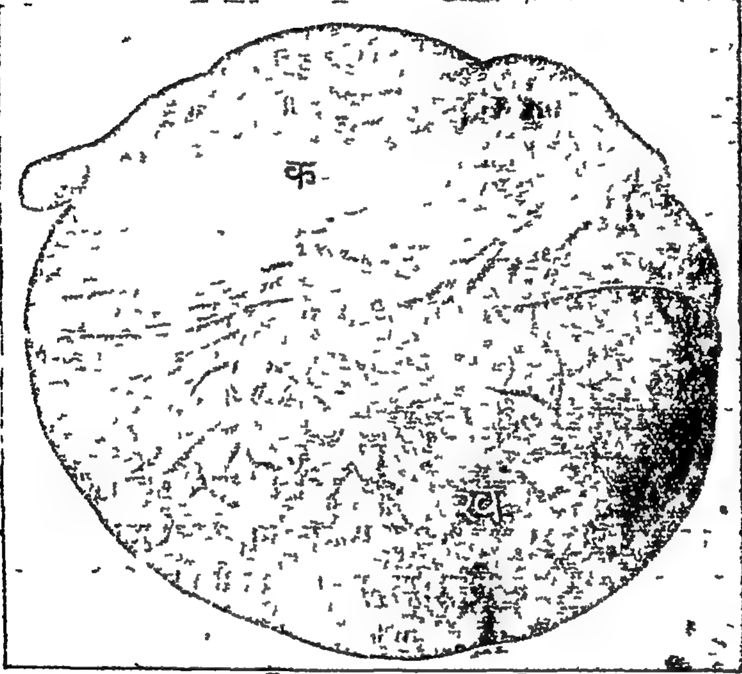
गर्भधरकला च अपरापरिधौ बहिर्जरायोरधस्तात् स्तोकेन प्रविष्टा अपरासन्धारणाय तत्प्रसरनिरोधाय चापि प्रभवति । अपरा चेयं प्रसवकाले तलदैशिक्या गर्भधरकलायाः शुषिरस्तरात् वियुज्यमाना सच्छिद्रचिटिकापत्राच्चिटिकेव सुखेन पृथग्भवति ।

स्वरूपतस्तु प्रगल्भाऽपरा शरावाकृतिः, प्राङ्गुलमध्यवेधा, षडादिनवान्तप्राङ्गुलव्यासा, तनुतरप्रान्ता (मध्यप्रान्तयोः समानस्थूला वा कदाचित्), प्रायेण मध्यलग्ननाभिनाला, षड्भागैकगर्भभारा च (चत्वारिंशतः षष्टिं यावत् तोलकभारा) भवति । कायमानभारौ च तस्याः प्रायेण गर्भकायमानभारावनुवर्त्तते । तत्रास्या अधस्तलं नतोदरम् अन्तर्जरायुवृतत्वात् श्लक्ष्णञ्च । भासन्ते चात्र सर्वत्र प्रततानि गर्भनाभिनाड्याः प्रतानजालानि । ऊर्ध्वतलं पुनर्नैकपिण्डिकासु संविभक्तं विषमं भवति खरशुषिरस्पर्शं कृष्णरक्तवर्णञ्च । दृश्यन्ते चात्र पिण्डिकानां परस्परं विभजन्यो नातिस्फुटाः सीतिकाः । अपराया अनुलम्बच्छेदे तु अधरोत्तरक्रमेणैतेऽवयवाः कर्त्तिता भवन्ति, तद्यथा—

पिण्डिकाः Cotyledons or Lobular projections　चक्रकुल्या Marginal or Circular sinus.

[३१ चित्रम्]

अपराया अधरतलम् ।

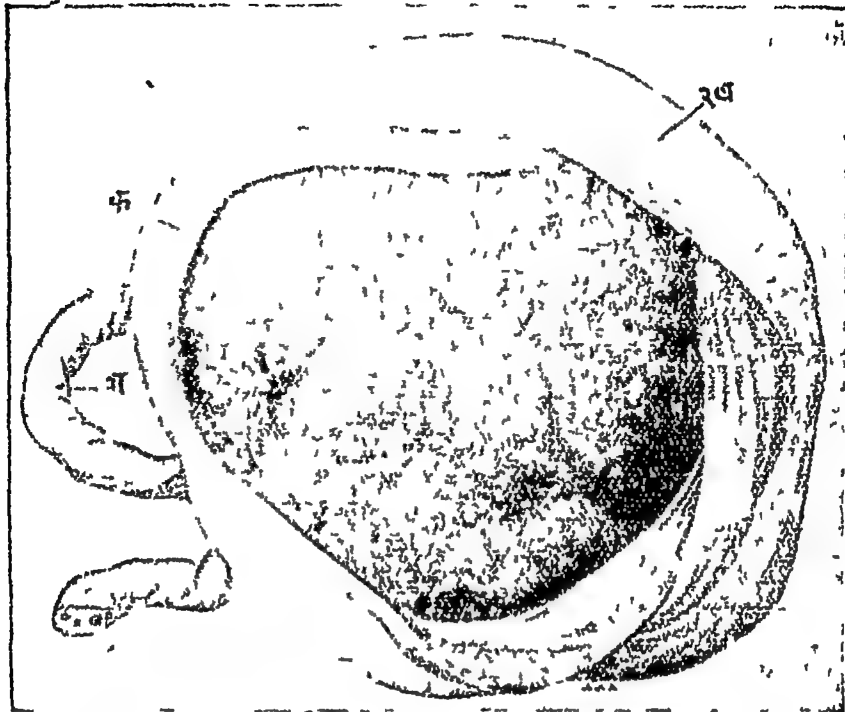


क—सान्तर्जरायुदेशः । ख—व्यपगतान्तर्जरायुदेशः ।

(१) अन्तर्जरायु ।
(२) वहिर्जरायुः ।
(३) कोरककाण्डानि ।
(४) कोरकशाखा ।
(५) शोणितावकाश ।
(६) शोणितावकाशवृति ।
(७) तलदैशिकी गर्भधरकला च ।

[३२ चित्रम्]

अपराया उत्तरतलम्।



क—अन्तर्जरायु.। ख—बहिर्जरायु। ग—नाभिनालम्।

कर्मतस्तु अपरा नाम—

श्वासोच्छ्वासकरी[1] स्मृता विनिमयाद्वाय्वोः सुपुष्टोरसो,
ग्राह्याग्राह्यग्रहाग्रहान्निगदिता गर्भस्य सम्पोषिणी[2]।
रोगव्याप्तिनिरोधिनी[3] मलहरी[4], चान्तारसस्राविणी[5],
श्वोज्ञोद्‌व्यविचायिनीति[6], च मता षट्कर्मिणी ह्याविला॥

प्राञ्चस्तु पुनराहुः—

---

१ Respiratory २ Nutritive ३ Barrier ४ Excretory.
५ Internal secretory ६ Glycogenic

(क) गृहीतगर्भाणामार्तववहानां स्रोतसा वर्त्मान्यवरुध्यन्ते गर्भेण, तस्माद् गृहीतगर्भाणामार्त्तवं न दृश्यते। ततस्तदध प्रतिहतमूर्ध्वमागतम-परञ्चोपचीयमानमपरेत्यभिधीयते। शेषञ्चोर्ध्वंतरमागत पयोधरावभि-प्रतिपद्यते, तस्माद् गर्भिण्यः पीनोन्नतपयोधरा भवन्तीति।

—सु० शा० ४।

(ख) तस्याश्च रजोवाहिनां स्रोतसा वर्त्मान्युपरुध्यन्ते गर्भेण। तस्मात्ततः परमार्त्तवं न दृश्यते। ततस्तदध प्रतिहतमपरमपरञ्चोपचीय-मानमपरेत्याहु.। जरायुरित्यन्ये। स्थितं रक्ते रोमराजिः प्रादुर्भवति। जरायुशेषञ्चोर्ध्वमसृक् प्रतिपद्यते। तस्मात् पीनकपोलपयोधरता कृष्णो-ष्ठचूचुकत्वञ्च। स्तनाश्रयमेव च कफोपरञ्जितं स्तन्यतामुपगत प्रसूतायाः पुनराहाररसेनाप्यायते।

—सङ्ग्रहशा० २।

जरायुः।

जरायुस्तावत् कलाविशेषो येन वेष्टिता प्राणिनो जायन्ते जरायुजाः। यथोक्त डल्हणेन—'जरायुरुल्वाकारो येन वेष्टिताः प्राणिनो जायन्ते' इति। बहिरन्तर्भेदेन च द्विविधो जरायुः। तत्र बहिर्जरायुर्नाम गर्भाण्डस्य बहिस्तनावरणभूता कला कोरकानां प्रभवभूमिः, या पुनः पोषकस्तरात् तदन्तरावरणभूतात् मध्यस्तराच्च निष्पद्यते। अमरा चापि बहिर्जराय्वोः सकोरकभागे निवर्त्तमाना तदेकदेशलग्नतया 'जरायु'रिति क्वाचित्कीं सञ्ज्ञां लभते। अन्तर्जरायु. पुनस्तदन्त स्थिता गर्भावरणी कला गर्भोदकाशयस्य गर्भकोषस्यारचयित्री, या नाम कौषिकबहि स्तरात् तदुद्गनभूतात् मध्यस्त-राच्च निष्पद्यते। कला चैषा नाभिनालम् अपराया अधस्तल च प्राप्नोति। तत्र नाभिनाले दृढ ससक्तेति विशेष.।

जरायु. Foetal membranes, (गर्भवेष्टनचर्मपुटक जरायुरित्युदयन) बहिर्जरायु Chorion अन्तर्जरायुः Amnion

गर्भोदकम् ।

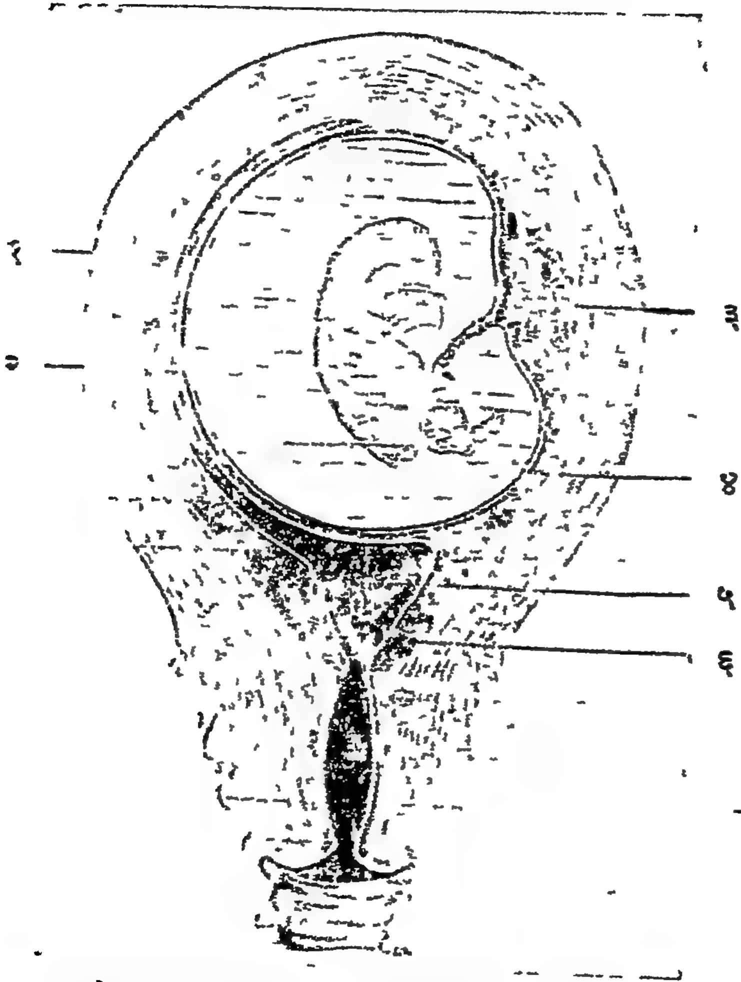
गर्भोदकं नाम गर्भकोषे सञ्चयशीलः स्वच्छप्रायः ईषदाविलो वा लसीकासमस्तरलविशेषः पीताभो (गर्भमलयोगे तु हरिताभः) मृदुक्षार-स्वभावो बहुविधलवणान्वितश्च, यस्यान्तर्गर्भः प्लवते । प्रभवश्चास्य मातृरक्तमित्याहुरेके, मातृरुधिरे हि वर्णवद्द्रव्यविलयनप्रक्षेपेण गर्भोदके तद्वर्णदर्शनात् गर्भमूत्रे च तद्वर्णोऽदर्शनात्, मातुर्वृक्करोगनिमित्तजे शोफे गर्भोदकातिरेकदर्शनाच्च । गर्भरक्तमित्यन्ये, अन्तर्मृते गर्भे गर्भोदकपरि-माणवृद्ध्यदर्शनात् । उभयमपि हेतुः (प्राधान्येन च मातृरक्तम्) इत्यपरे, अपरानाभिनालाभ्यां प्रसृतस्य रसस्य गर्भत्वग्वृक्कतः कदाचिदु-त्सृष्टस्य द्रवस्यापि च गर्भोदकपरिमाणवृद्धिकरत्वेन दर्शनात् ।

तदिदं परिमाणतो दशादिचत्वारिंशतन्तप्रशुक्तिमितमित्याहुरेके, एकादि-सार्धद्व्यन्तप्रमाणिकामानमित्यपरे, द्व्यादिचतुरन्तप्रमाणिकामितमिति चान्ये । अर्धप्रमाणिकामानतो हीनं प्रमाणिकात्रयमानादधिकञ्च पुनर्वि-कृतिरेवेत्यामनन्ति भिषजः । आविंशतिप्रमाणिकामानमपि च दृष्टि-पथं गतमिति चित्रमेव । सापेक्षगुरुत्वं तु पुनरस्य द्व्यधिकसहस्रात् पञ्चविंशत्यधिकसहस्रं यावद् दृष्टम्, प्रायेण च दशाधिकसहस्राङ्कम् । लभ्यन्ते चास्मिन् मूत्रद्रव्यं, गर्भलोमानि, उल्वांशा., गर्भत्वगन्तर्जराय्वोर्नि-र्मुक्तशल्कानि, कदाचिच्च गर्भमलम् ।

गर्भोदकम् Amniotic fluid or Liquor Amnii बहुविधलवणान्वित-श्चेति—It contains salts of potassium, sodium, calcium, magnesium, and ammonium, together with traces of albumin, grape-sugar urea, cholesterin, mucin, and creatin प्रशुक्ति An ounce प्रमाणिका A pint. मूत्रद्रव्यम् Uria गर्भलोमानि Lanugo उल्वांशाः Particles of Vernix Caseosa गर्भत्वगन्तर्जराय्वोर्निर्मुक्तशल्कानि Cast off foetal skin and amniotic epithelium गर्भमलम् Meconeum

[२३ चित्रम्]

त्रैमासिकगर्भस्य अपरादिप्रदर्शकं चित्रम्।



१—कौशिकी गर्भधरकला। २—गर्भोदकाशयो गर्भकोषः। ३—अपरा (तत्प्रदेशिकी गर्भधरकला)। ४—जरायु। ५—साधारणी गर्भधरकला। ६—गर्भाशयगुहाऽवकाश।

प्रयोजनं पुनरस्य तापदुर्वाहकतया समन्ततो गर्भस्य स्थिरोष्मसम्पादनम्, बाह्याभिघाततो गर्भसरक्षणम्, गर्भचेष्टनसौकर्यम्, गर्भाभिप्रीणनम्, गर्भान्तर्जराय्वोः संसक्तिवारणम्, प्रसवकाले च गर्भाशयग्रीवाविस्फारणम्, सकुचद्गर्भाशयस्य पीडनभराद्गर्भरक्षणम्, अपत्यपथप्रक्षालनञ्चेति ।

नाभिनाडी नाभिनालं वा ।

नाभिनाडी नाम कनिष्ठापरिणाहस्तर्जनीपरिणाही वा प्रायोऽष्टादशादिद्वाविंशत्यन्तप्राङ्गुलदीर्घः (त्रिप्राङ्गुलह्रस्वो द्विसप्ततिप्राङ्गुलदीर्घश्चापि दृष्टः) गर्भापरासंयोजनो वृन्तमिव नालविशेषः । कदाचित्त्वपराप्रतिबद्धगर्भे नाभिनालस्य सर्वथैवाऽभावः । एष चात्र नाभिनाड्या अङ्गप्रविभागः—

(१) नालकञ्चुकम्, अन्यावयवानामावेष्टनभूतम् । तदिदम् अन्तर्जरायुक्तमित्येके । गर्भत्वक्सम्भवमिति चान्ये ।

(२) स्वल्पतनः पिच्छिलसयोजकधातुराशिः, इतरावयवानां सश्लेषकरः ।

(३) रक्तवाहिन्यः—सवाहिन्यौ नाम धमन्यौ, सिराद्वयमेलनसम्भूता संवाहिनी महासिरा नाम चैका शिरा । आदिमसिरे तु ते तृतीयमासात् परं मिथः संयुज्येते । धमनीद्वयञ्च सिरा प्रदक्षिणमनुवेष्ट्य प्रवामं वा स्थितमिति विशेषः । अत एव नाभिनाल दक्षिणावर्त्तन वामावर्त्तन वा वेल्लितमिव सलक्ष्यते ।

(४) यल्कवाहिनी नाभिपुटकञ्च, यल्ककोषावशेषभूतं शीर्णमवयवद्वयम्, अपरानाभिनालयोः सयोगस्थलस्यान्तिके लघुपीतपिण्डमिव क्वचिदु-

---

गर्भाभिप्रीणनम् A source of fluid for the foetal tissues (It exerts a slight nutritive function) नाभि नाड़ी Umbilical cord or Funis.

पलभ्यमानम् । क्वचन तु नाभिपुटकम् अपराया प्रान्तभागे जरायुद्वयान्तरालगतमुपलभ्यते ।

(५) अलिन्थावशेषश्चापि यदा कदाऽन्धनलिकेव स्थितो दृष्ट । प्रायेण तु अलिन्थयल्ककोषावशेषा कोषाणुसङ्घरूपेणावस्थिताः सूक्ष्मचाक्षुषपरीक्षावेद्या एव ।

ऋताऽनृतग्रन्थयश्चात्र बहुधा दृष्टाः । तत्र ऋतग्रन्थय. पाशभूतनालमध्यता गर्भनिर्गमात् सम्भवन्ति । अनृतग्रन्थयस्तु सिरास्फोतिकृताः पिच्छिलसयोजकधातुराशिवृद्धिकृता वा परिज्ञेया. । दृढ ग्रथिता ऋतग्रन्थयस्तु रक्तसवहनमवरुध्य गर्भोपघातकरा भवन्ति । गर्भरुधिर हि नाभिनाडीमाश्रित्य सवहति, विदुष्ट गर्भशरीरतस्त्वमरां धमनीद्वयमार्गेण, विशुद्धश्चामरातो गर्भशरीर सिरामार्गेण । रक्तसवहनविधिस्तु गर्भस्यानुपदमेव (चतुर्थऽध्याये) विस्तरेण वक्ष्यते ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातो गर्भपोषणविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

किमाहारश्च वर्त्तयति ?

गर्भो हि विभिन्नविधिना पुष्टिमापद्यते । तत्र आतृतीयसप्ताहं जरायुकोरकाणामनाविष्कृतशाखितप्रणालिकत्वात् तर्पणबलेनैव पोषणग्रहः । स च वीजवहस्रोतसि स्रात.कलास्रावेण, गर्भाशये च गर्भधरकलास्रावेण, वपनगर्त्तनिर्माणकाल कलाभागाशनेन, गर्त्तगतमातृरुधिरेण च निष्पद्यत इत्येका विधि. । अतः परञ्च कारकपु रक्तप्रणालिकाविर्भावात् गर्भरक्तमेव तथासंवहन्मातृरक्ततः पोषकपदार्थानादाय सर्वत्र गर्भशरीरे वितरति । अय तु विशेषः—आदौ समग्रवहिर्जरायुतलव्याप्तैरनन्तरन्त्वपरानिर्माणदेशावशिष्टैः कोरकै. कार्यमेतत् सम्पद्यत इति । अपरानिर्वृत्तौ तु तद्द्वारैवार्थनिष्पत्तिरित्यन्यो विधिः । एवं हि परतन्त्रवृत्तिर्मातरमाश्रित्य वर्त्तयत्यन्तर्गत ।

अथ चारम्भिकदिवसेपु स्वतन्त्रवृत्तित्वमपि गर्भस्य दृष्टम् । स हि तदा स्वनिष्ठपोषकपदार्थैरपि स्वात्मान वर्त्तयति । ससृष्टवीजान्तर्गतः पोषणद्रव्यराशि पुराऽतिसान्द्रोऽपि पर द्रवतामुपगतो बुद्बुदावस्थापन्नगर्भस्य यल्ककोपे (महावकाशेऽपि च) शोषणाद्दः समुपलभ्यते, आह्रियते च ततो यल्ककौषिकरक्तप्रणालिकाभिरित्यपरो विधिः । रक्तप्रणालिकाश्चै-

---

तर्पणबलेन = By Process of Osmosis यल्ककौषिकरक्तप्रणालिकाः lline Vessels

तास्तृतीयसप्ताहे यल्ककोषप्राचीरिकायामाविर्भवन्ति। एवं यल्कनिर्हरणाच्च यल्ककोषस्याप्यवह्रय। भवति चात्र—

बीजोपनीतैराहारैः प्रथमं गर्भपोषणम्।
मार्गगर्भाशयादिस्थैः रसरक्तैश्च मातृजैः॥
सर्वं तदपरोत्पत्तौ तद्द्वारैव भविष्यति॥

—अष्टाङ्गशारीरम्।

प्राञ्चोऽपि पुनराहु—

(१) असञ्जाताङ्गप्रत्यङ्गविभागमानिषेकात् प्रभृति सर्वशरीरावयवानुसारिणीनां रसवहानां तिर्यग्गतानां धमनीनामुपस्नेहो जीवयति।

मातुस्तु खलु रसवहायां नाड्यां गर्भनाभिनाडी प्रतिबद्धा, साऽस्य मातुराहाररसवीर्यमभिवहति, तेनोपस्नेहेनास्याभिवृद्धिर्भवति। *

—सु० शा० ३।

(२) व्यपगतपिपासाबुभुक्षः खलु गर्भः परतन्त्रवृत्तिः, मातरमाश्रित्य वर्त्तयत्युपस्नेहोपस्वेदाभ्यां गर्भस्तु सदसद्भूताङ्गावयवः। तदनन्तरं ह्यस्य लोमकूपायनैरुपस्नेहः कश्चिन्नाभिनाड्ययनैः। नाभ्यां ह्यस्य नाडी-प्रसक्ता, नाड्याञ्चापरा, अपरा चास्य मातुः प्रसक्ता हृदये, मातृहृदयं ह्यस्य तामपरामभिसम्प्लवते सिराभिः स्यन्दमानाभिः। स तस्य रसो बलवर्णकरः सम्पद्यते। स च सर्वरसवानाहारः स्त्रिया ह्यापन्नगर्भायास्त्रिधा रसः प्रतिपद्यते स्वशरीरपुष्टये स्तन्याय गर्भवृद्धये च। स तेनाहारेणोपष्टब्धः परतन्त्रवृत्तिर्मातरमाश्रित्य वर्त्तयत्यन्तर्गतः।

—च० शा० ६।

(३) निषेकात् प्रभृति गर्भाशयोपस्नेहोपस्वेदौ वर्त्तनम्। ततो व्यक्तीभवदङ्गप्रत्यङ्गस्यास्य नाभ्यां प्रतिबद्धा नाडी, नाड्यामपरा, तस्यां मातृहृदयम्। ततो मातृहृदयादाहाररसो धमनीभिः स्यन्दमानोऽपरामुपैति।

---

* अत्र निदर्शनम्, यथा सलिलोपस्नेहस्तीरजाततरुकदम्बं पुष्णाति तद्वदिव।

ततः क्रमान्नाभिम् । ततश्च स पुनर्गर्भस्य पक्वाशये स्वकायाग्निना पच्यमानः प्रसादबाहुल्याद्धात्वादिपुष्टिकरः सम्पद्यते । तथा रोमकूपै-रुपस्नेहो रस एव च पयोभूतः ।

—सङ्ग्रहशा० २ ।

(४) गर्भस्य नाभौ मातुश्च हृदि नाडी निबध्यते ।
यया स पुष्टिमाप्नोति केदार इव कुल्यया ॥

—वा० शा० १ ।

(५) मात्रादीनां खलु गर्भकराणां भावानां सम्पदः, तथा वृत्तस्य सौष्ठवात्, मातृतश्चैवोपस्नेहोपस्वेदाभ्याम्, कालपरिणामात्, स्वभावसंसि-द्धेश्च कुक्षौ वृद्धिमाप्नोति ।

—च० शा० ४ ।

(६) गर्भस्य खलु रसनिमित्ता मारुताध्माननिमित्ता च परिवृद्धि-र्भवति । भवन्ति चात्र—

तस्यान्तरेण नाभेस्तु ज्योतिःस्थानं ध्रुवं स्मृतम् ।
तदाधमति वातस्तु देहस्तेनास्य वर्द्धते ॥
ऊष्मणा सहितश्चापि दारयत्यस्य मारुतः ।
ऊर्ध्वं तिर्यगधस्ताच्च स्रोतांस्यपि यथा तथा ॥

---

(६) ज्योतिःस्थानम् = अग्निस्थानम् । इदमत्राकूतम्—आनाभिप्र-सृतम् आरक्तवर्णं नाभिसिरयाऽनुबद्धं च गर्भयकृद् दृष्ट्वा प्राग्भिरनुमितं भवेत् यदिदं वह्निस्थानम्, अत एवास्य रक्तवर्णता, नाभिनाडीस्थवातश्चै-नमाधमतीति । वातमूत्रपुरीषाणीति—गर्भोदके मूत्रद्रव्यलाभात् गर्भो मूत्र-यतीति तु नव्याः । स्थूलमलासम्भव इति—स्वल्पतनं गर्भमलं (Meconium) तु भवत्येव ।

अन्यच्चापि—

निःश्वासोच्छ्वाससंक्षोभस्वप्नान् गर्भोऽधिगच्छति।
मातुर्निश्वसितोच्छ्वाससंक्षोभस्वप्नसम्भवान्॥
मलाल्पत्वादयोगाच्च वायोः पक्वाशयस्य च।
वातमूत्रपुरीषाणि न गर्भस्थः करोति हि॥
जरायुणा मुखे छन्ने कण्ठे च कफवेष्टिते।
वायोर्मार्गनिरोधाच्च न गर्भस्थ प्ररोदिति॥

—सु० शा० २।

अजातस्य साक्षादन्नपानाननुप्रवेशादमलत्वाच्च रसस्य गर्भस्य स्थूलमलासम्भवः।

—सङ्ग्रहशा० २।

अथ गर्भरक्तसंवहनम्।

इतरविलक्षणं हि खलु गर्भरक्तसंवहनम्, मातृपरायत्तत्वात् हृदयादि निर्माणवैलक्षण्याच्च गर्भस्य। अपराया मातृरक्तेन सह सम्मूर्च्छितं वै गर्भरुधिरं, मिथोविनिमयात् त्यक्तमलिनांशं गुणोत्तरं च भूत्वा, नाभिनालपथेन गर्भशरीरे सञ्चरत्, तत्तद्गर्भाङ्गपोषणादिकं कार्यजातं निष्पादयति। शुक्तिच्छिद्र, सेतुधमनी, सेतुसिरा, संवाहिन्यौ धमन्यौ, संवाहिनी सिरा चेति च निर्माणवैलक्षण्यकराः पञ्च विशेषाः। प्रसूतस्य च बालस्य यथाकालमेषां छिद्रावरोधो रूपान्तरभावश्च। तत्र—

शुक्तिच्छिद्रं नाम—क्षुद्रशुक्तिकाकारं विवरम्, अलिन्दान्तरीयप्राचीरे वर्त्तमानत्वादलिन्दद्वयस्य मिथोऽनुबन्धकरम्। कपाटस्वभावञ्चैतद्विवरम्, दक्षिणतो वामाभिमुखं प्रसरद्रक्तं नावरुणद्धि, रुणद्धि तु वामतो दक्षिणा-

---

शुक्तिच्छिद्रम् Foramen Ovale

भिमुखीं गतिं रक्तस्य। छिद्रस्यास्य पूर्वधारातोऽधरमहासिराच्छिद्रं यावत्प्रगतम्, हृदन्तरीयकलाविनिर्मितम्, गर्भस्थशिशोर्विशेषेण कार्यकरञ्च क्षुद्रमेकं निर्देशपत्रकमुपलभ्यते। तद्धि दक्षिणालिन्देऽधरमहासिरामुखे-नागतं रक्तं शुक्तिछिद्राभिमुखं प्रणुदति।

सेतुधमनी पुनर्योजनी नलिका, फुप्फुसाभिगां धमनीं महाधमन्या योजयति उभयोर्मध्यस्था। तद्द्वारेण च फुप्फुसाभिगधमनीगतं रक्तं भूम्ना महाधमन्या अवरोहिभागमेव प्रविशति, फुप्फुसयोस्तदा निष्क्रियत्वात्।

संवाहिन्यौ धमन्यौ तु आभ्यन्तराधिश्रोणिकाभ्यामुद्भूय (आभ्य-न्तराधिश्रोणिके एव तथानुगते इति वा) वस्तिमुभयतः उदरपूर्वप्राचारस्य पश्चिमतश्च पुरःप्रसरन्त्यौ नाभिमार्गेण बहिर्निर्गच्छतः। तथानिर्गतयो-श्चात् परं नालावयवभूतयोः नाभिधमन्याविति संज्ञानम्। अम याश्च प्रतिकोरकम् अनयोरेव शाखाप्रताना प्रतन्यन्ते।

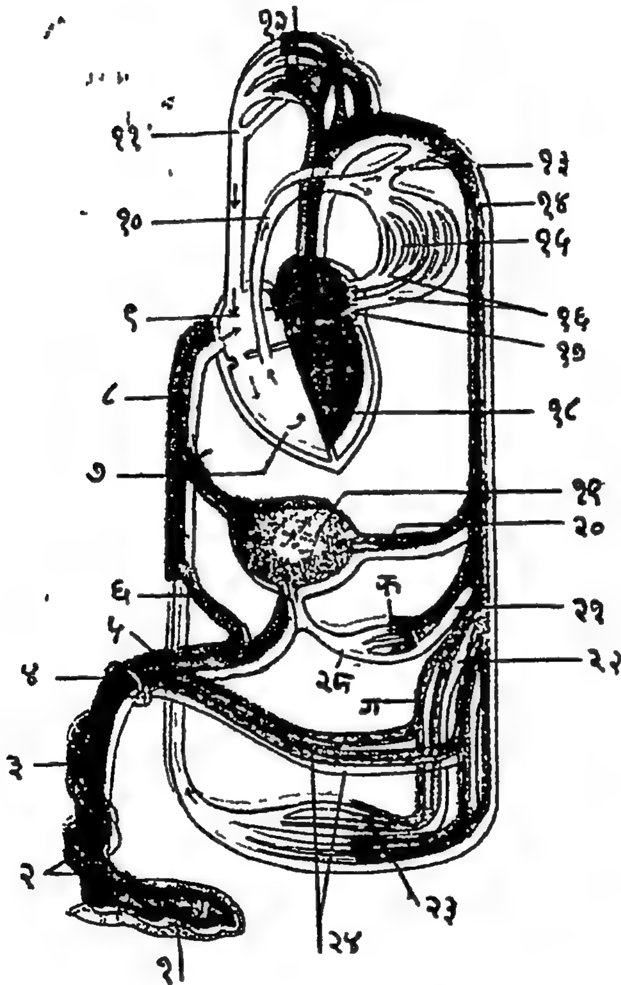
संवाहिनी महासिरा (नाभिसिरा वा) तु तावत् मातुरमरातो रक्तमभिवहन्ती नाभिमार्गेण बालस्य यकृत्तले प्रसृता, शाखाभिर्यकृतो वामपिण्डं चतुरस्रपिण्डिका च पुष्णन्ती, यकृद्द्वारे द्वयोरग्रशाखयार्वि-भज्यते। तयोरेका सेतुसिरासंज्ञा शाखा यकृत्पश्चिमत ऊर्ध्वं गता वामया याकृतसिरया मिलित्वाऽधरमहासिरायामुन्मुक्ता भवति, योजयति चैवं संवाहिनीं महासिरामधरया महासिरया। अपरा तु प्रतिहारिण्याः सिराया वामशाखया मिलिता संवाहिनीं महासिरां प्रतिहारिण्या महासिरया योजयति, साधयति च याकृतं रक्तसंवहनं गर्भस्य।

एवञ्च संवाहिन्या महासिरया प्रतिनीतं गर्भरुधिरं मार्गत्रयेण अधरमहासिरायां निक्षिप्यते। तत्र पोषकशाखाभिर्यकृदन्तः प्रावेष्टो

निर्देशपत्रकम् Eustachian Valve सेतुधमनी Ductus Arteriosus. संवाहिन्यौ धमन्यौ Hypogastric Arteries नाभिधमन्यौ Umbilical Arteries संवाहिनी महासिरा umbilical Vein सेतुसिरा Ductus Venosus.

[३४ चित्रम्]

गर्भस्थबालस्य रक्तसंवहनम् ।



क—अन्त्राणि । ख—प्रतिहारिणी सिरा । ग—अधिश्रोणिका आभ्य-तरी धमनी ।

(शेषमग्रिमपृष्ठस्य टिप्पण्यामवलोकयन्तु)

लघुशोणितराशिर्याकृतसिरामार्गेण, भूयाँश्च शोणितभागो याकृतरक्तसंवहनविधिना सञ्चरन् याकृतसिरामार्गेण, अवशिष्टश्च सेतुसिरामार्गेणेति ।

रक्तसंवहनप्रकारश्च गर्भस्थबालस्येदृशः—

(१) संवाहिनी महासिरा हि मातुरमरातो विशुद्धय समागतं गर्भरुधिरं पूर्वोक्तदिशाऽधरमहासिरायां निक्षिपति। तत्र च सेतुसिरया प्रतिनीयमानस्य अपरारक्तस्य, याकृतसिराभ्यामागच्छतो याकृतसंवहनरुधिरस्य, स्वयमधरमहासिरया प्रतिनिवर्त्तमानस्य कायाधरशाखाशोणितस्य च सङ्गमः। तदिदमस्र सिरापथेनैतेनैव हृदयस्य दक्षिणालिन्दे प्रविश्य, दक्षिणनिलयञ्चागत्वा, शुचिच्छिद्रमार्गेण वामालिन्दमाविशति, मिश्रीभवति च फुफ्फुसप्रभवाभि सिराभिः फुफ्फुसाभ्यामागतेन स्वल्परक्तेन। ततश्चास्य वामनिलये प्रवेशः, निलयाच्च महाधमन्याम्। महाधमनीतश्च मातृकाधमनीभ्यामक्षकाधरधमनीभ्याञ्च विक्षिप्यमाणं विशुद्धप्रायं रक्तमिदं शिरोग्रीवं बाहू च परिपुष्णाति। सोऽयमाद्यः क्रमः ।

१—अमरा। २—नाभिधमन्यौ। ३—संवाहिनी नाम महासिरा। ४—नाभिदेशः। ५—संवाहिनी महासिरा। ६—सेतुसिरा। ७—दक्षिणनिलयः। ८—अधरा महासिरा। ९—दक्षिणालिन्दः। १०—फुस्फुसाभिगा धमनी। ११—उत्तरा महासिरा। १२—शिरोबाहुरक्तवाहिन्यः। १३—सेतुधमनी। १४—महाधमनी। १५—फुस्फुसरक्तवाहिन्यः। १६—फुस्फुसप्रभव सिराद्वयम्। १७—वामालिन्दः। १८—वामनिलयः। १९—यकृत्। २०—अभियाकृती धमनी। २१—आन्त्रिक्यो धमन्यः। २२—अधिश्रोणिका साधारणी धमनी। २३—अधःशाखीयारक्तवाहिन्यः। २४—संवाहिन्यौ नाम धमन्यौ।

(२) ऊर्ध्वकायान्निवर्त्तमान तु रक्तम् उत्तरमहासिरापथेन दक्षिणालिन्दे प्रविशति, ततश्च पूर्वोक्त रक्तस्रोत उल्लङ्घ्य दक्षिणनिलयम्। दक्षिणनिलयतश्च फुप्फुसाभिगा धमनीं प्रविशत् स्वल्पेन भागेन फुप्फुसद्वय पुष्णाति (न तु तत्र विशोध्यते, फुप्फुसयोस्तदा निष्क्रियत्वात्), अधिकेन तु भागेन प्रविशत्यवरोहिणीं महाधमनीं सेतुधमनीद्वारेण। मलिनप्रायञ्च तद्रक्तं महाधमन्यास्तत्तच्छाखाभिरधरकाये प्रसरत् अधरमहासिरया प्रतिहारिण्या महासिरया च प्रतिनिवर्त्तते, परमस्य भूयिष्ठो भागः सवाहिनीभ्यां धमनीभ्यां मातुरमरामेव गच्छति। सोऽय द्वितीय क्रम ।

प्रगल्भगर्भस्य च शुक्तिच्छिद्रसेतुधमन्योरवकाश. स्तोकेन सङ्कीर्यते। तच्च भविष्यत फौप्फुसरक्तसवहनारम्भस्य पूर्वोपक्रममात्रमिति तद्विदः। जातमात्रस्य च बालस्य इमे विशेषा उत्पद्यन्ते—

(१) अलिन्दान्तर्भारो हि दक्षिणालिन्दे क्षीयते वामालिन्दे च वर्धते, अपरारक्तसवहनस्य विच्छेदादारम्भाच्च फौप्फुसरक्तसवहनस्य। तथा च वामतो विवृतिशीलस्य शुक्तिच्छिद्रस्य मुखसवरणात् न तच्छिद्रपथेन दक्षिणालिन्दात् वामालिन्दे रक्त प्रविशति। दशभिर्दिनैस्तु शुक्तिच्छिद्रस्य सर्वथैव विलोप । अत· पर तु तच्चिन्ह शुक्तिखातसज्ञकमुपलभ्यते। कदाचिदविलुप्त तु शुक्तिच्छिद्रं बाल्यादेव हृद्रोगकर सम्पद्यते, शुद्धाशुद्धरक्तविमिश्रणात् ।

(२) एव फुप्फुसाभिगधमनीरक्तमपि सक्रियफुप्फुसाभ्यां बलादाकृष्यमाण न सेतुधमन्यामाविशति। शून्यावकाशतया च सेतुधमन्या अपि दिनपञ्चकेन सप्ताहेन वाऽवरोध । द्वित्रमासेन सम्यक् विशुष्काया अवशेषस्तु सेतुबन्धनिकारूपेणावतिष्ठते ।

सेतुबन्धनिका = Ligamentum Arteriosum

(३) संवाहिन्यौ धमन्यौ, संवाहिनी महासिरा, सेतुसिरा चापि प्रसूतस्य बालस्याचिरेणैव (धमन्यौ दिनद्वयेन सिराश्च सप्ताहेन) अवरुध्यन्ते तिष्ठन्ति च ततः परं नीरन्ध्रसूत्राकाराः शरीरे। तत्र विशुष्कप्राये धमन्यौ वस्तिरज्जुकासंज्ञे भवतः, संवाहिनी महासिरा च शुष्का रज्जुप्रबन्धनीसंज्ञा, सिराप्रबन्धनीसंज्ञा तु सेतुसिरा।

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातो गर्भवृद्धिक्रमविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

गर्भो हि वर्धमानो येन क्रमेण तत्तत्स्वरूपतामधिगच्छति तदेवात्र मासानुपूर्व्या वर्णयिष्यते । शस्त्रकर्मभिर्गर्भविच्युतिभिर्वा प्राप्तान् गर्भानवेक्ष्यैव क्रमोऽयं विद्वद्भिर्निर्धारित । न च पक्षहीनो गर्भोऽद्यावधि एवमुपलब्धस्तस्मादर्धमासीनगर्भस्य वर्णना मानवेतरप्राणिगर्भपरीक्षणाश्रितत्वात् काल्पनिकप्रायेव । एतच्च गर्भदैर्घ्यादिविज्ञानं व्यावहारिकत्वात् विशेषप्रयोजनम् । गर्भदैर्घ्यविज्ञानस्य चाय विधि —दैर्घ्यमान तावत् आपञ्चममास मध्यशीर्षात् अनुत्रिकास्थि यावत्, अत पर च मध्यशीर्षात् पार्ष्णिं यावत् गृह्यते । तत्र, आपञ्चमं माससंख्यायाः स्वसंख्यया गुणनेन, तत. पर तु पञ्चधा गुणनेन यवकेषु गर्भदैर्घ्यमायाति । इत्थमनुमितं च गर्भदैर्घ्यं षष्ठादारभ्यैव यथार्थमान भवति, इत पूर्वं तु स्वाभाविकमानात् स्तोकेनाधिकमेव ।

(१) तत्र प्रथमे मासि गर्भाण्डं कपोताण्डपरिणाहं महावकाशबहुलञ्च भवति । भ्रूणस्तु तदन्तर्गत यवकैकमानप्रायो, दृशागुञ्जाभार , स्थूलशिराः पुटीकृतविग्रहो, व्यक्तहृदयो, दृष्टनेत्रकर्णबुद्बुदः, स्फुटितशाखाङ्कुरो, लक्षितमुखनासिकारम्भश्च लघुजरायुकोषसवेष्टितो वर्त्तते । सदसद्भूताङ्गावयवत्वाच्च मानवगर्भोऽयमिति न सुकरविज्ञानम् । भवन्ति चात्र—

यवक = Centimetre (प्राङ्गुलश्च सार्धयवकद्वयमित भवति) ।
पुटीकृतविग्रहः = Much curved, head and tail being close together

तत्र प्रथमे मासि कललं जायते (सु०)। स तु सर्वगुणवान् गर्भ-त्वमापन्नः प्रथमे मासि सम्मूर्च्छितः सर्वधातुकललीकृतः खेटभूतो भवत्य-व्यक्तविग्रहः सदसद्भूताङ्गावयवः (च०)।

प्रथमेऽह्नि रेतश्च संयोगात् कललञ्च यत्।
जायते बुद्बुदाकारं शोणितञ्च दशाहनि ॥
घन पञ्चदशाहे स्यात् विंशाहे मासपिण्डकम्।
पञ्चविंशत्तमे प्राप्ते पञ्चभूतात्मसम्भवः ॥
मासैकेन च पिण्डस्य पञ्चतत्त्व प्रजायते।

—हारीतः।

ऋतुकाले सम्प्रयोगादेकरात्रोषित कलल भवति, सप्तरात्रोषित बुद्बुदं भवति, अर्धमासाभ्यन्तरे पिण्डो भवति, मासाभ्यन्तरे कठिनो भवति।

—गर्भोपनिषद्।

(२) द्वितीये मासि कुक्कुटाण्डमानस्य गर्भाण्डस्य व्यासः सार्धप्रा-ङ्गुलद्वयमितो भवति, महावकाशश्च जरायुकोषेनाभिव्याप्यमानोऽवरु-ध्यते। भ्रूणस्तु तदन्तःस्थिते महति जरायुकोषे वर्त्तमानो विलुप्तपुच्छः, यवकत्रयदीर्घो, व्यक्ताङ्गुलिहस्तपाद., स्फुटनेत्रकर्णनासादिमुखावयवो, लघुनाभिनालबद्धः, ऋजुप्रायगात्रो, मानवगर्भाकृतिस्त्रिंशद्गुञ्जाभारश्च (विंशोत्तरगुञ्जाशतभार इति केचित्) दृष्ट.। अक्षकास्थिन अधोहन्वस्थिन च विकसनकेन्द्राणा प्रादुर्भावः। बहिर्जननेन्द्रियाणि च लक्ष्यमाणान्यपि न लिङ्गभेदज्ञापनसमर्थानि भवन्ति। वचनान्यपि—

द्वितीये मासि शीतोष्मानिलैरभिप्रपच्यमानानां महाभूताना सङ्घातो घनः सञ्जायते। यदि पिण्ड. पुमान्, स्त्री चेत्पेशी, नपुसकं चेदर्बुदम् (सु०)। द्वितीये मासि घनः सम्पद्यते। पिण्डः पेश्यर्बुदं वा। तत्र घन. पुरुषः, स्त्री पेशी, अर्बुद नपुसकम् (च०)

'पञ्चाशद्दिवसाद्यावद् अङ्कुराणाञ्च सम्भवः ।
—हारीत ।

(३) तृतीये मासि गर्भाण्डं नाङ्कुराद् विस्फुटति(?) । स्यात्तु तस्य सावयवाङ्कुरत्वात् मस्तुलुङ्गत्वकुण्डलिनो हृ. । अर्थस्तु तावत् न स्थूल-प्रयत्नैः सावयवकुल्यप्रशोषो वा त्रिदलसङ्कुचिनागे, विविधाङ्कुराः सन्तो व्यक्तीभवन्ति. संहृतास्तु इन्द्रियाकाश्रितजन्मनाडीश्च मन्यते । अस्थिषु चानेकेषु क्रमोद्गमः । गर्भाशयकर्मणा च निश्चयं लिङ्गानाम् । भवन्ति चात्र—

तृतीये हस्तपादशिरसां पञ्च पिण्डका निर्वर्तन्ते । अङ्गप्रत्यङ्गविभा-गश्च सूक्ष्मो भवति (सु०) ।

तृतीये मासि सर्वेन्द्रियाणि सर्वाङ्गावयवाश्च यौगपद्येनाभिनिर्व-र्तन्ते ।'' ······ । एवमस्येन्द्रियाण्यङ्गावयवाश्च यौगपद्येनाभिनिर्वर्तन्ते-ऽन्यत्र तेभ्यो भावेभ्यो येऽस्य जातस्योत्तरकालं जायन्ते तद्यथा—दन्ता व्यञ्जनानि व्यक्तीभावः, तथायुक्तानि चापराणि, एषा प्रकृतिः विकृतिः पुनरतोऽन्यथा । सन्ति खल्वस्मिन् गर्भे केचिन् नित्या भावाः सन्ति चानित्याः केचित् ।

तस्य य एवाङ्गावयवाः सन्तिष्ठन्ते, त एव स्त्रीलिङ्गं पुरुषलिङ्गं नपुंसकलिङ्गं वा बिभ्रति. तत्र स्त्रीपुरुषयोर्ये वैशेषिका भावाः प्रधानसंश्रयाः गुणसंश्रयाश्च, तेषां यतो भूयस्त्वं ततोऽन्यतरभाव । तद्यथा—क्लैब्यं भीरुत्वमवैशारद्यं मोहोऽनवस्थानमधोगुरुत्वमसहनं शैथिल्यं मार्दवं गर्भाशयबीजभागस्तथायुक्तानि चापराणि स्त्रीकराणि. अतो विपरीतानि पुरुषकराणि उभयभागावयवानि नपुंसककराणि । (च०) ।

तृतीये पञ्चधा प्ररोहति । तद्यथा—सक्थिनी बाहू शिरश्च । सक्थ्यादिभिः पञ्चभिरेकस्मिन्नेव च सर्वाङ्गावयवेन्द्रियाणि युगपत् सम्भवन्त्य-न्यत्र तत्त्वोत्तरकालेभ्यो दन्तादिभ्यः । क्रमेण तु स्फुटीभवन्ति । एष

प्रकृतिः, विकृतिरतोऽन्यथा। यथास्त्रञ्च गर्भस्य पुंस्त्रीनपुंसकान्यतमलिङ्गानुरूपा भावा मनसि शरीरे च सन्तिष्ठन्ते। वैशेषिकलिङ्गसङ्करे तु यतोभूयस्त्वं ततोऽन्यतरा भावाः। तद्यथा—क्लैब्य भीरुत्वमवैशारद्य मोहोऽनवस्थानमधोगुरुत्वमसहनन शैथिल्य मार्दव गर्भाशयबीजभागस्तथायुक्ताश्चापरे स्त्रीकरा भावा.। ततो विपरीताः पुंस्कराः। सङ्कीर्णा नपुंसककरा'।

—सङ्ग्रहशा० २।

व्यक्तीभवति मासेऽस्य तृतीये गात्रपञ्चकम्।
मूर्धा द्वे सक्थिनी बाहू सर्वसूक्ष्माङ्गजन्म च॥
सममेव हि मूर्धाद्यैर्ज्ञानञ्च सुखदुःखयोः।

—वा० शा० १।

(४) चतुर्थे मासि गर्भशरीरम्* पञ्चप्राङ्गुलदीर्घं, सप्ताद्यष्टान्तप्रशुक्तिभारं, दृष्टवर्णाहीनगर्भलोम, सुव्यक्तबहिर्जननाङ्ग, उपचितपेशीकं, स्फुरणयोग्यञ्च प्रजायते। अनवरुद्धविवरा च गुदनलिका। वचनानि चात्र—

चतुर्थे मासि सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्तो भवति। गर्भहृदयप्रव्यक्तिभावाच्चेतनाधातुरभिव्यक्तो भवति, कस्मात् तत्स्थानत्वात्। तस्माद् गर्भश्चतुर्थे मास्यभिप्रायमिन्द्रियार्थेषु करोति, द्विहृदया च नारी दौहृदिनीमाचक्षते (सु०)।

चतुर्थे मासि स्थिरत्वमापद्यते गर्भः। तस्मात्तदा प्रभृति गर्भिणी गुरुगात्रत्वमधिकमापद्यते विशेषेण (च०)।

चतुर्थके च लोमाना सम्भवश्चात्र दृश्यते। —हारीतः।

---

* एव विवर्धितः स यदा हस्तपादादिभिरङ्गैरुपेतस्तदा शरीरमिति सञ्ज्ञा लभते (सु० शा० ५)। गर्भलोमानि Lanugo.

"पञ्चाशद्दिनसम्प्राप्ते अङ्कुराणाञ्च सम्भवः"।

—हारीतः।

(३) तृतीये मासि गर्भाण्ड नारङ्गाकृति सञ्जायते। व्यासस्तु तस्य सार्धप्राङ्गुलत्रयात् प्राङ्गुलचतुष्टयमितो दृष्टः। भ्रूणस्तु तावत् प्राङ्गुल-त्रयदीर्घ सार्धप्राङ्गुलत्रयदीर्घो वा त्रिचतुरप्रशुक्तिभारो, विविक्ताङ्गुलिः, सनखो, व्यक्तग्रीव, सवृत्ततालुः, ईषद्व्यक्तबहिर्जननाङ्गश्च सम्पद्यते। अस्थिषु चानेकेषु केन्द्रोद्गम। गर्भाशयदर्शनेन च निःसंशय लिङ्गज्ञानम्। भवन्ति चात्र—

तृतीये हस्तपादशिरसां पञ्च पिण्डका निर्वर्त्तन्ते। अङ्गप्रत्यङ्गविभा-गश्च सूक्ष्मो भवति (सु०)।

तृतीये मासि सर्वेन्द्रियाणि सर्वाङ्गावयवाश्च यौगपद्येनाभिनिर्व-र्त्तन्ते।" " "। एवमस्येन्द्रियाण्यङ्गावयवाश्च यौगपद्येनाभिनिर्वर्तन्ते-ऽन्यत्र तेभ्यो भावेभ्यो येऽस्य जातस्योत्तरकाल जायन्ते, तद्यथा—दन्ता व्यञ्जनानि व्यक्तीभाव, तथायुक्तानि चापराणि, 'एषा प्रकृति', विकृति पुनरतोऽन्यथा। सन्ति खल्वस्मिन् गर्भे केचिच्च नित्या भावा, सन्ति चानित्याः केचित्।

तस्य य एवाङ्गावयवाः सन्तिष्ठन्ते, त एव स्त्रीलिङ्ग पुरुषलिङ्ग नपुंसकलिङ्ग वा बिभ्रति, ततः स्त्रीपुरुषयोर्य वैशेषिका भावा प्रधानसंश्रया गुणसंश्रयाश्च, तेषां यतो भूयस्त्व ततोऽन्यतरभावः। तद्यथा—क्लैब्यं भीरुत्वमवैशारद्यमनवस्थानमधोगुरुत्वमसहनन शैथिल्य मार्दव तथायुक्तानि चापराणि स्त्रीकराणि, अतो विपरीतानि पुरुषकराणि, उभयभागावयवा नपुंसककराणि। (च०)।

तृतीये पञ्चधा प्ररोहति। तद्यथा—सक्थिनी बाहू शिरश्च। सक्थ्यादिप्ररोहैककालमेव च सर्वाङ्गावयवेन्द्रियाणि युगपत् सम्भवन्त्य-न्यत्र जन्मोत्तरकालजेभ्यो दन्तादिभ्यः। क्रमेण तु स्फुटीभवन्ति। एषा

प्रकृतिः, विकृतिरतोऽन्यथा । यथास्वञ्च गर्भस्य पुंस्त्रीनपुंसकान्यतम-लिङ्गानुरूपा भावा मनसि शरीरे च सन्तिष्ठन्ते । वैशेषिकलिङ्गसङ्करे तु यतोभूयस्त्वं ततोऽन्यतरा भावाः । तद्यथा—क्लैब्यं भीरुत्वमवैशारद्यं मोहोऽनवस्थानमधोगुरुत्वमसंहननं शैथिल्यं मार्दवं गर्भाशयबीजभागस्तथा-युक्ताश्चापरे स्त्रीकरा भावाः । ततो विपरीताः पुंस्कराः । सङ्कीर्णा नपुंसककराः ।

—सङ्ग्रहशा० २ ।

व्यक्तीभवति मासेऽस्य तृतीये गात्रपञ्चकम् ।
मूर्धा द्वे सक्थिनी बाहू सर्वसूक्ष्माङ्गजन्म च ॥
सममेव हि मूर्धाद्यैर्ज्ञानञ्च सुखदुःखयोः ।

—वा० शा० १ ।

(४) चतुर्थे मासि गर्भशरीरम्* पञ्चप्राङ्गुलदीर्घं, सप्ताद्यष्टान्तप्रशुक्ति-भारं, दृष्टवर्णोहीनगर्भलोमं, सुव्यक्तबहिर्जननाङ्गं, उपचितपेशीकं, स्फुरणयोग्यञ्च प्रजायते । अनवरुद्धविवरा च गुदनलिका । वचनानि चात्र—

चतुर्थे मासि सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्तो भवति । गर्भहृदयप्रव्यक्ति-भावाच्चेतनाधातुरभिव्यक्तो भवति, कस्मात् तत्स्थानत्वात् । तस्माद् गर्भ-श्चतुर्थे मास्यभिप्रायमिन्द्रियार्थेषु करोति, द्विहृदयां च नारीं दौहृदिनी-माचक्षते (सु०) ।

चतुर्थे मासि स्थिरत्वमापद्यते गर्भः । तस्मात्तदा प्रभृति गर्भिणी गुरु-गात्रत्वमधिकमापद्यते विशेषेण (च०) ।

चतुर्थके च लोमाना सम्भवश्चात्र दृश्यते । —हारीतः ।

---

* एवं विवर्धितः स यदा हस्तपादादिभिरङ्गैरुपेतस्तदा शरीरमिति संज्ञां लभते (सु० शा० ५) । गर्भलोमानि Lanugo.

(५) पञ्चमे मासि गर्भो दशप्राङ्गुलदीर्घ., षोडशप्रशुक्तिभारो, द्वादशप्राङ्गुलदीर्घनाभिनाल , शिरोरुहविभूषितो, विशेषेण स्फुरणशीलो, गर्भमलवदन्त्र', उल्बावृतत्वक् च सम्पद्यते । उल्व हि नाम पूतिग्रन्थिनिःस्रवेण मृतत्वक्कोषाणुभिश्च विनिर्मित. स्नैहिकस्तरो, गर्भोदकमग्नस्य गर्भत्वचोऽभिरक्षण । भवन्ति चात्र—

पञ्चमे मासि गर्भस्य मासशोणितोपचयो भवत्यधिकमन्येभ्यो मासेभ्य. तस्मात्तदा गर्भिणी कार्श्यमापद्यते विशेषेण । (च०)

पञ्चमे मासि मन प्रतिबुद्धतरं भवति । (सु०)

(६) षष्ठे मासि गर्भो द्वादशप्राङ्गुलदीर्घो, द्वात्रिंशत्प्रशुक्तिभारः, सभ्रू, साक्षिपक्ष्मलोमा च सञ्जायते । वसानिचयारम्भाच्च त्वक्शैथिल्यस्य किञ्चिन्निरसनम् । शिरोरुहाश्चाभिवृद्धा' कृष्णवर्णा भवन्ति । वचनान्यपि—

षष्ठे मासि गर्भस्य बलवर्णोपचयो भवत्यधिकमन्येभ्यो मासेभ्यः । तस्मात्तदा गर्भिणी बलवर्णहानिमापद्यते विशेषेण (च०) । षष्ठे बुद्धि. (सु०) ।

षष्ठे केशरोमनखास्थिस्नाय्वादीन्यभिव्यक्तानि बलवर्णोपचयश्च ।

(सङ्ग्रहशा० २)

षष्ठे स्नायुसिरालोमबलवर्णनखत्वचाम् (वा०) ।

(७) सप्तमे मासि सार्धशेटकभार' प्राङ्गुलचतुर्दशदीर्घश्च गर्भो भवति । अण्डग्रन्थी वङ्क्षणसुरङ्गायामवतरतः । नेत्रच्छदावुन्मीलतः । त्वक्शैथिल्यात् वलितचर्मा तु गर्भ. शुष्कतनुर्वृद्ध इव सलक्ष्यते । गर्भस्थशिशोरुपलभ्यमाना कनीनकच्छदा नाम तन्वी कला तु प्रायः सप्तमेऽष्टमे वा मासे स्वयमेव विलीयते । प्रसूतश्चाय दुर्बलतनुः कदाचित् सुपरिपाल्यमानो जीवनधारणे क्षमः, प्रायस्तु सद्यो म्रियतेऽल्पायुर्वा भवति । भवन्ति चात्र—

उल्वम् Vernix Caseosa

गर्भः सर्वभावैराप्यायते सहसा, तस्मात्तदा गर्भिणी सर्वाकारैः क्लान्ततमा भवति (च०)। सप्तमे मासि सर्वाङ्गप्रत्यङ्गविभागः प्रव्यक्ततर (सु०)। सर्वैः सर्वाङ्गसम्पूर्णो भावैः पुष्यति सप्तमे (वा०)।

"तेन सर्वेण जन्मजीवनलक्षणेन अर्थेन अङ्गैश्च सम्पूर्णो भवतीत्यवतिष्ठते। तथा चास्मिन् सप्तमे मासि गर्भो जातो जीवति किन्त्वकालप्रसवत्वान्न तथा दीर्घजीवितत्वादिक स्यादिति"—अरुणदत्तः।

(८) अष्टमे तु मासि उल्बेन सर्वथाऽऽवृतो गर्भः षोडशप्राङ्गुलदीर्घो भवति शेटकद्वयभारश्च। त्वक्शैथिल्यञ्चास्य त्वगधस्ताद् वसोपचयान्निवृत्त भवति। शिरोरुहा वर्धन्ते, क्षीयन्ते च गर्भलोमानि। अत्र जातोऽपि प्रायः सविशेष परिपाल्यमान एव जीवति। वचनानि चात्र—

गर्भश्च मातृतो गर्भतश्च माता रसहारिणीभिः सवाहिनीभिर्मुहुर्मुहुरोजः परस्परत आददाते, गर्भस्यासम्पूर्णत्वात्। तस्मात्तदा गर्भिणी मुहुर्मुहुर्मुदा युक्ता भवति मुहुर्मुहुश्च म्लाना। तथा गर्भः। तस्मात्तदा गर्भस्य जन्म व्यापत्तिमद्भवति, ओजसोऽनवस्थितत्वात्। तञ्चैवार्थमभिसमीक्ष्याष्टमं मासमगण्यमित्याचक्षते कुशलाः।

—च० शा० ४।

अष्टमेऽस्थिरीभवत्योजः। तत्र जातश्चेन्न जीवेत् नीरोजस्त्वान्नैर्ऋतभागत्वाच्च। ततो बलिं मांसोदनमस्यै दापयेत्।

—सु० शा० ३।

अष्टमे गर्भश्च मातृतो गर्भतश्च माता रसहारिणीभिर्वाहिनीभिर्मुहुर्मुहुरोजः परस्परमाददाते। तस्मात्तदा गर्भिणी मुहुर्मुदिता भवति मुहुर्म्लाना तथा गर्भः। एवं गर्भस्य जन्म व्यापत्तिमत्तदा भवति, ओजसोऽनवस्थितत्वात्। तथा ह्यस्य निष्क्रमणोन्मुखस्य परिवर्त्तनादीन्यनुभवत एवौजसा वियोगः। यद्यपि च किञ्चित्कालमस्योच्छ्वसन स्यात्तच्छिन्नस्येवाङ्गस्यौजःसंस्कारानुवृत्तिकृतम्। जनन्यास्तु स्थिरौजस्कतयैकदेशेन रसे

सङ्क्रान्ते ग्लानिरेवेति। अन्ये पुनराहुः—नैर्ऋतभागत्वात्तत्र गर्भस्य मरणम्। तस्मात् प्रसवप्रतिषेधार्थं स्त्री स्नाता शुचिर्ब्रह्मचारिणी देवता-राधनपरा स्यात्। मासौदनबलिं चात्र निर्वपेत्।

—सङ्ग्रहशा० २।

ओजोऽष्टमे सञ्चरति मातापुत्रौ मुहु. क्रमात्।
तेन तौ म्लानमुदितौ तत्र जातो न जीवति॥
शिशुरोजोऽनवस्थानान्नारी संशयिता भवेत्।

—वा० शा० १।

(९) नवमे मासि गर्भोऽष्टादशप्राङ्गुलदीर्घप्राय. शेटकद्वयभारो, नष्टप्रायलोमा, उल्बावृतसर्वशरीरश्च सञ्जायते। नखाश्च नाङ्गुल्यन्तं स्पृशन्ति। अत्र जातश्च प्रायो जीवति, कालप्रसवत्वात्।

(१०) दशमे मासि विंशतिप्राङ्गुलदीर्घ शेटकत्रयात् शेटकचतुष्टयं यावत् भारेण प्रमितो, विलुप्तलोमा, प्रचितोल्बो, द्व्यङ्गुलदीर्घशिरोरुहः साण्डवृषणोऽतिक्रान्तनखपीठभूमिनखश्च गर्भोऽभिजायते।

किन्नु खलु गर्भस्याङ्गं पूर्वमभिनिर्वर्त्तते कुक्षौ?

विप्रतिवादास्त्वत्र बहुविधा. सूत्रकारिणामृषीणां सन्ति तत्तदङ्गकार्य-विशेषस्य प्राधान्यख्यापनात्। तद्यथा—

(१) शिर पूर्वमभिनिर्वर्त्तते कुक्षाविति कुमारशिरा भरद्वाज पश्यति, सर्वेन्द्रियाणां तदधिष्ठानमिति कृत्वा।(च०)। गर्भस्य खलु सम्भवत. पूर्वं शिर सम्भवतीत्याह शौनक, शिरोमूलत्वात् प्रधानेन्द्रियाणाम् (सु०)।

(२) हृदयमिति काङ्कायनो वाल्हीकभिषक्, चेतनाधिष्ठानत्वात् (च०)। हृदयमिति कृतवीर्यो बुद्धेर्मनसश्च स्थानत्वात् (सु०)।

(३) नाभिरिति भद्रकाप्यः, आहारागम इति कृत्वा (च०)। नाभिरिति पाराशर्यः, ततो हि वर्धते देहो देहिनः (सु०)।

(४) हस्तपादमिति बडिशः, तत्करणत्वात् पुरुषस्य (च०)। पाणिपादमिति मार्कण्डेय., तन्मूलत्वाच्चेष्टाया गर्भस्य (सु०)

(५) मध्यशरीरमिति सुभूतिर्गौतमः, तन्निबद्धत्वात्सर्वगात्रसम्भवस्य (सु०)।

(६) पक्वाशयगुदमिति भद्रशौनकः, मारुताधिष्ठानत्वात् (च०)।

(७) इन्द्रियाणीति जनको वैदेहः, तान्यस्य बुद्ध्यधिष्ठानानीति कृत्वा (च०)।

(८) परोक्षत्वादचिन्त्यमिति मारीचिः कश्यपः (च०)।

अथ सिद्धान्त :—

सर्वाङ्गाभिनिर्वृत्तिर्युगपदिति धन्वन्तरिः। तदुपपन्नम्, सिद्धत्वात् (सर्वाङ्गाना तुल्यकालाभिनिर्वृत्तत्वाद् हृदयादीनाम्)। सर्वाङ्गाना ह्यस्य हृदयं मूलम्, अधिष्ठानञ्च केषाञ्चिद् भावानाम्, न च तस्मात् पूर्वाभिनिर्वृत्तिरेषाम्। तस्माद् हृदयप्रभृतीनां सर्वाङ्गाना तुल्यकालाभिनिर्वृत्तिः। सर्वभावा ह्यन्योन्यप्रतिबद्धाः। तस्माद् यथाभूतदर्शनं साधु।*

—च० शा० ६।

---

* मूलमिव मूलं, तदुपघातेन सर्वाङ्गोपघाताद्। अधिष्ठानमित्याश्रयः। तत्रौज प्रभृतीनामधिष्ठान हृदय भवति। न च तस्मात्पूर्वाभिनिर्वृत्तिरिति। न च तथाविधमूलत्वान्नाप्यधिष्ठानत्वाच्च पूर्वाभिनिर्वृत्तिर्भवति। यदि मूल कारणमिति मत स्यात्तदा कार्येभ्योऽङ्गेभ्यः प्राग् हृदयं स्यादपि, नचेहाङ्गाना हृदय कारण किन्तु प्रधानम्। प्राधान्यञ्च तदुपघातेन सर्वोपघातादिति श्चाप्याश्रयाश्रयिभाव स चापि सहोत्पन्नत्वादेव हृदयमाश्रयि तदाश्रितौजःप्रभृतीना भवतीति भावः। तदेव चेद् हृदयस्य प्रधानस्यापि पूर्वोत्पादो नास्ति तदा शिरःप्रभृतीनामपि पूर्वोत्पादो नास्त्येवेतीह चक्रपाणिः।

सर्वाण्यङ्गप्रत्यङ्गानि युगपत् सम्भवन्तीत्याह धन्वन्तरिः, गर्भस्य सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यन्ते वंशाङ्कुरवदाम्रफलवच्च । तद्यथा, आम्रफले परिपक्वे केशरमांसास्थिमज्जानः पृथक् पृथक् दृश्यन्ते, कालप्रकर्षात्, तान्येव तरुणे नोपलभ्यन्ते, सूक्ष्मत्वात्, तेषां सूक्ष्माणां केशरादीनां कालः प्रव्यक्ततां करोति; एतेनैव वंशाङ्कुरोऽपि व्याख्यातः । एवं गर्भस्य तारुण्ये सर्वेष्वङ्गप्रत्यङ्गेषु सत्स्वपि सौक्ष्म्यादनुपलब्धिः, तान्येव कालप्रकर्षात् प्रव्यक्तानि भवन्ति ।

—सु० शा० ३ ।

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातः प्रगल्भगर्भव्याकरणविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

दशमास गर्भवास इति व्यतीते दशमे मासि गर्भस्य प्रागल्भ्यम् । प्रगल्भस्तु गर्भो विलुप्तलोमा (ग्रीवांसपृष्ठदेशेषु तदवशेषास्तु कदाचिल्लभ्यन्ते), उल्वावृतः (प्रायेणोल्व साकल्येनांशतो वा गर्भशरीरमावृणोति, न चापि लभ्यते कदाचित्), साण्डवृषणो, द्व्यङ्गुलप्रायकेशः, पूर्णनखो, विंशतिप्राङ्गुलदीर्घ, त्रिचतुश्शेटकभारश्च भवति । न्यूनशेटकत्रयभारस्तु हीनप्राणशक्तिको भवत्यन्यत्र यमलगर्भात् । इमे चात्र प्रगल्भगर्भस्य प्रसवज्ञानार्थकरा अङ्गसंस्थानादिविशेषा भवन्ति—

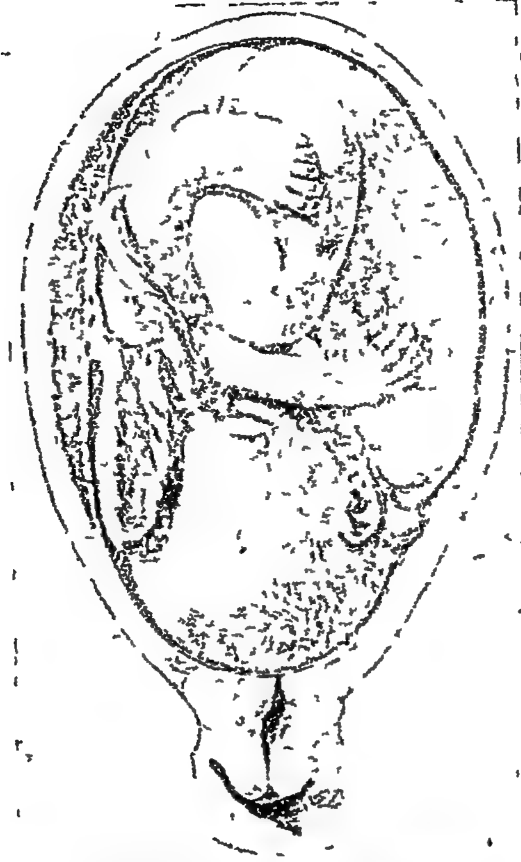
गर्भकरोटिः—करोटिर्नाम सकलशिरोऽस्थ्ना सङ्घातः । सा च निष्क्रमतो गर्भस्य बृहत्तमत्वात् कठिनतमत्वाच्च प्रधानमङ्गम् । तस्मात् गर्भनिष्क्रमणविधिविज्ञानार्थं तद्विशेषानेवादौ वक्ष्याम । करोटेर्हि शिरःसम्पुटम्, मुखमण्डलञ्चेति प्रदेशद्वय भवति । शिरःसम्पुटस्य च पुनरपि करोटिपटलम्, करोटिभूमिरिति च द्वेधा प्रविभागः । तत्र करोटिपटलं नाम अलाव्वर्धसदृशस्य शिरःसम्पुटस्य छदिर्भूतो भागो मृदुसंहतः, करोटिभूमिस्तु शिरःसम्पुटस्य तलदेशो दृढसंहत उच्चावचश्च । शिरःसम्पुटन्तु पुरःकपालम्, पश्चात्कपालम्, द्वे पार्श्वकपाले, द्वे शङ्खास्थिनो, जतूका, झर्झरकञ्चेत्यष्टाभिरस्थिभिर्निर्मीयते ।

गर्भकरोटौ च लक्षणीयाः षट् सीमन्ताः, षट् चैव सीमन्तसन्धयः, त्रयः प्रदेशाः, नव व्यासाः, चत्वारश्च परिधयः ।

प्रगल्भगर्भः Full-term foetus गर्भकरोटिः Foetal Skull शिरःसम्पुटम् Cranium मुखमण्डलम् Face करोटिपटलम् Vault करोटिभूमिः Base

[३५ चित्रम्]

प्रगल्भगर्भः ।



अत्र गर्भाशये भुग्नीभूतः प्रगल्भगर्भो दर्शित ।

सीमन्ता —पुर सीमन्तः, पश्चिमसीमन्त , मध्यसीमन्त , गूढसीमन्तिका, पार्श्वसीमन्तौ चेति षट् सीमन्ताः। तत्र पुर सीमन्तो नाम पुर कपालस्य पार्श्वकपालाभ्या सन्धानरेखा पुरतोऽनुप्रस्थम-

सीमन्ता. Sutures पुरःसीमन्तः Coronal or Fronto-parietal Suture

वस्थिता। पश्चिमसीमन्तः पुनस्तथैव पश्चिमतोऽवस्थिता पश्चिम-कपालस्य पार्श्वकपालाभ्या सन्धानरेखा। मध्यसीमन्तस्तावत् पार्श्व-कपालयोः परस्परसन्धिरेखा मध्येऽनुदैर्घ्यमवस्थिता। गूढसीमन्तिका तु पुरःकपालमध्यस्था सूक्ष्मसीमन्तरेखा, प्रायेण बाल्य एव दृश्या। पार्श्वसीमन्तौ च नाम करोटिपटलस्य पार्श्वस्थे सन्धिरेखे पुरः-पार्श्व-शङ्खाख्यकपालाना सन्धानाङ्गभूते।

सीमन्तसन्धय.—षट्स्वपि सीमन्तसन्धिषु द्वावेव सीमन्तसन्धी विशे-षेण लक्षणीयौ प्राधान्यात्। तत्रैकः पुरो-मध्य-गूढसीमन्तानां सन्धिस्थले चतुष्पथमिव स्थितः, चतुरस्रप्रायो, बृहत्तम., तालुप्रदेशगतश्च। ब्रह्मरन्ध्रं ब्रह्मतालुकं वेति तन्नामनी। सविशेषकोमलत्वाच्च स्तनन्धयशिशूनामत्र मस्तिष्कानुगधमनीकृत स्पन्दन दृश्यते। अपरस्तु मध्यपश्चिमसीमन्तयोः सन्धिस्थलभूत., त्रिकोणप्राय., त्रिपथमिव स्थित. शिवरन्ध्रम् अधिपतिरन्ध्रं वेति प्रसिद्धः। शेषास्तु पुरःपार्श्वसीमन्तयो. पश्चिमपार्श्वसीमन्त-योश्च (उभयत: पार्श्वे) सन्धिस्थलेषु स्थिता विषमाकृतिरन्ध्ररूपा यथाक्रमं शङ्खरन्ध्रौ कर्णमूलरन्ध्रौ च संज्ञायन्ते।

प्रदेशाः—वर्णनासौकर्याय करोटिपटलस्य त्रेधा प्रविभाग. क्रियते ललाटम्, शीर्षम्, अनुशीर्षञ्चेति। तत्र ललाटं नाम भ्रुवोरुपरितनो

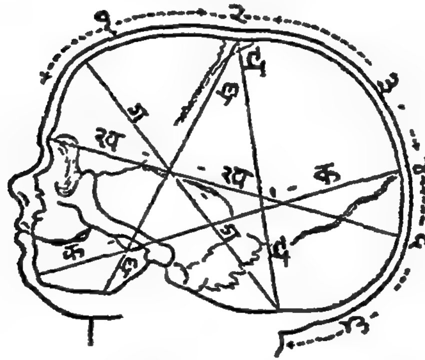
पश्चिमसीमन्त Lambdoid or Occipito parietal Suture मध्य-सीमन्तः Sagittal or Interparietal Suture गूढसीमन्तिका Frontal Suture पार्श्वसीमन्तौ Two Squamous, Temporal or Temporo-parietal Sutures सीमन्तसन्धय. Fontanelles, ब्रह्मरन्ध्रम् Anterior fontanelle or Bregma शिवरन्ध्रम् Posterier fontanelle or Lambda शङ्खरन्ध्रौ Antero-lateral or Temporal fontanelles कर्णमूलरन्ध्रौ Postero-lateral or Mastoid fontanelles प्रदेशा. Regions ललाटम् Sinciput or Brow

भाग पुरःसीमन्तसीमित । शीर्ष तु पुरः-पार्श्व-पश्चिमसीमन्ताना मध्यपतितो देशः। अनुशीर्ष पुनः पश्चिमसीमन्तादधस्तनो भागः। भ्रुवोरधस्तात्तु मुखमण्डलम्।

स्मर्त्तव्यश्चात्र—करोटिपटल हि सीमन्तानां कलामयत्वात्, सीमन्त-सन्धीना रन्ध्रमयत्वात्, अस्थिकपालाना मार्दवाच्च पीडनार्ह भवति। अत एव प्रसवकालेऽपत्यपथान्निर्गच्छतस्तस्य मार्गानुकूलत्वम्। करोटि-भूमेर्मुखमण्डलस्य च दृढसहतत्वान्न पीडनार्हता न चापि मार्गानुकूलता। अथ च गर्भकरोटिर्वृत्तपाद यावत् (क्वचित् सति प्रयोजने वृत्तार्थं यावदपि) विवर्त्तनक्षमाऽतिशयेन प्रसरणसामर्थ्या च दृष्टा। तेनापि निष्क्रमणकाले भवत्यानुकूल्यम्, न च काचन क्षतिरस्या उपजायते।

[३६ चित्रम्]

गर्भकरोटे प्रदेशा व्यासाश्च।



१—ललाटम्। २—ब्रह्मरन्ध्रम्। ३—शीर्षम्। ४—शिवरन्ध्रम्। ५—पश्चिमार्बुदम्। ६—अनुशीर्षम्। घ, घ—ग्रैवब्रह्मरन्ध्रिको व्यास। क, क—अनुशीर्षचैबुक। ग, ग—अनुशीर्षाधरलालाटिक.। च, च—अनुशीर्षाधरब्रह्मरन्ध्रिक•। ख, ख—अनुशीर्षनासामूलिकः। ललाटचैबुकोऽनुशीर्षोत्तरचैबुकश्च व्यासौ चित्रेऽस्मिन् न प्रदर्शितौ।

शीर्षम् Vertex अनुशीर्षम् Occiput

करोटिव्यासा:—करोटेराकृतिप्रमाणविज्ञानार्थं तस्या एव तत्त-त्स्थिरविन्दुतस्तत्तत्स्थिरविन्दु यावत् या रेखाः कल्प्यन्ते ता एव 'करोटि-व्यास'पदभाजो भवन्ति । (३६ तम ३७ तम च चित्रम्) तद्यथा—

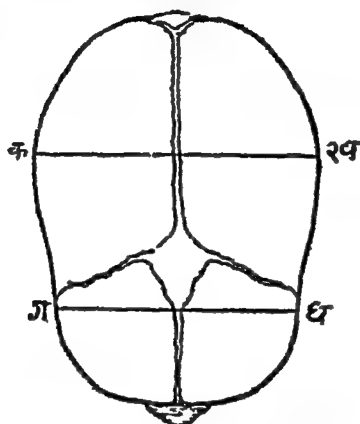
व्यासनामानि ।	स्थिरविन्दवः ।	व्यासमानानि ।
(१) ग्रैवब्रह्मरन्ध्रिकः ।	ग्रीवाचिवुकसन्धितो ब्रह्मरन्ध्र यावत् ।	३ ३/४″
(२) ललाटचैबुक ।	चिवुकाग्रतो ललाटफलकस्य उन्नतभाग यावत् ।	३ १/४″
(३) अनुशीर्षोत्तरचैवुक ।	चिवुकाग्रता मध्यसीमन्तस्य दविष्ठस्थल यावत् ।	५ १/२″
(४) अनुशीर्षचैवुक ।	चिवुकाग्रतः शिवरन्ध्रं यावत् ।	५″
(५) अनुशीर्षाधरलालाटिक ।	पश्चिमशिरोग्रीवसन्धितो ललाटोत्सेधं यावत् ।	४″
(६) अनुशीर्षाधरब्रह्मरन्ध्रिक ।	पश्चिमशिरोग्रीवसन्धितो ब्रह्मरन्ध्र यावत् ।	३ ३/४″
(७) अनुशीर्षनासामूलिकः ।	नासामूलतः शिवरन्ध्र पश्चिमार्वुदं वा यावत् ।	४ १/२″
(८) पार्श्वकापालिक ।	पार्श्वकुम्भयोरन्तराल: ।	३ ३/४″
(९) शङ्खयौग्मिकः ।	पूर्वसीमन्ताधरप्रान्तयोरन्तरालः ।	३ १/४″

---

(१) Cervico-bregmatic or Submento-bregmatic (२) Fronto-mental (३) Supra-occipito mental (Maximum diameter of Budin) (४) Occipito-mental or Vertico-mental (५ Sub-occipito-frontal (६) Sub-occipito-bregmatic (७) Occipito-frontal (८) Bi parietal (९) Bi-temporal

[३७ चित्रम्]

गर्भकरोटेरनुप्रस्थव्यासद्वयम् ।



क, ख—पार्श्वकापालिकः । ग, घ—शङ्खयौग्मिक । चित्रेऽस्मिन् मध्यसीमन्त , पूर्वसीमन्तो, गूढसीमन्तिका सीमन्तानाञ्चैषा सन्निस्थले चतुष्पथमिव स्थित ब्रह्मतालुकञ्चापि यथास्थान प्रदर्शितम् ।

करोटिपरिधय—परिधिर्मण्डल परिणाहो वा, स च तत्तद्व्यासानुकारितयाऽनेकविधः । इह तु चत्वार एव प्राधान्यादुपवर्ण्यन्ते । तद्यथा—

(क) अनुशीर्षाधरब्रह्मरन्ध्रिको नाम परिधि· स्वनामिकव्यासमनुक्रामन् एकादशप्राङ्गुलमानो भवति । ह्स्वतमश्चाय परिधि शीर्षोदये श्रोणिकण्ठिका रेखामतिक्रामति । अनुशीर्षाधरब्रह्मरन्ध्रिकः पार्श्वकापालिकश्चास्य दीर्घतमौ व्यासौ ।

(ख) अनुशीर्षनासामूलिको नाम परिधि· स्वसञ्ज्ञकव्यास परिक्रामन् सार्धत्रयोदशप्राङ्गुलमानो भवति । अस्य च ब्रह्मरन्ध्रोदये श्रोण्यामवतरणम् । अनुशीर्षनासामूलिक· पार्श्वकापालिकश्चास्य दीर्घतमौ व्यासौ भवत ।

करोटिपरिधय. Circumferences of the skull

(ग) अनुशीर्षोत्तरचैबुकस्तु परिधिः स्वनामिकव्यासानुकारी १४$\frac{3}{5}$ प्राङ्गुलमानश्च । दीर्घतमश्चायं परिधिर्ललाटोदये श्रोण्यामवतरति । अनुशीर्षोत्तरचैबुकः पार्श्वकापालिकश्चास्य सुदीर्घौ व्यासौ ।

(घ) ग्रैवब्रह्मरन्ध्रिकश्च परिधिः स्वसंज्ञकव्यास परिवेष्टयन् १२$\frac{4}{5}$ प्राङ्गुलप्रमाणो भवति । मुखोदये चास्य श्रोण्यामवतरणम् । पार्श्वकापालिकग्रैवब्रह्मरन्ध्रिकौ त्वस्य दीर्घतमौ व्यासौ ।

कुतो मुखः कथञ्चान्तर्गतस्तिष्ठति ?

गर्भाङ्गसंस्थितिः—गर्भाङ्गसस्थितिर्नाम षडङ्गस्य गर्भस्य तत्तदङ्गाना परस्परापेक्षोऽवस्थानविशेषः । सा चेह प्रायेण भुग्नीभावरूपा वर्धमान कायमानस्यापि गर्भस्य स्वल्पतने गर्भाशयावकाशे सुखसन्धारणार्थकरी प्रसिद्धा । तथा च गर्भः पृष्ठ पूर्वतोऽवनम्य, शाखाश्च तत्तत्सन्धिस्थलेष्वाकुञ्च्य, पूर्णावनतशिराः सङ्कुचिताङ्गो वर्त्तत इति प्रकृतिः । अतोऽन्यथाभावे तु कष्टप्रसूतिरिति तत्तदुदयविशेषव्याख्यानेन स्पष्ट भविष्यति । (३८ चित्रम्) ।

आहुश्च प्राञ्चः—

(१) आभुग्नोऽभिमुखः शेते गर्भो गर्भाशये स्त्रियः । —सु० शा० ५ ।

(२) गर्भस्तु मातुः पृष्ठाभिमुख ऊर्ध्वशिराः सङ्कुच्याङ्गान्यास्तेऽन्तःकुक्षौ । —च० शा० ६ ।

(३) गर्भस्तु खलु मातु. पृष्ठाभिमुखो ललाटे कृताञ्जलिः सङ्कुचिताङ्गो गर्भकोष्ठे दक्षिणपार्श्वमाश्रित्यावतिष्ठते पुमान्, वाम स्त्री, मध्य नपुसकम् ।

—सङ्ग्रहशा० २ ।

(४) कथ गर्भो मातुरुदरे तिष्ठतीति ? ऊर्ध्वमिति शौनकः । अवाक्शिरा इति भरद्वाजः । नेत्याह भगवान् पुनर्वसुरात्रेय. । यदूर्ध्व तिष्ठेत्

गर्भाङ्गसस्थिति Attitude or Posture

तर्हि मातृमानिर न्यात् । यद्यत्राकुक्षिगस्तदा स्वमाविर स्यात् । कथं तर्हि ! तिर्यक् मवेरचमङ्गम्न्यङ्ग्‌ प्रतिमुग्न शेते । —भेलसंहिता ।

[३८ चित्रम्]

गर्भाङ्गसंस्थिति ।



यथा हि गर्भो गर्भाशये सङ्कुच्याङ्गान्यास्ते तथाऽत्र निदर्शित ।

गर्भावस्थिति —गर्भावस्थितिर्नाम गर्भस्य दीर्घाक्षरेखाया गर्भाशयस्य चानुलम्बाक्षरेखाया परस्परापेक्षमवस्थानम् । अनुलम्बानुप्रस्थतिर्यग्भावा-

---

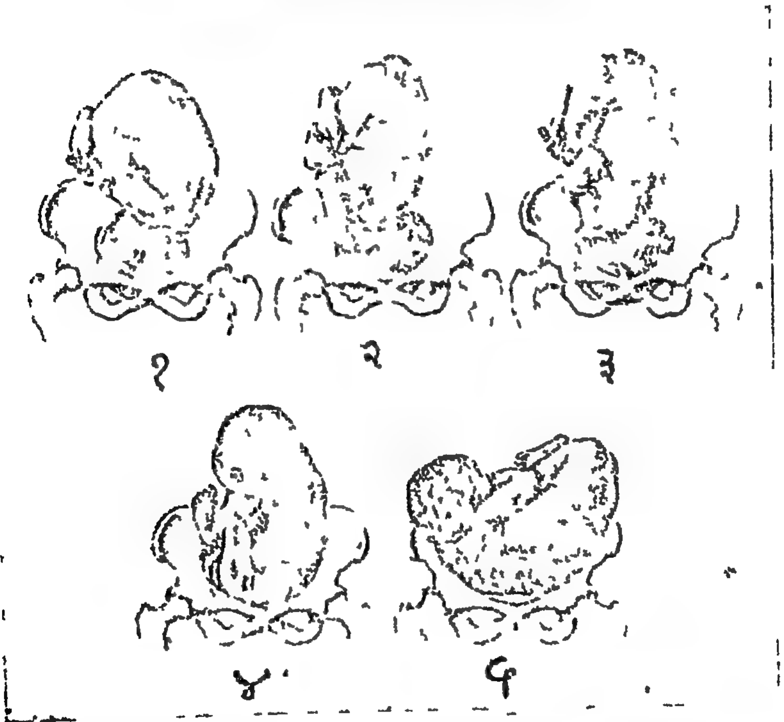
गर्भावस्थिति Lie दीर्घाक्षरेखा Long axis अनुलम्बाक्षरेखा Vertical axis

नामन्यतमेनावस्थानाच्च त्रिविधसंस्थाना गर्भावस्थितिः । तत्रानुलम्बभावे शिरोऽवतरणं श्रोण्यवतरणं वा, अनुप्रस्थतिर्यग्भावे तु पार्श्वावतरणं भवतीत्यवधेयम् ।

गर्भावतरणम्—[गर्भावतरणं नाम गर्भाङ्गविशेषस्य योनिमुखात् प्राक् प्रतिपत्तुकामस्य गर्भाशयद्वारे सान्निध्यभावनावस्थानम् ।] तत्राङ्गविशेष

[३६ चित्रम्]

गर्भावतरणानि विभिन्नोदयाश्च ।



१—शिरोवतरणे शीर्षोदय । २—शिरोऽवतरणे मुखोदय ।
३—शिरोऽवतरणे ललाटोदयः । ४—श्रोण्यवतरणम् ।
५—पार्श्वावतरणम् ।

गर्भावतरणम् Presentation

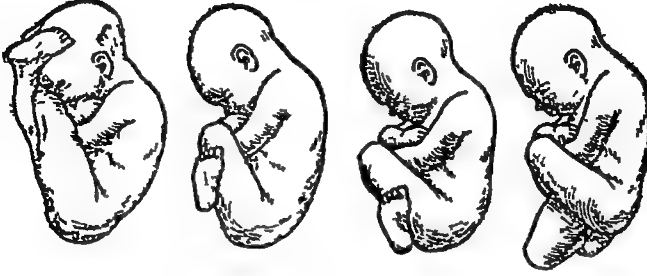
मधिकृत्य त्रिविध प्रविभागोऽस्य क्रियतेऽनेकधा च प्रत्यङ्गोपाङ्गविशेषम् । अयमाशय.—शिरोऽवतरण, श्रोण्यवतरण, पार्श्वावतरणञ्चेति अङ्गविशेषकृतम् अवतरणत्रयं भवति । अवतरणकाले च एषामङ्गाना सङ्कोच-प्रसाराद्यवस्थाभेदेन तानि तानि प्रत्यङ्गोपाङ्गानि अग्रतः प्रतिपद्यमानानि उपयाल्यॉंस्तॉंस्तानवान्तरभेदान् जनयन्तीति (३९ तमं ४० तमं च चित्रम्) । तद्यथा—

शिरोऽवतरणम् ९६ %	शीर्षोदयः ९५५ %
	ललाटोदय. ०·१ %
	मुखोदयः ०४ %
श्रोण्यवतरणम् ३ ५ %	स्फिक्पादोदयः
	स्फिगुदय.
	जानूदय
	पादोदय
पार्श्वावतरणम् ० ५ %	स्कन्धोदयः
	कूर्परोदय.
	हस्तोदयः

शिरोऽवतरणम् Head or Cephalic presentation श्रोण्यवतरणम् Breech or Pelvic presentation पार्श्वावतरणम् Transverse presentation शीर्षोदयः Vertex presentation ललाटोदय. Brow presentation मुखोदय Face presentation स्फिक्पादोदय Complete or full Breech presentation स्फिगुदय Incomplete or frank breech presentation जानूदयः Knee presentation पादोदय· foot or footling presentation स्कन्धोदय Shoulder presentation कूर्परोदय. Elbow presentation हस्तोदय Hand presentation

[४० चित्रम्]

श्रोण्यवतरणस्य विभिन्नोदयाः ।



चित्रेऽस्मिन् वामदक्षिणक्रमेण स्फिगुदय, स्फिग्पादोदयः, पादोदयौ, जानूदयश्च प्रदर्शिता. ।

तत्र शिरोऽवतरणमवतरणाना शीर्षोदयश्चोदयाना प्रधानत्वेन प्राकृतत्वेन च परिगण्यते, बाहुल्यदर्शनात् निरुपद्रवप्रसवत्वाच्च। प्रतिशतसंख्यानन्त्वेषामुपरि तत्रैवाङ्कनिर्देशनेनोट्टङ्कितम्।

कुतोऽथ शिरोऽवतरणबाहुल्यमित्यत्र हेतुद्वयमाचक्षन्ते प्रसूतिविद.— शिरोऽस्य गुरुतरम्, अतोऽर्वाक्शिरा. प्रतिपद्यत इत्येकः। गर्भाशयस्य विपुलायतने ऊर्ध्वदेशे पृथुतमा गर्भश्रोणि, स्वल्पायतनेऽधस्तनदेशे च हीनायतनं गर्भशिरोऽनुकूलतया स्वभावत. सन्तिष्ठत इत्यन्यः। (४१ चित्रम्)।

प्राञ्चोऽप्याहु —

(१) तस्य यदुत्तरं तत् प्रथमं प्रतिपद्यते। तस्मात्तस्य शिर प्रथम पुनर्वसुरात्रेय. प्रतिपद्यते, तदस्य गुरुतरं भवतीति।

—भेलसंहिता ।

(२) स योनिं शिरसा याति स्वभावात् प्रसव प्रति।

—सु० शा० ५।

[४१ चित्रम्]

गर्भस्य गर्भाशयानुकूलता ।



अत्र गर्भश्रोणिशिरसोर्गर्भाशये यथानुकूलावकाश स्वाभाविकस्थितिः प्रदर्शिता ।

(३) स चोपस्थितकाले जन्मनि प्रसूतिमारुतयोगात् परिवृत्यावाक्-शिरा निष्क्रामत्यपत्यपथेन, एषा प्रकृतिर्विकृति पुनरतोऽन्यथा ।

—च० शा० ६ ।

गर्भासनानि—गर्भासनानि नाम तथावस्थितस्य गर्भस्य यथावतरणं यथोदयं वाऽवयवविशेषमधिकृत्य मातुः श्रोण्या खण्डचतुष्टयेन सह सम्बन्धख्यापकानि गर्भाधिशयनविशेषरूपाणि । स्त्रीश्रोणिर्हि पूर्वापरभेदेन वामदक्षिणभेदेन च चतुर्षु समानखण्डेषु विभज्यते । वामपूर्वम्, दक्षिणपूर्वम्, दक्षिणपश्चिमम्, वामपश्चिमञ्चेति च खण्डनामक्रमः । अवयवविशेषस्य यथाखण्डक्रमावस्थानेन च गर्भासनानामपि प्रथमासनम्, द्वितीयासनम्, तृतीयासनम्, चतुर्थासनमिति चत्वारो भेदा भवन्ति । अवयवावधारणे तु शीर्षोदयेऽनुशीर्षम्, मुखोदये चिबुकम्, श्रोण्यवतरणे त्रिकम्, पार्श्वावतरणे चासकूटमधिक्रियते । यथास्थलं चैषा व्याख्यानम् । इह तु केवलम् अनुशीर्षासनमात्रं निदर्शनतयोदाहरिष्यामः । तद्यथा—

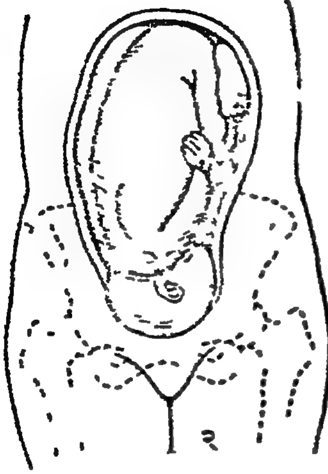
(१) वामपूर्वानुशीर्षासनम्ः—अत्र हि मातृपृष्ठाभिमुखस्य अवाक्शिरसश्च गर्भस्य मध्यसीमन्तः श्रोणिकण्ठस्य दक्षिणतिर्यग्व्यासम्, अनुशीर्षभागो वामश्रोणिगवाक्षम्, ललाटदेशश्च दक्षिणत्रिकजघनसन्धानमधितिष्ठति ।

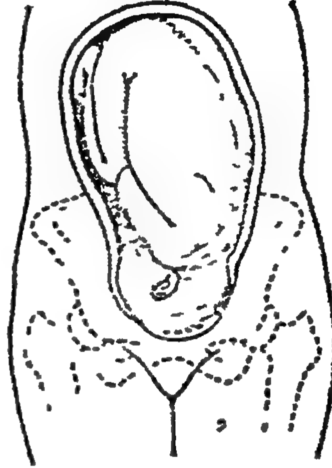
प्रायशश्च प्रथमासनस्यैव बाहुल्यं दृश्यते । यतो हि—(क) गर्भाशयगुहा उदरगुहानुकारा भवति, सा च पूर्वतः कोरोदरा पश्चिमतश्च कटिपृष्ठवशस्योत्सन्नत्वादुन्नतोदरा । गर्भस्तु मातृपृष्ठाभिमुखो विपरीताकारतया आनुकूल्यमनुभवन् स्वात्मानं तथावस्थानेन सङ्क्रमयति । (ख) स्त्रिया हि श्रोणिकण्ठस्य दक्षिणतिर्यग्व्यासो वामतिर्यग्व्यासादनुप्रस्थव्यासाच्च दीर्घतमः, यथाक्रमं तयोर्गुदनलिकावस्थानेन मांसपेश्यवस्थानेन च ह्रस्वीभावात् । तथा च गर्भशिरः स्वकीयं दीर्घतमं व्यासं दीर्घतमे दक्षिणतिर्यग्व्यासे सङ्क्रमय्य सुखमवतिष्ठत इति ।

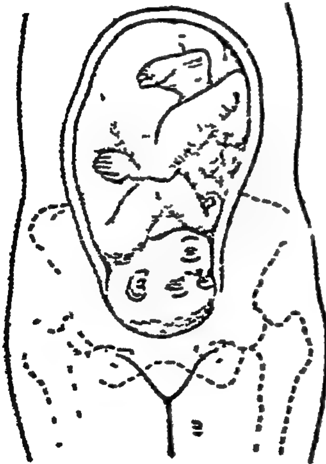
गर्भासनानि Positions अनुशीर्षम् Occiput चिबुकम् Mentum त्रिकम् Sacrum असकूटम् Acromion. (१) Left occipito-anterior or L O A

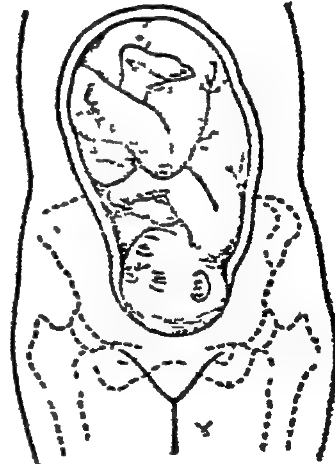
[४२ चित्रम्]

शीर्षोदये गर्भासनचतुष्टयम्।









१—वामपूर्वानुशीर्षासनम्। २—दक्षिणपूर्वानुशीर्षासनम्।
३—दक्षिणपश्चिमानुशीर्षासनम्। ४—वामपश्चिमानुशीर्षासनम्।

(२) दक्षिणपूर्वानुशीर्षासनम् :—अत्र च मातृपृष्ठाभिमुखस्य अवाक्शिरसश्च गर्भस्य मध्यसीमन्त श्रोणिकण्ठस्य वामतिर्यग्व्यासम्, अनुशीर्षभागो दक्षिणश्रोणिगवाक्षम्, ललाटश्च वामत्रिकजघनसन्धान-मधिशेते ।

(३) दक्षिणपश्चिमानुशीर्षासनम् :—इह खलु मातुरुदराभि-मुखस्यावाक्शिरोगर्भस्य मध्यसीमन्तः श्रोणिकण्ठस्य दक्षिणतिर्यग्व्यासम्, अनुशीर्षदेशो दक्षिणत्रिकजघनसन्धानम्, ललाटभागश्च वामश्रोणिगवाक्ष-मधितिष्ठति ।

(४) वामपश्चिमानुशीर्षासनम् '—अत्र तु निम्नशिरसो मातु-रुदराभिमुखस्य च गर्भस्य मध्यसीमन्त. श्रोणिकण्ठस्य वामतिर्यग्व्यासम्, अनुशीर्षभागो वामत्रिकजघनसन्धानम्, ललाटदेशश्च दक्षिणश्रोणि-गवाक्षमाश्रयत इति ।

प्रतिशतसङ्ख्यान त्वेषा यथाक्रमं ७० %, ८ %, २० %, २ % चेति विदाङ्कुर्व्वन्तु ।

---

(२) Right Occipito anterior or R O A

(३) Right Occipito-posterior or R O P

(४) Left Occipito-posterior or L O P

अथ गर्भिणीखण्डम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातो गर्भिणीवैलक्षण्यविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

गर्भाधानात् प्रभृति धृतगर्भायाः स्त्रियाः शरीरे यद् यद् वैलक्षण्यमभिजायते तदस्ति विज्ञेयमित्यध्यायोपक्रमः । जननाङ्गान्येव च परिवर्त्तनाना प्रधानभूमिः । तत्र केचन विशेषा अङ्गाना रक्तातिसञ्चारमूलाः, केचन च परिवर्धमानगर्भाशयकृतपीडनजन्या, अपरे हि संवर्धमानगर्भस्य पोषणकार्यनिमित्ता, इतरे तु केवलं मातु प्रकृतिसक्षोभनिदाना भवन्ति । तद्यथा—

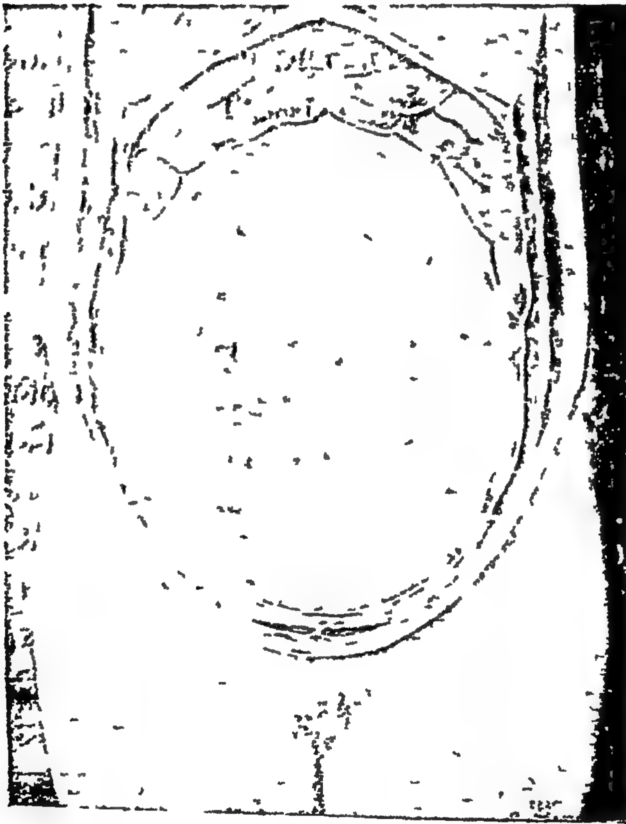
गर्भाशय—वर्द्धिष्णुगर्भस्य सन्धारणाय गर्भाशयोऽपि यथागर्भमभिवर्धते । तेनैव च गुर्विण्या उदरवृद्धिः । "गर्भो जठराभिवृद्धिम्" इति सुश्रुतः (सू० १५)। सोऽय व्यतीते गर्भवासकाले प्रायेण द्वादशादिचतुर्दशान्तप्राङ्गुलदीर्घः सार्धनवप्राङ्गुलप्रस्थोऽष्टादिनवान्तप्राङ्गुलवेधश्च सञ्जायते पादोनशेटकादिसार्धशेटकान्तभारः । धारणक्षमता चास्य सार्धशतद्वयात् शतत्रयं यावत् घनप्राङ्गुलप्रमाणाऽभिमता ।

कार्ये चास्मिन् गर्भाशयस्य तिस्रोऽपि प्राचीरिकाः परिवर्त्तन्ते । तत्र श्लैष्मिकवृतिर्यथा गर्भधरकलाया परिणमति, तदुक्त प्राक् । पेशीसूत्राणा कायमानवर्धनात् नूतनपेशीसूत्राणाञ्चाविर्भावात् पैशिकवृतेर्विशेषेण स्थूलतापाद. । तत्रादौ समग्रगर्भाशयस्य मांसधातुर्वर्धते । तृतीयमासात्परं तु केवलं गात्रस्कन्धयोरेव वृद्धिर्न तु ग्रीवायाः । अपरानिर्माणस्थले तु सर्वतोऽधिका पृथुता दृष्टा । अथ चारम्भिकमासेषु मांसधातुर्भृशमुपचितिं गच्छति'। तेन च गर्भाशयस्य कायमानवर्धनेऽपि न तत्स्थूलताया प्रमाणहानिः । तदा गर्भापेक्षया गर्भशय्यैव शीघ्रतरं वर्धते । उत्तरमासेषु

तु गर्भवृद्धिना गर्भाशयवृद्धेरभिभवात् गर्भाशयः स्फीतिकृत्वा तनुतामेवोपग-च्छति। अत एव व्यतीते गर्भकाले प्राङ्गुलार्धान् किञ्चिन्न्यूनैव तत्स्थू-

[४२ चित्रम्]

पूर्णप्रवृद्धो गर्भाशयः।



(पूर्वतो दृष्टः)

लता दृष्टा। किञ्च, संयोजकतन्तुराशेरपि वर्धनात् पैशिकवृत्तेस्त्रिधा स्तर-विभागोऽपि गर्भिण्याः स्फुटं प्रतीयते। तत्र मध्यस्तरस्य पेशीसूत्राणि

सन्दंशानुकारेण सिराधमनोः परितः संवेष्ट्य तिष्ठन्ति दृढं पीडयन्ति च ताः सङ्कोचकाले गर्भाशयस्य । तथा च प्रकृत्यैव प्रसवोत्तरभाविन्या रक्तस्रुतेरवरोधः ।

परिवेष्टिकवृतिरपि च स्तोकं स्थूलतामुपयाति । अत्र च कदाचित् किक्किसानीव विदरणरेखा दृश्यन्ते । गुर्विण्या गर्भाशयनाडीसिराधमनी-रसायनीनामपि विशेषेणायतनवृद्धिर्दृष्टा । श्रूयते हि प्रवनाडीगण्डे द्विगुणायतने भवत इति ।

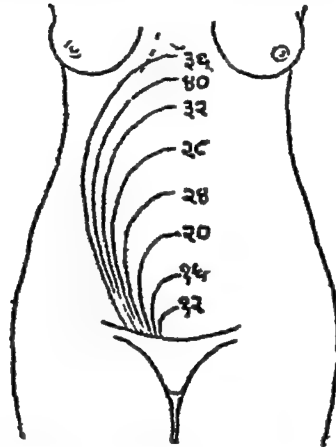
किञ्च, आद्यमासत्रये विवृद्धकायमानभारो गर्भाशयो गोलकाकृति-र्भवति, निमज्जति च स्तोकेन श्रोणिगुहायाम् । अत एव तदा गर्भिण्या वस्तिशीर्षं (भगसन्धानिकाया उपरिष्टात् स्थितो वस्तिदेशः) निम्नी-भूतमिव सलक्ष्यते, मूत्राशयगुदनलिकयोः प्रपीडनात् मुहुर्मुहुर्मूत्रणादि-सम्पीडनलक्षणानि च प्रादुर्भवन्ति । चतुर्थे तु मासे गर्भाशयस्कन्धः श्रोणिकण्ठिकां रेखामधिकुरुते, उत्तरोत्तरं च तत. पर मातुरुदरे उपर्यु-पर्य्येव गच्छति । एवमुद्गच्छँश्च गर्भाशयः प्रायेण क्षुद्रान्त्राणि वामत ऊर्ध्वञ्च प्रक्षिपति, स्वय च किञ्चिद् दक्षिणतोऽपसृत स्वाक्षे विवर्त्तते । तथाविवृत्तस्य च वामधारा उदरपूर्वभित्ति दक्षिणधारा च दक्षिणवृक्क-मारोहिबृहदन्त्र च स्पृशत. । गर्भाशयस्य मध्यमस्थितिर्वामतोऽपसरणं वा क्वचिदेव दृष्टम् । षष्ठमासात्पर तु गोलकाकृतिर्गर्भाशयोऽण्डाकृतौ परिवर्त्तते । न च गर्भाशयस्याकृतिनिर्माणे पारिपार्श्विकाङ्गानां सम्पर्ककृतः प्रभावो दृश्यते, गर्भाशये मन्दमन्दसङ्कोचलहरीणां सततसमुत्थानेन तत्प्र-भावविलुम्पनात् ।

अयन्तु तावत् वर्धमानगर्भाशयस्य मासिकसीमनिर्देशः—प्रायिकश्चाय, गर्भस्य कायमानभेदात् गर्भोदकस्य परिमाणभेदात् औदर्यपेशीनां दृढशिथि-लाद्यवस्थाभेदाच्च सीमभेदसम्भवात् । उदरस्पर्शेन मापनयन्त्रेण च गर्भाशयसीमानं विज्ञाय गर्भकालः स्थूलतो विनिर्णीयते । भगसन्धानि-कातो गर्भाशयस्योर्ध्वधारा यावत् यवकेषु यन्मानमायाति तस्य सार्धत्रि-

भिर्विभजनेन गर्भकालस्य मासिककाल प्राप्यते। तत्र द्वितीये मासि नारङ्गाकृतिर्गर्भाशयः श्रोणिसीमानं नातिक्रामति, अतः स्पर्शाऽविषयः। तृतीये प्रगल्भगर्भशिरोमानो भवति, ऊर्ध्वधारा चास्य भगसन्धानिकाया उपरिष्टात् स्पर्शनवेद्या। चतुर्थे भगसन्धानिकाया उपरि चतुःप्राङ्गुलं नाभिसन्धानिकयोर्मध्यं वा यावत् प्रसरति। पञ्चमे नाभेद्व्य-

[४४ चित्रम्]

वर्धमानगर्भाशयस्य सीमनिर्देश ।



चित्रेऽस्मिन् सीमानिर्देश. सप्ताहक्रमेण कृत इत्यवधेयम्। अथ च मासशब्दोऽपि सर्वत्र चान्द्रमासपरक एव विज्ञेयो न तु सौरमासपरः।

ङ्गुलमधस्ताद्वर्तते। षष्ठे नाभिशीर्षमधितिष्ठति। सप्तमे नाभितस्त्र्य-ङ्गुलमूर्ध्वं प्रवर्तते।'।अष्टमे नाभ्यग्रपत्रयोर्मध्यमधिकुरुते। नवमे अग्रपत्र यावत् प्रगतो भवति। दशमे तु निम्नत किञ्चन निपत्य (उत्थिताया एव न तु शयानाया.) अष्टममासोक्तसीमानमधितिष्ठति। कुक्षेरवस्रंसनाद्देच च आसन्नप्रसवायाऽधोभागस्य गौरव विमुक्तबन्धनत्वमिव च वक्षसोऽनुभू-

यते* । पञ्चममासात् परतः प्रतिमासं गर्भाशयस्य सार्धयवकत्रयप्रमाणेन वृद्धिर्भवतीति तु सामान्यो नियम. ।

गर्भाशयग्रीवा—अत्र पुनः स्थान स्पर्श-वर्ण-प्रमाणेषु वैलक्षण्यं दृश्यते। तद्यथा—(१) आदौ गर्भाशयस्य श्रोणिनिमज्जनेन योनिगतो ग्रीवा-भागोऽपि स्तोकेनावाक् प्रतिपद्यते, ततश्चोद्गच्छता गर्भाशयेन सहाकृष्य-माण ऊर्ध्वम् । सहैव च पुरतो वक्रीभूतः पूर्वयोनिकोणमपि ह्रसयति। न चातः सुखेन योनिपरीक्षणकाले प्रतीयते । (२) रक्त-लसीकागमवर्ध-नाच्च गर्भाशयग्रीवाभागो नासाग्रवत् कठिनस्पर्शोऽपि धृतगर्भायाः स्त्रिया ओष्ठवन्मृदुस्पर्शो ईषच्छूनश्च सम्पद्यते । अवरुध्यते च ग्रीवासरणिर्दृ-ढया श्लेष्मार्गलिकया । तदेतन्मार्दव प्रायेण द्वितीये मासि ग्रीवाबहि-र्मुखादारभ्य शनैरूर्ध्वं प्रसरति, निखिलामपि च गर्भाशयग्रीवा कालेना-भिव्याप्नोति । अन्तर्मुखसमीपत आरभ्य नीचै. प्रसरतीति तु केचित् । (३) वर्णश्चास्या रक्तातिसञ्चारहेतुतया आरक्तनीलवर्णोऽभिजायते । (४) गर्भकाले ग्रीवासरण्या उत्तरभागः शनैः शनैरुत्तराधरक्रमेण विस्फारितो भवति, निम्नोति चेत्थम् अधरगर्भशय्यां नाम गर्भाशयस्य स्थालिकायतं प्रसवनिष्क्रियमधरभागम् । एव कायमानह्रानाच्च योनिपरीक्षणकाले गर्भाशयग्रीवा ह्रस्वीभूतेव प्रत्ययमावहति । इतरे त्वाहुः—आसन्नप्रसवाया एव ग्रीवोत्तरभागः स्फारितो भवति, तस्माद् गर्भकाले गर्भाशयग्रीवा वस्तुतो न ह्रस्वायते । ह्रस्वताप्रतीतिस्तु भ्रान्तैव, वर्धमानगर्भाशयगात्रेण सह ग्रीवाया ऊर्ध्वमाकर्षणात्, ग्रीवाया मार्दवेन तत्स्थौल्यस्य सम्यगप्रत्ययात्,

---

*"जाते हि शिथिले कुक्षौ मुक्ते हृदयबन्धने" —सु० शा० १० ।

"कुक्षेश्च स्यादवस्रसस्त्वधोभागस्य गौरवम्" —जातिसूत्रीये कश्यपः ।

"विमुक्तबन्धनत्वमिव वक्षसः" —च० शा० ८ ।

श्लेष्मार्गलिका A firm plug of mucous known as operculum

आरक्तनीलवर्णः Violet colour　अधरगर्भशय्या Lower Uterine segment

योनिप्राचीरस्य मृदुशूनशिथिलत्वात्, अन्तर्योनिकग्रीवाशस्य पुरतो वक्रीभावाच्चेति । स्मर्तव्यश्चात्र—अधरगर्भशय्या गर्भाशयगात्रावरभागस्य विस्फारेण जायते, गर्भधरकलावृतत्वात्तस्या इत्येके । ग्रीवोत्तरभागस्य विस्फारेण तन्निमित्ति, ग्रीवाश्लेष्मलकलायास्तत्र दर्शनादिति चान्ये। ग्रीवायाः श्लैष्मिककला गर्भधरकलाया न परिवर्त्तत इति तूक्तमेव। केचित्तु व्याहरन्ति, उभयथाऽप्युपपत्तिर्नत्वेवकारः । अपरे त्वाचक्षते, ग्रीवाया उत्तरतृतीयांशो गर्भधरकलयाऽधरद्वितीयांशश्च ग्रैवश्लेष्मलकलया आवृतस्तिष्ठतीति ।

बीजवहस्रोतसी बीजग्रन्थी च —अत्रापि रक्तातिसञ्चार आयतनवृद्धिश्च । तत्र बीजवहे स्रोतसी गर्भाशयवृद्ध्याऽऽकृष्यमाणे दीर्घायते भवत, प्रलम्बेते च गर्भाशयपार्श्वयोस्तत्सन्निहिते । गर्भाशयस्कन्धभागस्य च वर्धनात् स्रोतसी इमे गर्भकालान्ते गर्भाशयस्य मध्योत्तरतृतीयांशयोः संयोगस्थले लग्ने इवोपलभ्येते ।

विवृद्धायतनौ बीजग्रन्थी अपि बीजवहस्रोतसोर्वाह्यत. पश्चिमतश्च वर्त्तमानौ गर्भाशयपार्श्वसन्निधावेवोपतिष्ठतः । तयोरान्तरावस्थान च पूर्वोर्ध्वजघनकूटाभ्यामुदरवहिस्तले सूच्यते । गर्भाशयस्य स्वाक्षविवर्त्तनाच्च पूर्वतो नीतो वामग्रन्थिरुदरपूर्वभित्ते, दक्षिणग्रन्थिश्च पश्चिमतो गत उण्डुकस्य सान्निध्य भजते । ग्रन्थ्योरन्यतरश्च पीतपिण्डावस्थानात् विशेषेण विवृद्धायतनो दृष्टः ।

योनिः —पुना रक्तातिपूर्णतया प्रचुरनिःस्रवा नीलवर्णा स्थूलशिथिलप्राचीरा स्फीतकुटिलसिरा खरस्पर्शा च सञ्जायते । अथ चादौ गर्भाशयस्य श्रोणिनिमज्जनेन तस्या ह्रस्वायतत्व ततश्च तदुद्गमनेन दीर्घायतत्व विवृतभगद्वारत्व चापि दृष्टम्* ।

* "योन्याश्चाटालत्वम्" —च० शा० ४ ।
"योनिरोमसंलुलनम्" —सग्रह शा० २ ।
"योनिर्न प्रस्रवतीति" मृतगर्भलक्षणेऽग्निवेश, तेनाऽत्र जीवद्गर्भे योनिः प्रस्रवतीत्यर्थागमाद्बोद्धव्यम् ।

श्रोणितलभूमिः :—गर्भभरेण पीडिता श्रोणितलभूमिरपि निर्गम-द्वारतलाद् लम्बमाना प्रोत्सन्नेव सँल्लक्ष्यते। अगर्भायाः प्राङ्गुलैक-प्राया या उत्सन्नता सैव गर्भिण्या गर्भकालान्ते पादोनप्राङ्गुलचतुष्टय-माना दृष्टा। अत एवानुत्रिकभगसन्धानिकयोः $५\frac{३}{४}$ प्राङ्गुलप्रायः स्थला-न्तरालोऽपि धृतगर्भायाः स्त्रियाः $१०\frac{१}{४}$ प्राङ्गुलप्रमाणतामधिगच्छति।

त्वक् :—त्वचि तु गर्भिण्या विविधरूपाणि परिवर्त्तनानि जायन्ते। तद्यथा—किक्किसावाप्तिः, रञ्जनकणनिचयः, स्वेद-पूति-ग्रन्थिस्रावप्राचुर्यम्, रोमाभिवृद्धिः, वसोपचयश्चेति। तत्र स्तनोदरसक्थिनितम्बेषु किक्किसानि, चूचुकस्तनमण्डलोदरसीवनीग्रीवामुखमण्डलेषु रञ्जनकणनिचयः, कट्यूरुस्तननितम्बेषु च वसोपचयः। किक्किसा नाम चर्मान्तर्विदरणजन्यास्त्व-ग्रेखाः, पूर्वं तनुतररक्तवर्णाः श्यावाभा वा पश्चाच्च श्वेताभाः। "किक्कि-सश्चर्मविदरणम्"—इति चक्रपाणिः। "ऊरुस्तनोदरे वलिविशेषा रेखा-कारास्तत्काले प्रायो ये जायन्ते ते किक्किससंज्ञाः" इति चारुणदत्तः*।

उदरभित्तिः :—गर्भाशयस्य श्रोणिनिमज्जनात् प्राक् वस्तिशीर्षदेशस्य निम्नीभावः, ततश्च शनैः शनैर्गर्भाशयोद्गमनात् जठराभिवृद्धिः। "गर्भो जठराभिवृद्धिम्"—सु० सू० १५। नाभिरपि गर्भिण्याः क्रमेणोन्नमतो षष्ठे

---

* 'तत्र सप्तमे मासि गर्भस्य केशाः प्रजायमाना मातुर्विदाह जनयन्तीति स्त्रियो भाषन्ते। तन्नेति भगवानात्रेयः। किन्तु गर्भेणोत्पीडिता वातपित्त-श्लेष्माण उरः प्राप्य विदहन्ति। ततः कण्डूरुपजायते। कण्डुमूला किक्किसावाप्तिः"—च० शा० ८।

गर्भेणोत्पीडिता दोषास्तस्मिन् हृदयमाश्रिताः।
कण्डुं विदाहं कुर्वन्ति गर्भिण्याः किक्किसानि च॥"

—वा० शा० १।

स्तने वा नाभि कुक्षात्मीयौ, तदङ्ग वृद्धिरूपा सम्पाद्यते। परितो नाभि मण्डलं निश्चयात् सर्वांगप्रदेशानि प्रकाशयति। नाभिमण्डलमिति च

[४९ चित्र]

त्रिवलिरेखाः।



त्रिवलि कुक्षिप्रदेशानि दर्शयति।

नाभिमण्डल Umbelical area'a.

तत्संज्ञानम्। एवं भगपीठान्नाभि यावत् (क्वचित् अग्रपत्र यावदपि) प्रसृता वर्णराजिरपि आयतमूला उपलभ्यते। "रोमराज्युद्गमः"—सु० शा० ३। "स्थिते रक्ते रोमराजिः प्रादुर्भवति"—सङ्ग्रहशा० २। "स्त्रिया नाभेरधो रोमराजि: प्रादुर्भवति"—इति चेन्दुः। उत्तरगर्भकाले च प्रायेणोदरभित्त्युत्तसनात् चर्मान्तर्विदरणेन किक्किसानामाविर्भाव.। किक्कसरेखाश्च भगसन्धानिकातः समुत्थाय धनुर्वक्रतयोर्ध्वं विसरन्तो-त्यवधेयम्।

स्तनौ :—द्वितीयमासादारभ्यैव स्तनयोर्गौरवं स्फुरणञ्चाप्यनुभूयते। रक्तागमस्य ग्रन्थिवतुनो वसास्नायुतन्तूना च वर्द्धनात् क्रमेण परिवर्धमानौ पीनोन्नतौ कठिनस्पर्शावुद्गतसिराप्रतानौ च सम्पद्येते। चूचुकस्तनमण्डल-योश्च तृतीये मासि रञ्जनकणनिचयात् कृष्णवर्णता, प्रहर्षभूयस्त्वञ्च चूचु-कस्य। स्तनमण्डले च पूतिग्रन्थिमुखाना स्फायनात् पिडकायिते इव जायेते। 'धान्यकोद्भेद' इति च पिडकाविर्भावस्य लौकिकसंज्ञानम्, धन्याकबीज कणसादृश्यात् स्तनपिडकानाम्। स्तनयोरतिपीनत्वे किक्किसोत्पत्तिरपि। पञ्चमषष्ठयोश्च प्रायेण स्तनमण्डल परित 'उपमण्डलम्' अपि प्रकटीभवति। मन्दप्रभविन्दुकाचितत्वाच्च मधुच्छत्रमिव तल्लक्ष्यते। स्तन्याविर्भावश्च प्रायेण तृतीयात् परमेव दृष्टः। तत्रादौ तन्वल्पः स्नेहद्रवो निर्याति, उत्तरगर्भकाले च गाढप्रचुरः। 'पीयूषम्' इति च गर्भकालस्तन्यस्य विशेष-संज्ञानम्। भवन्त्यपि—

स्तनयोः कृष्णमुखता। (सु० शा० ३)

स्तनयोः स्तन्यमोष्ठस्तनमण्डलयोश्च कार्ष्ण्यमत्यर्थम् (च० शा० ४)।

वर्णराजि: Linea nigra किक्किसानि Striae gravidarum स्तनमण्डलम् Primary areola स्तनपिडकाः Montgomery's tubercles or follicles उपमण्डलम् Secondary areola. पीयूषम् Colustrum

तस्माद्गर्भिण्यः पीनोन्नतपयोधरा भवन्ति। (सु० शा० ४)

धमन्य. सवृतद्वारा: कन्याना स्तनसश्रिता:।

तासामेव प्रजातानां गर्भिणीनां च ताः पुन' ॥

स्वभावादेव विवृता जायन्ते. . . .. । (सु० नि० १०)

रक्तवहस्रस्थानम्:—गर्भपोषणार्थमधिक सचेष्टस्य मातृहृदयस्य दक्षिणभागो विस्फारितो भवति मनाक्स्थूलश्चेत्युर:फलकात् दक्षिणतोऽङ्गुलिताडने विशेषेण जडध्वनिश्रवणादनुमीयत इति केचित्। तन्नेत्येके, गर्भाशयवृद्ध्या महाप्राचीरोन्नमनेन हृत्स्थानापसृतिकृतो ध्वनिजाड्यविशेष इत्यन्यथाऽपि तदुपपत्तेः। अधिक विक्षिपतो वामनिलयस्य तु स्तोकेनाभिवृद्धिरुपपन्ना। अनुभूयते च गर्भिण्या बहुधा हृत्स्पन्दनमपि।

रुधिरञ्चास्या मानतो विवृद्धम्, आप्योपादानबहुलम्, अचिरेण स्कन्दनशीलम, हीनरक्तकणिकम्, स्तोकाधिकश्वेतकणिकञ्च सञ्जायते। श्वेतकणिकातिशयश्च आसन्नप्रसवाया विशेषेण दृश्यते, निवर्त्तते च तत पर द्वित्रेष्वह स्स्वेव। रक्तस्य क्षारीयता सापेक्षगुरुतापि च हीयेते। रक्तभारस्तु प्रायेण सन्निहितप्रसवाया एव स्तोकेन वर्धमानो दृष्टः। हृदयस्य प्रवृद्धबल मातृगर्भयोः शारीरविषश्च रक्तभाराधिक्ये हेतु'। गर्भिण्याः श्रोणिगता सिराश्च गर्भभरेण पीडिता न रक्त यथावत् प्रतिनेतु क्षमन्त इति पादादिषु सिरास्फीति शोफश्च। योनिगुदान्तरीयसिराणां स्फारीभावेन चार्शोनिर्वृत्ति.।

मूत्रवहस्रस्थानम्:—आप्योपादानबहुलतया रक्तस्य, परिवृद्ध्या रक्तभारस्य, रक्तातिपूर्णतया वृक्कयो:, निष्कासनेन च गर्भशरीरमलस्य गर्भिण्या दैनिकमूत्रराशिमानं वर्द्धते। मूत्रयति च सा मुहुर्मुहुराद्यन्तेषु कतिपयसप्ताहेषु गर्भाशयपीडितमूत्राशया मूत्रगताम्लतादिना संक्षुब्धमूत्राशया च। तत्रादौ सन्निहितस्य गर्भाशयस्य पूर्वावनमनात्, अन्ते

मूत्रगताम्लतादि.=Hyperacidity, increase of urates or phosphates

चोर्ध्वं प्रगतस्यापि तस्य स्तोकेनाधोनिपतनात् स्वभावत एव मूत्राशयो निपीड्यते ।

नात्रजनिकद्रव्याणि च प्रायेणोत्तरगर्भकाले समावश्यकनत्रजनावरोधान्मानतो हीयन्ते । अत एव तदा गर्भिण्या गुरुगात्रत्वापत्तिर्गर्भस्य च कायमानोपचयो विशेषेण दृष्टः । अण्डलाला शर्करा चापि यदा तदा स्वल्पमुपलभ्यते । तत्राण्डलाला अनुवृक्करक्तवाहिनीप्रपीडनहेतुकेति केचित् । गर्भशरीरविषसञ्चारप्रभावमूलेत्यन्ये । योन्यास्रावमिश्रणजनितापि चेत्यपरे । अण्डलालाया नियतप्रचुरोपस्थितिस्तु भयावहा । एव शर्करापि प्रायेण दुग्धशर्करैव स्तनग्रन्थिसमुत्साहमूला उपलभ्यते । इक्षुशर्करालाभस्तु पुनर्विकृतिरेव ।

रसपाकविधिः :—सुक्षुद्वती हि गर्भिणी गर्भपोषणाय भूयांसमाहारमुपभुङ्क्ते, रसपाकविधिश्चास्या विशिष्यते स्तोकेन । स तु विशेषो धातुपु नत्रजनचयः, मूत्रद्रव्यनिर्गमप्रमाणहानिः, वसोपचयः, प्रतनकग्रह , सुधासङ्ग्रहश्च । अथ च गर्भो माधुरक वाञ्छति । यदि चेन्मातुराहारे तत्पूरकद्रव्याणा न्यूनता स्यात्तर्हि मातुर्यकृद्गतमाधुरकमपि गर्भेणाह्रियते । तेन च मातृयकृतो माधुरक हीयते । यकृन्माधुरकक्षयात् वमनातिरेक इति तु केचित् ।

सुधासङ्ग्रहश्च आहारगते सुधाराशौ प्रस्फुरद्रव्यराशौ जीवनीयद्रव्यचतुर्थे क्षुद्रान्त्राणामम्लताधिक्ये च निर्भरो भवति । एभिश्च विकारनि-

---

नात्रजनिकद्रव्याणि—Uria, Uric acid, Ammonia compounds, Kreatin and Kreatinin. अण्डलाला Albumen शर्करा Sugar दुग्धशर्करा Lactose इक्षुशर्करा Glucose नत्रजनः Nitrogen प्रतनकम् Protein सुधा Calcium माधुरकम् Glycogen प्रस्फुरः Phosphorus जीवनीयद्रव्यचतुर्थम् Vitamin D

करैर्मातुः सुधाक्षयोऽनुमातव्यः, तद्यथा—अस्थिमार्दवम्, कृमिदन्तता, पेशीनामुद्वेष्टनम्, वातनाडीशूलम्, वमनानुबन्धः, उदरगर्भाशयपेशीनां शैथिल्यम्, त्वग्रोगविशेषाः फक्करोगश्च ।

शरीरभारश्चापि गर्भिण्या क्रमशोऽभिवर्धते, अन्तिममासत्रये च विशेषेण । अधश्वीनायास्तु तनुभारो नियत हीयत इति बहुभिर्दृष्टम् । अत एवासन्नप्रसवाया लक्षणविशेषो हि स इति त आमनन्ति । गर्भभरेण च गर्भिण्या गुरुत्वकेन्द्रमपि विपर्यस्यते । तेन च सा देहसन्धारणाय पश्चात्कृष्टशिरोंऽसा सती मन्द मन्द प्रचलति ।

नाडीसंस्थानम् :—संस्थानमिद गर्भकालस्य प्रथमार्धे क्षुब्धमिव सन्तिष्ठते । स्वल्पेनापि च हेतुना कोपावसादावस्य सम्भवत । धृतिर्भ्रंश्यते । कदाचिदपस्मरति च । प्रातर्ग्लानिर्वमनं लालास्राव· क्षुधाविपर्यास स्वभाववैपरीत्य भ्रमो मूर्च्छा प्रलाप उच्चावचेषु भावेषु श्रद्धाप्रणयनमित्येते भावा अपि प्रतिसङ्क्रमितनाडीवेगप्रभवा भवन्ति ।

स्रोतोविहीनग्रन्थय.—वृतगर्भाया. स्त्रिया बहूना तावदवटुकाप्रभृतीनां ग्रन्थीनामायतनवृद्धिरान्तररसस्रावप्राचुर्य्यञ्च दृश्यते, तत्तत्कार्यविशेषसम्पादनाय । तद्यथा :—(१) अवटुकाग्रन्थि. स्तोकेन वर्धते । निःस्रवस्त्वस्य मातु परिवृद्धरसपाकविधिना सह सम्बद्ध इति तद्विदो भाषन्ते । अवटुकारसक्षयो गर्भविषसञ्चारहेतुरिति पुरातनवादस्तु नानिर्विवाद । (२) पर्यवटुकग्रन्थयोऽपि वृद्धि गच्छन्ति । आस्रवस्त्वेषां सुधारसपाकविधौ सहाय प्रजास्थापनश्च । (३) अधिवृक्कग्रन्थी स्वल्प वर्द्धते । आन्तररसस्त्वनयोर्बहिर्वस्तुसम्भवो रञ्जनकणनिचयसहाय. सुधासंवर्त्तनो गर्भाशयोत्तेजनश्च भवति । (४) पोषणकग्रन्थिस्तु विशेषेण वर्द्धते । तत्र पूर्वपोषणिकास्राव पीतपिण्डान्तररसमनुप्राणयति, गर्भविकासपोषणाभ्यामप्यस्य सम्बन्ध इत्येके । पश्चिमपोषणिकास्रावस्तु रक्तभारसंवर्धन शोणितवाहिनीना गर्भाशयस्य च सङ्कोचनो हृन्मान्द्यकरो

मूत्रलश्च भवति । स्तनग्रन्थिपेशीसूत्राणामुत्तेजनेन च स्तन्य प्रवर्त्तयति । (५) बीजग्रन्थिस्तु पीतपिण्डभवमान्तररसं जनयति । बीजागमक्रिया-वरोधो गर्भवपनसाहाय्य गर्भाशयवृद्धिरतिवान्तिनिरोधश्चेति च रस-कर्माणि । प्रागीरित च (४६ पृष्ठे) द्रष्टव्यम् ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातो गर्भनिर्णयविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

गर्भविनिश्चयो हि गर्भलक्षणज्ञानाधीन । स चोत्तरमासेषु यथा सुकरो भवति न तथाऽद्येषु द्वित्रमासेषु । अवितथप्रज्ञापनन्तु तदा प्रायेणाऽसम्भवमेव । अपेक्षते च वस्तुत आदिकाल एव गर्भनिर्णयो विशेषेण। एवमन्योपद्रुतत्त्वे लाक्षणसाङ्कर्यणापि न सुकरो निर्णयः । मिथ्यानिदान तु कदाचिदनर्थाय कल्पेत । भिषक् च लोके परिहासास्पदो भवति। तस्मात्तानि तानि गर्भलक्षणानि लक्षणाना च तेषा बलाबल सुविचार्य गर्भस्य भावाभावस्थितिर्निर्देश्या।

अग्निवेशश्चात्र '—"उपचारसाधन ह्यस्य ज्ञाने । ज्ञान च लिङ्गत । तस्मादिष्टो लिङ्गोपदेश" इति (च० शा० ४) ।

निर्निनीपुणा च भिषजा षडिमे प्रश्ना. समाधेया —गर्भोऽस्ति न वा ? कतिमासिको वा गर्भः ? कीदृगवस्थो गर्भ ? कति वा गर्भा ? अन्योपद्रुतो न वा ? कदा च प्रसवो भविता ? इति ।

गर्भोऽस्ति न वा ?

गर्भविनिश्चयो हि गर्भलक्षणज्ञानाधीन इत्युक्तम् । लक्षणानि च तानि यथाकालं जायमानानि बलभेदेन त्रिधा प्रविभज्यन्ते हीनबलानि, मध्यबलानि उत्तमबलानि चेति । यथोत्तरं चैषां प्रामाण्यम् । तत्र—

हीनबललक्षणानि।

(१) आर्त्तवाऽदर्शनम् .—आद्यमिदं लक्षणम्, यत्सर्वत.प्रथम गृहीतो गर्भ इति स्त्रियाश्चेत: प्रभावयति। नियमेन पुष्पवतीनां स्वस्थाना चैतत् सहसा समुत्थ गर्भस्थितेर्विशेषप्रत्यायकं भवति। इदन्त्ववधेयम्—पाण्डुयक्ष्मादिषु रोगप्रभावात्, स्तन्यकाले कालप्रभावात्, बालासु अपूर्णाविर्भावात, कुमारीषु कौमार्यहरणे गर्भाशङ्कनात्, युवतिषु गर्भधारणौत्सुक्यात्, प्रौढ़ासु क्षयकालोपस्थानाच्च प्रायेण रजो न दृश्यते। रजोदर्शनप्रारम्भादर्वाक् रज:क्षयादुत्तर चापि गर्भस्थितिर्दृष्टा। एव धृतेऽपि गर्भे गर्भस्रावहेतुभिर्द्विगर्भाशयाया वा स्त्रिया: स्वभावेन रक्तस्रुतिर्भवति।

(२) प्रातर्ग्लानि·—निष्ठीविकास्यस्रवणच्छर्दिहृल्लासरूपं लक्षणमिदं प्रायेण द्वितीयतृतीयचतुर्थमासेषु ,प्रातरुत्थिताया दृश्यते सप्ततिप्रतिशतम्। पानात्ययाजीर्णयकृत्संहरणरोगेषूपलम्भाच्चास्य हीनबलत्वम्।

(३) स्तनपरिवर्त्तनानि :—पूर्वाध्याये (१७१ पृष्ठे) विस्तरशो वर्णितानि। तत्र स्तनयोरापीनता, दार्ढ्य, स्फुटसिराप्रतानत्वं, पिडकाविर्भाव, कृष्णमुखता, उपमण्डलनिर्माणम, स्तन्योपस्थितिश्चेति मुख्यलक्षणानि। गर्भाशयवीजग्रन्थ्योरर्बुदेष्वपि प्रायेण लक्षणानीमानि प्रादुर्भवन्ति। किञ्च, यथाद्यासु सगर्भावस्थासु लक्षणानामेतेषामुपयोगित्वं भवति न तथा बहुप्रजाताया: स्त्रिया:, प्रागुत्पन्नलक्षणाना कदाचित्तादवस्थ्यादिति।

(४) उदरपरिवर्त्तनानि:—आदौ गर्भाशयनिमज्जनात् वस्तिशीर्षस्य निम्नता (अन्यत्र मेदस्विन्या वाताध्मातोदराया वा), ततो गर्भाशयवर्ध-

---

· हीनबललक्षणानि Presumptive signs and symptoms

(१) The supression of the menstruation or Amenorrhoea (२) Morning sickness (३) Mammary changes (४) Abdominal changes

नाजठरस्य क्रमेणाभिवृद्धिः, नाभ्युन्नमनम्, रञ्जनकणनिचयः किकिसानि चेति पूर्वम् (१६९ पृष्ठे) उक्तानि । बहुप्रजातायाश्च प्राचीरशैथिल्यात् यथा नाम जठराभिवृद्धिर्दृश्यते न तथा सकृत्प्रजाताया अप्रजाताया वा दृढोदरभित्तेः ।

(५) गर्भस्फुरणम् :—चतुर्थपञ्चममासात् प्रभृति गर्भः स्पन्दते । स्पन्दानुभवे च तात्पर्यम् । वर्धमानो हि गर्भाशयस्तदा प्रभृत्येव जठरभित्त्या सन्निधत्ते, स्पन्दवेगाश्च गर्भाशयभित्तितो जठरभित्तिं प्रतिसङ्क्रमन्ति । प्राक् त्वतो गर्भस्य स्फुरणे मन्दसामर्थ्यात् गर्भोदकातिरेकेण स्पन्दवेगानामसङ्क्रमणाच्च न स्पन्दानुभवः । अनुभूयमानमाद्यिमगर्भस्पन्दनं तु मृदुवेगत्वात् करपुटगतचटकस्फुरणवद् भासते । अप्रजातया च स्त्रिया पूर्वमननुभूतत्वात् गर्भस्फुरणम् अन्त्रस्फुरणेनापि ग्रहीतुं शक्यम्, अन्त्रस्फुरणञ्च गर्भस्फुरणेन ।

(६) मूत्रप्रसेकः—आद्यन्तेषु कतिपयसप्ताहेषु (प्रथमद्वितीययोर्नवमे च मासि) श्रोण्या निमज्जता गर्भाशयेन सम्पीडितक्षुब्धमूत्राशया हि गर्भिणी मुहुर्मुहुर्मूत्रं प्रसिञ्चति ।

(७) प्रतिसङ्क्रमितवातलक्षणानि :—गर्भकालस्य प्रथमार्धं वातसंस्थानं पुनर्गर्भिण्याः क्षुब्धमिव सन्तिष्ठते प्रायेण, स्वल्पेनापि च हेतुना कोपावसादावस्य सम्भवतः, तत एव च हृल्लासवान्तिप्रसेकप्रभृतीनि प्रतिसङ्क्रमितवातलक्षणानि भवन्तीत्युक्तं प्राक् । प्रकृतिविपर्ययः, मूर्च्छा, ग्लानिः, श्रद्धाप्रणयनञ्चोच्चावचेषु भावेष्विति प्रधानलक्षणानि ।

---

(५) Quickening (६) Irritability of the Bladder (७) Various reflex nervous symptoms

मध्यबललक्षणानि ।

(१) **गर्भाशयस्य कायमानवृद्धि** :—गर्भो वै स, यो वर्धमानो निरन्तरमविषम सत्वर च गर्भाशयमभिवर्धयति । नैवमर्बुदादिकम् । मासानुमासिको वृद्धिक्रमस्तु गर्भाशयस्य पूर्वमुपवर्णित (१६६ पृष्ठे) ।

(२) **गर्भाशयमार्दवम्** —गृहीतगर्भाया: स्त्रिया दृढ़कठिनोऽपि गर्भाशय आद्येषु सप्ताहेषु मृदुकोमलः सञ्जायते । ग्रीवागात्रमध्यगतो देशस्तु

[४८ चित्रम्]

हेगरलक्षणम् ।



अत्र गर्भाशयस्य विशेषेण मृदुता गतो ग्रीवागात्रमध्यगो भाग. सन्दर्शित: ।

विशेषेण मार्दवमुपयातीति हेगरनामकेन केनचित् पाश्चात्यविदुषा परीक्ष्य निर्णीतम् । तेन च तन्नाम्नैव लक्षणविशेषोऽय ख्यातिमप्यलभत । तदिदं

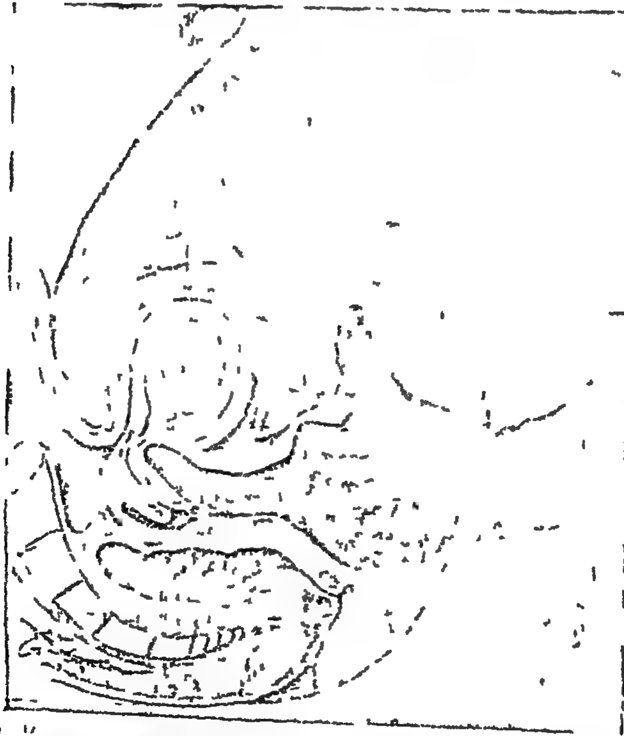
मध्यबललक्षणानि Probable Signs (१) Enlargement of the uterus (२) Change in consistency of the uterus (Hegars' Sign)

सार्धैकमासात् सार्धद्विमास यावदुपलभ्यते । एष चास्य लक्षणस्य परीक्षाविधि —

(क) हस्तैकस्याङ्गुलिद्वय (तर्जनीमध्यमे) एका वाङ्गुलि योन्या-पूर्वकोणे निधाय, करेण चापरेण गर्भिण्या उदर निपीड्य, गर्भाशयपश्चिमतो युग्मविधिना गर्भाशयमभिस्पृशेन्, करद्वयाङ्गुलियोजनाय च प्रयतेत । एवञ्च ग्रीवागात्रमध्यगतो मृदुतमदेश कोमलत्वातिशयेन विलुप्त

[४७ चित्रम्]

हेगरलक्षणस्य परीक्षाविधि ।



प्रथमविधिना यथेद लक्षण परीक्ष्यते, तथात्र निर्दर्शितम् ।

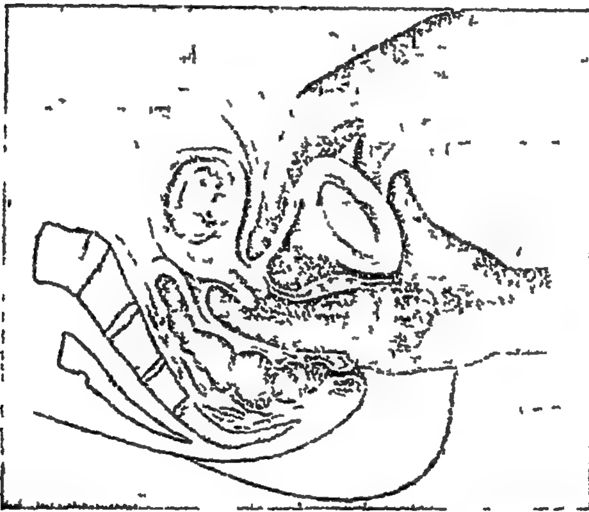
युग्मविधि Bimanual Examination.

इव प्रतीयते, गात्रं तु गर्भाशयस्य गोलकाकृति स्वल्पकठिनम्, ग्रीवा चापि कठिनप्राया। किंवा—

(ख) उदरहस्तं भगसन्धानिकाया उपरि श्रोण्या निमज्ज्य, योनिहस्तस्याङ्गुलिद्वयं योन्याः पश्चिमकोणे स्थापयेत्, प्रयतेत च करद्वयाङ्गुलियोजनाय। अथवा (ग) हस्तेनैकेन उदरद्वारा गर्भाशयमधस्तात्

[४८ चित्रम्]

हेगरलक्षणस्य परीक्षाविधिः।



द्वितीयविधिना यथेदं लक्षणं परीक्ष्यते तथात्र निदर्शितम्।

श्रोणौ निपीड्य, इतरपाणेरङ्गुष्ठं योन्याः पूर्वकोणे तर्जनीं च गुदे संस्थाप्य, गर्भाशयग्रीवागात्रयोः संयोगस्थलं गृह्णीयात्। एवमपि ग्रीवागात्रयोरापेक्षिककाठिन्यं तन्मध्यभागस्य च मार्दवविशेषः सम्यगनुभूयते।

(३) गर्भाशयस्य विरताकुञ्चनम् —सगर्भे हि गर्भाशये प्रारम्भत एव सङ्कोचाना निःशूला लहर्य्य उत्पद्यन्ते प्रतिपञ्चप्रपलं प्रतिदशप्रपलं

---

(३) Intermittent uterine contractions (Braxton Hicks' Sign)

वा। [illegible]

(४) [illegible]

(५) [illegible]

[illegible] Haematometra [illegible] Febrile [illegible].

(४) Vaginal Pulsation (Osiander's sign) [illegible] Congestion [illegible] Vascular murmur [illegible] Changes in Vagina [illegible] Discoloration of the vagina (Jacquemier's sign) [illegible] Varicos of the veins about the lower end of the vagina. (Hegar's sign) [illegible] Papillary roughness of the mucous surface. (5) Ballotement (External & Internal).

विधिराभ्यन्तर एव। इतः पूर्वं तु गर्भोदकस्याधिक्यात् गर्भस्य वा हीन-कायमानत्वात् लक्षणमिदं न प्रतीयते, विपरीतहेतुना चात परम्। केवलं गर्भशिरस्तूर्ध्वमपि बाह्यविधिना यथाकथञ्चिद् इतस्ततः कर्त्तुं शक्यते, आवस्तिशिरोऽवग्रहात्।

एष च तावल्लक्षणस्यास्य बाह्यपरीक्षाविधि—पार्श्वशयानाया: स्त्रिया उभयतो गर्भाशयपार्श्वम् उदरस्य बहिः करद्वयमवस्थाप्य अधर-पाणिना गर्भ उत्क्षेपणीय:, अनुभवनीयश्च पुनस्तेनैव करेण परावृत्तस्य गर्भस्य प्रतिघातः। किं वा, जानुकूर्परासनेऽधोमुखं वर्त्तमानाया हस्तेनैकेन गर्भमुत्क्षिप्य पुनरवक्षिप्तस्य तस्य प्रतिहतेस्तेनैव करेण परिज्ञानम्। अथवा, उत्तानशयानाया उदरपार्श्वयोः पाणियुगल निधाय, गर्भाशय च ताभ्यां स्थिरीकृत्य हस्त एक सहसा प्रपीडनीयः। तेन च गर्भस्य कोऽप्यवयवो हस्तेतरं प्रतिघ्नन्निव प्रतीयते। कदाचित्तु निवर्त्तमानेन गर्भेण पूर्वकरो-ऽपि प्रतिहन्यते।

अथ आभ्यन्तरपरीक्षाविधिः—उत्तानाया उपधानोन्नमितशिरोग्रीवा-सायाश्च स्त्रिया योनौ गर्भाशयग्रीवामुखस्य पुरस्तात् पूर्वकोणे वाङ्गुलिद्वयं प्रणिधाय गर्भाशयस्कन्धभागो हस्तेतरेणोदरस्थितेन स्थिरीकर्त्तव्यः। उपदे-ष्टव्या च गर्भिणी गभीरमुच्छ्वसस्य क्षणं प्राणनिरोधाय। ततो योना-वङ्गुल्याघातेन गर्भ ऊर्ध्वमुत्क्षेपणीय:, अनुभवनीया च पूर्वमपसृतिस्ततश्चो-पसृतिरुत्तरणावतरणाभ्यां गर्भस्य।

तदेतत् गर्भप्रत्याघातरूप लक्षण विशिष्टलक्षणमपि कदाचित् मूत्राति-पूर्णवस्तिगतायां बृहदश्मर्य्यां जलोदरप्लवमाने रक्तादिद्रवपूर्णगर्भाशय-प्लवमाने वा सवृन्तार्बुदेऽतिवर्त्तनाच्च निर्दुष्टम्।

(७) गर्भाशयध्वनिः—मृदुफूत्काररूपोऽय ध्वनि., मातुर्धमनीस्पन्देन च तुल्यकालः, उदरस्य बहिर्गर्भाशयोपरि चतुर्थमासान्तात् परम् उरोवीक्ष-

---

(७) Uterine Souffle or Uterine Bruit

णयन्त्रेण कर्णाधानेन वाऽऽकर्ण्यते । तत्र ष्टेथोस्कोपयन्त्रप्रयोगे उदरस्या-नावृतत्वं, कर्णाधाने च तनुना कार्पासवस्त्रेण कौशेयवस्त्रेण वा तस्याच्छादन-मावश्यकम् । अथ च गर्भकालस्य प्रथमार्धे भगवत्स्थानिकाया उपरिष्टा-देव मध्यरेखायाम् उभयतश्च गर्भाशयाधःपार्श्वयोः (वामतश्च विशेषेण दक्षिणावर्तनाद् गर्भाशयस्य) ध्वनिरेष स्पष्टं प्रतिगृह्यते । नाऽयमनु-गर्भाशयधमन्यो सङ्कीर्णस्थशाखानिर्गर्भाशयप्राचीरगतासु विशदाकार-प्रशाखासु रक्तसंवहनादुत्पद्यत इत्याहुर्नव्याः । अपराया रक्तकुल्यासु रक्तागमाक्षेपादुत्पद्यत इति प्राचीनवादस्तु सूतिकाकालेऽपि त्रिचतुर्दिनं यावत् शब्दस्यास्य श्रवणात् सम्प्रति निरस्तः । गर्भाशयस्य सङ्कोचकाले तु यथोत्कर्षं ध्वनिरयं तीव्रायते मन्दायते विलुप्यते च पुनरावर्तते च ततो व्यपगच्छति सङ्कोचे । कृच्छ्रादपि छिन्नप्राङ्गेन पूर्ववदाकर्ण्यत इति तु लक्षणस्यास्य वैशिष्ट्यम् । उपलभ्यते चैतत् कदाचित् सौत्रिकार्बुदेष्वपि ।

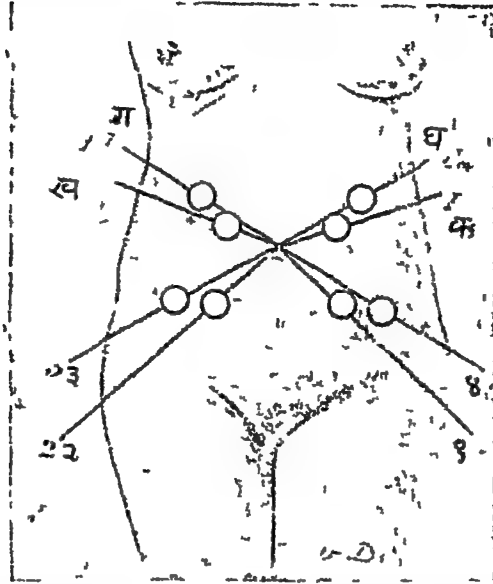
उत्तमबललक्षणानि ।

(१) गर्भहृच्छब्दः—सोऽयं प्रतिमिनटं सविंशशतात् षष्ट्युत्तरशतं यावज्जायमानः प्रायेण च चत्वारिंशदुत्तरशततमस्य (मातुर्धमनीस्पन्दात् द्विगुणप्राय इति यावत्), टिक्टिकारसको ध्वनिर्लब्धगर्भकालात् प्रभृति (सार्धं चतुर्थमासान्तात् पञ्चममासान्ताद्वा परम्) श्रूयते । तत्रादौ मध्यरेखायां नाभेरधः, ततश्च यथागमावतरणं यथागर्भासनं च तत्तद्विशेषस्थलेषु (४९ चित्रम्) ष्टेथोस्कोपयन्त्रेण गर्भहृच्छब्दः स्फुटतमनाकर्ण्यते । भावारम्भश्च गर्भान्तर्पृष्ठस्थलप्रकृष्टो गर्भाशयपूर्वभित्तिसन्निहितश्च यो देशस्तत्र स्फुटतमं श्रवणम् इति नियमः ।

दक्षिणावर्तनम् Dextro-torsion उत्तमबललक्षणानि Positive or Certain Signs (१) Foetal heart sounds.

[४६ चित्रम्]

विभिन्नस्थलानि, येषु गर्भहृच्छब्द स्फुटतमं श्रूयते ।



१—वामपूर्वानुशीर्षासनम् । २—दक्षिणपूर्वानुशीर्षासनम् । ३—दक्षिणपश्चिमानुशीर्षासनम् । ४—वामपश्चिमानुशीर्षासनम् । क—वामपूर्वत्रिकासनम् । ख—दक्षिणपूर्वत्रिकासनम् । ग—दक्षिणपश्चिमत्रिकासनम् । घ—वामपश्चिमत्रिकासनम् ।

एष च हृच्छब्दो बृहत्कायमाने शिशौ विलम्बितो लघुकायमाने च प्रायेण त्वरितः समुपलभ्यते । अतएव गुरुप्राये पुत्रशिशौ सत्रिंशशताद्धीनम्, लघुप्राये कन्याशिशौ च ततोऽधिकमिति प्रायोवादोऽपि प्रचलति । अथ चायं हृच्छब्दो गर्भस्य सक्रियावस्थायां मातुश्च ज्वरितावस्थाया त्वरितो भवति, मन्दश्च सङ्कोचकाले गर्भाशयस्य, प्रपीडनावसरेऽपरानाभिनालयोः, हीनदशाया प्राणवायोः, श्रान्तावस्थायां च गर्भस्थबालस्येत्यवधेयम् । शताद्धीने षष्ट्युत्तरशतादधिके च गर्भजीवन विपन्नमिव मन्यते प्रेक्षा-

वहि। एवञ्च लक्षणमिदं गर्भप्रत्यायकत्वे सति तदवस्थाप्रत्यायकत्वा-दप्यानदनम्। अनेन हि गर्भस्य सत्ता जीवनम्, अवतरणमननानि, सत्या चापि निर्देष्टु शक्या।

नालध्वनि:—नर्मगयमाणश्चाय शब्दविशेषो गर्भहृच्छब्देन समका-लिकः प्रायेण गर्भकालावसाने नाभिनालोपरि श्रुतियन्त्रपातात् क्वचिदा-कर्ण्यते। नाभिनाड्या शोणितवाहिनीषु रक्तसंवहनव्याघातश्चास्य हेतु। व्याहतिस्तु नाभिनाले ग्रन्थिपातेन नालस्य गर्भाङ्गानुवेष्टनेन प्रपीडनेन सिरा-कपाटैर्वा छिद्रसवरणादभिजायते। गर्भस्य विकृतहृदयादपि ध्वनिरेष स्सपद्यते। एवञ्च विकृतिजननीनमपि लक्षणमिदं गर्भसत्ताप्रत्यायकत्वात् गर्भलक्षणम्। प्रसवकालेऽन्याऽविरतश्रुतिस्तु गर्भस्यापत्सूचकत्वात् भयावहा।

(२) गर्भाङ्गानुमानम्.—मध्यगर्भकालात् प्रभृति गर्भस्य विभिन्ना-वयवा. क्रमेण सुख नेयन्ते स्पर्शपरीक्षया परीक्ष्यमाणा। तत्र पृष्ठशिरो-नितम्बपाणिपादानां निपुणमवधारणमावश्यकम्। अन्यथा उदर्यकलान्त सम्भूतानामनेकसौत्रिकार्बुदाना गर्भावयवानाञ्च परस्परं भेदग्रहो दुष्करः स्यात्।

(३) गर्भचेष्टनम्.—चतुर्थपञ्चममासात् प्रभृति गर्भः स्पन्दते इत्युक्त प्राक्। सर्वप्रथमं च गर्भिण्या गर्भचेष्टनमनुभूयते। ततश्च परीक्षकोऽपि स्पर्शपरीक्षया श्रवणपरीक्षया च गर्भाशयभित्तौ क्रियमाणान् मन्दपादाघा-तानिव गर्भचेष्टा विजानाति। उत्तरमासेषु तु स्पर्शपरीक्षया समुत्तेजितो गर्भोऽधिकं प्रचेष्टते। अथ च यदा तनूदरभित्तिकाया स्त्रिया गर्भचेष्टन चक्षुषाऽपि द्रष्टुं शक्यम्। श्रूयते च गर्भचेष्टनकाले ध्वनिविशेषोऽपि प्रायेण।

(४) किरणचित्रपरीक्षणम्.—सार्द्धतृतीयमासेन किरणचित्रेऽपि गर्भ-कङ्कालभागानां दर्शनात् गर्भस्थितिरवधारयितुं शक्या। अत परन्तु-

---

नालध्वनि. Funic Souffle (२) Recognition of the foetal parts (३) Foetal movements (४) Radiographic diagnosis

त्तरोत्तरं विधिनाऽनेन सुकरमेव गर्भनिदानम्। न चैतत् गर्भसत्तामात्रं प्रत्याययति, किन्तर्हि गर्भावतरणम्, गर्भासनम्, गर्भवयः, गर्भानैक्यमपि।

अथ च तत्तद्गर्भलक्षणाना कालप्रामाण्यस्मारणी सारणिरपि ' दर्श्यते—

लक्षणानि।	मासानुमासिको गर्भलक्षणकालः									प्रामाण्यम्।
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	
आर्त्तवादर्शनम्।	×	×	×	×	×	×	×	×	×	हीनबलम्।
मूत्रप्रसेकः।	×	×	?						×	,,
प्रातर्ग्लानिः।	?	×	×	×	?	?	?	?	?	,,
स्तनपरिवर्त्तनानि।		×	×	×	×	×	×	×	×	हीनमध्यबलम्।
गर्भाशयवृद्धिमार्दवे।	?×	×	×	×	×	×	×	×	×	मध्यबलम्।
अन्तर्योनिक स्पन्दनम्।		×	×	×	×	×	×	×	×	,,
गर्भाशयविरताकुञ्चनम्।			×	×	×	×	×	×	×	,,
योन्या वर्णविपर्यासः।			?	×	×	×	×	×	×	,,
गर्भप्रत्याघातः।				×	×	×	×			,,
गर्भाशयध्वनिः।				×	×	×	×	×	×	,,
किरणचित्रपरीक्षणम्।				×	×	×	×	×	×	उत्तमबलम्।
गर्भहृच्छन्दः।				?	×	×	×	×	×	,,
गर्भाङ्गानुज्ञानम्।						×	×	×	×	,,
गर्भचेष्टनम् (परवेद्यम्)।							×	×	×	,,
नालध्वनिः।							?	×	×	,,

प्राञ्चस्तु पुनः सद्योऽनुगतगर्भभेदेन पर्यागतगर्भभेदेन च द्विधा गर्भलक्षणानि व्याचक्षते, तद्यथा :—

(१) तत्र सद्योगृहीतगर्भाया लिङ्गानि—श्रमो ग्लानि· पिपासा सक्थिसदन शुक्रशोणितयोरववन्धः स्फुरणञ्च योनेः ।

—सु० शा० ३ ।

निष्ठीविका गौरवमङ्गसादस्तन्द्राप्रहर्षौ हृदयव्यथा च ।
तृप्तिश्च वीजग्रहणञ्च योन्या गर्भस्य सद्योऽनुगतस्य लिङ्गम् ॥

—च० शा० २ ।

लिङ्ग तु सद्योगर्भाया योन्या वीजस्य सङ्ग्रहः ।
तृप्तिर्गुरुत्व स्फुरण शुक्रास्रानुवन्धनम् ॥
हृदयस्पन्दन तन्द्रा तृड्ग्लानिर्लोमहर्षणम् ।

—वा० शा० १ ।

अथ नार्या सद्योगृहीतगर्भायाश्च लिङ्गम्, योन्या बीजग्रहणं तृप्तिर्गरिमा स्फुरणा शुक्रार्त्तवयोरननुवन्धश्च । तथा प्रहर्षो हृल्लासस्तन्द्राङ्गसाद· प्रसेको हृदयव्यथा ग्लानि पिपासा च ।

—सङ्ग्रहशा० २ ।

---

(१) तत्रेत्यादि—सद्यस्तत्क्षणमेव, किं वा सद्य पदात् मासमितः सार्धैकमासमितो वाऽन्यक्तगर्भकालो ग्राह्य । श्रमादयस्तु गर्भशल्यजनित-क्षोभात् गर्भपोषणार्थं जायमानशक्तिक्षयाद्वा मातुः सम्भवन्ति । शुक्रशोणितयोर-ववन्ध =पुंशुक्रस्त्रीशोणितयोर्योनिमुखादवमन बहिरनि सरणम्, किं वा शुक्रमिह गर्भाशयस्य पिच्छिलास्राव उच्यते । आर्त्तवमिव तदपि प्राप्तगर्भां नानुवध्ना-तीति भाव । स्फुरणम्=अङ्गस्फुरणमिव चालन कम्पो वा । तत्र श्रमा-दयोऽस्थिराणि शुक्रशोणितावबन्धस्तु स्थिर लिङ्गम् । निष्ठीविकेत्यादि—प्रहर्षो रोमहर्ष·, अप्रहर्ष इति छेदे तु ग्लानि । बीजग्रहणम्=शुक्रास्राऽप्रव-र्त्तनम् । लिङ्गमित्यादि—बीजस्य =गर्भाख्यस्य, योन्या =करणभूतया, सङ्ग्रहः =सम्यग्ग्रह । गुरुत्व स्फुरणा च कुक्षेर्भवति ।

(२) आर्त्तवादर्शनमनन्नाभिलाषः छर्दिररोचकोऽम्लकामता च विशेषेण, श्रद्धाप्रणयनमुच्चावचेषु भावेषु, गुरुगात्रत्वम्, चक्षुषोर्ग्लानिः, स्तनयोः स्तन्यम्, ओष्ठस्तनमण्डलयोश्च कार्ष्ण्यमत्यर्थम्, श्वयथुः पादयोरीषत्, लोमराज्युद्गमः, योन्याश्चाटालत्वमिति गर्भे पर्यागते रूपाणि भवन्ति ।

—च० शा० ४ ।

स्तनयोः कृष्णमुखता रोमराज्युद्गमस्तथा ।
अक्षिपक्ष्माणि चाप्यस्याः सम्मील्यन्ते विशेषतः ॥
अकामतश्छर्दयति गन्धादुद्विजते शुभात् ।
प्रसेकः सदनं चापि गर्भिण्या लिङ्गमुच्यते ॥

—सु० शा० ३ ।

.... तत्र व्यक्तस्य लक्षणम्
क्षामता गरिमा कुक्षौ मूर्च्छाच्छर्दिररोचकः ॥
जृम्भा प्रसेकः सदनं रोमराज्याः प्रकाशनम् ॥
अम्लेष्टता स्तनौ पीनौ सस्तन्यौ कृष्णचूचुकौ ।
पादशोफो विदाहोऽन्ने श्रद्धाश्च विविधात्मिका ॥

—वा० शा० १ ।

क्रमेण तु व्यक्तगर्भाया कुक्षिगात्रगौरवं क्षामनेत्रस्वरता योनिरोमसंलुलनं निद्रा जृम्भणं मूर्च्छा छर्दिररुचिः पादशोफोऽम्लेऽभिलाषस्तेषु तेषु चोच्चावचेषु भावेष्विति । तस्याश्च रजोवाहिनां स्रोतसां वर्त्मान्युपरुध्यन्ते गर्भेण । तस्मात्तत परमार्त्तवं न दृश्यते । ततस्तदधः प्रतिहतमपरमपर

---

(२) चाटालत्वम्=सविवृतत्वम्, केचित्तु आटालत्वमिति छेदमाहुः । पर्य्यागते=सर्वतोभावेन समागते । तेन प्रथममासि ईषद्रूपेण लिङ्गान्येतानि भवन्ति, द्वितीयमासे मध्यमरूपेण, तृतीयमासे पूर्णरूपेणेति गङ्गाधरः ।

क्रमेणेत्यादि—संलुलनं=चलनं व्यालोलता वा ।

चोपचीयमानमपरेत्याहुः । जरायुरित्यन्ये । स्थिते रक्ते रोमराजि' प्रादुर्भवति । जरायुशेषं चोर्ध्वमसृक् प्रतिपद्यते । तस्मात् पीनकपोलपयोधरता कृष्णौष्ठचूचुकत्वं च । स्तनाश्रयमेव च कफोपरञ्जितं स्तन्यतामुपगतं प्रसूताया पुनराहाररसेनाप्यायते ।

—सङ्ग्रहशा० २ ।

अथ सापेक्षनिश्चितिः ।

तत्र प्रथमे मासि निदानदृशा न किमपि वक्तुं शक्यम् । द्वितीयात् सार्धचतुर्थं यावदपि प्रायेण लक्षणसमष्ट्या सम्भाव्यत एव गर्भस्थितिः । निःसंशयनिदानं तु पञ्चममासात् परमेव प्रबलगर्भलिङ्गैर्भवतीति प्रागुक्तगर्भलक्षणानां बलकालपर्य्यालोचनेन स्पष्टम् । सहावस्थितैर्विकारविशेषैरुपद्रुते तु दशमेऽपि मासे न सुकरो विनिर्णयः । सन्ति चेह केचन तद्भिन्नतत्सदृशा अवस्थाविशेषा, येभ्यो गर्भस्य व्यावर्त्तनं नितरामपेक्षते । तद्यथा—

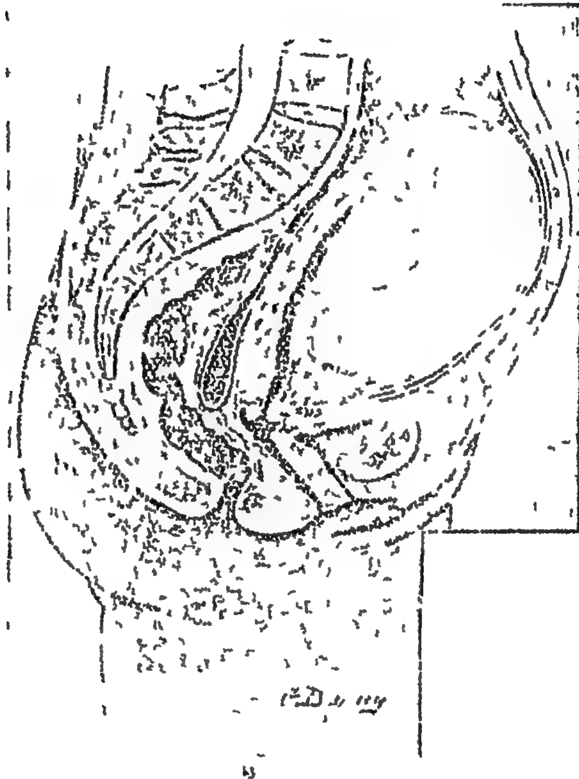
(१) गर्भेतरहेतुकम् आर्त्तवादर्शनम् —यथा नाम प्राकृतमार्त्तवदर्शनं गर्भाभावस्य लिङ्गं भवति न तथा केवलमार्त्तवाऽदर्शनं गर्भस्य । बालयुवतीनां हि प्रायेण दुःस्वास्थ्यादिहेतुना पुष्पं लुप्यते क्षयकालोपस्थानेन च प्रौढानाम् । तत्र लक्षणसमष्ट्या गर्भस्थितिर्निर्णेया । आर्त्तवादर्शनं, प्रातर्ग्लानिः, जठरार्बुदं, स्तनपरिवर्त्तनानि, योनिवर्णविपर्यासश्चेति च लक्षणसमष्टिः ।

आप्यायते=आसंस्कारक्षयात्, येन प्रसूताया भावि स्तन्यं नियतकालं भवतीतीन्दुः । सापेक्षनिश्चितिः Differential Diagnosis (१) Amenorrhoea from causes other than pregnancy लक्षणसमष्टिः Symptom-Complex

(२) गर्भेतरहेतुका गर्भाशयवृद्धि.—गर्भाशयो हि गर्भेतरहेतुभिरपि वर्धते। तद्यथा—गर्भाशयजीर्णशोथः, गर्भाशयार्बुदानि, रक्तगुल्म-

[५० चित्रम्]

गर्भाशयमांसार्बुदम्।



पञ्चमासिकगर्भे इव लक्ष्यमाणम्।

---

(२) Enlargement of the uterus from causes other than pregnancy

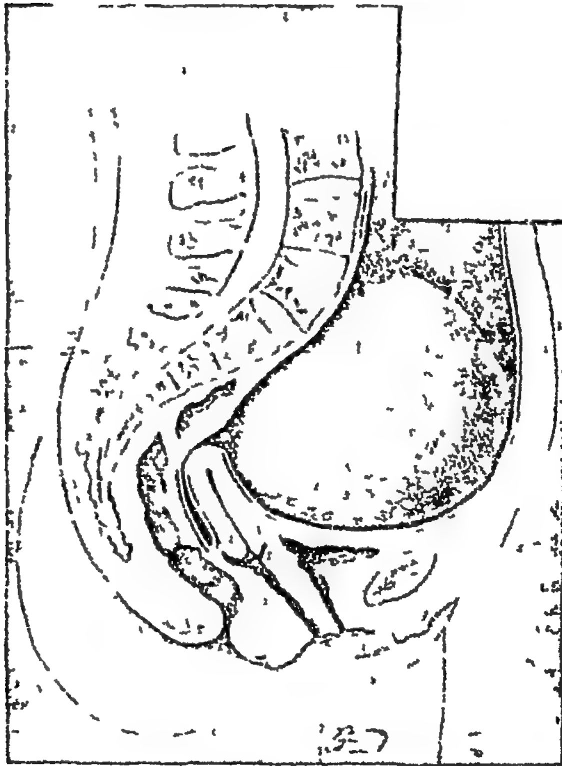
श्चेति। (क) गर्भाशयजीर्णशोथ'—अत्र हि गर्भाशयो गर्भापेक्षया कठिनतरो भवति। गोलकाकृतित्व ग्रीवागात्रमध्यभागस्य मार्दवं च नोपलभ्यते। ग्रीवा चापि प्रायेण (अन्यत्र ग्रीवामुखपाकात् गर्भाशयसरम्भाच्च) कठिनतरैव प्रतीयते। शूलहीनसवृते तु गर्भाशये दुष्करमेव निदानम्। तत्र रोगेतिवृत्त शरणम्। (ख) गर्भाशयार्बुदानि—लघुसौत्रमांसार्बुदैरभिवृद्धो गर्भाशयः सगर्भ इव कदाचन प्रतीयेत। गभीरस्थितानि लघ्वर्बुदानि तु समवृद्धिकरत्वात् विशेषेण गर्भसाम्यमावहन्ति। इतिवृत्त चात्र शरणम्, विशेषतश्च पुष्पदर्शनस्य। लक्षणसमष्टिरपि नोपलभ्यतेऽन्यत्र जठरार्बुदात्। महार्बुदानि तु सुखेन निर्णीयन्ते। तत्र प्रायेण गर्भाशयस्य विषमवृद्धिः कठिनतरस्पर्शता च दृष्टा, उत्तमवलगर्भलक्षणाना चाभावः। समवृद्धिरपि लभ्येत। अथ च वृद्धिवैषम्यमपि कदाचन गर्भाङ्गानीव प्रत्ययमावहेत। वस्तुतस्तु यदा गर्भगर्भाशयार्बुदयो., गर्भाशयार्बुदबीजग्रन्थ्यर्बुदयोः, जलोदरगर्भाशयार्बुदयोर्वा सहावस्थितिस्तदैव विशेषेण निदानसौकर्यविरहो भवति। इतिवृत्तम्, सज्ञामाहृत्य विधिना परीक्षणम्, किरणचित्रणञ्चेह निःसंशयकरम्। (ग) रक्तगुल्मः—उत्तरयोनिसंवरणाद्, गर्भाशयगुहायामार्त्तवमुपरुध्यत। उपरुध्यमानं च तत्

(क) Chronic Metritis & Endometritis ग्रीवामुखपाकः Erosion of the cervical mucous membrane गर्भाशयसरम्भः Congestion of the uterus शूलहीनसवृत्तो गर्भाशय. Metritis, associated with sub-involution (ख) Uterine tumours सौत्रमासार्बुदम् Fibro-myomatous tumour गभीरस्थितानि Interstitial or Submucous समवृद्धिः Unifom enlargement विषमवृद्धिः Irregular enlargement (ग) Haematometra उत्तरयोनिसवरणम Atresia of the upper part of the vagina or the cervix

सार्त्तवादर्शनं गर्भाशयवृद्धिकरत्वात् गर्भावभासं जनयति । इतिवृत्तं योनिपरीक्षणं चात्र शरणम् । तत्र मासि मासि (आर्त्तवस्रावकाल इति यावत्) सशूलञ्च गर्भाशयकायमानवृद्धिरितिवृत्तात्, संवरणोपस्थितिश्च योनिपरीक्षणादवगम्यते । गर्भाशयश्च भृशमुत्तांसितः प्रतीयते ।

[५१ चित्रम्]

बीजग्रन्थिभवो द्रवगर्भग्रन्थिः ।



(पाञ्चमासिकगर्भ इव लक्ष्यमाणः)

(३) बीजकोषार्बुदानि :—लघुबीजग्रन्थ्यर्बुदं तावत् बहिराशयिको गर्भ इवाभासते । सापेक्षनिदानं च तयोर्यथाऽवसरं वक्ष्यामः । महा-

बहिराशयिको गर्भः Extra-uterine pregnancy

र्बुदाना सगर्भगर्भाशयसरूपता तु नितरां स्पष्टा (५१ चित्रम्)। तत्र संज्ञाहरणं विधाय सम्यक् परीक्षणीयम्। तथा चार्बुदसन्निधौ प्रकृतिमनुल्लङ्घ्य वर्त्तमानो गर्भाशय. सुतरा निर्धार्यते। बीजग्रन्थ्यर्बुदानां वृद्धिरपि विलम्बिता भवति। न च तेषु प्रायेण रजो विलुप्यते स्तनयोः कृष्णमुखता, प्रातर्ग्लानिः, योन्या वर्णविपर्यासः, ग्रीवामार्दवम्, गर्भाशयध्वनिः, गर्भाशयविरताकुञ्चनं च न लभ्यन्ते। उत्तमवलगर्भलक्षणानां चाप्यभावः।

(४) गर्भेतरहेतुका जठराभिवृद्धि —उदरमपि स्त्रिया गर्भेतरहेतुभिरभिवर्धते। तद्यथा—

(क) वातबस्ति —वस्तिकण्ठप्रपीडनात् मूत्रातिपूर्णो भृशमाततश्च मूत्राशयः कदाचन आनाभि प्रसृतो गर्भवत्तिष्ठति। विरताकुञ्चनान्यपि लभ्येरन्। परन्तु गर्भप्रत्याघातहृच्छब्दयोरभावात् शलाकाप्रवेशमात्रेण जठरार्बुदविलोपाच्च न सशय.।

(ख) मेदस्विता—आर्त्तवादर्शनोपप्लुता मेदोवृद्धिरपि गर्भावभास जनयति। उपलभ्यते चेयमवस्था रज.क्षयकालोपस्थाने विशेषेण। तत्रेतरगर्भलक्षणानामभावात्संशयनिरसनम्।

(ग) वातोदरम् :—वातोदर नाम गर्भधारणाय भृशमुत्कण्ठिताया वातलस्वभावायाश्च स्त्रियाः कदाचिज्जायमानो गर्भिण्यहमित्यात्मकः केवलमतत्त्वाभिनिवेशः। आसन्नरजःक्षयकालायाश्च प्रायेणाय दृश्यते। आर्त्तवादर्शनप्रातर्ग्लानिगर्भस्फुरणस्तनपरिवर्त्तनजठराभिवृद्धिरूपाणा गर्भ-

---

(४) Abdominal enlargement from causes other than pregnancy. (क) An Overfull Distended Bladder वस्तिकण्ठम् The neck of the bladder (ख) Accumulation of Fat in the Abdominal wall or Omentum (ग) Phantom Pregnancy or Pseudocyesis

लिङ्गानामपि प्रायेणोपलम्भात् गर्भोऽयमिति सा मनुते। अथ च मनसा तद्विभाविनी तास्ता गर्भचेष्टा विचेष्टमाना वैद्यस्यापि चेत. सशाययति। तत्रेतिवृत्त सम्परीक्षणं च शरणम्। यथा हि—आर्त्तवादर्शनं हेत्वन्तरेणापि जायते। एव प्रातर्ग्लानिरपि। अन्त्रस्फुरणं गर्भस्फुरणेन ग्रहीतु शक्यम्। स्तनगौरवपीनते च जीर्णस्तनशोथात् मेदश्चयादपि सम्भाव्येते। जठराभिवृद्धिस्तु महाप्राचीराद्दृढसङ्कोचादभिजायते। प्राचीराकुञ्चनादधः पीडिता ह्युदरावयवाः शिथिलोदरभित्तिमुद्गमय्य जठराभिवृद्धिं निर्वर्त्तयन्ति। न च सा नियतप्रमाणा भवति। कदाचिदकाल एव पूर्णकालिकीव भासमाना दृष्टा। वाताध्मातमिव च तदुदरं प्रतीयते। युग्मविधिना परीक्षणे गर्भाशयोऽवृद्ध एव लभ्यते। सञ्ज्ञाहरणे च महाप्राचीरास्थगनात् विलीयते जठराध्मानम्। ग्रीवामार्दव, योन्या वर्णविपर्यासः, हृच्छब्दादीनि प्रबलगर्भलक्षणानि च नोपलभ्यन्ते।

(घ) दकोदरम्—जातोदकमुदरं सामान्यतो न दुर्निर्णेय भवति। गर्भदकोदरयोरर्बुददकोदरयोर्वा यदा सहावस्थितिस्तदैव विशेषेण विचिकित्साऽवसरः। इतिवृत्त, सञ्ज्ञामाहृत्य सम्परीक्षणम्, किरणचित्रणञ्च तत्र शरणम्।

अथाहुः प्राञ्चः—

रक्तगुल्मः।

वातकफावृतमार्गाणा चाप्रवर्त्तमान पित्तलैरुपाचरेत्। तद्धि वर्द्धमानमन्तर्वर्त्तमान सशुक्लमशुक्ल वा जीवरहित वातलान्यासेवमानाया योषितो गर्भलिङ्गानि दर्शयद् गुल्मीभवति। तत्र गुल्मचिकित्सितमीक्षेत।

—सङ्ग्रहशा० १।

तत्र यदासावृतुमती नवप्रसूता योनिरोगिणी वा वातलान्यासेवेत तदाऽस्या वायुः प्रकुपितो योन्या मुखमनुप्रविश्यार्त्तवमुपरुणद्धि। तदुपरुध्यमान मासे मासे कुक्षिमभिनिर्वर्त्तयति गर्भलिङ्गानि च हृल्लासतन्द्राङ्ग-

सादृश्यदौहृदस्तन्यदर्शनादीनि। वायुसंसर्गात् पुनः पित्तप्रकोपतया च वातपित्तगुल्मरूपाणि स्पर्शासहत्वदाहातीसारादीनि गर्भाशये च सुवहं शूलं तथा योन्या दौर्गन्ध्यमास्रावं च करोति। गुल्मश्च न गर्भ इवाङ्गैः पिण्डित एव तु चिरेण सशूलं स्पन्दते। गुल्म एव वर्द्धते न कुक्षिः।

—सु० उ० ४२। ११।

शोणितगुल्मस्तु खलु स्त्रिया एव भवति न पुरुषस्य। गर्भकोष्ठार्त्तवागमनवैशेष्यात् पारतन्त्र्याद्वैशारद्यात् सततमुपचारानुरोधात् वेगानुदीर्णानुपरुन्धत्या आमगर्भे वाप्यचिरात् पतिते अथवाऽप्यचिरप्रजाताया ऋतौ वा वातप्रकोपणान्यासेवमानाया क्षिप्रं वातः प्रकोपमापद्यते। स प्रकुपितो योनिमुखमनुप्रविश्यार्त्तवमुपरुणद्धि मासि मासि। तदार्त्तवमुपरुध्यमानं कुक्षिमभिवर्धयति।

तस्याः शूलकासातीसारच्छर्द्यरोचकाविपाकाङ्गमर्दनिद्रालस्यकफप्रसेकाः समुपजायन्ते स्तनयोश्च स्तन्यमोष्ठयोः स्तनमण्डलयोश्च कार्ष्ण्यं ग्लानिश्चक्षुषोर्मूर्च्छा हृल्लासो दौहृदं श्वयथुश्च पादयोरीषच्चोद्गमो रोम्णो योन्याश्चाटालत्वमपि च योन्या दौर्गन्ध्यमास्रावश्चोपजायते केवलश्चास्या गुल्मः स्पन्दते। तमगर्भं गर्भिणीमित्याहुर्मूढाः।

—च० नि० ५।

ऋतावनाहारतया भयेन विरूक्षणैर्वेगविनिग्रहैश्च।
संस्तम्भनोल्लेखनयोनिदोषैर्गुल्मं स्त्रियो रक्तभवोऽभ्युपैति॥
यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गैश्चिरात् सशूलः समगर्भलिङ्गः।
स रौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः॥

—च० चि० ५।

नवप्रसूताऽहितभोजना या या चामगर्भं विसृजेदृतौ वा।
वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं सरुजं सदाहम्॥
पैत्तस्य लिङ्गेन समानलिङ्गं विशेषणं चाप्यपरं निबोध।

न स्पन्दते नोदरमेति वृद्धिं भवन्ति लिङ्गानि च गर्भिणीनाम् ।
त गर्भकालातिगमे चिकित्स्यमसृग्भवं गुल्ममुशन्ति तज्ज्ञाः ॥

—सु० उ० ४२ ।

ऋतौ वा नवसूता वा यदि वा योनिरोगिणी ।
सेवते वातलानि स्त्री क्रुद्धस्तस्याः समीरणः ॥
निरुणद्ध्यार्त्तवं योन्या प्रतिमासमवस्थितम् ।
कुक्षिं करोति तद्गर्भलिङ्गमाविष्करोति च ॥
हृल्लासदौहृदस्तन्यदर्शनं क्षामतादिकम् ।
क्रमेण वायुसंसर्गात्पित्तयोनितया च तत् ॥
शोणितं कुरुते तस्या वातपित्तोत्थगुल्मजान् ।
रुक्स्तम्भदाहातीसारतृड्ज्वरादीनुपद्रवान् ॥
गर्भाशये च सुतरां शूलं दुष्टासृगाश्रये ।
योन्याश्च स्रावदौर्गन्ध्यतोदस्पन्दनवेदनाः ॥
न चाङ्गैर्गर्भवद् गुल्मः स्फुरत्यपि तु शूलवान् ।
पिण्डीभूतः स एवास्याः कदाचित् स्पन्दते चिरात् ॥
न चास्या वर्धते कुक्षिर्गुल्म एव तु वर्धते ।

—वा० नि० ११ ।

दुष्प्रजाताऽमगर्भा च गर्भस्रूर्बहुमैथुना ।
अन्वक्तगर्भकामा च बहुशोतार्त्तवा च या ॥
उदावर्त्तनशीला च वातलान्ननिषेविनी ।
या स्त्री तस्याः प्रकुपितो वातो योनिं प्रपद्यते ॥
निरुणद्ध्यार्त्तवं तत्र मासिकं सञ्चिनोति च ।
रक्ते च संस्थिते नारी गर्भिण्यस्मीति मन्यते ॥
स्तनमण्डलकृष्णत्वं रोमराजिः सदोहदा ।
गर्भिणीरूपमव्यक्तं भजते सर्वमेव तु ॥

वि(श्र)पाकपाण्डुकार्श्यानि भवन्त्यभ्यधिकानि तु।
इत्येवंलक्षण स्त्रीणा रक्तगुल्म प्रचक्षते ॥

—गुल्मचिकित्साध्याये कश्यपः।

यदा ऋतुमती नारी प्राप्तान् वेगान् विधारयेत्।
ह्रिया त्रासाद् व्यवायाद्वा वर्त्तमानानधोगतान् ॥
एवमादिभिरप्यन्यैरुदावृत्तै प्रकोपित ।
वायु शोणितमादाय प्रतिस्रोतः प्रपद्यते ॥
गर्भाशयमुपावृत्तस्तस्या वहति शोणितम्।
मारुतश्च्युतगर्भाया यदा मिथ्योपचर्यते ॥
तस्या स वायुरुद्वृत्त प्रतिघातात् सशोणित ।
गत्वा गर्भाशय रुद्धः स्थिरत्वमुपपद्यते ॥
संवृत्त शोणित तत्र मारुतो विषम गत ।
रजोवहा समावृत्त संस्तम्भयति गर्भवत् ॥
स गुल्म स्पन्दतेऽभीक्ष्ण मारुतेन समीरितः।
दर्शयन् यानि रूपाणि तानि वक्ष्यामि सर्वश ॥
कासते शूल्यते चैव ज्वर्यतेऽथातिसार्यते।
मन्यते सर्वगात्राणि मूर्च्छितानि गुरूणि च ॥
तमोऽस्या जायतेऽभीक्ष्ण कार्श्यञ्चैव निगच्छति।
वमत्यभीक्ष्णशो भुक्तमन्न चास्यै न रोचते ॥
जायन्ते चोदरे गण्डा नील चास्याः प्रदृश्यते।
स्तनान्तर च नाभिश्च लोमराजी च मूर्च्छिता ॥
ओष्ठौ च कृष्णौ भवतस्तथैव स्तनचूचुकौ।
पयोधरौ प्रसिच्येते दोहद च निगच्छति ॥
नानारसान् प्रार्थयते निष्ठीवति मुहुर्मुहु ।
शुभाद्गुद्विजते गन्धाद्वर्णश्चास्या प्रसीदति ॥

गर्भिण्या यानि रूपाणि तानि सदृश्य तत्त्वतः ।
वर्षाणि हरति व्याधिं गर्भोऽयमिति दुःखिता ॥
केनचित्त्वथ कालेन निर्भेदं यदि गच्छति ।
ततो गुल्मप्रमुक्ता सा ज्ञातिमध्ये प्रभाषते ॥
गर्भिण्यह चिरं भूत्वा प्रच्युते गर्भशोणिते ।
गर्भरूप न पश्यामि तत्र मे सशयो महान् ॥
तामिदं प्रतिभाषन्ते सर्वग्रामकुतूहलाम् ।
दिव्यो गर्भो व्यतिक्रान्तो नैगमेषेण ते हृतः ॥
इत्येनामबुधाः प्राहुर्हृतं सर्वमशोभनम् ।
परिप्लुत इति प्राहुः कुशला ये मनीषिणः ॥
गुल्मश्चय इति प्रोक्तो रक्तं रुधिरमुच्यते ।
रक्तस्य सञ्चयस्तेन रक्तगुल्म इति स्मृतः ॥
गर्भवच्चेष्टते नायं किन्तु सादृश्यदर्शनात् ।
गर्भोऽयमिति मन्वाना मनसा तद्विभाविनी ॥
नारी विचेष्टते तास्ता गर्भचेष्टाः पृथग्विधा. ।
दोहदं यत्करोतीति शृणु तत्रापि कारणम् ॥
य एव हि रसाः प्रायो धातूनां वृद्धिहेतव· ।
तेषामेवाभिलाषः स्याद् योनिसाधर्म्यतत्त्वत ॥
वातपित्तान्वितं रक्त चीयमानं विकारवत् ।
कट्वम्ललवणादीना रसाना गृद्धिमावहेत् ॥
गर्भिण्यस्मीति तत्प्रीतिप्रेमसकल्पसम्भृतः ।
प्रस्नुता जायते नार्यास्तेन स्तन्यं प्रवर्त्तते ॥
सर्वा रसवहा नाड्यः समन्तान्नाभिमाश्रिताः ।
गर्भो विवर्धमानश्च सम्पीडयति ताः स्त्रिया· ॥
तद्वच्च रक्तगुल्मोपि पीडयन्नुपचीयते ।
ताभिश्च पीड्यमानाभिर्न सम्यग्वर्त्तते रसः।

आपाण्डुगण्डतादीनि लक्षणानि भवन्त्यतः ।
कथं प्रकर्षते कालमिति तत्रापि मे शृणु ॥
विवृद्धेरिह सारूप्याद्गर्भोऽयमिति निश्चिता ।
सरक्तेऽभिघातेभ्यः कुक्कुट्यण्डमिवाङ्गना ॥
तदुपायकरान् हेतून् कथञ्चन सेवते ।
श्रमोपवासतीक्ष्णोष्णाचारादीनि च सर्वशः ॥
स एव याप्यमानस्तु यथाकालं प्रकर्षते ।
व्यापत्तिहेतुमासाद्य कालेनाल्पेन वा पुनः ॥
भेदं गच्छत्यधस्ताद्धि जलकुम्भ इव च्युतः ।
केचिदिच्छन्ति गुल्मस्य मासाद्दशमात् परम् ॥
परिपाकं फलस्येव स्वकालपरिणामतः ।
अङ्गप्रत्यङ्गवान् गर्भस्तैरेव च विचेष्टते ॥
रक्तगुल्मस्तु वृत्तः स्याल्लोष्टवच्च विचेष्टते ।
स्थानात्स्थानं व्रजन् गर्भो व्याविद्धं परिवर्तते ॥
नाभेरधस्ताद् गुल्मोऽयमव्याविद्धं विवर्तते ।
आनुपूर्व्येण गर्भश्च अहन्यहनि वर्धते ॥
विपरीतं हि गुल्मस्तु मन्दं मन्दं विवर्धते ।
तां तामवस्थां गर्भस्तु मासि मासि प्रपद्यते ॥

—रक्तगुल्मविनिश्चयाध्याये काश्यपः ।

अन्यच्चापि :—

अन्तर्निरुद्धं पवनेन नार्या गर्भं व्यवस्यन्त्यबुधाः कदाचित् ।
गर्भस्य रूपं हि करोति तस्यास्तदस्रमस्रावि विवर्धमानम् ॥
तदग्निसूर्यश्रमशोकरोगैरुष्णान्नपानैरथवा प्रवृत्तम् ।
दृष्ट्वाऽसृगेव न च गर्भमेव केचिन्नरा भूतहृतं वदन्ति ॥

ओजोऽशनानां रजनीचराणामाहारहेतोर्न शरीरमिष्टम् ।
गर्भं हरेयुर्यदि ते न मातुर्लब्धावकाशा न हरेयुरोजः ॥

—च० शा० २ ।

अवस्थित लोहितमङ्गनाया वातेन गर्भं ब्रुवतेऽनभिज्ञाः ।
गर्भाकृतित्वात्कटुकोष्णतीक्ष्णैः स्रुते पुनः केवल एव रक्ते ॥
गर्भं जडा भूतहृत वदन्ति मूर्त्तेर्न दृष्टं हरणं यतस्तैः ।
ओजोऽशनत्वादथवाऽन्यथास्थैर्भ तैरुपेक्ष्येत न गर्भमाता ॥

—वा० शा० २ ।

तदेव कदाचिदार्त्तवं सौम्यैर्बृंहणात्मभिराहारविहारैः स्तम्भितमनुपद्रव-मेवोदर गर्भाधिष्ठितमिव वर्धयति। येन तामगर्भां गर्भिणीमाहुर्मूढाः। ततो विपरीतैर्यदृच्छया वा प्रवृत्ते रक्ते गर्भशरीरमपश्यन्तो भूतहृतमित्यज्ञा ब्रुवते। यस्मात्सम्भवत्योजसोऽपहरण रक्षोभिर्नतु शरीरापहरणमनिष्टत्वा-दशक्तेर्वा। इच्छाशक्त्योर्हि प्रवृत्तेरुपलब्धिः। न च दृश्यते कस्यचिद-मानुषैर्देहापहार। यदि च दृष्टमपि समुल्लङ्घ्य केचिदतिशक्तियुक्ता गर्भस्य शरीराक्षेपे प्रवर्त्तेरन्ते तदा कथमिव प्राप्तावसरास्तज्जननीमुपेक्षेरन् ।

सङ्ग्रहशा० १ ।

वातबस्तिः ।

मूत्रसन्धारिणः कुर्याद्रुध्वा वस्तेर्मुख मरुत् ।
मूत्रसङ्ग रुजं कण्डूं कदाचिच्च स्वधामतः ॥
प्रच्याव्य बस्तिमुद्वृत्त गर्भाभं स्थूलविप्लुतम् ।
करोति तत्र रुग्दाहस्पन्दनोद्वेष्टनानि च ॥
विन्दुशश्च प्रवर्त्तेत मूत्रं बस्तौ तु पीडिते ।
धारया द्विविधोऽप्येष वातबस्तिरिति स्मृतः ॥

—वा० नि० १० ।

वातोदरम्।

कदाचिद्वा गर्भ इव वातोदर भवति। तद्वातोपशमनैरुपशाम्यति।

—सङ्ग्रहशा० १।

कतिमासिको वा गर्भः?

अथ मासिकक्रमेण लक्षणजात सङ्कलय्य प्रश्नोऽय शिष्यबुद्धिवैशद्याय समाधीयते। तद्यथा—

प्रथमे मासि :—आर्त्तवादर्शनम्, स्तनयोश्चेषद् वैकल्यम्।

द्वितीये मासि :—आर्त्तवादर्शनम्, प्रातर्ग्लानि, चूचुककार्ष्ण्यम्, गर्भाशयवृद्धि, हेगरलक्षणञ्च।

तृतीये मासि :—आर्त्तवादर्शनम, प्रातर्ग्लानि, स्तनमण्डलकार्ष्ण्यम्, स्तनास्रावः, ग्रीवामार्दवम्, योनिग्रीवयोर्वर्णविपर्य्ययः, गर्भाशयश्च वर्धमान. श्रोणिकण्ठकरेखामधिकुरुते।

चतुर्थे मासि :—आर्त्तवादर्शनम्, प्रातर्ग्लानिः, स्तनयोः कृष्णमुखता, पिडकाविर्भाव, ग्रीवामार्दवम, योन्या वर्णविपर्ययः, गर्भाशयध्वनि, गर्भस्फुरणम, गर्भप्रत्याघात, गर्भाशयश्च वर्धमानो नाभि-भगसन्धानिकयोर्मध्यमधितिष्ठति।

पञ्चमे मासि :—गर्भहृच्छब्द, उपमण्डलनिर्माणम्, चतुर्थमासोक्तलक्षणानि च। विरताकुञ्चनशीलो गर्भाशयश्च नाभेर्द्व्यङ्गुलमधस्ताद्वर्त्तते।

षष्ठे मासि :—पूर्वोक्तानि, किक्किसा, वर्णराजिश्च। गर्भाशयस्तु वर्धमानो नाभिशीर्षमभिव्याप्नोति।

सप्तमे मासि :—सकलान्येवोत्तमवलगर्भलक्षणानि स्पष्टतमानि भवन्ति। गर्भाशयश्च नाभितस्त्र्यङ्गुलमूर्ध्वं प्रवर्धते।

अष्टमे मासि :—गर्भाशयो नाभ्यग्रपत्रयोर्मध्यमधिकुरुते। नालध्वनेश्च सम्भव।

नवमे मासि :—गर्भाशयोऽग्रपत्र यावत्प्रगतो भवति ।

दशमे मासि :—गर्भाशयः किञ्चिदवस्रस्य पुनरष्टममासोक्तसीमानमायाति ।

कीदृगवस्थो गर्भः ?

गर्भो जीवति न वा ?—तत्र निर्विकारमाप्यायनमेव गर्भस्य जीवनलक्षणम् । विशेषतस्तु जठरस्य क्रमिकाभिवृद्धिः स्तनपरिवर्त्तनाना स्थायित्वं गर्भाङ्गचेष्टा गर्भहृच्छब्दश्चेति तज्जीवनसाक्षिभूतानि लिङ्गानि भवन्ति ।

तत्र पूर्वगर्भकाले प्राणापगमश्चेत् गर्भाशयः पुनः पुनः परीक्षणेनापि तथास्थित एव ज्ञायते न तु वर्धमानः । स्तनावपि म्लायेते एव न तु वर्द्धते । गर्भलक्षणानि चास्या आर्त्तवादर्शनमन्तरा विलुप्यन्ति । गर्भाशयात् कपिशवर्णकश्चास्रावः प्रायेण स्रवति । क्वचित् पुनः पुनः स्वल्पा रक्तस्रुतिरपि दृष्टा । कलाविदरणे त्वास्रावस्य विस्रगन्धिताऽपि सम्भाव्यते ।

अथ चेदुत्तरगर्भकाले गर्भो विपद्येत हृच्छब्दो न श्रूयते, नानुभूयते गर्भचेष्टनम्, स्तनौ शिथिलीभवतः, उपमण्डलं नश्यति, गर्भाशयो न वर्धते (अपि तु क्रमेण गर्भोदकपरिशोषणाद् हीयते), शिरःकपालानि च योनिपरीक्षणेन शिथिलास्थिराणि प्रतीयन्ते (परस्परमाश्लिष्टानीव च किरणचित्रणेन) । कालेन विगलिते तु गर्भे विषसञ्चरणादस्वस्था गर्भिणी गौरवाङ्गसाददौर्बल्यक्षुन्नाशमुखवैरस्यदुःस्वप्नादीन्यनुभवति ।

मृतस्तु गर्भः प्रायेण शीघ्रमेव (आगामिन्यार्त्तवकाले) बहिर्भवति साकल्येन खण्डशो वा । अन्तर्वर्त्तमानो वा क्वचित् तिष्ठति कतिपयसप्ताहान् गर्भकालान्तं चापि यावत् ।

प्राञ्चोऽप्याहुः—

(१) तस्याः स्तिमितं स्तब्धमुदरमाततं शीतमश्मान्तर्गतमिव, भवत्यस्पन्दनो गर्भः, शूलमधिकमुपजायते, न चाव्यः प्रादुर्भवन्ति, योनिर्न

प्रस्रवति, अक्षिणी चास्याः स्रस्ते भवतः, ताम्यति, व्यथते, भ्रमते, श्वसिति, अरतिबहुला च भवति, न चास्या वेगप्रादुर्भावो यथावदुपलभ्यते, इत्येवलक्षणां मृतगर्भेयमिति विद्यात् ।

—च० शा० ८ ।

(२) गर्भास्पन्दनमावीना प्रणाशः श्यावपाण्डुता ।
भवत्युच्छ्वासपूतित्व शूलं चान्तर्मृते शिशौ ॥

—सु० नि० ८ ।

अन्यच्च—

यदा सोऽन्तर्मृतो गर्भः शूनो बस्तिरिवाततः ।
तेनावृताया नार्यास्तु कुक्षिरानह्यते भृशम् ॥
उत्क्षिप्यन्त इवाङ्गानि मूत्रबस्तिश्च भिद्यते ।
क्लोम प्लीहा यकृच्चैव फुप्फुसं हृदयं तथा ॥
गर्भेण पीडितं ह्येतदूर्ध्वं प्रक्रामति स्त्रियाः ।
सा शूयते मुह्यति च कृच्छ्रोच्छ्वासा च जायते ॥
पूतिगन्धस्तथा स्वेदो जिह्वा तालु च शुष्यति ।
वेपते भ्राम्यति तथा जीवित चोपरुध्यते ॥
एतैलिङ्ग विजानीयात् मृतं गर्भं चिकित्सकः ।

—डल्हणोद्धरणम् ।

(३) मृतेऽन्तरुदरं शीत स्तब्धं ध्मातं भृशव्यथम् ।
गर्भाऽस्पन्दो भ्रमस्तृष्णा कृच्छ्रादुच्छ्वसनं क्लमः ॥
अरतिः स्रस्तनेत्रत्वमावीनामसमुद्भवः ।

—वा० शा० २ ।

(४) विवृद्धे तु गर्भे स्तब्धं स्तिमित शीतमश्मगर्भमिवोदरमाभाति । शूलमधिकमुपजायते न च स्पन्दते गर्भो नाव्यः प्रादुर्भवन्ति न स्रवति

(४) यदा तु वृद्धो व्यापद्यते तदा गर्भिण्या स्तब्धोदरादिकरव करोतीतीन्दुः ।

योनिरक्षिणी चास्याः स्रस्येते तथा भृशमरतिपरीता व्यथतेऽन्यथा चेष्टते ताम्यति भ्राम्यति रोदित्यहर्निशं न स्वपिति पूत्युच्छ्वासा कृच्छ्राच्छ्वसित्यतिकष्टं प्राणिति जल्पतीत्येवंविधा स्त्रियं मृतगर्भां विद्यात्।

—सङ्ग्रहशा० ४।

कति वा गर्भाः ?

गर्भस्य तावदैक्यानैक्यविचारोऽपि पुरैव चेत् कृतः स्यात्, साधु भवेत्। किरणचित्रदर्शनम्, पृथक् पृथक् स्थानयोः (स्थानेषु वा) विषमस्पन्दसंख्यस्य हृदयद्वयस्य (हृदयानां वा) श्रोतृयुगलेन (श्रोतृभिर्वा) समकालिकशब्दश्रवणम्, स्पर्शपरीक्षया शिरोनितम्बहस्तपादानां सख्याधिक्यप्रत्ययश्च यम-त्रिकाद्यनेकगर्भाणामवबोधकलिङ्गानि भवन्ति।

अन्योपद्रुतो न वा ?

अन्योपद्रुतो नाम, अन्यैर्मिथ्योदयार्बुदश्रोणिसङ्कोचगर्भोदकातिरेकपुरःस्थापरादिभिरवस्थाविशेषैरुपद्रुत इति। यथास्वलक्षणैश्च तान् काले निर्दिशेत।

कदा च प्रसवो भविता ?

इह खलु विशिष्य तिथिनिर्धारणं, यत्र प्रसवो भविता, एकान्ततो दुःशकम्। अनुमानतस्तु या तिथिरवधार्यते सा सम्भाव्यमानप्रसवमासस्य केन्द्रभूतैव मन्तव्या। तस्या इतस्ततो हि प्रायेण प्रसवारम्भः। चतुर्धा च कालोऽस्य विनिर्णीयते—अन्तिमरजोदर्शनतिथितः, गर्भस्फुरणारम्भतिथितः, गर्भाशयवृद्धिसीमतः, गर्भाण्डदैर्घ्यतश्चेति।

(१) अन्तिमरजोदर्शनतिथितः—दशमासं (चत्वारिंशत्सप्ताहात्मकः) गर्भवास इति सामान्योक्तेरन्तिमरजोदर्शनारम्भतिथितो दशचान्द्र-

---

(१) From the date of last menstruation

मासानां (२८० दिवसाः) परिगणनात् सम्भाव्यप्रसवतिथिरायाति । तथा च गर्भकालोऽस्य गौराण्डपश्चाङ्गानुसारेण सप्तदिवसाधिकनवमासमित , भारतीयचान्द्रवर्षानुसारेण च पञ्चदशाधिकनवमासमित आपद्यते ।

(२) गर्भस्फुरणारम्भतिथितः—आदिमगर्भस्फुरणं हि सामान्यतोऽष्टादशसप्ताहे मात्राऽनुभूयते । तथा च स्फुरणानुभवतिथितो द्वाविंशतिसप्ताहाना परतो गणनेन प्रसवकाल आयाति ।

(३) गर्भाशयवृद्धिसीमतः—वर्धमानगर्भाशयस्य मासिकसीमनिर्देशः पूर्वं(१६५ पृष्ठे)मुक्तः । एवञ्च गर्भाशयसीम्ना गर्भकालस्यातीतमासान् विज्ञाय प्रसवकालोऽनुमातव्यः । अष्टमदशमयोस्तु सीमसाम्यम् । तत्र जठरातिवृद्ध्यधोभागगौरवहृदयबन्धनमुक्तिभिर्दशमो विपरीतलक्षणैश्चाष्टमो मासो निर्धारयितु शक्यः ।

(४) गर्भाण्डदैर्घ्यत.—गर्भकालस्योत्तरार्धे मापनयन्त्रेण गर्भाण्डदैर्घ्यं मातु शक्यम् । तत्र यन्त्रस्य फलकमेक योनिद्वारा गर्भाण्डस्याधरे प्रान्तेऽपरश्चोदरबाह्यतस्तदुत्तरप्रान्ते सम्यगाधीयते, मानफलञ्च निम्नसारणीमानेन परीक्ष्यते । इत्थञ्चापि गर्भकालस्यातीतमासान् विज्ञाय प्रसवकालोऽनुमीयते । अथ सारणि :—

गर्भकाल (सप्ताहेषु)	२६	२८	३०	३२	३४	३६	३८	४०
गर्भाण्डदैर्घ्यम्(प्राङ्गुलेषु)	७·२	७·६	७·९	८·३	८·८	९ २	९·५	९·७

प्रसङ्गाद्यात्र गर्भकालो विमृश्यते :—गर्भकालो नाम गर्भस्य गर्भाशयवासकाल । स च प्रायेण नवमासावधिको (२७० दिवसमितः) दृश्यते । मासाष्टकमितो (२४० दि०) न्यूनतमकालः दशमासमितः (३०० दि०) सार्धदशमासमितश्च (३१५ दि०) दीर्घतमकालो दृष्टः । कालभेदे चान्यर्थमिथुनीभाव-शुक्रशोणितसयोग संसृष्टबीजवपनानामनियत-

---

(२) From the date of quickening (३) From the height of the uterus (४) From the length of the foetal ovoid

गर्भकालः Duration of Pregnancy

कालप्रायतैव प्रधानो हेतुरभिमन्यते। अथ च कालातीतस्थायिताऽपि गर्भस्य दृष्टा, महाकायमानभारगर्भाणां दर्शनात्। अतएवाहुराचार्याः—

(१) तस्मिन्नेकदिवसातिक्रान्तेऽपि नवममासमुपादाय कालमित्याहुरादशमान्मासात्। एतावान् कालः। वैकारिकमतः परं कुक्षौ स्थानं गर्भस्य।

—च० शा० ४।

(२) नवमदशमैकादशद्वादशानामन्यतमस्मिन् जायते। अतोऽन्यथा विकारी भवति।

—सु० शा० ३।

(३) तस्मिंस्त्वेकाहयातेऽपि कालः सूतेरतः परम्।
वर्षाद् विकारकारी स्यात् कुक्षौ वातेन धारितः॥

—वा० शा० १।

अत्राह चक्रपाणिः—आदशमादिति वचनं प्रशस्ततरप्रसवकालाभिप्रायेण। सुश्रुते द्वादशमासपर्यन्तं सम्यक्प्रसवकालाभिधानं स्तोकदोषयोरेकादशद्वादशमासयोरेवाल्पदोषत्वेनाऽदोषपक्ष एव निक्षेपाद् बोद्धव्यम्। इति। अभियुक्तास्तु पुनः पाश्चात्यन्यायविभागे एकत्रिंशदुत्तरत्रिशतदिवसमितो (एकादशमासमितः) दीर्घतमकालोऽधिकृतः, यः पुनः प्रोषितभर्तृकाया मृतभर्तृकाया वा सति प्रसवे तदौचित्यानौचित्यविचाराय न्यायालयेषूपयुज्यते। एतदभिप्रेत्यैव सुश्रुतेनाऽपि वर्षमितः कालो निर्दिष्टः स्यादिति वदन्ति।

———

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातो गर्भकालेतिकर्त्तव्यताविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

गर्भकालेतिकर्त्तव्यता (गर्भिणीचर्या) नाम यदात्मनो गर्भस्य च हिताय गर्भिण्या स्वयमनुष्ठेयं, यच्च भिषजा सूतिकर्मकुशलेन तयोर्हितसाधनायानुष्ठातव्य, तदाचरणमिति। एवञ्च स्वस्थायाः स्वास्थ्यरक्षण व्याधिताया व्याध्युपशमन गर्भोपघातकरेभ्य. प्रसवबाधाकरेभ्यश्च भावेभ्यस्तस्याः परिरक्षण कर्त्तव्यमिति फलितम्। तत्रैवमुपदिशेत्—

नित्य प्रहृष्टा यथासात्म्यं मृदुगृहकर्मसु रता स्यात्। उद्यानादिषु विहरेत्। आस्यासुखमुपभुञ्जाना हि कष्टेन जनयति। उदरभित्तिबलावहानामासनविशेषाणां नियतविधानमपि हितावहम्। न चायासयेच्छरीरम्। अभ्यङ्गशीला स्यात्। दारुणाश्च चेष्टा वर्जयेत्। उत्तरगर्भकाले दूरयात्रा विषमयानादिकञ्च परिहरेत्।

आहारन्तु सात्म्य पुष्टिकरमश्नीयात्। पलल नात्युपयुञ्जीत। न च बहुभोजिनी स्यात्। दुर्जरगुरुद्रव्याणि परिहरेत्। द्रवशाकफलप्रायञ्च भुञ्जीत। जीवनीयद्रव्याणि विशेषेण हितावहानि। क्षीर नवनीत च सेव्यत्वेनोपदिशन्ति वृद्धाः। मद्य वर्जयेत्, तीक्ष्ण च विशेषतः। गण्डूषदन्तपावनादिभिश्च यथाकाल मुखविशोधनमावश्यकम्।

प्रत्यह च नातिशीतोष्णोदकेन विधिना स्नायात्। बहिर्जननाङ्गानि स्तनौ च परिशोधनीयानि। उत्तरबस्तिं परिहरेदन्यत्र तत्साध्यविकारेभ्यः। न चोपेक्षेत व्याधिमुदावर्त्तम्। विबन्धे मृदुशोधनानि व्यवहरेत् न तीव्राणि। वस्त्राणि तु स्वच्छानि ऋत्वनुकूलानि शिथिल परिधेयानि स्तनोदरपीडन-

---

गर्भकालेतिकर्त्तव्यता Hygiene of Pregnancy or Ante natal care

परिहाराय । लम्बितोदरी तु जठरबन्धं बिभृयात्, पट्टबन्धं च कुटिलपादशिरा ।

व्यवायं न सेवेत । सेवेत चेन्मृदुतरमित्येके । सम्भावितार्त्तवकाले उत्तरगर्भकाले च च्युतिसङ्क्रमणभयात्तदपि परिहरणीयम् । गर्भविच्युतिशीलामस्वस्थामकामां तु सर्वथा नोपेयात् ।

भिषक् तु तावत् सामान्यतो विशेषतश्च गर्भिणीं परीक्षेत । मूत्रपरीक्षणमन्तराऽन्तरा विदध्यात् । योनिव्यापदो निरीक्षेत । शरीरभारश्च कियानभिवृद्ध इति तुलायन्त्रेण जानीयात् । तत्र—

सामान्यतः परीक्षणे—यक्ष्मवृक्कशोथास्थिमार्दवप्रभृतीनां व्याधीनामितिवृत्तं लभ्यते न वा ? कीदृशं हृदयम् ? रक्तभारो वृद्धः परिहीणो वा* ? कुत्रचनावयवे वैरूप्यमस्ति न वा ? चुल्लिकाग्रन्थिरवृद्धो वृद्धो वा ? दन्तवेष्टोपजिह्विकादिषु दुष्टिकेन्द्रं विद्यतेऽथवा नेति विजानीयात् । दुर्लक्षणानि चेमानि परीक्षेत, तद्यथा—चिरविबन्धः, उन्निद्रता, वमनातिरेकः, मूत्राल्पता, शिरःशूलम्, शिरोघूर्णनम्, शूनहस्तपादता, मुखशोफः, रक्तस्रुतिः, क्षणिकमान्ध्यम्, नेत्रयोरग्रतश्च स्फुलिङ्गकणानां सन्दर्शनमिति ।

विशेषतः परीक्षणे—स्तनोदरश्रोणिपरीक्षणं गर्भिण्या आवश्यकम् । गर्भस्य किमवतरणम् ? किञ्चासनम् ? हृच्छब्दः श्रूयते न वा ? शिरश्चास्य श्रोणिकण्ठकयाऽवगृहीतं न वेत्यादयो विशेषाश्चाऽवगन्तव्या भवन्ति† । तत्र भूतपूर्वो गर्भकालः प्रसवकालः सूतिकाकालश्च निरू-

---

* 128 m m Hg मानात् परं वृद्धस्तु लालामेहविषसञ्चारयोः पूर्वरूपत्वेन स्मृतः । तस्मादादौ प्रतिमासं ततश्च प्रतिपक्षं रक्तभारवीक्षणं कार्यमिति नियमः । दुष्टिकेन्द्रम् Septic focus

† इदन्त्ववधेयम्—यदप्रजाताया नवमे मासि एव भ्रूणशिरः श्रोणिकण्ठकयावगृह्यते प्रायेण । अनवग्रहे तु सङ्कुचितश्रोणिः, शिरःस्थौल्यम्,

पद्रव. सोपद्रवो वाऽऽसीदिति गर्भिण्या· पुरेतिवृत्तेन, श्रोण्या विविध-
व्यासमानानि प्राकृतानि वैकृतानि वेति श्रोणिमापनेन, किमवस्थो गर्भ
इति चोदरपरीक्षया योनिपरीक्षया किरणचित्रपरीक्षया च विज्ञेयानि।
योनिपरीक्षणकालेऽनस्यपथविशेषा अप्यनुसन्धातव्या. । कालश्चास्य
विशेषपरीक्षणस्य व्यतीते साधमष्टमे मासि भिषजो मन्यन्ते। मिथ्यावत-
रणान्यपि मासाष्टमव्यत्यये विवर्त्तनविधिना शिरोऽवतरणे परिवर्त्तनीयानि,
स्वयविवर्त्तनस्यात परमसम्भवात्।

मूत्रपरीक्षणे च शर्कराऽण्डलाला पूयञ्च निर्गच्छति न वेति परी-
क्ष्यते। परीक्षण चैतन् षण्मास यावत् प्रतिमासं, ततः प्रतिपक्ष, दशमे
तु मासि प्रतिसप्ताह कर्त्तव्यमिति नियम ।

शरीरसारपरीक्षणे तु गर्भिण्या शरीरभारः कियानभिवृद्ध इति
जानीयात्। प्रायोऽय श्रेटकाष्टकमानात् दशशेटकमानं यावत् क्रमेण
वर्द्धत। अतोऽन्यथा वृद्धस्त्वनेकगर्भतां गर्भोदकातिरेकतां शोफावस्था वा
लालामेहानुवद्धामनुमापयति।

योनिरोगपरीक्षणे च फिरङ्गोऽस्या जातो न वा ? पूयमेहोऽपि
विद्यते किमु ? इति गर्भहिताय निर्णयम। फिरङ्गदुष्टाया किल गर्भोऽ-
काल एव स्रवति, विप्रसूतो वा स्यात्, सद्यो वा जातो म्रियते, अल्पायुर्वा
विकृतविग्रहो जीवति। पूयमेहेन च नवजातबालस्य नेत्राभिष्यन्दसम्भवः।

प्राञ्चस्तु पुन सविशेषमाहु —

"तस्माद्दहितानाहारविहारान् प्रजासम्पदमिच्छन्ती स्त्री विशेषेण
-वर्जयेत्। साध्वाचारा चात्मानमुपचरेद्धिताभ्यामाहारविहाराभ्याम्"।

—च० शा० ८।

पश्चिमानुशीर्षासनम्, मलाशये मलसञ्चयो वेति च हेतुत्वेन दृष्टा। प्रजाता-
यास्तु पुन· प्रसवारम्भ एव शिर ससज्यते न तु पुरा, उदरभित्तिशैथिल्यादिति।
विवर्त्तनम् Version

गर्भिणी प्रथमदिवसात् प्रभृति नित्य प्रहृष्टा शुच्यलङ्कृता शुक्लवसना शान्तिमङ्गलदेवतागुरुब्राह्मणपरा च भवेत् ।

मलिनविकृतहीनगात्राणि न स्पृशेत् । दुर्गन्धदुर्दर्शनानि परिहरेत्, उद्वेजनीयाश्च कथाः ।

बहिर्निष्क्रमण शून्यागारचैत्यश्मशानवृक्षाश्रयान्, क्रोधभयसङ्करांश्च भावान्, उच्चैर्भाष्यादिकञ्च परिहरेत्, यानि च गर्भं व्यापादयन्ति ।

न चाभीक्ष्ण तैलाभ्यङ्गोत्सादनादीनि निषेवेत, न चायासयेच्छरीरम्, पूर्वोक्तानि च (ऋतुकालचर्यायां निषिद्धत्वेनोक्तानि) परिहरेत् ।

शयनासन मृद्वास्तरणं नात्युच्चमपाश्रयोपेतमसम्बाध च विदध्यात् ।

शुष्क पर्युषित कुथित क्लिन्न चान्न नोपभुञ्जीत, हृद्य द्रव मधुरप्राय स्निग्ध दीपनीयसंस्कृत च भोजन भोजयेत् । सामान्यमेतदाप्रसवात् ।

—सु० शा० १० ।

तदा प्रभृति व्यवाय व्यायाममतितर्पणमतिकर्शनं दिवास्वप्नं रात्रिजागरण शोकं यानारोहण भयमुत्कटुकासनं चैकान्ततः स्नेहादिक्रिया शोणितमोक्षण चाकाले वेगविधारणं च न सेवेत ।

दोषाभिघातैर्गर्भिण्या यो यो भागः प्रपीड्यते ।
स स भागः शिशोस्तस्य गर्भस्थस्य प्रपीड्यते ॥

—सु० शा० ३ ।

सा यद्यदिच्छेत् तत्तदस्यै दापयेदन्यत्र गर्भोपघातकरेभ्यो भावेभ्यः ।

गर्भोपघातकरास्त्विमे भावा —सर्वमतिगुरूष्णतीक्ष्णं दारुणाश्च चेष्टाः । इमाश्चान्यानुपदिशन्ति वृद्धा. । देवतारक्षोऽनुचरपरिरक्षणार्थं न रक्तानि वासासि बिभृयान्न मदकराणि मद्यान्यभ्यवहरेन्न यानमधिरोहेन्न मांसमश्नीयात् । सर्वेन्द्रियप्रतिकूलांश्च भावान् दूरतः परिवर्जयेत् । यच्चान्यदपि (न कूपमवलोकयेत्, न नदीपारं यायात् इत्यादि) स्त्रियो विद्युः ।

—च० शा० ४ ।

गर्भोपघातकरास्त्विमे भावाः, तद्यथा—उत्कटुकविषमकठिनासनसेविन्या वातमूत्रपुरीषवेगानुपरुन्धत्या दारुणानुचितव्यायामसेविन्यास्तीक्ष्णोष्णातिमात्रसेविन्याः प्रमिताशनसेविन्या गर्भो म्रियतेऽन्तःकुक्षेर्वा अकाले स्रंसते शोषी भवति वा। तथाभिघातप्रपीडनैः श्वभ्रकूपप्रपातोद्देशावलोकनैर्वाऽभीक्ष्णं मातुः प्रपतत्यकाले, तथातिमात्रं सञ्चोभिभिर्यानैरप्रियातिमात्रश्रवणैर्वा।

प्रततोत्तानशायिन्याः पुनर्गर्भस्य नाभ्याश्रया नाडी कण्ठमनुवेष्टयति। विवृतशायिनी नक्तञ्चारिणी चोन्मत्तं जनयत्यपस्मारिणं पुनः कलिकलहशीला। व्यवायशीला दुर्वपुषमह्रीकं स्त्रैणं वा। शोकनित्या भीतमपचितमल्पायुषं वा। अभिध्यात्री परोपतापिनमीर्ष्युं स्त्रैणं वा। स्तेनाऽत्यायासबहुलमतिद्रोहिणमकर्मशीलं वा। अमर्षणा चण्डमौपधिकमसूयकं वा। स्वप्ननित्या तन्द्रालुमबुधमल्पाग्निं वा। मद्यनित्या पिपासालुमल्पस्मृतिमनवस्थितं वा। गोधामांसप्राया शार्करिणमश्मरिणं शनैर्मेहिनं वा। वराहमांसप्राया रक्ताक्षं क्रथनमतिपरुषरोमाणं वा। मत्स्यमांसनित्या चिरनिमेषं स्तब्धाक्षं वा। मधुरनित्या प्रमेहिनं मूकमतिस्थूलं वा। अम्लनित्या रक्तपित्तिनं त्वगक्षिरोगिणं वा। लवणनित्या शीघ्रवलीपलितखालित्यरोगिणं वा। कटुकनित्या दुर्बलमल्पशुक्रमनपत्यं वा। तिक्तनित्या शोषिणमबलमपचितं वा। कषायनित्या श्यावमानाहिनमुदावर्तिनं वा। यद्यच्च यस्य यस्य व्याधेर्निदानमुक्तं तत्तदासेवमानान्तर्वत्नी तन्निमित्तविकारबहुलमपत्यं जनयति। पितृजास्तु शुक्रदोषा मातृजैरपचारैर्व्याख्याता इति गर्भोपघातकरा भावा भवन्त्युक्ताः।

ऐन्द्रीब्राह्मीशतवीर्यासहस्रवीर्याऽमोघाऽव्यथाऽशिवाऽरिष्टावाट्यपुष्पीविष्वक्सेनकान्तेत्येतासामोषधीनां शिरसा दक्षिणेन पाणिना धारणम्। एताभिश्चैव सिद्धस्य पयसः सर्पिषो वा पानम्। एताभिश्चैव पुष्ये पुष्ये स्नानम्। सदा च ताः समालभेत। तथा सर्वासां

जीवनीयोक्तानामोषधीनां सदोपयोगस्तैस्तैरुपयोगविधिभिरिति गर्भस्थापनानि ।

—च० शा० ८ ।

उपचारः प्रियहितैर्भर्त्रा भृत्यैश्च गर्भधृक् ।
नवनीतघृतक्षीरैः सदा चैनामुपाचरेत् ॥
अतिव्यवायमायासं भारं प्रावरणं गुरु ।
अकालजागरस्वप्नकठिनोत्कटकासनम् ॥
शोकक्रोधभयोद्वेगवेगश्रद्धाविधारणम् ।
उपवासाध्वतीक्ष्णोष्णगुरुविष्टम्भिभोजनम् ॥
रक्तं निवसनं श्वभ्रकूपेक्षां मद्यमामिषम् ।
उत्तानशयनं यच्च स्त्रियो नेच्छन्ति तत्त्यजेत् ॥
तथा रक्तस्रुतिं शुद्धिं वस्तिमामासतोऽष्टमात् ।
एभिर्गर्भः स्रवेदामः कुक्षौ शुष्येन्म्रियेत वा ॥

—वा० शा० १ ।

व्याधींश्चास्या मृदुमधुरशिशिरसुखसुकुमारप्रायैरौषधाहारोपचारैरुपचरेत् । न चास्या वमनविरेचनशिरोविरेचनानि प्रयोजयेत् । न रक्तमवसेचयेत् । सर्वकालं वा नास्थापनमनुवासनं वा कुर्यादन्यत्राऽत्ययिकाद् व्याधेः । अष्टमं मासमुपादाय वमनादिसाध्येषु पुनर्विकारेषु आत्ययिकेषु मृदुभिर्वमनादिभिस्तदर्थकारिभिर्वोपचारः स्यात् । पूर्णमिव तैलपात्रमसङ्क्षोभयताऽन्तर्वत्नी भवत्युपचर्या ।

—च० शा० ८ ।

तदर्थकारिभिरिति—वमनार्थकारि निष्ठीवनम्, विरेचनानुकारिणी फलवर्त्तिः ।

अथ गर्भिण्यां व्याध्युत्पत्तावत्यये छर्दयेन्मधुराम्लेनान्नोपहितेन अनुलोमयेच्च, संशमनीयञ्च मृदु विदध्यादन्नपानयोः। अश्नीयाच्च मृदुवीर्यं मधुरप्रायं गर्भाविरुद्धञ्च, गर्भाविरुद्धाश्च क्रिया यथायोगं विदधीत मृदुप्रायाः।

—सु० शा० १०।

गर्भिणी तीक्ष्णौषधवर्जनीयानाम्।

—च० शा० ८।

व्याधींश्चास्या मृदुसुखैरतीक्ष्णैरौषधैर्जयेत्।

—वा० शा० १।

अथाह कश्यपः—

यानि द्रव्याणि पुण्यानि मङ्गल्यानि शुचीनि च।
नवान्यभग्नखण्डानि पुन्नामानि प्रियाणि च॥
गर्भिण्यै तान्युपहरेद्वासास्याभरणानि च।
न क्लीनपुंसकाख्यानि धारयेद्वा लभेत वा॥
धूपितार्चितसंमृष्टं मशकाद्यपवर्जितम्।
ब्रह्मघोषैः सवादित्रैर्वादितं वेश्म शस्यते॥
(प्रातरुत्थाय) शौचान्ते गुरुदेवार्चने रता।
अर्चेदादित्यमुद्यन्तं गन्धधूपार्घ्यवार्जपैः॥
क्षीयमाणं च शशिनमस्तं यान्तं च भास्करम्।
न पश्येद् गर्भिणी नित्यं नाप्युभौ राहुदर्शने॥
सोमार्कौ सग्रहौ श्रुत्वा गर्भिणी गर्भवेश्मनि।
शान्तिहोमपराऽऽसीत मुक्तयोगं च याचयेत्॥
न द्विष्यादतिथिं भिक्षां दद्यान्न प्रतिवारयेत्।
स्वयं प्रज्वलिते चाग्नौ शान्त्यर्थं जुहुयाद्घृतम्॥

पूर्णकुम्भं घृतं माल्यं पूर्णपात्र घृतं दधि ।
न किञ्चित् प्रतिरुन्धीयान्न च बध्नीत गर्भिणी ॥
सूत्रेण तनुना रज्ज्वा स्तम्भन बन्धनानि च ।
वर्जयेद् गर्भिणी नित्य काम बन्धानि मोक्षयेत् ॥

—जातिसूत्रीयशारीरम् ।

नित्य स्नाता च हृष्टा च शुक्लवस्त्रधरा शुचि ।
देवविप्रपरा सौम्या गर्भिणी पुत्रभागिनी ॥
नैवोन्नता न प्रणता न गुरु धारयेच्चिरम् ।
उद्वेजन तथा हास्य सङ्घात चापि वर्जयेत् ॥

—गर्भिणीचिकित्सितम् ।

बहुपुत्रामनन्ता च ईश्वरीं मुदिता तथा ।
ब्राह्मीं च सहदेवां च तथा चैवेन्द्रवारुणीम् ॥
जीवकर्षभकौ भार्गीं समङ्गा च तथैव च ।
रोहपादान् वटशुङ्गानात्मगुप्तां तथैव च ॥
अरिष्टपूतना केशीं शतवीर्यां च पार्थिव ।
सहस्रवीर्यां चैतानि प्राजापत्येन संहरेत् ॥
सन्दधेदथ पुष्येण धारयेदुत्तरेषु च ।
त्रैवृत तु मणिं कृत्वा तं श्रोण्या गर्भिणी सदा ॥

—अन्तर्वत्नीचिकित्सितम् ।

अथ मासिकं पथ्यापथ्यम् ।

(१) तत्र प्रथमे मासि शङ्केत चेद् गर्भमापन्ना, क्षीरमनुपसस्कृतं मात्रावच्छीत काले काले पिबेदन्तर्वत्नी । सात्म्यमेव च पुनर्भोजन सायं प्रातश्च भुञ्जीत (च०) मधुरशीतद्रवप्रायमाहारमुपसेवेत (सु०) । प्रथमे मासि गर्भिणी क्षीरमनुपसस्कृतं मात्रावच्छीतं काले काले पिबेत् ।

तस्मिन्नपि चाद्य द्वादशरात्रं क्षीरोद्धृत सर्पिःशालिपर्णीपलाशाभ्यां शृतं कनकरजतक्वथित शीतोदकानुपान पिबेत्। स्वादु शीतं द्रवप्राय सात्म्यं च साय प्रातराहारयेत्। यथोक्तानि च दोषकराणि परिहरेदापञ्चमान्मासात् विशेषेण (अ० स०)।

(२) द्वितीये मासे क्षीरमेव च मधुरौषधसिद्धम् (च०)। मधुरशीतद्रवप्रायमाहारमुपसेवेत (सु०)।

(३) तृतीये मासे क्षीरं मधुसर्पिर्भ्यामुपसस्सृज्य (च०)। विशेषतस्तु गर्भिणी प्रथमद्वितीयतृतीयमासेषु मधुरशीतद्रवप्रायमाहारमुपसेवेत। तृतीये षष्टिकौदन पयसा भोजयेत् पूर्ववच्च (सु०)।

(४) चतुर्थे मासे क्षीरनवनीतमक्षमात्रमश्नीयात् (च०)। चतुर्थे पयोनवनीतसस्सृष्टमाहारयेज्जाङ्गलमाससहितम्। हृद्यमन्न भोजयेत्। षष्टिकौदन दध्नेत्येके (सु०)।

(५) पञ्चमे मासे क्षीरसर्पि (च०) पञ्चमे क्षीरसर्पिः सस्सृष्टम् (सु०) षष्टिकौदन पयसेत्येके (सु०)।

(६) षष्ठे मासे क्षीरसर्पिर्मधुरौषधसिद्धम् (च०)। श्वदंष्ट्रासिद्धस्य सर्पिषो मात्रा पाययेत्, यवागू वा। षष्टिकौदनं सर्पिषेत्येके (सु०)।

(७) तदेव सप्तमे मासे (च०)। सप्तमे सर्पि पृथक्पर्ण्यादिसिद्धम्। एवमाप्यायते गर्भः (सु०)।

(८) अष्टमे तु मासे क्षीरयवागूं सर्पिष्मतीं काले काले पिबेत्। नेति भद्रकाप्य, पैङ्गल्यात्राधो ह्यस्या गर्भमागच्छेत इति। अस्त्वत्र पैङ्गल्यावाध इत्याह भगवान् पुनर्वसुरात्रेय न त्वेतन्न कार्यम्*। एवं कुर्वती ह्यरोगाऽरोगबलवर्णस्वरसहननसम्पदुपेत ज्ञातीनां श्रेष्ठमपत्यं

---

* पैङ्गल्यस्याल्पदोषत्वादुत्तरकाल सुकरप्रतिक्रियत्वाच्चेति भाव.। पैङ्गल्यं नाम आहारप्रभावकृता पैत्तिकी नेत्रवर्णव्यापत्।

जनयति (च०) । अत ऊर्ध्वं स्निग्धाभिर्यवागूभिर्जाङ्गलरसैश्चोपक्रमेदा-प्रसवकालात्, एवमुपक्रान्ता स्निग्धा बलवती सुखमनुपद्रवा प्रसूयते । अष्टमे बदरोदकेन बलातिबलाशतपुष्पापललपयोदधिमस्तुतैललवण-मदनफलमधुघृतमिश्रेणास्थापयेत् पुराणपुरीषशुद्ध्यर्थमनुलोमनार्थञ्च वायोः । ततः पयोमधुरकषायसिद्धेन तैलेनानुवासयेत् । अनुलोमे हि वायौ सुखं प्रसूयते निरुपद्रवा च भवति । (सु०) गर्भिणीं तु न्युब्जा-मास्थापयेदनुवासयेद्वा । तथास्या विवृतमार्गतया सम्यगौषधमनु-प्रविशति (अ० स०) ।

क्षीरपेया च पेयात्र सघृतान्वासनं घृतम् ।
मधुरैः साधितं शुध्यै पुराणशकृतस्तथा ॥
शुष्कमूलककोलाम्लकषायेण प्रशस्यते ।
शताह्वाकल्कितो बस्तिः सतैलघृतसैन्धवः ॥ (वा०)

(९) नवमे तु खल्वेना मासे मधुरौषधसिद्धेन तैलेनानुवासयेत्, अतश्चैवास्यास्तैलपिचुं योनौ प्रणयेत् गर्भस्थानमार्गस्नेहनार्थम्* (च०) ।

शस्तश्च नवमे मासि स्निग्धो मासरसौदनः ।
बहुस्नेहा यवागूर्वा पूर्वोक्तश्चानुवासनम् ॥
तत एव पिचुं चास्या योनौ नित्यं निधापयेत् ।
वातघ्नपत्रभङ्गाम्भः शीतं स्नानेऽन्वहं हितम् ॥
निःस्नेहाङ्गी न नवमान्मासात् प्रभृति वासयेत् ॥ (वा०)

यदिदं कर्म प्रथमं मासं समुपादायोपदिष्टमानवमान्मासात्, तेन गर्भिण्या गर्भसमये गर्भधारणे कुक्षिकटीपार्श्वपृष्ठं मृदूभवति, वातश्चा-नुलोमः सम्पद्यते, मूत्रपुरीषे च प्रकृतिभूते सुखेन मार्गावापद्येते, चर्म-

---

* स्नेहनान्मार्दवम् मृदुस्निग्धभावाच्च योनिः प्रसवकाले न विदीर्यत इत्यत्र रहस्यम् ।

नखानि च स्न्दुंवमुपयान्ति, वलवर्णौ चोपचीयते, पुत्रं चेष्ट सम्पदुपेत सुखित सुखेनैषा काले प्रजायते (च०) ।

—च० शा० ८। सु० शा० १०। वा० शा० १। सङ्ग्रह शा० ३।

अथ पुंसवनम् ।

निरुक्तिप्रयोजने .—पुमान् सूयतेऽनेनेति पुसवननिरुक्ति' । तथा च गर्भस्य पुंस्त्वकारकं कर्म पुसवनमिति फलितम् । कर्म चेद सम्यक् प्रयुक्त दैवमप्यतिवर्त्तत इति पौरुषिका । गर्भस्थापनत्वात् रूपादिगुण-सम्पद्विधायकत्वाच्चापि कर्मेद न निरर्थकमित्यन्ये । वचांस्यपि—(१) "तत्र यदि प्राक्कृतेन कर्मणा स्त्रीगर्भः कर्त्तुमाक्षिप्तस्तदा पुरुषप्रयत्ने सत्यपि पुंगर्भः कर्त्तुं न शक्यते । तस्मात् पुसवनमनर्थकमेवेत्या-शङ्क्याह—"वलो पुरुषकारो हि दैवमप्यतिवर्त्तते" इत्यरुणदत्तः । (२) पिवेत् पुत्रस्योत्पादनाय स्थितये च—सङ्ग्रहशा० १ । तत्कालमपि पीतो व्यक्तस्यापि परिस्थापन रक्षाभिधाना स्थितिं करोति—इन्दु' । लब्धगर्भा-याश्च लक्ष्मणादिनस्यदान गर्भस्थापनार्थम्, स्थितगर्भायाश्च मासत्रया-त्पान्तरे पुत्रापत्यजननार्थं नस्यदानम्—डल्हण । (३) यद्येव (शुक्रार्त्तवयो-र्न्यूनाधिकसमत्वं हेतुश्चेत्) तर्हि प्रागुक्तं पुत्रीयकरणं निरर्थकम् ? नैतदस्ति (सामान्यात् शुक्रार्त्तवबलाबलनियमात् विशेषस्य पुसवन-

---

पुंसवनमिति—लिङ्गपरिवर्त्तन, च नासम्भवमिति नव्या अपि मन्यन्ते । दृष्ट च मानवातिरिक्तप्राणिषु लिङ्गपरिवृत्तिकरकर्मसाफल्य वैज्ञानिकैः । तत्राहारजलवायुभेषजद्रव्यविशेषैः पुरुषकाराणा स्त्रीकाराणा वा शारीरग्रन्थीना बलाबलत्वमाक्षिप्य शुक्रार्तवविशेषकृतो मूललिङ्गप्रवृत्तिहेतुरभिभवितुं शक्य इति तेषामभिमतम् । प्रयत्यते चास्या दिशि निपुणा साम्प्रतिकैर्विद्वद्भि-रिति दिक् ।

कर्मणो बलवत्तरत्वात्, सामान्यस्यान्यत्र पुंसवनकर्मणोऽविधानेऽसम्यग् विधाने वा चरितार्थत्वाच्च), किञ्च श्रेयसा कर्मणा विना नैव रूपादि-सङ्गमिनो भवन्ति पुत्राः, उक्त हि—एवं जाता रूपवन्तः सत्ववन्तश्चि-रायुष.। भवन्त्यृणस्य मोक्तारः सत्पुत्राः पुत्रिणे हिता इति, तस्मात् पुत्रीयकरणं सार्थकमेवेति डल्हणः (सु० शा० ३)।

कर्मकालः—तयोः कर्मणा वेदोक्तेन विवर्त्तनमुपदिश्यते प्राग्व्यक्ती-भावात् सम्यक्। कर्मणा हि देशकालसम्पदुपेतानां नियतमिष्टफलत्वम् तथेतरेषामितरत्वम्। तस्मादापन्नगर्भा स्त्रियमभिसमीक्ष्य प्राग् व्यक्ती-भावात् गर्भस्य पुंसवनमौषधमस्यै दद्यात् इति।

—च० शा० ८।

अव्यक्तः प्रथमे मासि साप्ताहात् कललीभवेत्।
गर्भः पुसवनान्यत्र पूर्वं व्यक्तेः प्रयोजयेत्॥
बली पुरुषकारो हि दैवमप्यतिवर्त्तते॥

—वा० शा० १।

प्राग्व्यक्तीभावादिति—यावन्न स्त्रीत्व पुस्त्व वा गर्भस्य व्यक्त भवति तावदेव तद्वक्ष्यमाण कर्म लिङ्गपरिवृत्तिकरं भवति। व्यक्तिस्तु द्वितीये मासे भवति यदुक्त 'द्वितीये मासे घनः सम्पद्यते' इत्यादि। किं वा तृतीये मासेऽङ्ग-प्रत्यङ्गाभिव्यक्तेर्व्यक्तीभावो ज्ञेयः, द्वितीये तु मासे ग्रन्थ्यादिरूपे गर्भे प्रत्यङ्ग-व्यक्तीभावो न व्यक्तः। तेन वक्ष्यमाण कर्म (पुसवन) मासद्वय यावदिति चक्रपाणि'। अरुणदत्तस्त्वाह—सप्ताहादनन्तर यावन्मास तावदव्यक्ताकृति' कललीभवेत्। अत्र कललीभूते यावत् स्त्रीपुरुषाद्युत्पत्तिलक्षणा व्यक्तिर्न भवति तावद् व्यक्तेः प्राक् प्रथमे मासि पुंसवनादि प्रयोजयेदिति। नव्या अपि गर्भाधानात् परं षट्सप्ताह यावदेव अव्यक्तावस्था (Indefferent stage) गर्भस्य मन्यन्ते।

लब्धगर्भां चैनां विदित्वा प्राग्व्यक्तीभावाद्गर्भस्य पुष्ये पुंसवनानि प्रयुञ्जीत। द्वादशरात्रमित्यन्ये। तत्रापि युग्मदिनेष्विति केचित्। प्रत्यहमित्यपरे।

—सङ्ग्रहशा० १।

कर्मस्वरूपम्'—गोष्ठे जातस्य न्यग्रोधस्य प्रागुत्तराभ्यां शाखाभ्यां शुङ्गे अनुपहते आदाय द्वाभ्यां धान्यमाषाभ्यां सम्पदुपेताभ्यां गौरसर्षपाभ्यां वा सह दध्नि प्रक्षिप्य पुष्येण पिबेत्, तथैवापरान् जीवकर्षभकापामार्गसहचरकल्कांश्च युगपदेकैकशो यथेष्टं वाप्युपसंस्कृत्य पयसा, कुड्यकीटकं मत्स्यकं वोदकाञ्जलौ प्रक्षिप्य पुष्येण पिबेत्, तथा कनकमयान् राजतानायसांश्च पुरुषकानग्निवर्णानणुप्रमाणान् दध्नि पयस्युदकाञ्जलौ वा प्रक्षिप्य पिबेदनवशेषतः पुष्येण, पुष्येणैव च शालिपिष्टस्य पच्यमानस्योष्माणमुपाघ्राय तस्यैव च पिष्टस्योदकसमृष्टस्य रसं देहल्यामुपनिधाय दक्षिणे नासापुटे स्वयमासिञ्चेत् पिचुना। यच्चान्यदपि ब्राह्मणा ब्रूयुराप्ता वा स्त्रियः पुंसवनमिष्टं तच्चानुष्ठेयम् इति पुंसवनानि।

—च० शा० ८।

लब्धगर्भायाश्चैतेष्वहःसु लक्ष्मणावटशुङ्गासहदेवाविश्वदेवानामन्यतमं क्षीरेणाभिषुत्य त्रींश्चतुरो वा बिन्दून् दद्याद्दक्षिणे नासापुटे पुत्रकामायै न च तान् निष्ठीवेत्।

—सु० शा० २।

पुष्ये पुरुषकं हैमं राजतं वाऽथवायसम्।
कृत्वाग्निवर्णं निर्वाप्य क्षीरे तस्याञ्जलिं पिबेत्॥
गौरदण्डमपामार्गं जीवकर्षभसैर्यकान्।
पिबेत् पुष्ये जले पिष्टानेकद्वित्रिसमस्तशः॥

क्षीरेण श्वेतबृहतीमूलं नासापुटे स्वयम् ।
पुत्रार्थं दक्षिणे सिञ्चेत् वामे दुहितृवाञ्छया ॥
पयसा लक्ष्मणामूलं पुत्रोत्पादस्थितिप्रदम् ।
नासयास्येन वा पीतं वटश्रृङ्गाष्टक तथा ॥
ओषधीर्जीवनीयाश्च बाह्यान्तरुपयोजयेत् ।

—वा० शा० १ ।

लक्ष्मणावटश्रृङ्गसहदेवाविश्वदेवानामन्यतमं क्षीरेऽभिषुत्य त्रींश्चतुरो वा बिन्दून् दक्षिणे नासापुटे स्वयमासिञ्चेत् पिचुना वामे तु दुहितृकामा। न चैतां निष्ठीवेत्। तथा पुष्योद्धृतायाः श्वेतबृहत्या मूलकल्काद्रस नावयेत्। तद्वच्चोत्पलपत्र कुमुदपत्र लक्ष्मणामूल वटश्रृङ्गानि चाष्टौ च नावयेत्। शुक्लमाल्याम्बरधरा च नारी पुष्योधृताया लक्ष्मणाया मूलकल्कमुदुम्बरमात्रं पयसा पिबेत् पुत्रस्योत्पादनाय स्थितये च। तद्वत् गौरदण्डमपामार्गं जीवकर्षभकौ शङ्खपुष्पीमव्यण्डा सहचरमग्निजितमग्निजिह्वामष्टौ वा वटश्रृङ्गानि। शालिपिष्टस्य च पच्यमानस्योष्माणमाघ्राय तद्रस देहल्या स्थिता पूर्ववन्नावयेत्। यच्चापि ब्राह्मणा वृद्धस्त्रियो वा ब्रूयुस्तच्च कुर्यात्। तत. प्रजास्थापनानि धारयेत्।

—सङ्ग्रहशा० १ ।

——

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातो गर्भिणीपरीक्षणविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

प्रश्नदर्शादरस्पर्शश्रुतियोनिपरीक्षणैः ।
षोढा स्त्रियं परीक्षेत श्रोण्या सम्मापनेन च ।

प्रश्न. ।

तत्रमानि गर्भिण्या प्रष्टव्या —

(१) अन्तिमरजोदर्शनतिथि, गर्भस्फुरणारम्भतिथिः, गर्भान्तिमचेष्टन-तिथिश्च ।

(२) स्तनोदरपरिवर्तनानि ।

(३) प्राक्तनमधुनातनं च गर्भिण्या. स्वास्थ्यम् ।

(४) भूतपूर्वाणां सगर्भावस्थाना प्रकृति. सख्या च ।

(५) पूर्वं भूताना प्रसवाना प्रकृति । जातापत्यानि जीवन्ति मृतानि वा ? मृतानि चेत् कदा मृतानि ? जन्मन आदौ, पर जन्मकाले वा । कश्च स हेतु ? का चान्तिमशिशोर्जन्मतिथिः ?

(६) मूत्रसस्थानपाचकसस्थानयोरवस्था । कियन्मात्रं कतिधा च मूत्र प्रसिच्यते । हृल्लासवान्तितृष्णाशाजीर्णविबन्धातीसारलिङ्गानि चोपलभ्यन्ते किमु ?

(७) अन्याङ्गिकविकारजातानामितिवृत्तम् । योनिव्यापदश्च । प्रजायिनी त्वेव प्रष्टव्या —

१—कदाऽऽस्य. प्रादुर्भूता ?

२—जरायुविदरण जातं न वा ? जातं चेत्, कदा ?

३—प्रवाहणाय चेष्टते न वा इति ।

प्रश्न. History or Questioning

दर्शनम् ।

तत्र चक्षुषा दृश्यानि गर्भिणीवैलक्षण्यानि, दु.स्वास्थ्यलिङ्गानि, जठरार्बुदलक्षणानि, कष्टप्रसवद्योतकम् अङ्गवैरूप्य च दर्शनपरीक्षाविषयाः—

(१) गर्भिणीवैलक्षण्यानि—स्तनोदरमुखयोनिगतानि वर्णाकृतिपरिवर्त्तनरूपाणि गर्भजन्यलक्षणान्येव गर्भिणीवैलक्षण्यानि । तानि च पूर्वं विस्तरश उक्तानि ।

(२) दु स्वास्थ्यलिङ्गानि—कार्श्यशोफपाण्डुत्वरक्ताल्पतादिरूपाणि ।

(३) जठरार्बुदलक्षणानि–उदरस्य गर्भापेक्षया विषमाकारा विषमकाला चाभिवृद्धिः ।

(४) अङ्गवैरूप्यम्—अत्युन्नतोदरतया लम्बितोदरतया ह्रस्वकायतया पृष्ठवंशवक्रतया पादविगुणतया च श्रोणिवैरूप्य सलक्ष्यते ।

उदरस्पर्शनम् ।

अत्र हि गर्भिण्या उदरे हस्तद्वय सस्थाप्य तदन्तर्गतानामवयवाना परीक्षण क्रियते । प्रधानतमश्चाय विधिः, बहुज्ञेयज्ञापकत्वात् निरपायत्वात् अदु.खकरत्वाच्च । योनिपरीक्षणस्य बह्वर्थसाधकत्वेऽपि न नियमेन निरपायत्व न चादुःखकरत्वम् । गर्भो विद्यते न वा ? किमवतरण. किमासनश्च गर्भः ? उपद्रुतो न वा ? कश्च प्रसवक्रमः ? इति चत्वार्युद्दिश्य विधिरय प्रवर्त्तते यथावसरम् ।

गर्भनिर्णयाय :—तत्र सुखमुत्तानशायिन्या ईषदुन्नमितशिरोग्रीवायाः पार्श्वकृतप्रसृतबाहोः स्वल्पाकुञ्चितप्रविभक्तसक्थिकाया रिक्तमूत्राशयाया

दर्शनम् Inspection　उदरस्पर्शनम् Abdominal palpation

अनावृतोदरायाश्च स्त्रिया दक्षिणपार्श्वे जानुसन्निधौ तदभिमुख स्थित उष्णीकृतकरो द्वाभ्यामपि हस्ताभ्या तदुदरं नाभिपार्श्वयोः संस्पृशेत् अङ्गुलिमुखैश्च मन्दं निपीडयेत् उदरभित्तेः स्थौल्यावतिवेदनाविज्ञानहेतो'। एव हि उदरपेश्यः शैथिल्यमास्थिता न परीक्षकस्य प्रत्यवायमावहन्ति। ततश्च गभीरमभिस्पृशेदङ्गुल्यग्रैरबुदस्य प्रवृद्धगर्भाशयस्य वा प्रतिरोधविज्ञानाय। अथ चेन्नाभिसमीपे न किमपि प्रतिरुन्धन्निव प्रतीयते, शनैर्हस्तावतार्य्य महाश्रोणिदेशगतान् विशेषान् तथैव परीक्षेत। तत्रापि चेत्प्रतिरोधाभावस्तदा यथाशक्य श्रोणिकण्ठेऽङ्गुलिनिमज्जनाय प्रयतेत। तदर्थञ्च सतत गभीरमुच्छ्वसेदिति स्त्री वाच्या। उच्छ्वासकाल एव च कराङ्गुलिभिर्मृदुदृढ़ प्रपीड्यते। एव च प्रतिनिःश्वासमुत्तरोत्तरावकाशलाभेन अङ्गुल्यग्राणि गभीरमाविशन्ति, निवेदयन्ति च श्रोणिकण्ठप्राप्ता काम-प्यभिवृद्धिम्।

अथ चेन्नाभिदेशे प्रतिरोधो ज्ञायते, शनैर्हस्तावुन्नीय नाभ्यग्रपत्रयो-र्मध्यदेशः प्रतिरोधसीमविज्ञानाय परीक्षणीयः। इदन्तु प्रतिरोधस्य विशेष-विज्ञानम्—परिवृद्धगर्भाशयो हि गोलकाकृतिप्रायो मृदुस्पर्श. समवृद्धो विरताकुञ्चनशीलो मध्यमदेशवर्त्ती च भवति, विपरीतस्थानसंस्थानस्पर्श-प्रायाश्चार्बुदादिका इति।

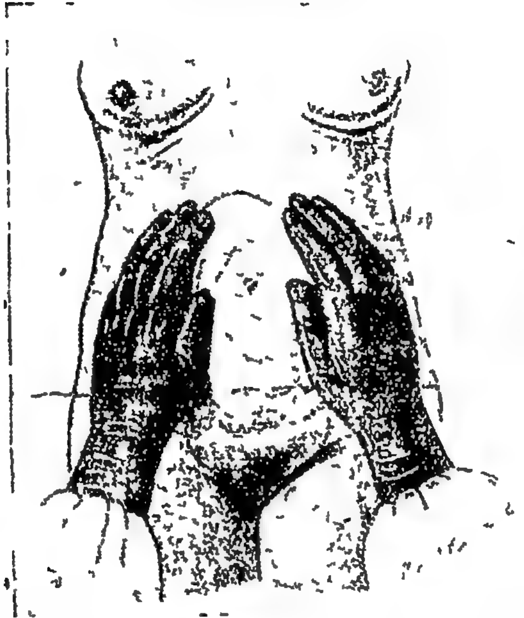
उदयावतरणनिर्णयाय—एतदर्थ च भिषक् वंक्षणसन्निधौ पार्श्वत-स्तथैव वर्तमानो यथोक्तस्थितामेव स्त्रियं त्रिविधदेशग्रहं परीक्षते, सति ज्ञेयशेषे तु पादाभिमुखो भूत्वा चतुर्थदेशग्रहेणापीति पूर्वतो विशेष.।

(१) प्रथमग्रह—मध्यरेखामुभयतो गर्भाशयस्योत्तरभागे गर्भाशयस्कन्ध कराङ्गुलिभिर्यथा क्रोडीकृत स्यात्तथा हस्तौ निधाय, एकेन गर्भाशय स्थिरीकृत्य, अपरस्य च करतलेन तत्र तत्र मन्दं पीडयता गर्भस्य किमङ्गमत्र वर्त्तत इति विनिर्णयेत्। प्रायेण वर्त्तुलपिण्डमिव तत्र किमपि प्रतीयते। शिरसा नितम्बेन वा तेन भाव्यम्। तत्र बहुचेष्ट मध्य-कायनिरपेक्षचेष्ट समवर्त्तुलं लघुतर ग्रीवापरिखान्तरितपृष्टानुबन्ध कठिन-

तरस्पर्शी च शिरः, स्वल्पचेष्टो मध्यकायसापेक्षगतिर्विषमायतो बृहत्तरोऽन्यवहितपृष्ठानुबन्धो मृदुस्पर्शश्च नितम्ब.।

[५२ चित्रम्]

उदरस्पर्शनम्।



प्रथमग्रहः।

द्वितीयग्रहः—अत्र तु गर्भाशयपार्श्वमुभयतो नाभिसीमनि हस्तौ संस्थाप्य पूर्ववत् मन्द पीडयता इतस्ततः परिचालयता च प्रायेणैकतो विप्रतिरोधी स्थिरसमायतगर्भभागोऽपरतश्च हीनप्रतिरोधिनः क्षुद्रविषमैकानेकप्रवर्धनसमा अस्थिरगर्भभागाः प्रतीयन्ते। तत्र गर्भस्य पृष्ठभागो विप्रतिरोधिपार्श्वे हस्तपादावयवाश्च हीनप्रतिरोधिपार्श्वे वर्त्तन्त इत्यनुमीयते। स्मर्त्तव्य चात्र, पश्चिमाभिमुखे गर्भे गर्भपृष्ठं पूर्वाभिमुखे च

द्वितीयग्रहः Second or Umbilical grip.

हस्तपादावयवा: स्पष्टतरमनुभूयन्त इति। अत्रसरे चास्मिन् गर्भोदक-प्रमाणमप्यनुमातुं शक्यम्।

[५३ चित्रम्]

उदरस्पर्शनम्।



द्वितीयग्रह।

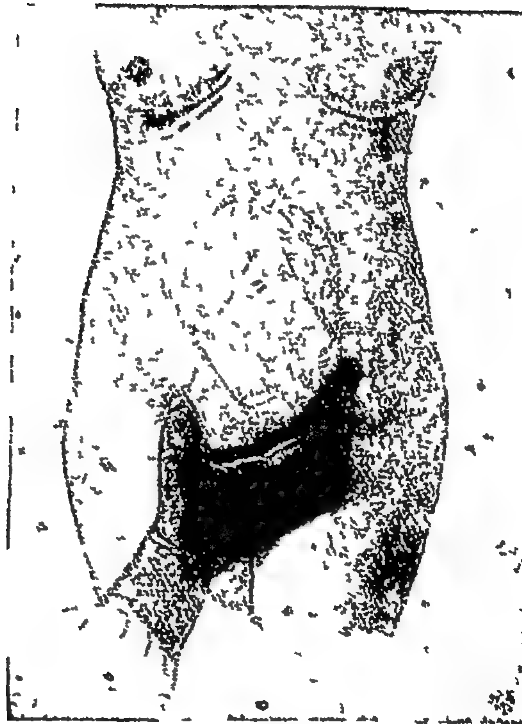
तृतीयग्रहः—अपकृष्टाङ्गुष्ठेन दक्षिणहस्तेन स्त्रिया अधिवस्तिदेशं तथा गृह्णीयात् यथा करस्याङ्गुलिभागो वामवंक्षणिकस्नायोरङ्गुष्ठभागश्च दक्षिणवंक्षणिकस्नायोर्मध्यबिन्दुदेशं परिस्पृशेत्। ततश्च हस्तं महाश्रोण्यां गभीरं निमज्ज्य अङ्गुष्ठाङ्गुलीरुपकर्षयेच्चेत् गर्भस्य कोऽपि दृढप्रति-रोधिभाग स्फुट प्रतीयते। शिरसा नितम्बेन वा च तेन भाव्यम्।

तृतीयग्रह. Third or Pawlic's grip (First pelvic grip)

तयोर्भेदबुद्धिश्च पूर्ववत्तथैव क्रियते। ग्रीवापरिखा तु प्रायेण तिर्यक् तिष्ठति। सति तु नितम्बे पादावपि पार्श्वैकतः प्रतीयेते प्रायेण। अथ चेच्छिरोऽववरणम्, विभिन्नोदयान् अवग्रहानवग्रहे चास्य परीक्षेत। तत्र मध्यशीर्षोदये ग्रीवापरिखा तिरश्चीना गर्भपृष्ठपार्श्वे चाधोमुखी वर्त्तते,

[५४ चित्रम्]

उदरस्पर्शनम्।



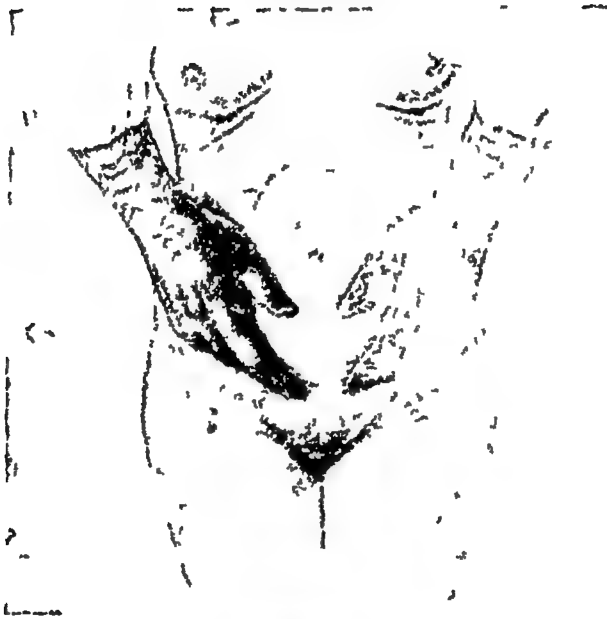
तृतीयग्रहः।

अनुशीर्षापेक्षया च चिबुकदेश ऊर्ध्वं तिष्ठति, एवमुन्नततरो भवति ललाटोऽनुशीर्षात् विप्रतिरोधी च। ललाटोदये ग्रीवापरिखाऽनुप्रस्थमास्ते, चिबुकानुशीर्षे च समतलम्। मुखोदये तु ग्रैवपरिखा पुनस्तिरश्चीना गभीरा च स्यात्, गर्भपृष्ठपार्श्वे चोर्ध्वमुखी। चिबुकदेशश्चानुशीर्षा-

पेश्याऽधस्तल एव वर्त्तेत । अनारब्धप्रसवाया. शिरश्चेत् श्रोणिकण्ठेऽवगृहीत स्यात् नियत मध्यशीर्षोदय इत्याहुरेके । अनवगृहीते तु तस्मिन् उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामधस्तादवपीड्य अवप्रग्रहताऽस्य परीक्षणीया ।

[५५ चित्रम्]

उदरस्पर्शनम् ।



चतुर्थग्रह ।

चतुर्थग्रह —एतदर्थं च भिषक् पादाभिमुखो भूत्वा हस्तयोरङ्गुल्यग्राणि उभयत पार्श्वं वङ्क्षणिकस्नाय्वोरुपरि सन्यस्य, मन्द च पीडयन्, प्रतिनिःश्वास श्रोणिकण्ठे गभीर निमज्जनाय यतेत । तत्र दृढमतिरोधिपिण्डस्योपस्थितावङ्गुलय. प्रतिरुध्यन्ते, नावरुध्यन्ते च तदभावे । सति

चतुर्थग्रह. Fourth grip (Second pelvic grip)

प्रथमे उदीयमानो गर्भभागः श्रोणिकण्ठे प्रविष्टः प्रविश्य वा तदतिक्रान्त इत्येवमनुमीयते, द्वितीये तु नाद्यावधि श्रोणिकण्ठं प्राप्त इति। श्रोणिकण्ठमतिक्रान्ते तु शिरसि किमासनमधिशेते गर्भ इति पार्श्वान्यतरे महाश्रोण्या गभीरतरमङ्गुलिनिमज्जनादनुमातव्यम्। तत्र यस्मिन् पार्श्वे पार्श्वेतरात् अङ्गुलयो गभीरतरमाविशन्ति तत्पार्श्वगतमेव तिर्यक्श्रोणिव्यासं गर्भशिरोऽधितिष्ठतीति नियम.। वामे वामं, दक्षिणे च दक्षिणम्। तथा च गर्भपृष्ठस्यापि वामदक्षिणभाव परिज्ञाय सुखेन गर्भासननिर्णयो जायते। तद्यथा—यदा हि गर्भशिरो दक्षिणतिर्यग्व्यासे वर्त्तते, गर्भपृष्ठ चापि दक्षिणतः, तदा दक्षिणपश्चिमानुशीर्षासनमित्येवमिति सर्वं सुस्पष्टम्। अथ चेत् श्रोणिकण्ठ रिक्त पश्येत्, स्तोक कराङ्गुलीरुन्नीय महाश्रोणिपार्श्वयोरवस्थितान् गर्भभागाननुसन्दधीत। तत्रानुलम्ब वर्त्तमाने गर्भे उत्तराधरगर्भध्रुवयोरन्यतरः श्रोणिकण्ठस्योपरिष्टाल्लभ्यते। तिर्यग् वर्त्तमाने परिघवदास्थिते वा तु गर्भे स एव वङ्क्षणोत्तरिकप्रदेशयोरन्यतर कुक्षिदेशयोरन्यतरं वा क्रमेणाधितिष्ठति।

एवञ्च, उदरस्पर्शनेन गर्भस्यावस्थानासनावतरणोदयाः सुख विज्ञायन्त इति सिद्धम्। तत्र गर्भपृष्ठस्य तिर्यगनुलम्बभावेन तिर्यगनुलम्बा गर्भावस्थितिः, पूर्वापरभावेन वामदक्षिणभावेन च तत्तद्गर्भासनानि निर्णीयन्ते। केन ध्रुवेणायमवतरतीति तु लक्षणविशेषैर्ध्रुवद्वयस्य भेदविज्ञानेन निश्चीयते। शिरोऽवतरणे चिबुकानुशीर्षयोरुच्चावचावस्थानेन समावस्थानेन च विभिन्नोदयाना निर्णयः। श्रोण्यवतरणे उदयविशेषविज्ञानं तु प्रायेण दु.शकम्। अनुप्रस्थावतरणे च शिरसो वामदक्षिणभाव पृष्ठस्य च पूर्वापरभावं विज्ञाय गर्भासनानां निर्णयः क्रियते।

उपद्रवोपस्थितिविज्ञानाय :—एतदर्थं च भिषक् त्रीणि परीक्षेत—उदीयमानस्य गर्भभागस्य श्रोणिकण्ठेन सह कः सम्बन्धः? कीदृक्स्पष्टतया च गर्भावयवा अनुभूयन्ते? कश्च गर्भाशयसङ्कोचानां गर्भाशयपेशीषु परिणामः? इति।

(१) उदीयमानगर्भभागस्य श्रोणिकण्ठेन सह सम्बन्धः—स च स्थिराऽस्थिरभावश्च। श्रोणिकण्ठेन सम्यग्गृहीतो गर्भभागः स्थिरभूतो न चेतस्ततश्चाल्यते। तत्र अप्रजाताया नवमे मासि प्रजातायास्तु सति प्रसवारम्भे गर्भशिरः स्थिरं भवति। श्रोणिकण्ठगर्भावयवयोरानुपात-वैषम्ये सत्यपि यावदारब्धे कालेऽपि गर्भशिरसो न स्थैर्यम्। तत्रैते मात्रा उदीयमानगर्भभागस्यास्थिरीभावे हेतवो भवन्ति :—त्रिकोऽन्नता शिरोऽल्पत्वम्, मूढगर्भता, तन्वितोदरं गर्भाशयस्यान्तर्गो वा प्रान्ता-ऽपरा, गर्भोदकातिरेकः, अर्बुदानि, बहुगर्भता विषमात्रादीनामादयः। स्थैर्यस्थैर्यविज्ञानाय च तृतीयग्रहविधिना गर्भशिरो गृहीत्वा इतस्ततः परिचाल्यते।

(२) यावत्स्पष्टतया च गर्भावयवा अनुभूयन्ते :—यत्र स्वाभाविकस्थाया गर्भाशयप्राचीरं न विशेषेण स्थूलम् अन्यत्र सुस्पष्टैवोपलब्धिः हस्तस्पर्शनेन परीक्षायाश्च क्रिया। अतोऽन्यथा तु कानिचित् कारणानि वैकृत्यान्येव सूचयति यथा :—गर्भोदकातिरेकः, गर्भाशयार्बुदानि डिम्बकोषार्बुदानि वसाधिक्यम्, गर्भस्थानान्तर्मेवा शोणितस्रुतिः अथवा स्थिता-ऽन्या गर्भाशयस्थार्बुदम्, रक्तगुल्मविशेषः, स्नायुसङ्कोचश्च।

(३) गर्भाशयसङ्कोचानां गर्भाशयपेशीषु परिणामः :—प्रसवकाले हि स्वयं गर्भाशयपेशीषु कतिपयपरिवर्तनानि जायन्ते। वैकृते निर्गमप्र-त्यवे च तान्येव स्फुटतराणि भवन्ति गर्भाशयसङ्कोचात् आकुञ्चनप्रसरण-स्थितिं स्नायुबन्धनिके च विशेषेण प्रभावयन्ति। प्रभावविशेषस्तावद् हस्तस्पर्शनेन सुखं वेदितुं शक्यः। तत्र गर्भाशयस्योपरि हस्तसंस्थापनेन सङ्कोचानां सर्वे काले विराम एव परीक्ष्यः, आकुञ्चनवलयस्य च नाभेरधस्तादुपस्थितिः। स्वयं हेतुः प्रायेण शिरश्चानुपातिकेव प्रतीयते। स्नायुबन्धनिका तु नाभिपूर्वोर्ध्वकवङ्क्षणयोरन्तराले गर्भाशय-पार्श्वस्पर्शनेन स्थूलरज्जुरिव प्रत्ययमावहति। तन्निपातविवर्धनात् सादैवेति तु निर्णयः।

श्रवणम् ।

श्रवणपरीक्षया हि मातृमूलान् गर्भमूलांश्च विभिन्नान् शब्दविशेषानाकर्ण्य अपरायाः सम्भाव्यस्थितिः, गर्भस्य सत्ता जीवनमासनावतरणानि संख्या चापि विनिर्णेया । भिषग् हि गर्भिण्या उदरे उरोवीक्षणयन्त्रं स्वकर्णं वा समाधाय तांस्तान् शब्दविशेषानाकर्णयेत् । तत्र उरोवीक्षणयन्त्रप्रयोगे उदरस्यानावृतत्व कर्णाधाने च तनुना कार्पासवस्त्रेण कौशेयवस्त्रेण वा तस्यावृतत्वमावश्यकम् ।

अथ मातृमूलशब्दा.—

(१) गर्भाशयध्वनि :—पूर्वे (१८३ पृष्ठे) विस्तरेण प्रपञ्चित ।

(२) हृच्छब्दाः—मातृहृच्छब्दा अपि प्रायेण गर्भाशयस्योपरि श्रोतुं शक्या· । तत्र यदा गर्भहृच्छब्दा मन्दभावाद्धीन सख्यायन्ते मातृहृच्छब्दाश्च त्वरितभावादधिक—यथा नाम विलम्बितप्रसवे—तदा ज्ञानविपर्ययो मा भूदिति सर्वदैव गर्भहृच्छब्दपरीक्षणे मातुर्धमनीस्पन्दमपि भिषक् सहैव परीक्षेत । मातृहृच्छब्दा हि मातृधमनीस्पन्दकालसख्याने अनुकुर्वन्ति, न गर्भहृच्छब्दा· ।

(३) महाधमनीस्पन्दनम्—औदर्यमहाधमन्याः स्पन्दनमपि कदाचित् गर्भाशयप्रतिसङ्क्रान्तं मन्दध्वनिरिव सश्रूयते । मातुर्धमनीस्पन्देन च तत् तुल्यकालम ।

(४) आन्त्रिकध्वनि —अन्त्रेषु द्रववाय्वो· सञ्चरणात् गुडगुडायमान इव ध्वनिविशेषः कदाचन श्रोतु शक्य. ।

(५) श्वसनध्वनिः—कुत्रचित् विशेषतश्च कष्टश्वसने मर्मरायमाणः श्वसनध्वनिरपि गर्भाशयं प्रतिसङ्क्रान्तो वामपार्श्वे संश्रूयते ।

श्रवणम् Auscultation (१) Uterine Souffle (२) Cardiac Sounds (३) Aortic Pulse (४) Intestinal Sounds (५) Respiratory Sounds

(६) घर्षणध्वनि.—उदर्यकलाशोथे गर्भाशयोदरभित्त्यो: सङ्घर्षणाज्जायमानोऽय ध्वनिरनुश्रूयते यदा कदा।

(७) भग्नध्वनिर्बुद्बुदध्वनिर्वा ·—गर्भाशयगुहा गर्भाशयप्राचीरं वानयो समुत्पत्तिस्थानम्। गर्भगलनदशायां च प्रायेणोपलभ्येते। कदाचित्तु वातोदरभित्तौ उदरप्राचीरेऽपि उत्पत्तिर्दृष्टा।

(८) पेशीशब्द —सङ्कुचत्पेशीसूत्रादुत्पद्यमानोऽय ध्वनिर्गर्भाशयस्योपरि मन्दनाद इव आकर्ण्यते।

अथ गर्भमूलशब्दा·—

(१) गर्भहृच्छब्द.—पूर्वम् (१८४ पृष्ठे) उपवर्णितः।

(२) नालध्वनि·—अयमपि पुरा (१८६ पृष्ठे) व्याख्यात ।

(३) गर्भचेष्टनध्वनि.—गर्भचेष्टनकाले गर्भाशयभित्तौ जायमाना अनियतकालभवाश्च मन्दमन्दाभिघाता कदाचन श्रोतुं शक्याः।

योनिपरीक्षणम्।

गर्भनिर्णयाय प्रसवक्रमविनिश्चयाय च परीक्षैषाऽनुष्ठीयते। संयुक्तयोन्युदरपरीक्षणरूपो युग्मविधिरपि योनिपरीक्षणस्यैव प्रकारविशेष.। तत्र सामान्यविधौ वामपार्श्वशयानाया उत्तानशायिन्या वा स्वल्पाकुञ्चितसक्थिजानुकाया खट्वान्ताश्रितनितम्बायाः संशोधितबहिर्भगायाश्च रिक्तगुदवस्तिकायाः स्त्रिया विशुद्धपाणिर्भिषक् वामांगुष्ठतर्जनीभ्यां भगोष्ठावपसार्य दक्षिणकरस्य तर्जनीं तर्जनीमध्यमे वा बहिर्भगेन यथा संस्पर्शो माभूत्तथा योन्यन्त प्रवेशयेत्, गर्भाशयग्रीवां योनिच्छर्दिं योनिकलां योनिमुख च तत्तद्विशेषविज्ञानाय यथाक्रम परीक्षेत। सङ्क्रमणभयाच्च

---

(६) Friction Sounds (७) Crepitary Sounds—Crackling or Bubbling (८) Muscular Susurrus

योनिपरीक्षणम् Vaginal Examination

सति विशेषप्रयोजन एवास्य विधानं श्रेयस्करम् । अन्यत्र तूदरस्पर्शनेन गुदपरीक्षणेन वा निर्वहणीयोऽर्थः । योनिदुष्टौ तु सर्वथैव निषिद्धोऽस्य विधिः ।

ग्रीवार्थं हि भिषजा तदाकृतिप्रमाणमार्दवविकासविदारार्बुदादिकाः सहान्यैर्विशेषैः परीक्षणीयाः । तत्र गर्भनिर्णयदृशा ज्ञेयानि मार्दवादिविशेषलक्षणानि पूर्वं (१६७ पृष्ठे) व्याख्यातानि । प्रसवदृष्ट्या त्विमे विशेषा निश्चेतव्याः । अधरगर्भशय्यान्तर्गतत्वात् ग्रीवायाः कियत्कायमानहानिर्जाता ? किमङ्गुलप्रमाणं तन्मुखविकसनम् ? प्रतीयमानस्य चोदीयमानगर्भभागस्य का प्रकृतिः ? उदीयमानगर्भभाग. स्थिरीभूतो न वा ? अभिन्नो भिन्नो वा जरायुः ? अभिन्नश्चेत् आवीकाले केन रूपेण स्वात्मानं योनौ प्रकाशयति ? स्तोकं ग्रीवामुखप्रमाणेन, अधिकं गोस्तनाकारेण वा * भिन्नश्चेत् अधिशिरोनामा उदीयमानभागस्योपरि जायमानः

---

* अत्रेदमवधेयम्—अभिन्ने जरायौ गर्भोदकस्य स्थानभेदेन द्विधा प्रविभागो भवति उदीयमानगर्भभागस्य पुरतः स्थितं स्वल्पमानं पूर्वगर्भोदकं (Fore-Waters) पश्चिमतोऽवस्थितं प्रचुरमानं तु पश्चिमगर्भोदकं (Hind-Waters) नामेति । उभयो. परस्परानुबन्धस्तु वर्त्तत एव । तथापि प्राकृतप्रसवे यदा गर्भशिरोऽधरगर्भशय्या सम्यगापूर्य्य स्थिरीभवति तदा तयोर्मिथोऽनुबन्धो विच्छिद्यते, न च गर्भाशयसङ्कोचकाले प्रपीडितं पश्चिमगर्भोदकं पुरतः प्रवहति । एवञ्च स्वल्पायतनः पूर्वगर्भोदकधरो जरायुभागोऽपि (अस्यैव वारिपुटकमिति सञ्ज्ञानम्) सङ्कोचकाले केवलमातन्यत एव न विशेषेण प्रवर्धते, शरावानुकारश्च तिष्ठति । अतोऽन्यथा वैकृते तु प्रसवे (मिथ्योदयावतरणश्रोणिसङ्कोचादिविकारात्मके) यत्र उदीयमानगर्भभागो नाधरगर्भशय्या सम्यगापूरयति तत्र परस्परानुबन्धस्य तादवस्थ्यात् प्रत्यावीकाले प्रपीडितं पश्चिमगर्भोदकं पुरस्तात् प्रवहति, वृद्धमानेन पूर्वगर्भोदकेन भृशमवपीडितो जरायुश्च गोस्तनाकारेण योनावधिकं प्रलम्बते ।

श्वयथुर्निःसंशयं तथात्वेन प्रतीयते न वा ? * अयथाऽस्थिताऽपरा ग्रीवा-मुखप्रत्यासन्ना तु न वर्त्तते ? भ्रष्टाः किम् नाभिनालहस्तपादाः ? इति ।

योनिच्छदिं तु अर्बुदार्थं श्रोणिकण्ठसङ्कीर्णतार्थं च परीक्षेत, योनिकलां च तद्रूपास्रावव्रणव्रणवस्तुनाडीव्रणार्बुदादिपरिज्ञानार्थम् । योनिद्वारवीक्षणे पुनर्भगस्य प्रमाणं विकसनशीलता व्रणविदारादिविकृतावस्था च परीक्षणीया ।

संयुक्तयोन्युदरपरीक्षणरूपो युग्मविधिः ।

सोऽयं विधिर्गर्भाशयस्य प्रमाणाकृतिमार्दवविज्ञानाय, श्रोण्यर्बुदनिर्णयाय, अधरगर्भशय्यायाः स्पर्शविशेषपरीक्षणाय, गर्भाशयान्तश्चलद्द्रव्यविनिश्चयाय च प्रयुज्यते । परीक्षाप्रकारस्त्वित्थम्—उत्तानशायिन्याः सङ्कुचितापकृष्टसक्थिकाया रिक्तवस्तिकायाश्च स्त्रियाः पार्श्वतः सम्मुखतो वा वर्त्तमानो भिषक् वामकरेण भगोष्ठावपकृष्य दक्षिणकरस्य तर्जनीं तर्जनीमध्यमे वा योनौ गर्भाशयवहिर्मुखं यावत् सम्प्रवेशयेत्, वामहस्तं च ततो वस्तिप्रदेशे निधाय तदङ्गुलिमुखैर्मध्यरेखायामुदरभित्तिमवपीडयेत्, परीक्षेत चैव करद्वयाङ्गुलिमध्यगतं जठरार्बुदविशेषम् । उदरस्थहस्तस्य पार्श्वपरिचालनेन जठरार्बुदस्य रूपरेखाऽपि निर्णेया । यदि चैवं किमपि नानुभूयेत तदा योन्याः पश्चिमकोणे कराङ्गुलीं निधाय, उदरहस्ताङ्गुलीश्च गम्भीरं श्रोण्यामवपीड्य योनिगुदान्तरीयस्थालीपुटम् परीक्षणीयम् ।

---

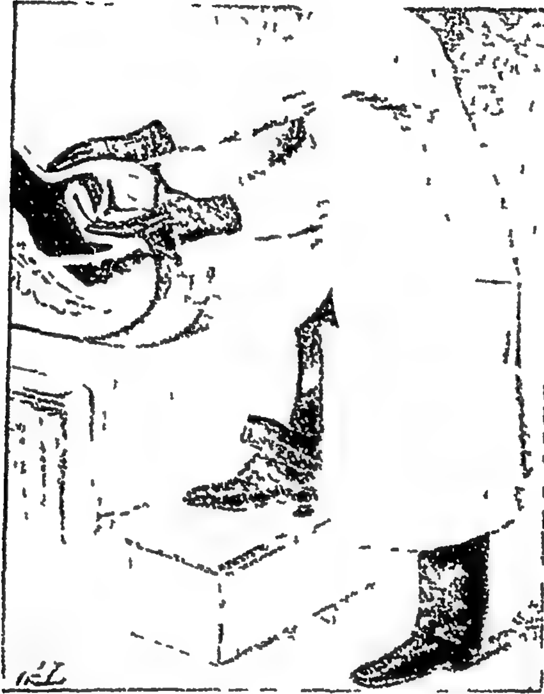
* कदाचिद्धि अतिवृद्धमधिशिरोऽभिन्नजरायुरिव प्रत्ययमावहत्यायति चेत । तत्रायं भेद —गर्भाशयसङ्कोचकाले जरायुराततो भवति, व्यपगते तु सङ्कोचे पुन शिथिलः, अधिशिरस्तु नैव परिवर्त्तते । किञ्च जरायुः प्रपीडित प्रोन्नमति, नैवमधिशिरः । शिरोरुहा अपि शिरोगतेऽधिशिरसि प्रतीयन्ते । इति ।

सयुक्तयोन्युदरपरीक्षणरूपो युग्मविधिः Combined Abdomino-Vaginae Examination or Bi-Manual Examination

गर्भाशयमार्दवपरीक्षणं गर्भाशयान्तश्चलद्रव्यपरीक्षणं च यथाऽनुष्ठीयते तत् तु विस्तरेण पूर्वं मार्दवगर्भप्रत्याघातपरीक्षणविधावस्माभिः सन्दर्शितम् ।

[५६ चित्रम्]

योनिपरीक्षणम् ।



सयुक्तयोन्युदरपरीक्षणरूपो युग्मविधि. ।

श्रोणिमापनम् ।

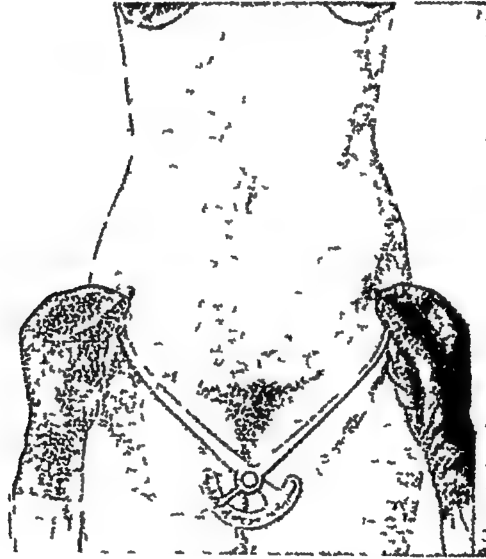
श्रोणिमापन नाम श्रोण्या विविधव्यासमानमापनम् । इतिवृत्तेन आकृत्या उदरस्पर्शनेन, योनिपरीक्षणेन च यदा श्रोण्या आकारवैषम्यं

श्रोणिमापनम् Pelvimetry (External & Internal)

सन्दिह्यते तदा निर्णयार्थं विधिरेष उपयुज्यते। बाह्याऽभ्यन्तरभेदेन च द्विविधं श्रोणिमापनं भवति। तत्राद्यं सुकरम्। द्वितीयं तु यथार्थमान-प्रदर्शकमपि कष्टतम एव विधिः, स्त्रियां मूर्च्छितायामेव यन्त्रसम्प्रयोगस्य दर्शनात्। शक्यं चानुमातुं बाह्यमानेनापि मानमाभ्यन्तरम्। विभिन्न-व्यासानां नामानि स्थिरविन्दवो मानाङ्काश्च पूर्वमुपवर्णिताः। ते च तत्रैव (११-१२-१३ पृ०) द्रष्टव्याः।

[५७ चित्रम्]

बाह्यश्रोणिमापनम्।



पुरःकूटान्तरालिको व्यासः।

तत्र बाह्यविधिमेयास्त्विमे व्यासा भवन्ति—

(१) पुरःकूटान्तरालिकः।

(२) जघनधारान्तरालिक.।

(३) शिखरकान्तरालिकः।

(४) कटिसन्धानिकान्तरालिकः।

(५) पश्चिमकूटान्तरालिक.।

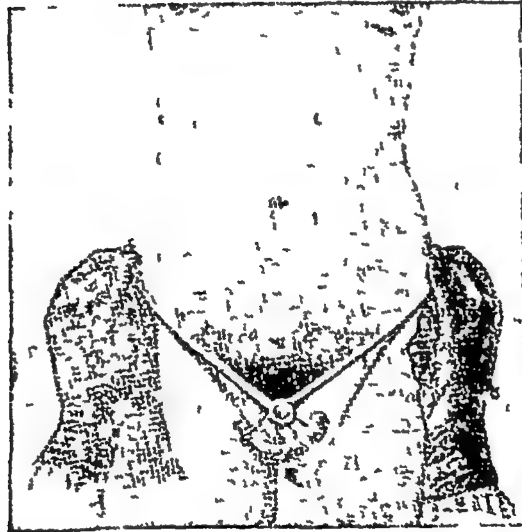
(६) निर्गमद्वारस्यानुदीर्घव्यासः।

(७) निर्गमद्वारस्यानुप्रस्थव्यासश्चेति।

तत्र प्रथमद्वितीयतृतीयार्थं सन्निकृष्टसक्थिकाया उत्तानशयानायाश्च स्त्रिया वक्षणाधरपार्श्वं तदभिमुखो भिषक् तिष्ठेत्, गृह्णीयाच्च सदृशानुकारं बाह्यश्रोणिमापकयन्त्रं द्वाभ्यामपि हस्ताभ्याम्। ततश्च यन्त्रस्य प्रान्तदेशा

[५८ चित्रम्]

बाह्यश्रोणिमापनम्।



जघनधारान्तरालिको व्यासः।

वङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां सन्धाय, मध्यमाङ्गुलिसाहाय्येन तत्तत्स्थिरबिन्दूनभिस्पृशन् यथास्थानं यन्त्रमुखे निवेशयेत्, वृत्तखण्डक्रमाङ्कांश्च शरनिर्दिष्टान् पठित्वा व्यासमानं विजानीयात्। चतुर्थस्य तु कृते उत्थिता पार्श्वशयाना वा स्त्रियं परीक्षेत। पञ्चमाय पुनर्गर्भिणीं पार्श्वेऽधोमुखं वा शाययीत।

षष्ठार्थे हि पार्श्वशयानाया यन्त्रफलकमेकं त्रिकानुत्रिकसन्धिस्थले (अनुत्रिकाग्रेऽपि, क्वचित्) द्वितीयं तु सन्धानिकाधरस्थले निवेशयेत्, त्रिकानुत्रिकसन्धिस्थौल्यनिरसनाय च लब्धमाने यवैकमानं सार्धयवकमानं वा ह्रसनीयम्। सप्तमस्तु तावत् अर्धाकुञ्चितजङ्घोरुके उत्तानासने परी-

[५६ चित्रम्]

बाह्यश्रोणिमापनम्।



कटिसन्धानिकान्तरालिको व्यास.।

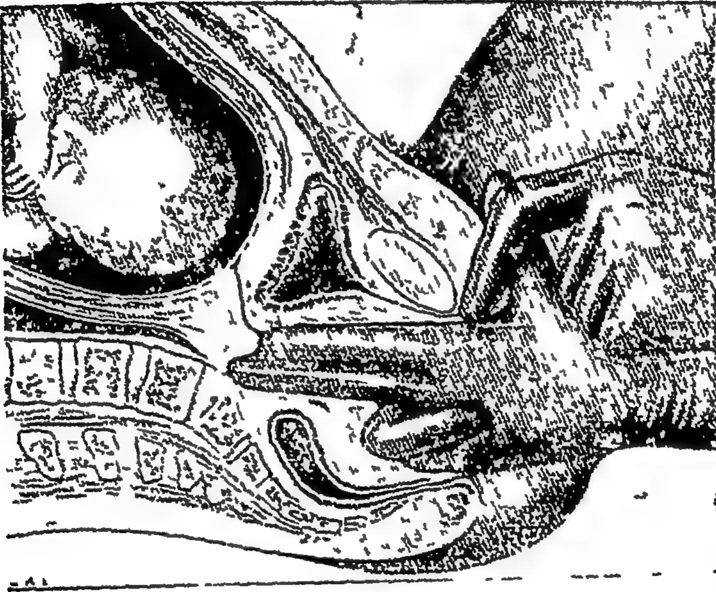
क्ष्य। कुकुन्दरकूटयोरन्तर्धारे चिह्नयित्वा मानस्फोतेन व्यासो मेय। कि वाऽङ्ग ष्ठनखाभ्यां स्थिरबिन्दून् स्वयमभिस्पृशेत्, सहायकश्च विवृत्त-मुखेन यन्त्रेण व्यासमानं विलोकयेत्।

अर्धाकुञ्चितजङ्घोरुकमुत्तानासनम् Lithotomy Position विवृत्तमुखम् With the blades Crossed

अत्रेदं वक्तव्यम्—जघनधारान्तरालिको व्यासः प्रवेशद्वारस्यानुप्रस्थ-व्यासात् द्विगुणप्रायो भवति, कटिसन्धानिकान्तरालिकश्च तस्यैवा-नुदीर्घव्यासात् सार्धत्रिप्राङ्गुलाधिक इति बाह्यमानेनैव श्रोणिकण्ठमानं भिषजाऽनुमातुं शक्यम्। योनिपरीक्षणेनापि श्रोणिकण्ठस्य वास्तविकोऽ-

[६० चित्रम्]

आभ्यन्तरश्रोणिमापनम्।



श्रोणिकण्ठस्य तिर्यगनुदीर्घव्यासो यथा मीयते तथाऽत्र दर्शितम्।

नुदीर्घव्यासोऽवधार्यते। तद्यथा दक्षिणहस्तस्य तर्जनीमध्यमे उत्तानशयानाया उपधानोन्नमितानितम्बायाश्च स्त्रिया योनौ प्रवेश्य मध्यमाङ्गुलिमुखेन त्रिको-त्सेधिकास्पर्शनाय यतनीयम्, तर्जनीमूलं च यत्र भगसन्धानिकाधरं स्पृशति तत्स्थलं द्वितीयतर्जन्या अङ्कनीयम्। ततश्च योनितो दक्षिणकरं निःसार्य मध्यमाग्रतः तर्जनीमूलाङ्कं यावत् दैर्घ्यं मापयेत्। एवं हि श्रोणिकण्ठस्य तिर्यगनुदीर्घव्यासः प्राप्यते, लभ्यते च प्राङ्गुलार्धात् पादोनप्राङ्गुलं

यावत् ठैर्य्यहसनात् प्रवेशद्वारस्य वास्तविकोऽनुदीर्घव्यास. । त्रिकास्थिचि-
काया. सुखप्राप्तिस्तु श्रोणिसङ्कोच द्योतयति ।

अपि च जघनधागन्तरालिके पुर कूटान्तरालिके च व्यासे प्राङ्गुलमितो यो मानभेद स स्थिरसाम्य., सूचयति च जघनधारावक्रिम्ण: श्रोण्याश्च प्राकृतदशाम् । अन्यथाभावस्तु सङ्कुचितश्रोणीकाया आयतश्रोणीकाया वा स्त्रिया दृश्यते । तत्र निश्चितमानभेदस्य हीनत्वे श्रोण्यायामः, मानभेदस्य तथात्वेऽपि व्यासद्वयस्य हीनमानत्वे श्रोणिसङ्कोच इत्यनुमीयते । वस्तुतस्तु श्रोणिप्रमाणापेक्षया श्रोणिकण्ठगर्भशिरसारापेक्षिकप्रमाणमेव विशिष्यते । उत्तानशयानाया. स्त्रिया गर्भशिरो गृहीत्वा श्रोणिकण्ठेऽवपीडनेन च सुखेन तद् विज्ञेयम् ।

तिर्यगनुदीर्घव्यास Diagonal or oblique conjugate
वास्तविकानुदीर्घव्यास: Obstatrical or True conjugate

अथ प्रसवखण्डम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातः प्रसवविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

प्रसवो नाम कर्मविशेषः, येन गर्भो गर्भोदकम् अपरा जरायुश्चेति सर्वं गर्भाशयाद् वियुज्य बहिर्भवति। द्विविधश्चैष प्राकृतवैकृतभेदात् । तत्र प्राकृतप्रसवो नाम यत्र गर्भोऽवाक्शिरा उदितमध्यशीर्षो निरुपद्रवः स्वभावेनैव (भिषक्साहाय्यमनपेक्ष्येति यावत्) अहोरात्राभ्यन्तरं प्रसूयते । अतोऽन्यथा प्रसवो वैकृतः। वचनञ्च—"स चोपस्थितकाले जन्मनि प्रसूतिमारुतयोगात् परिवृत्यावाक्शिरा निष्क्रामत्यपत्यपथेन, एषा प्रकृति-र्विकृतिः पुनरतोऽन्यथा", इति। च० शा० ८।

आसन्नप्रसवः—अनियतकाललक्षणेयमवस्था। प्रसवारम्भस्य द्वित्र-दिनात् पूर्वं लक्षणानि प्रादुर्भवन्ति, अप्रजातासु व्यक्तानि, अव्य-क्तानि च प्रजातासु। क्वचित्तु प्रजातासु सर्वथैव लक्षणाभावः। अद्य-श्वीनाया लक्षणवर्गस्त्वयम्—मिथ्याऽऽव्यः, ग्रीवाल्पविकसनम्, ग्रीवाति-मार्दवम्, श्लेष्मासृग्दर्शनम्, बहिर्भगशोफश्चेति। मिथ्याऽऽव्यो हि अनि-यतकालागमा भवन्ति, स्थानविशेषमनधिकृत्य च प्रायेण सर्वत्रैवोदरे प्रतीयन्ते। ग्रीवाल्पविकसनं प्रायेण प्रजातास्वेव दृश्यते, अप्रजातासु च ग्रीवातिमार्दवम्। ग्रीवासरण्यापूरणी श्लेष्मगोलिका तूभयोरपि निरस्यते। श्लेष्मलकलाजनितोऽन्तर्मुखसमीपे जरायुवियोगात् रक्तान्वितश्च यो

प्राकृतप्रसवः Normal Labour वैकृतप्रसवः Abnormal Labour.
आसन्नप्रसवः Premonitory Stage.

नाम श्लेष्मस्रवो ग्रीवामुखान्निर्याति तदेव श्लेष्मासृग्दर्शनम्। अवतरता गर्भशिरसा शिराणां व्यवपीडनादसम्यक् प्रतिनिवर्त्तमानं तु रक्तं बहिर्भग-शोफं जनयति।

केचित्तु गर्भाशयावस्रंसनम् गर्भशिरोऽवग्रहं चापि वर्गेऽस्मिन् निवेशयन्ति। तन्नातिसङ्गतम्। विप्रकृष्टत्वेन अद्य श्वः प्रकुर्वाणाया लक्षणत्वाऽयोगात्। उभयमप्येतत् प्रसवारम्भस्य कतिपयसप्ताहात् प्रागेव निर्वर्त्तते। गर्भाशयावस्रंसनेन विमुक्तभारमहाप्राचीरा गर्भिणी सुखेन श्वसिति लाघवञ्चानुभवति, गुरुनिम्नभागा चाभीक्ष्णं मूत्रयति कष्टेन च प्रचलति।

प्राञ्चोऽप्याहुः—

(१) तस्यास्तु खलु इमानि लिङ्गानि प्रजननकालमभितो भवन्ति। तद्यथा क्लमो गात्राणां ग्लानिराननस्य अक्ष्णोः शैथिल्यम् विमुक्तबन्धनत्वमिव वक्षसः कुक्षेरवस्रंसनम् अधोगुरुत्वम् वङ्क्षणवस्तिकटीकुक्षिपार्श्वपृष्ठ-निस्तोदो योनेः प्रस्रवणम् अनन्नाभिलाषश्चेति।

—च० शा० ८।

(२) जाते हि शिथिले कुक्षौ मुक्ते हृदयबन्धने।
सशूले जघने नारी ज्ञेया सा तु प्रजायिनी॥

तत्रोपस्थितप्रसवायाः कटीपृष्ठं प्रति समन्ताद्वेदना भवत्यभीक्ष्णं पुरीषप्रवृत्तिर्मूत्रं प्रसिच्यते योनिमुखाच्छ्लेष्मा च।

—सु० शा० १०।

(३) कुक्षेश्च स्यादवस्रंसस्त्वधोभागस्य गौरवम्।

—जातिसूत्रीयशारीरे कश्यपः।

प्रसवक्रमः।

प्रसवो हि वर्णनासौकर्याय घटनाक्रममुद्दिश्य त्रिधा विभज्यतेऽवस्था-भेदेन। तत्र प्रथमा प्रसरणावस्था नाम। सा हि आवीप्रादुर्भावादारभ्य ग्रीवाविकसन जरायुविदरण यावन्मीयमाना गर्भोदकप्रसेकावसाना च। कालस्तु तस्या अप्रजातासु अष्टादिद्वादशान्तः (षोडश वा) प्रजातासु च पञ्चादिसप्तान्तो (दश वा) होरामानेन दृष्टः। द्वितीया विशल्य-भावावस्था तु ग्रीवायाः पूर्णविकसनात् गर्भजन्मपर्यन्त गण्यते, एकादि-द्व्यन्तहोरामानाऽप्रजातासु दशादिपञ्चदशान्तप्रपलमाना च (त्रिंशद्वा) प्रजातासु। तृतीया अपराविमोक्षावस्था पुनः गर्भजननादपरानिर्गमं यावद्वर्त्तते, अप्रजातासु सार्धहोरामिता होरार्धमिता च प्रजातासु। एवञ्च साकल्येन प्रसवक्रियाकालो द्वादशादिचतुर्दशान्तहोरामितोऽप्रजातासु (अष्टादश वा) षडाद्यष्टान्तहोरामानश्च (द्वादश वा) प्रजातासु सम्पद्यते। तदेतत सामान्यत उक्तम्। विस्तरस्त्वत ऊर्ध्वम्।

प्रथमावस्था।

आवीप्रादुर्भावो हि प्रसवारम्भलक्षणम्। आव्यस्तु प्रसववेदनाः। अनैच्छिक्यः सान्तरा नियमिताः सशूलाश्चेति च तासां स्वरूपम्। क्रमेण चैता उत्तरोत्तर तीव्रतराः स्वल्पतरविरामा दीर्घतरकालस्थायिन्यश्च भवन्ति। या ह्यादौ त्रिंशत्प्रविपलप्रायस्थायिन्यो दशादित्रिंशदन्तप्रपलविरामाश्च दृष्टा, ता एवोत्तर द्विगुणकालस्थायिन्यस्त्रिगुणकालस्थायिन्यो वा द्वित्र-प्रपलविरामाः सम्पद्यन्ते, निरवच्छिन्नप्रायाश्च गर्भजन्मनि। ता इमा

प्रसवक्रमः Stages of Labour प्रथमा प्रसरणावस्था First Stage or Stage of dilatation द्वितीया विशल्यभावावस्था The Second Stage or Stage of expulsion तृतीया अपराविमोक्षावस्था The Third Stage or Placental Stage आव्य Labour Pains

पृष्ठ. सङ्कुच्य कन्धरापुरोभिमुखं पूर्ववदोऽभिवर्तन्ते । विपरीतमुत्थान-गमनता वाऽपि कर्तव्या दृष्टा. । तीव्रवेदनाकाले च स्त्रीत्वं क्रन्दति यतते च शान्तिमभिगन्तुं पुनः शरीरस्य किञ्चिदवलम्ब्य वा । त्रिकप्रदेशगतोऽत्र वेदना मुद्रयति । प्रवृत्तिस्थानकारणानि तासां प्रसवा-वस्थानुसारं भिद्यन्ते । तत्र प्रथमावस्थायां त्रिकदेशे (पृष्ठत.) गर्भा-शयपार्श्वयोश्च वेदना जायन्ते नातितीव्रा । ग्रीवाविकर्षणं गर्भाशया-कुञ्चनञ्च तासां हेतु । द्वितीयावस्थायां पुनर्गर्भाशयत्रिकश्रोणिगह्वरेषु तीव्रतरा वेदना अनुभूयन्ते । तत्र प्राचीरगतनाडीनिपीडनाद्गर्भाशये, योनिमूलगतयोरतिकर्षणाच्छ्रोणित्रिकयो, त्रिकनाडीजालपीडनाच्च ऊर्वोरपु तासां समुत्थानम् । तृतीयावस्थायां तु प्राचीरगतनाडीनिपीडनात् गर्भाशय एव ता प्रतीयन्ते नातितीव्राश्च भवन्ति ।

गर्भाशयस्य पुन पुन सङ्कोचेन च गर्भशिर. (अस्थिर चेत्) स्थिरी-भवति, ग्रीवास्यमुखं विकसति, जरायुभागश्च तत्स्थासन्नो वियुज्यते । पूर्वगर्भोदकधरश्चाय वियुक्तो जरायु 'वारिपुटक'रूपेण वर्धमानो ग्रीवा-सरणिं विस्फारयति । जरायुवियोगात् ग्रैवश्लेष्मरक्तलायाः स्वल्प विदरणात्, श्लेष्मगलिकाया विलसनाच्चैव रक्तमिश्र. श्लेष्मस्रावो योनि-मुखात् प्रसिच्यते प्रसवारम्भज्ञापक । ततश्च ग्रीवाया पूर्णविकसने सति उपष्टम्भविनाशनात् वारिपुटक भिद्यते प्रसिच्यते च पूर्वगर्भोदकम् । विकृतावस्थायां तु जरायोरकालभेदेन ग्रीवाया. सम्यक् विकसनात् प्रागपि गर्भोदकप्रसेको दृश्यते । (२३३पृष्ठगता टिप्पणीरत्र द्रष्टव्या)। कचित्तु ग्रीवाया पूर्णविकासेऽपि दृढो जरायुर्न भिद्यते । तत्र स्वयमङ्गुल्यैव भिषक् जरायु दारयेत् । असति त्वेवं जरायुणावृत एव गर्भो निर्गच्छति. तज्जीवनकाङ्क्षिणा च भिषजा द्रागेव जरायु विदार्य स्वतन्त्रः क्रियते । अवस्थान्ते च प्रायेण वान्तिरपि मातुर्दृष्टा । एवञ्च गर्भाशयसङ्कोचाः,

---

वारिपुटकम् Bag of Water

गर्भशिरःस्थैर्य, ग्रीवाविकसन, जरायुभेदश्चेति प्रथमावस्थाया घटनाक्रमः फलितः।

स्मर्त्तव्यश्चात्र—द्विविधा आव्यो भवन्ति, सत्यासत्यभेदात्। तत्र सत्यासु गर्भाशयसङ्कोचसमुत्थानासु कटिपृष्ठवेदना, नियतकालोपस्थिति, गर्भाशयस्य दृढीभवनम्, योनिपरीक्षणे जरायूत्तंसनप्रतीतिश्चेति विशेष। असत्यासु तु वस्त्यन्त्रोदरप्राचीरसङ्कोचमूलासु उदरवेदना, अनियतकालागमनम्, गर्भाशयदार्ढ्याभावः, जरायोश्चानुत्तंसनमिति।

द्वितीयावस्था।

जरायुभेदानन्तर क्षणं शान्ता अपि प्रसववेदनाः पुनस्तीव्रायन्ते, प्रणुद्यते च तेन लब्धमार्गो गर्भो योनिद्वाराभिमुखं क्रमेण। उदरपेश्यो महाप्राचीरा चापि कर्मण्यत्र सहाया भवन्ति प्रवाहणैककार्याः। प्रवाहणञ्च प्राक् स्वेच्छाधीनमपि, उत्तरमस्या अनिच्छन्त्या अपि स्त्रियाः स्वभावतोऽभिजायते।

पीडाकाले च गुर्विणी किमपि वस्तु दृढमालिङ्ग्य शय्यापादं वा स्वपद्भ्या निपीड्य आस्ते। दीर्घमुच्छ्वस्य यथाशक्यमवष्टभ्नोति निःश्वासं, प्रवाहते च। मुखमस्या नीलवर्णं भवति। गात्र स्विद्यते। पीडात्यये च कतिपयदीर्घश्वासान् गृह्णाति।

प्रत्यावीकालञ्च गर्भशिरोऽधस्ताद् प्रपद्यते, ईषत् प्रत्युद्गच्छति च तद्विरतौ। अध. प्रतिपद्यमानं च तत् मूलपीठमुन्नमयति, योनिमुखं च विकासयति, गुदनलिका चापि प्रपीडयति। अतएव वारं वारं मलत्यागस्योत्कटेच्छां स्त्री प्रकटयति। अविशोधितमलाशयायास्तु प्रतिवेग पुरीषमुत्सृज्यते।

सत्याव्यः True Pains मिथ्याव्यः False Pains

एवं गतागतं कुर्वदपि गर्भशिरः क्रमेणावागेव प्रतिपद्यते, भगसन्धानिकाया अधस्तात् सम्प्राप्तं च पायुधारण्या स्थिरीकृतं न प्रत्युद्गच्छति, बहिष्क्रियते च ततो बलवत्तरगर्भाशयसङ्कोचेन श्रोणितलप्रचेष्टनेन च योनिमुखात्। सोऽयमतिशयेन कष्टकरः कालः स्त्रियाः परिगण्यते। वेदनाकुला स्वारुच्चैराक्रोशति। आक्रोशकाले च स्वभावतः प्रवाहणं निरुध्यते। तेन न गर्भशिरसः सहसा विमोक्षो भवति। सहसा मोक्षो हि मूलपीठमस्या दारयेत्। ततश्च स्कन्धदेशो मध्यगात्रं निम्नशाखे च क्रमादचिरेणैव बहिर्भवन्ति। पश्चिमगर्भोदकं चावशिष्टं प्रसिच्यते। तथा चाय द्वितीयावस्थायां घटनाक्रमः—गर्भाशयसङ्कोचाः, प्रवाहणम्, गर्भनिर्हरणञ्चेति।

तृतीयावस्था।

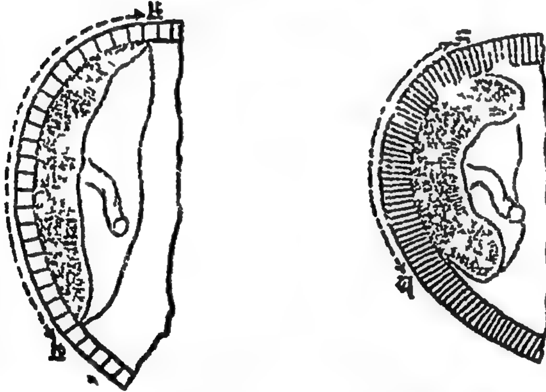
एवं विगतशल्या च स्त्री प्रायेण स्वल्पकालाय(दश पञ्चदश वा प्रपलानि) आवीना विरमणात् शान्तिमधिगच्छति। ततः प्रतिपञ्चप्रपलं पुनराव्यः समुद्भवन्ति। गर्भाशयस्तु स्थिरसङ्कोचे ह्रसितदैर्घ्यो नाभिदेशे तिष्ठति, सङ्कोचकाले घनकठिनो विरामकाले चेषन्मृदुः प्रतीयते। प्रत्यावीवेगञ्च बहुधा शोणितास्रावो दृष्ट आविलामोक्षज्ञापनः। बलवत्तरसङ्कोचेन च ततो वियुक्ताऽपरा योनिमुखाद् बहिर्भवति। योनौ वाऽवतिष्ठते सङ्कोचदौर्बल्यात् कदाचित्। जरायुश्चापि निर्गच्छन्त्याऽमरया सहैवाकृष्यमाणो विवृत्तस्तरद्वयः सन् बहिरायाति। ततश्च पुनः शोणितस्रुतिर्जायते। साकल्येन च प्राकृतप्रसवे दश विंशतिर्वा प्रशुक्तयो रक्तस्य स्रवन्ति। तत्र चतुष्पञ्चप्रशुक्तयोऽपराप्रतिपत्तेः प्राक् निस्रवन्ति, शेषास्तु प्रपन्नापरामनुवर्तन्त इति विशेषः। स्वभावतश्चाय रक्तस्रावः प्रतिरुध्यते गर्भाशयस्य स्थायिसङ्कोचेन शिराधमनीप्रपीडनात्। गर्भाशयसङ्कोचः, अपरान्तर्विमुक्तिः, अपरानिर्गमश्चेति च घटनाक्रमः। काले चास्मिन् सूतायाः प्रायेण शैत्यानुभूतिर्वेपथुश्चापि प्रजायते स्वेदेन शीतगात्रत्वात्, परिश्रान्त-

शरीरत्वात्, अपरीयरक्तसंवहनावरोधेन औदर्यरक्तसंवहनस्य पुनर्व्यवस्थानाच्च ।

अपरावियुक्तिनिर्गमप्रकारस्त्वित्थम् —उत्तरगर्भशय्यायाः सङ्कोचस्थिरसङ्कोचाभ्या यथा यथाऽपरादेशः सवृणुते तथा तथा तल्लग्नाऽपरा पारस्परिकसम्बन्धविच्छेदात् वियुज्यते । रक्तमपि पृष्ठतः परिस्रुतं तां वियोजयति । एवं विमुक्ता च सा कदाचित् उद्वृत्तच्छत्रनिभेव कदाचिच्च अनुदैर्घ्यदशायां पुटीकृतकायेव बहिः प्रपद्यते ।

[६१ चित्रम्]

अपरावियुक्तिः ।



चित्रेऽस्मिन् गर्भाशयभित्तिसहरणेन वियुज्यमानाऽपरा निदर्शिता ।

प्राञ्चोऽप्याहु.—

प्रथमावस्था :—(१) ततोऽनन्तरमावीनां प्रादुर्भावः, प्रसेकश्च गर्भोदकस्य ।

—च० शा० ८ ।

(२) तत्रोपस्थितप्रसवायाः कटीपृष्ठं प्रति समन्ताद्वेदना भवत्यभीक्ष्णं पुरीषप्रवृत्तिर्मूत्रं प्रसिच्यते योनिमुखाच्छ्लेष्मा च ।

—सु० शा० १० ।

(३) आवीनामनुजन्मातस्ततो गर्भोदकस्रुति.।

—वा० शा० १।

द्वितीयावस्था—(१) सा यदा जानीयात् विमुच्य हृदयम् उदरमस्यास्त्वाविशति, वस्तिशिरोऽवगृह्णाति, त्वरयन्त्येनामाव्य:, परिवर्त्ततेऽधोगर्भ.। इति।

— च० शा० ८

(२) गर्भः प्रयात्यवावेगं तल्लिङ्ग हृद्विमोक्षतः।
आविश्य जठर गर्भो वस्तेरुपरि तिष्ठति॥
आव्यो हि त्वरयन्त्येनाम्............ . ...।

—वा० शा० १।

(३) यदा गर्भोदक योनौ सशूल सम्प्रवर्त्तते।
कालेन चोदितो गर्भो विमुच्य हृदयोदरम्॥
वस्तिशीर्षमधोभागमवगृह्णाति जन्मनि।
ग्लानिश्च जायतेऽत्यर्थं योन्युत्पीडनभेदनम्॥
इत्येतै· कारणैर्विद्यात् गर्भस्य परिवर्त्तनम्।
अथास्या: प्रसवश्चेति.. ....॥

—जातिसूत्रीयशारीरे कश्यप।

तृतीयावस्था—यदा च प्रजाता स्यात्तदैवैनामवेक्षेत कदाचिदस्या अपरा प्रपन्नाऽप्रपन्ना वेति।

—च० शा० ८।

अथ प्रसवहेतुः।

आवीमूलाना गर्भाशयसङ्कोचाना प्रादुर्भाव एव प्रसवकारणम्। केन हेतुना कथञ्च काले तेऽभिप्रवर्त्तन्त इति तु पर्यवेष्टव्यम्।

प्रसवहेतुः Causes of Labour

त्रिविधा हि नाड्यो गर्भाशयमनुप्राणयन्ति—(क) अनुत्रिकनाडीर्द्वारीकृत्य प्रसृता नाड्यो मेरुजाः, या नाम सुषुम्नाशीर्षस्थितेन कटिसुषुम्नास्थितेन चैकैकेन केन्द्रेण नियन्त्र्यन्ते । (ख) महाधामनिकात्, आन्त्रिकात् अधिवरितकाच्च नाडीचक्रान्निर्गताः परिगर्भाशयनाडीचक्रप्रवेशिन्यो नाड्यः । (ग) ग्रैवनाडीगण्डसमुत्थाश्च नाड्यः । एता एव नाड्यः सुषुम्नाशीर्षस्थितस्य केन्द्रस्य संक्षोभात्, अथवा कटिसुषुम्नास्थितस्य स्वतन्त्रनाडीग्रन्थिस्थितस्य वा केन्द्रस्य प्रतिसङ्क्रमितक्षोभात् प्रवृत्ताँश्चेष्टावेगान् गर्भाशयं प्रापयन्ति ।

केन्द्रक्षोभकरास्त्विमे भावा भवन्ति :—(क) आङ्गारिकवाष्पस्याधिक्यम्, महातिक्तार्गटविषतिन्दुकप्रभृतीनि द्रव्याणि, तीव्रज्वरः, अतिरक्तस्रुतिश्च । (ख) ग्रीवाविस्फारणम्, जरायुवियोगः गर्भाशयरक्तकुल्यासु आङ्गारिक वाष्पस्य प्रमाणाधिक्यम्, स्तनप्रहर्षः, गर्भाशयक्षुब्धता चेति । तत्राद्यो वर्गः सुषुम्नाशीर्षस्थित केन्द्रं द्वितीयस्तु कटिसुषुम्नागत स्वतन्त्रनाडीग्रन्थिगतं वा केन्द्र समुत्तेजयतीति विशेषः ।

कालप्रसवहेतुवादे तु बहुविधा विप्रतिवादाः सन्ति । तत्र नानाविधभावाना समुदय एव प्रसवस्य कालारम्भे हेतुर्न केवलमेको भाव इति तु सम्मतः पन्थाः । विप्रतिवादास्त्वित्थम् .—

(१) ग्रीवाविस्फारणम्—प्रारम्भिकमासेषु मांसधातोर्भृशमुपचयात् वर्धमानकायमानस्यापि गर्भाशयस्य न स्थौल्यप्रमाण हीयते । उत्तरमासेषु तु स्फीतिकृता तनुतैव तस्य दृष्टा । न चेयमवस्था परतोऽधिक सम्भाव्यते । गर्भवृद्धिमसहमानो हि गर्भाशयस्तदाऽधरगर्भशय्यामन्तर्मुखं च प्रति गर्भं पीडयति । ग्रीवान्तर्मुखं च तेन विकसति । तदिदं ग्रीवाविस्फारणमेव गर्भाशयसङ्कोचानां प्रारम्भे हेतुर्भवति । अतएव च बलाद्

संक्षोभः Direct Irritation प्रतिसङ्क्रमितक्षोभ. Reflex irritation

(१) Dilatation of the Cervix.

ग्रीवाविस्फारणेन सङ्कोचान् सञ्जनय्य प्रसवं प्रवर्त्तयन्ति भिषजः स्वेनाऽप्रवर्त्तमानमित्येके । यमलगर्भे गर्भोदकातिरेके च गर्भाशयस्य सत्यपि प्राक्कालिके तनुतरभावे न पूर्वकालिकः प्रसवो दृश्यते, अनुप्रस्थावतरणे औदर्य्यगर्भदशायां च स्फीतिकृततनुतायां अभावेऽपि यथाकालं प्रसवो जायते । एवञ्चान्वयव्यतिरेकाभावान्नेदमेव केवलो हेतुरित्याहुरपरे ।

(२) जरायुवियोग —अन्तिमे मासि गर्भधरकलायामपचितिर्जायते, वियुज्यते च तेन जरायु । सोऽयं जरायुवियोगोऽपि बहुभिर्हेतुत्वेन दृष्टः । परे तु नेदं सहन्ते, प्राकृतदशायां तादृशापचितेरदर्शनात् ।

(३) आङ्गारिकवाष्पस्याधिक्यम्—मातृरक्ते प्रवृद्धं वाष्पमिदं गर्भाशयसङ्कोचान् जनयतीति केचित् । दृष्टं च गर्भकालान्ते मातुरसृजि तदाधिक्यमपि । किन्तु क्रमेणैतत् सम्पद्यते, कथन्नाम सहसैव सम्भूय सङ्कोचान् प्रवर्तयतीति तु चित्रमेव । अतएव गौणोऽयं हेतुरित्यन्ये वदन्ति ।

(४) गर्भाशयप्रक्षुब्धता—गर्भकाले गर्भाशयस्य विरताकुञ्चनशीलता वस्तुतस्तत्क्षोभजनितैव । मन्दमन्दसङ्कोचाश्चैते सम्भावितार्त्तवस्रावकाले उत्तरोत्तरं तीव्रायन्ते, दर्शयन्ति च निरुद्धेऽप्यार्त्तवे तदन्तर्व्योपारप्रक्रमम् । सोऽयं क्रमेण वर्द्धमानो गर्भाशयक्षोभोऽपि सहान्यैर्मात्रैर्हेतुत्वेन सम्भाव्यते बहुभिः ।

(५) गर्भसंवर्त्तनद्रव्याणि—ये नाम द्रव्यविशेषा वर्धमानगर्भेण प्रागुपयुज्यन्ते त एव सति प्रगल्भे गर्भे क्रमेण मातृरुधिरे सञ्चीयन्ते, जनयन्ति च काले स्वप्रभावेण गर्भाशयसङ्कोचान् । मतञ्चेदं तर्कसम्मतमिति बहूनां प्रकृतिविदामभिमतम् । परिपक्वापरात एव केचन द्रव्य-

---

(२) Detachment of the Membranes (३) Excess of Carbon Dioxide in the Circulation अपचितिः Degeneration (४) Increased Irritability of Uterus (५) Metabolic Products of Foetus

विशेषाः समुत्पद्यन्ते ये नाम सुषुम्नागत प्रसवकेन्द्र व्युत्तेजयन्तीति तु केचित् ।

(६) आन्तररसः—क्रमेण क्षेत्रसञ्जननरसस्य सति बलक्षये पश्चिमपोषणिकास्रावप्रभावजोऽयं विशेष इत्याधुनिकाः ।

(७) प्रकृतिः—इतरे तु नानावादेभ्य उद्विज्य प्रकृतिरेवेदृशीत्युक्त्वा विश्राम्यन्ति । हृच्चक्रं यथा प्रविपलैकप्रायम्, श्वसनचक्रं चतुष्प्रविपलमात्रम्, आर्त्तवचक्रं च चतुःसप्ताहमितम्, तथैव गर्भकालचक्रमपि दशमाससमानप्रायमिति तेषामभिप्रायः ।

प्राञ्चोऽपि प्रसूतिमारुतयोग कालोपस्थिति चैव हेतुत्वेन पश्यन्ति, तद्यथा :—

(१) स चोपस्थितकाले जन्मनि प्रसूतिमारुतयोगात् परिवृत्यावाक्शिरा निष्क्रामत्यपत्यपथेन—इति ।

—च० शा० ६ ।

(२) कालस्य परिणामेन मुक्तं वृन्ताद्यथा फलम् ।
प्रपद्यते स्वभावेन नान्यथा पतितु ध्रुवम् ॥
एवं कालप्रकर्षेण मुक्तो नाडीनिबन्धनात् ।
गर्भाशयस्थो यो गर्भो जननाय प्रपद्यते ॥ इति ॥

—सु० नि० ८ ।

---

(६) Internal Secretion (Hormone) (७) Natural Selection

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातः प्रसवाङ्गविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

सन्तीह खलु केचन ईदृशा भावा यैरविकृतसमुदितै साध्यते प्रसव. । चत्वारश्च ते—प्रसाविका शक्ति., अपत्यपथ., अपत्यम्, अपत्यगतयश्चेति । तत्र—

प्रसाविका शक्तिर्नाम गर्भाशयसङ्कोचकरो वायुरेवापानसंज्ञ. । प्रवाहणकार्यो व्यानश्चापि कर्मण्यत्र सहायो भवति। कार्यकारणयोरभेदाच्च गर्भाशयसङ्कोचा प्रवाहणञ्च शक्तिपदेनेह विवक्षितानि ।

सुश्रुतश्चात्र—

> पक्वाधानालयोऽपानः कालेकर्षति चाप्ययम् ।
> समीरण. शकृन्मूत्रशुक्रगर्भार्त्तवान्यध ॥
>
> —नि० १ ।

अयश्चात्र विशेष —

गर्भाशयसङ्कोचा हि सविरामाः सवेदनाश्च भवन्ति । उत्तरोत्तरञ्च विरामकालस्य स्वल्पीभाव. । सङ्कोचकाले स्त्रिया रक्तभारोऽन्तर्गर्भाशयभारश्च वर्धते, त्वरितो धमनीनाड्या. स्पन्दः (द्वादशाधिकः प्रायेण), श्वसन मन्दं भवति क्षणमवरुध्यते वा, भ्रूणहृत्स्पन्दनं मन्दायते (षष्टि सप्तति वा प्रतिप्रपलम्), तीव्रायते च गर्भाशयध्वनि. । अधरगर्भशय्याविस्फायनात् गर्भाशयस्यानुदैर्घ्यव्यासो दीर्घायते ह्रस्वायते चानुप्रस्थव्यास. । गर्भाशयप्राचीर स्थूलं भवति। प्रत्युद्गत इव च गर्भाशयस्तदा स्पर्शेन

प्रसवाङ्गभावा The Factors or Phenomena of Labour प्रसाविका शक्तिः Powers which play into labour सङ्कोच Contraction

प्रतीयते। गर्भश्चासौ तदन्तराकाशह्रसनात् हीनतरप्रतिरोधिदिशाया-मधस्तादु प्रपीड्यते।

विरामकाले तु लक्षणानां वैपरीत्यम्। एतच्च विरतिप्रयोजनं भिषजो व्याचक्षते—प्रजायिन्याः क्षणिक विश्राममुखम्, गर्भस्य निपीडनकष्टा-पहारः, सङ्कोचकालेऽवरुद्धस्य चापरारक्तसंवहनस्य पुनः प्रतिष्ठापनञ्च। अत एव गर्भाशयस्य कादाचित्केऽविरताकुञ्चनविकारे रक्तसंवहनावरोधाद् गर्भमरणम्। प्रतिविरामं च शिथिलोऽपि गर्भाशयो न भूतपूर्वां स्वावस्था-माप्नोति स्तोकेनाकुञ्चनस्य तादवस्थ्यात्। एवमवस्थितस्याकुञ्चनस्यैव च स्थिरसङ्कोच इति सञ्ज्ञानम्। तथा च प्रतिवेगं संहरणस्वभावो गर्भाशयः क्रमेण स्वान्तराकाशह्रसनात् गर्भमधस्तात् प्रवर्त्तयति। ग्रीवा-विकसनेन लब्धावकाशश्च गर्भो बहिर्निर्याति। अन्यथाऽवकाशालाभे तु गर्भस्य पीडनमात्रमेव सम्पद्येत न तु प्रसूतिः।

एव जायमानाश्च गर्भाशयसङ्कोचा ग्रीवाविकसने, गर्भाशयद्वारविवरणे, अधरगर्भशय्याविस्फायने उत्तरगर्भशय्यामानह्रसने च प्राग् गर्भजन्मन. परिणमन्ति। गर्भाशयसंवरणे च जन्मनः परम्। तदेतत् विस्तरश उत्तरत्र इहैव वक्ष्यामः।

प्रवाहणन्तु पुनर्गृहीतरुद्धश्वासाया औदर्य्यपेशीसाहाय्यकेन महाप्रा-चीराकुञ्चनेन निर्वर्त्तते। निश्वासकर्मसहायकानामौरस्यपेशीनामपि सहकारित्वं कर्मण्यत्र स्फुटम्।

अपत्यपथः।

अपत्यपथो नाम महावकाशो जननपथः, गर्भाशयग्रीवाधराशययो-र्योनेश्च विस्फारेण निर्मीयमाणः। प्रवृद्धगर्भाशयस्य हि प्रसवदशा त्रेधा प्रविभागः कल्प्यते उत्तरगर्भशय्या, अधरगर्भशय्या ग्रीवा चेति। तत्र—

अविरताकुञ्चनम् Tetanic Contraction स्थिरसङ्कोचः Retraction

उत्तरगर्भशय्या—(उत्तरांशो वा) परिवेष्टनकलायाः पूर्वप्रत्यावर्त्तन-सीमत ऊर्ध्वं स्थितेन गर्भाशयभागेन निर्म्मीयते (अर्थात् उदर्य्याख्यकला गर्भाशयस्य यद्देशत उद्गत्य मूत्राशय गच्छति तद्देशसीमत उपरि स्थितेन गर्भाशयभागेन तन्निर्मितिः)। अस्यैव च दृढसंहतपरस्पराविष्ट-तिरश्चीनपेशीसूत्रबहुलस्योत्तरांशस्य सङ्कोचैर्गर्भोऽप्यधस्तात् प्रणुद्यते प्राधान्येन। उदर्य्यकला चात्र दृढ प्रतिबद्धा।

अधरगर्भशय्या—(अधरांशो वा) पुनरन्तर्मुखोत्तरांशयोर्मध्यव-र्त्तिना गर्भाशयभागेन निष्पद्यते। पेशीसूत्राणि त्वस्य शिथिल सहतानि अनुदैर्घ्याधिकानि च भवन्ति। उदर्य्यकलापि केवल पृष्ठभागमेव प्राप्नोति, शिथिल च। उत्तरांशो यदा सकुचति तदास्य वृत्तसूत्राणि शिथिली भवन्ति, अनुदैर्घ्यसूत्राणि च सङ्कोच गतानि ग्रीवामेव केवलं निःसरतो गर्भस्योपरि ऊर्ध्वमाकर्षन्ति। अत एव प्रसवकर्मणि निष्क्रियोऽयं भाग इत्युच्यते। सहरणवलयश्चानयोरेवोत्तराधरभागयोः सयोगसीमन्युपलभ्यते।

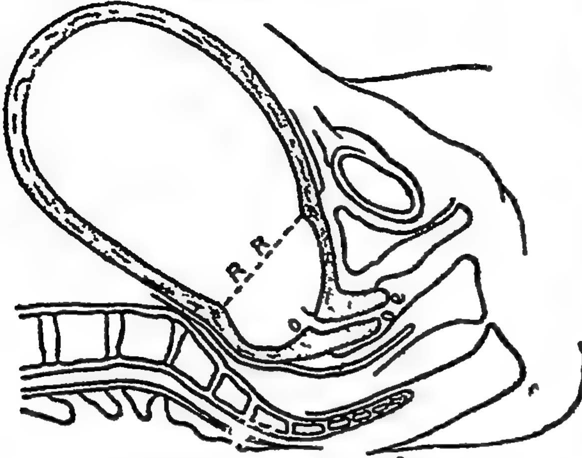
ग्रीवा—त्वन्तर्मुखादध स्थितो गर्भाशयभागः। वृत्तसूत्रमयी चेयम् अधरांश इव उत्तरांशसङ्कोचकाले शिथिलीभूताऽवतिष्ठते।

तथा चेद् फलितम्—गर्भाशयगात्रग्रीवाभागौ विपरीतधर्म्माणौ भवतः। गात्रं यदा शिथिलमवतिष्ठते तदा ग्रीवा दृढ संकुचिता वर्त्तते, यथा प्रागारम्भात् प्रसवस्य। आरब्धे तु प्रसवे उत्तरांशः सङ्कुचति ग्रीवाधरांशौ च शिथिलीभवतः। किञ्च, उत्तरांशो यथा यथा स्थिरमाकुञ्चति तथा तथा

प्रवाहणम् Bearing down action अपत्यपथः Birth Canal, the Passage उत्तरगर्भशय्या An Upper Zone—the Upper, or the Contractile, Uterine Segment अधरगर्भशय्या A Lower Zone—the Lower, or Non-Contractile, Uterine Segment निष्क्रियः Passive. विपरीतधर्मता Polarity of uterus

[६२ चित्रम्]

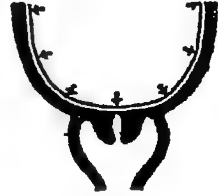
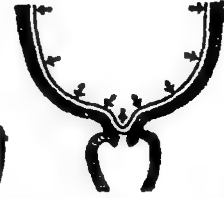
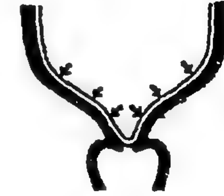
प्रसवारम्भे संहरणवलयस्य स्थितिः।

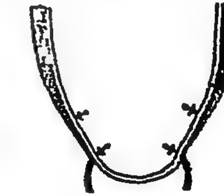


r.r संहरणवलयम्। o. 1 अन्तर्मुखम्। o. e. बहिर्मुखम्। संहरणवलयादूर्ध्वमधस्ताच्च क्रमेणोत्तराधरगर्भशय्ये विभावनीये।

[६३ चित्रम्]

ग्रीवाविकसनम्.



ग्रीवाविकसनं अत्र, अप्रजातायाः स्त्रिया ग्रीवाविकसनक्रमो दर्शितः।

ह्रस्वीभवन् स्थूलायते, अधरांशस्तु स्फारीभूतस्तनुतां गच्छति। तथा च तनूकृताया अधरशय्याया उपरि स्थूलीभूतस्योत्तरांशस्य याऽधरधारा स्थूलोष्ठमिव पृथग् लक्ष्यते तस्या एव वलयाकारत्वात् स्थिरसङ्कोचसमुत्थितत्वाच्च 'संहरणवलयम्' 'आकुञ्चनवलयम्' वेत्यभिधानम्। स्पर्शकाले च अस्यैवाधरतनो नतदेशस्तिरश्चीनपरिखेव प्रतीयते।

अपत्यपथश्च ग्रीवाविकासादिना यथा निर्वर्त्तते तदनुव्याख्यास्यामः—

(१) ग्रीवाविकसनम्—ग्रीवाविकसनं नाम ग्रीवाविस्फारणम्। कर्म चेदं मृदुशिथिल-

---

संहरणवलयम् आकुञ्चनवलयं वा The Retraction ring, contraction ring or Bandle's ring (१) The Taking-up of the cervix

भूताया ग्रीवाया उत्तरगर्भशय्याकुञ्चनादधः प्रवर्त्तमानस्य गर्भाण्ड-स्योपरि गर्भाशयानुदीर्घसूत्राणां मद्धाचैतत्कर्षणात् सम्पद्यते। तत्र, अप्रजातायाः प्राक् अन्तर्मुख विकसति, ततो ग्रीवाया ऊर्ध्वयोनि-कोश, अन्तर्योनिकोशश्च ततोऽपि परम्। स्फारीभूता चैव गर्भाशय-ग्रीवाऽधरगर्भशय्यया सह मिलित्वैकीभवति। बहिर्मुखमेव केवलं तनूकृतौष्ठ संवृत तिष्ठति गर्भाशयद्वाररोधि। प्रजातायास्तु बहिर्मुखं प्रथमत एव विकसितं भवति। तत्र पूर्वमन्तर्मुख ततश्चोर्ध्वयोनिको ग्रीवांशो विकसति, अन्तर्योनिकोशस्तु स्थूलौष्ठतुल्यः संवृत एव वर्त्तते गर्भाशयद्वाररोधनशील.।

(२) गर्भाशयद्वारविकसनम्—अवाङ् प्रपद्यमानो हि गर्भोऽ-नुदीर्घसूत्राणामाकुञ्चनेन विध्रियमाण गर्भाशयद्वार बलात् विकासयति। गर्भाशयगुहा च योनिगुहया सम्यगनुबध्यते। ग्रीवाविकसनकाले च ग्रैवग्रन्थय. प्रभूत श्लेष्माण स्रवन्ति जननपथस्नेहन सुख गर्भनिर्गमाय। त्रिगच्छृता च गर्भेण योनिरपि विस्फार्यते। शङ्क्वाकृति च गर्भशिरः सर्वोत्तमं विस्फारणयन्त्रम्।

(३) अधरगर्भशय्याविस्फायनम्—प्रसवारम्भे हि गर्भशय्या अधरा संहरणवलयादन्तर्मुख यावद् वर्त्तमाना पादान्त्रिप्राङ्गुलप्रायग-भीरा भवति। उत्तरं तु ग्रीवाभागमेलनात् कायमानमस्या वर्धते। तत्र प्रागुक्त-विपरीतधर्म्मवशात् संहरणवलयादूर्ध्वस्था गर्भाशयपेश्यो यदा सङ्कु-चन्ति तदा तदध.स्थाः शिथिलीभवन्ति (अन्यत्रानुदीर्घसूत्रेभ्य)। गर्भश्च सङ्कोचसहरणैरुत्तरशय्यावकाशह्रसनादधः पीडित शिथिली-भूतायामधरशय्यायामवतीर्य ता विस्फारयति। अतएव गर्भाशयस्तदा दीर्घीभूत इव संलक्ष्यते। ततश्च गर्भाशयद्वारविवरणाल्लब्धावकाशो

---

(२) The Dilatation of the Uterine Orifice (३) The Expansion of the Lower Uterine Segment

गर्भो बहिरायाति। मूढगर्भदशायामनिष्क्रामति गर्भे तु यथा यथोत्तर-शय्या सङ्कुचति तथा तथाऽधरशय्याऽधिकं विस्फायते, विदीर्यते च ततः परं प्रतनुभूता गर्भपीडनभरासहनात्। उत्तराधरगर्भशय्ययोः सीम-सन्धिभूतं संहरणवलयं च प्राकृतप्रसवे दुर्ज्ञेयमपि दीर्घप्रसवे तिरश्चीन-सोतेव आदौ सन्धानिकाया उपरिष्टात् ततश्च नाभिदेशे उदरस्पर्शनेन ज्ञातुं शक्यते। उपर्युपर्युद्गच्छच्चेदम् अधरगर्भशय्याया विस्फारातिशयं प्रकटयति।

(४) गर्भाशयकायमानह्रासः—पेशीनां सङ्कोचसंहरणैरुत्तरगर्भ-शय्याया कायमानह्रसनात् यथा नाम गर्भः स्वाशयाद्विमुच्यते तदुक्तं प्राक्। निःसृते च गर्भे सङ्कोचसंहरणैरेव गर्भाशयो ह्रस्वीभवन् रिक्तदेशमात्मना पूरयति। अन्तराकाशोऽस्य हीयते, भित्तिश्च स्थूलायते। प्रसवारम्भे आङ्गुलपादैकस्थूलं यत्प्राचीरं द्वितीयावस्थान्ते तदेव आङ्गुलत्रिपादस्थूलं सम्पद्यते। अन्तराकाशश्च हीयमानः सम्भावितमात्रः स्यात्।

अथ गर्भाशयसङ्कोचानां विविधाङ्गेषु परिणाम उच्यते।

सङ्कोचानां श्रोण्यवयवेषु मूलपीठे च परिणामः—श्रोण्यङ्गानि हि स्वस्थानतोऽपसरणात् गर्भनिर्गमेऽवकाशदानेन सौकर्य्यमापादयन्ति। तत्र मूत्राशयो गर्भाशयग्रीवया संसक्तः, ग्रीवोत्कर्षणेन सहाकृष्टश्च स लघुश्रोणिगुहां परित्यज्य उदरगुहां प्रपद्यते। एवं योनिमूत्रप्रसेकयोरधर-तृतीयांशः पूर्वतोऽवरगुदं मूलपिण्डिकाश्रोणितलपेश्यश्च(योनिपश्चिमस्थाः) पश्चिमतो गर्भनिर्गमपीडिता नीचैर्भ्रंश्यन्ति। अवतरता च गर्भशिरसा श्रोणिसिराणामवपीडनात् न सम्यक् प्रतिनिवर्तते रक्तम्। तथा च सिरा-रक्तभारवर्धनात् स्वभावतश्चापि रक्तातिसञ्चरणात् धातुषु लसीका चीयते।

---

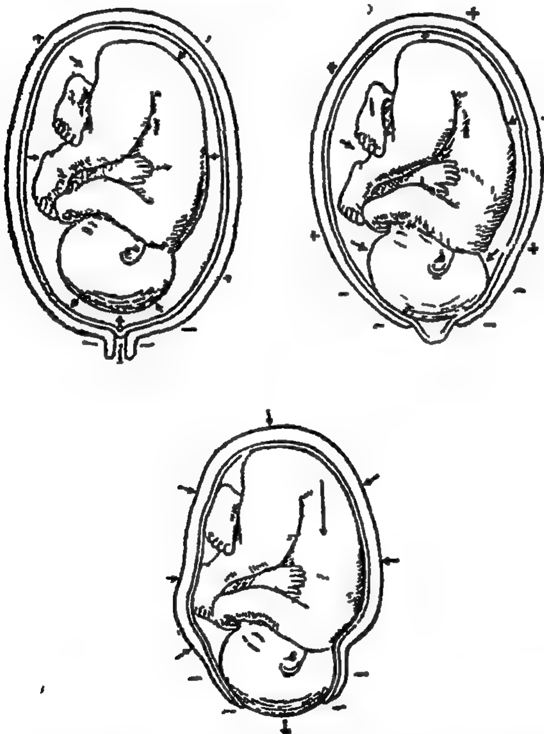
(४) Diminution in the size of the Uterus (१) The effect of the Uterine contractions on the Pelvic contents and Perinaeum

योनिः प्रस्नवति । धातूनां विस्फारातिशयसामर्थ्यम् मार्गस्नेहनात् सुखेन गर्भनिर्गमश्च तयोः फलम् ।

(२) सङ्कोचानां गर्भाण्डे परिणामः—आदौ गर्भाशयसङ्कोचा न्यूनप्रतिरोधाया दिशि गर्भाण्ड प्रवर्त्तयन्ति । सहैव चाधरगर्भशय्याया गर्भाण्डस्योपरि समाकर्षणात् जरायुर्गर्भधरकलया हीनाधिक वियुज्यते ।

[६४, ६५, ६६ चित्राणि]

सङ्कोचानां गर्भाण्डे परिणामविशेषः ।



गर्भाशयसङ्कोचैः पीड्यमानो गर्भो यथा नाम स्वल्पप्रतिरोधदिशि प्रक्रमन् ग्रीवासरणि च विकासयन् योन्यभिमुखो भवति यथा च वारिपुटकस्य निर्माणभेदने तदत्र दर्शितम् ।

(२) The effect of the uterine contractions on the Ovum

तेन च मन्दं रक्तस्रुतिः। रक्तञ्चेद् ग्रैवग्रन्थिनिर्गतेन श्लेष्मणा सह निःसरत् प्रसवारम्भस्य ज्ञापक भवतीत्यासन्नप्रसवाप्रसङ्गे श्लेष्मासृग्दर्शनपदेन दर्शितम्। वारिपुटकनिर्माणमपि जरायुवियोगादेव सम्भवति। ततश्च सम्यग्विकसिते गर्भाशयमुखे सङ्कोचव्रजेनात्युत्तंसित पुटकम् उपष्टम्भविनशनाद्भिद्यते प्रसिच्यते च तदन्तर्गत पूर्वगर्भजलम्। भिन्ने तु जरायौ क्रमेणाधःप्रणुद्यमानोगर्भस्तैस्तैर्वक्ष्यमाणनिष्क्रमणप्रकारोक्तगतिविशेषैरपत्यपथानुकूलता व्रजन् निष्क्रामति पश्चिमगर्भोदकेनानुवर्त्तमानः। अपराऽपि तलदेशीयया गर्भधरकलया वियुक्ता सती जरायुणा सह बहिः प्रपद्यते यथाकालम्।

इदन्त्वत्र स्मर्त्तव्यम्—अन्तर्जरायुर्बहिर्जरायुश्च प्रायेण सार्धमेव भिद्येते। कदाचिदेव केवलमन्तर्जरायुर्वियोगदेशे क्वचिदूर्ध्वदेशे वा भिन्नो भवति गर्भोदक च तयोरन्तराले व्याप्नुवत् अतिरिक्तपुटकमेकं निर्मोति। अथ चान्तर्जरायुमार्गेण स्यन्दमानमपि गर्भोदक बहुधा पुटकमीदृशं निर्वर्त्तयति। अतिरिक्तं चेदं पुटक प्रसवकाले यदा भिद्यते तदा मुख्यपुटकभेदेन भ्रमसम्भवः। कदाचित्तु जरायुद्वयमन्त्वर्जरायुर्वा केवलं शिरोनिर्गम यावदपि न भिद्यते विदीर्यते च तदा गर्भग्रीवा परितः प्रायेण। कदाचिच्च समग्र एव गर्भो जरायुणा वेष्टितो जायते तद्भेदात्।

अपत्यम्।

अपत्य नाम गर्भो यः पुन शक्त्या प्रणुद्यमानोऽपत्यपथान्निष्क्रामति वारिपुटकपुरःसरः। अपरा च सह जरायुणाऽनुगच्छत्येनम्। तथा चापत्यपथस्य पथिका इम इति फलितम्।

अपत्यगतयः।

अपत्यगतयो नाम गर्भस्यापत्यपथादन्तरतो मार्गानुकूला गतयः। सङ्कोचनम्, अन्तर्वर्त्तनम्, प्रसरणम्, पुनरावर्त्तनम्, बहिर्वर्त्तनञ्चेति च ताः

अतिरिक्तपुटकम् Amnio chorionic pouch. पथिकाः The passengers or Bodies passing गतयः Movements.

पञ्चविधाः। क्रमस्त्वेष प्रायिकः, सङ्कोचप्रसारयोः क्वचन विपर्ययेणापि दर्शनात्। निष्क्रमणप्रकारश्च प्राकृतवैकृतभेदेन द्विविधो भवतीति सर्वमेतत् तत्तदासनाना व्याख्याने भविष्यति स्पष्टम्।

निष्क्रमणप्रकारः The Mechanism of Labour

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातः प्रसवोपक्रमविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

सूतिकागारम्:—यत्र गर्भिणी सूते प्रसूता च तिष्ठति तत्सूतिकागारम् । प्रजायिन्याश्च प्रथममेवागारमन्विच्छेत्, प्रशस्तं रम्यं निवातातप प्रवातैकदेशमतमस्कमसङ्कीर्णं सुखप्रविचारं च । प्रागेव च निरर्थकं वस्तुजात मपसार्य्य प्रसवसम्भाराणा सन्निवेशविशेषेण गृहमिदं प्रसाधयेत् । यथामान सूत्तंसितवितानमनुच्चावचं सुखास्तरणञ्च शयनं तस्मिन्नुपकल्पयेत् । प्रजननकुशलामनुरक्ता क्लेशसहां च परिचारिकां पूर्वत एव नियोजयेत् ।

तत्रेमानि अग्रोपहरणीयद्रव्याणि भवन्ति:—

(क) वस्त्रेषु—शय्यास्तरणप्रावरणानि देहांशुकानि च ऋत्वनुकूलानि मातृपुत्रयोः ।

(ख) पात्रेषु—पञ्च सप्त वा वर्धमानकाः,[१] पेयपात्राणि,[२] पुरीषपात्रम्,[३] उष्णजलदृति ,[४] तप्तजलधरे च द्वे गलन्तिके[५] ।

(ग) भेषजेषु—भूतघ्नानि,[१] मोहनमूर्च्छनानि,[२] शमनानि,[३] रेचनानि,[४] गर्भाशयोत्तेजनानि,[५] उज्जीवनानि[६] च स्यु' ।

निवातातपमिति प्रचण्डवातातपरहितम् । नहि गर्भवृद्धिक्लपितशिथिलसर्वधातुः प्रवाहणवेदनाक्लेदरक्तस्रुतिविशेषशून्यशरीरा च स्त्री प्रचण्डवातातपम् सहते । एव गर्भाशयतमोगृहे चिरमुषितो बालोऽपि । (ख) १ Basins २ Medicine glass and Feeding cup, ३ Bedpan ४ Hotwater bottle or bag, ५ Jugs (ग) १ रसकर्पूरम् (corrosive sublimate), Lysol, Dettol, Tincture of Iodine, Idoform powder or gauze २ Chloroform, Ether, Stovaine, Morphia and Scopolamine, Nitrous Oxide and Oxygen ३ Morphia, Chloral and Bromides, Amyl Nitrite ४ एरण्डतैलम्, सामुद्रलवणम् (Mag, Sulph),Liquid extract of Cascara Sagrada, ५ Ergot,Pituitrine Sulphate of Quinine, मेथिकाक्वाथ सगुड । ६ मकरध्वज

(घ) यन्त्रशस्त्रेषु—वस्त्युपकरणानि,[१] उत्तरवस्तिसाधनानि,[२] अन्तःक्षेपणिका,[३] श्रोणिमापनम्,[४] नाडीशलाके,[५] कफापकर्षणी,[६] स्वेदनयन्त्रम्[७] आघ्रापणी,[८] जिह्वासन्दंश,[९] ह्रस्वदीर्घे द्वे कर्त्तरिके,[१०] गर्भाशयसन्दंशौ,[११] शरारीमुखम्,[१२] धमनीसन्दंशा,[१३] गर्भशङ्कु[१४] (अक्षकर्षकसन्दंशः),योनिवीक्षणम्[१५], योनिविस्फारणानि,[१६] गर्भाशयलेखनानि,[१७] शिरोवेधकम्,[१८] शिरःसम्पीडकम्,[१९] बडिशम्[२०] वृद्धिपत्रम्[२१], तालयन्त्रम्,[२२] मुद्रिका,[२३] सीवनोपकरणानि,[२४] लवणोदकक्षेपणयन्त्राणि[२५] च ।

(ङ) प्रकीर्णेषु—फेनिका,[१] नखमार्जनी,[२] नखकर्त्तनकम्,[३] करच्छदौ,[४] वृहतिका,[५] नालबन्धसूत्रम्,[६] उदरपट्टानि,[७] शोषककार्पासः,[८]व्रणवस्त्राणि,[९] बलातैलम्, मधुटङ्कणम्[१०] उद्धूलनम्,[११] तुलायन्त्रञ्चेति[१२] ।

कस्तूरीयोगा मद्यादिकं च । (घ) १ Enema Syringe and Douche apparatus २ Vaginal and Uterine douche tubes, intrauterine catheter, glass vaginal nozzle ३ Hypodermic Syringe ४ Pelvimeter ५ A female metal catheter and a male catheter No 10 ६ Mucous aspirator ७ A portable steriliser ८ Chloroform inhalor ९ Tongue forceps १० Long and Short scissors ११ Two volsella or American forceps १२ Plugging forceps १३ Artery forceps १४ Axis traction forceps १५ Vaginal speculum १६ Champetier de Ribe's bag, sea-tangle tents, Hegar's delators १७ Curettes १८ Perforator १९ Cranioclast or combined cranioclast and cephalotribe २० Braun's hook २१ Scalpel २२ Spoon forceps २३ Finger knife २४ Suture materials—curved needles, Perineal needle, Needle-holder, silkworm gut,catgut २५ Essentials for saline infusion

(ङ) १ Soap २ Nail brush ३ Nail cutter ४ Rubber gloves ५ Apron ६ Ligature for cord ७ Abdominal binders ८ Absorbent cotton wool ९ Gauze, mulmul १० Glycerine and Borax ११ Starch and boracic powder १२ Weighting machine.

प्रासविकशुद्धिः।

इदमेव प्रसूतिविदो वैदुष्य यदत्राकर्मणि सर्वथाऽप्रमत्त स्यात्तथा चवास्य परिचारकवर्ग । यन्त्रशस्त्राणा हस्तयोर्जननावयवानामुपयुज्यमानस्य सम्भारद्रव्यस्य चेतरस्य विशोधन शस्त्रकर्मणीव सम्यगनुष्ठेयम्। वक्त्रच्छद विभृयात्। योनिपरीक्षणञ्च सत्येव प्रयोजने नानेकशश्च विदधीत। प्रसवो हि प्राकृत कर्म, यथाऽस्य प्रकृतिविघातो न स्यात्तथा प्रयतेत। न चानावश्यक किमप्यनुतिष्ठेत्। अयथाकुर्वाणो हि सङ्क्रमणाव्यापदम् जनयति कृच्छ्रसाध्यामसाध्या वा।

अहो चात्र विधातु संरक्षणविशोधनकौशलम्। बहिर्भगदेशे बहुविधजीवाणुभि सङ्क्रान्तत्वाद्दूषितप्रायेऽपि अन्तर्भगमम्लेन योन्यास्रावेण भूतघ्नस्वभावेनात्मान रक्षन्निर्दुष्टप्रायमेव तिष्ठति, गर्भाशयगुहा च योनेरदुष्टत्वात् श्लेष्मार्गलिकया निरुद्धदोषप्रसरत्वाच्च सर्वथा विशुद्धा। प्रसवकाले च गर्भनिर्गमात् प्राक् परतश्चापि समग्रो जननपथो गर्भोदकेन प्रक्षाल्यते निर्गच्छता गर्भशिरसा जरायुणाऽमरया च परिमार्ज्यते। सूतिकाकाले तु सूतिकास्रावो योनिपथं क्षालयति, श्वेतकणिकाश्च तदास्रावगता जीवाणून् नाशयन्ति। किन्तु नैतेन सर्वथा योनिर्विशुद्ध्यति। अवशिष्टो जीवाणुवर्गः सूतिकाकाले रक्तस्कन्देन रक्ताम्बुना वा लब्धपोषणो निर्बाध वर्धते। गर्भाशयश्च विवृतमुखस्तेषां प्रसरनिरोधऽसमर्थः। तत्र स्वाभाविकी व्याधिक्षमतैव परित्राणाय प्रभवति।

प्रासविकशुद्धि obstetrical cleanliness विशोधनम् Sterilisation वक्त्रच्छद: Mask सङ्क्रमणम् Infection भूतघ्नम् Anticeptic. निर्दुष्टम् (दूषकजीवाणुरहितम्) Aseptic. विशुद्धा (जीवाणुमात्ररहिता) Sterile.

आसन्नप्रसवोपक्रमः।

यथैव विजानीयाल्लक्षणैरासन्नप्रसवेयमिति, मलाशयशोधनाय रेचनमेरण्डतैलमस्या दापयेत्। ततश्च द्वित्रहोरानन्तरं वस्तिं दद्यात्। अन्तराऽन्तरा स्वयं मूत्रयेद् गर्भिणी। अशक्ये त्वेवं परिकर्मिणी नाडीशलाकया मूत्रमस्या निर्हरेत्। उष्णोदकेन चैनां स्नापयेत्। भगदेशञ्चापि सर्वथा विशोधयेत्। केशान् कर्त्तयित्वा, फेनिकोदकाभ्यां प्रक्षाल्य भूतघ्नद्रवेण केनचित् लेपमाचरेत्। केचित्तु केशकर्त्तनमात्रमेवोपदिशन्ति। लेपादिकन्तु यन्त्रशस्त्रोपयोगसम्भावनायामेव कार्यम्। प्रसवारम्भे च पुनरपि वस्तिप्रणिधानमावश्यकम्।

सर्वञ्चोपकरणजातं विशुद्धं यथावस्थितञ्च स्यादिति परिचारिकामादिशेत्। सा च तथा कुर्व्वीत। शयनमस्या उपकल्पयेत्। वस्त्राणि च निर्म्मलानि शिथिलतराणि तां परिधापयेत्।

गर्भिणी चेत्पुरा न परीक्षिता स्यात्, प्रश्नदर्शनादिविविधिभिः सम्यक् परीक्षणीया। परीक्षिताया अपि विषमं वा यदि वीक्षेत, योन्युदरपरीक्षया पुनरपि तांस्तान् विशेषानवगच्छेत्। आहूतश्च भिषक् सद्य एव गच्छेत्। तेन हि मिथ्यावतरणम्, उदयविशेषाः, नालभ्रंशः, गर्भोन्मादपूर्वरूपाणीत्येव बहवो ज्ञातव्यविषयाः काले विज्ञाता भवन्ति।

एषा च चतुःसूत्री प्रसवप्रबन्धस्य, यत्र भिषक्कर्त्तव्यानां संक्षेपेणोद्देशकथनम्।

(१) स्त्रिया बलरक्षणम्।

(२) वेदनायाः शमनम्।

(३) गर्भनिर्हरणाय जायमानेषु नियतिप्रयत्नेषु साहाय्याचरणम्।

आसन्नप्रसवोपक्रमः Preparation of labour

(४) बाधकानां व्यापत्कराणां च कर्मणामननुविधानम् । इति ।

निखिलञ्चैतत् प्रसवकर्मणोऽवस्थात्रये विभज्य विस्तरेण वक्ष्यते । तद्यथा—

प्रथमावस्था ।

(१) बलरक्षणाय मुहुर्मुहुः सुजरं लघुभोजनमस्यै दद्यात् द्रवप्रायम् ।

(२) मृदुवेदनाकाले स्त्री कस्मिंश्चिदवर्ज्ये कर्मणि निरता स्यात् । तेनान्यमनस्का वेदनां न वेत्ति न च क्लेशभयात् त्रस्ता भवति । त्रिकपीडनसंवाहने चैनां सुखयतः । तीव्रवेदनया उद्विजमानाम् उन्निद्रतया परिक्लान्तशरीरां च स्त्रियं दृष्ट्वा स्वापजननयोगानुपयुञ्ज्यात्* । ते ह्यस्या वेदनाशमनाय निद्रायै बलाभिरक्षणाय च प्रभवन्ति । संज्ञाहरणं तु द्वितीयावस्थायामेव प्रशस्यते ।

(३) अथैनामुपदिशेत् (जागृताम्) चङ्क्रमस्व आस्याकामा वा आसन्दीमासीथा इति । तेन हि गुरुत्वबलादवस्रस्तो गर्भो गर्भाशयग्रीवाविकसने महत्साहाय्यमातनोति । प्रतिकूलावतरणादिषु जरायोरकालविदरणाशङ्कने तु शयनाश्रयणमेव हितम् । लम्बितोदरीं पुरोनतगर्भाशयां पार्श्वजिह्मगर्भाशयां च स्त्रियं मत्वा कवलिकागर्भेण महता वाससा उदरमावेष्ट्य उत्तानं वक्रिमपार्श्वतो वा तां शाययीत । एवं हि गर्भशिरः सम्यक् प्रणुन्नं श्रोणिकण्ठे स्थिरीभवति न चाकाले जरायुर्भिद्यते ।

न च सम्प्रति स्त्री प्रवाहेत, अकालयोगात् । सति ग्रीवाविकसने आवीकाले च प्रवाहणं कालप्रवाहणम् । अकालप्रवाहणात् व्यर्थमेवास्यास्तत्कर्म भवति, शक्तिः क्षीयते जरायुश्चाप्यकाले भिद्यते । यदि तु

---

* अहिफेनसत्वस्य (Morphia) रक्तिकार्धचतुर्थांशमानस्य (1/4 gr) अन्तःक्षेपः । कालप्रवाहणं हि गर्भमधस्तात् प्रवर्त्तयति विवृतद्वारत्वात् गर्भा-

विकसितेऽपि ग्रीवामुखे जरायुर्न भिद्यते तर्हि भिषगेत्र शरेषिकया दीर्घसूच्या वैन दारयेत् निष्प्रयोजनत्वात्।

मूत्रपुरीषपूर्णे च वस्तिगुदे गर्भस्यावतरणे शिरसः स्थैर्य्य-गर्भाशयसङ्कोचाना सम्यग्भावे च बाधके भवत इति ते उभे अपि प्रसवारम्भेऽवश्य रेचनीये।

(४) योनिपरीक्षणम्, बलाद् ग्रीवाविकासनम्, सन्दशोपचारः, विवर्त्तनम्, सञ्ज्ञाहरणञ्च कालेऽस्मिन् न कर्त्तव्यानि।

द्वितीयावस्था।

(१) ततश्चैषा प्राणाप्यायनाय सान्त्वनीयाभिर्वाग्भिराश्वास्यमाना पर्य्युपास्या भवति।

(२) वेदनाऽसहे तु प्रत्यावीकाल संज्ञाहरद्रव मन्द मन्दमाघ्रापयेत्। मोहनमूर्च्छनभेदाच्च द्विविध सञ्ज्ञाहरणम्। तत्राद्ये न पूर्णत सञ्ज्ञा विनश्यति। केवल सम्मोह एव जायते। द्वितीये तु सञ्ज्ञाया प्रतिसङ्क्रमितचेष्टायाश्चापि पूर्णोपघातो दृष्ट। तत्र प्रथमो विधि प्रसवेदनानां शमनाय द्वितीयस्तु शस्त्रकर्मणि सञ्ज्ञाविनाशनाय प्रयुज्यते। सञ्ज्ञाहरद्रवाघ्रापणन्तु गर्भाशयस्य प्रतिसङ्कोच तदारम्भपूर्वरूपे आरभणीयम् तद्विरतौ च विरमणीयम्। एवञ्च सङ्कोचयोरन्तराले सा पुनरपि प्रतिबुद्धप्रायेव भवति। अमन्द दीर्घकाल (चतुर्होराभ्योऽधिक) माघ्रापणं तु न श्रेयस्करम्। द्वे च सञ्ज्ञाहरणद्रवे, एक मधुरगन्धि[१] अपरञ्चोग्रगन्धि[२]। तत्राद्य वहुलप्रचारम्। गर्भोन्मादमधुमेहवमनाति-

---

-शयस्य। अकालप्रवाहणे तु सच्छतप्रायद्वारो गर्भाशय एव निम्नतो भ्रश्यते नतु अलब्धावकाशो गर्भइत्यत्र हृदयम्। शरेषिका Stilatte दीर्घसूची Knitting-needle

मोहनम् Partial or Obstetrical Anaesthesia (Analgesia) मूर्च्छनम् Complete, General or Surgical Anaesthesia. १—Chloroform २—Ether

रेकयकृत्संहरणेषु च तन्निषिद्धम्। इतरस्य तु स्वल्पप्रयोगस्य कफदुष्टे उरसि निषेधः। शेषास्तु संज्ञाहरणविधयो[१] महर्घत्वात् विशिष्टयन्त्रसाध्यत्वात् कुशलजनप्रयोज्यत्वाच्च नेह वर्णिताः।

(३) प्रकृतिमनुकूलयितु च पर्य्यङ्कमेनामारोपयेत्। सा चोत्ताना वामपार्श्वस्थिता वा (पूर्वपश्चिमदक्षिणानुशीर्षासनयोस्तु दक्षिणपार्श्वस्थिता) आभुग्नसक्थिस्तमध्यासीत। अथैनामनुशिष्यात्–आवीकाले पद्भ्यां शय्यापादमवपीड्य, बाहुभ्याञ्च किमप्यवलम्ब्य वस्त्रखण्डं वा शय्याबद्धं गृहीत्वा प्रवाहेथाः क्षणमवरुध्य प्राणानिति। एवं वाहमाना हि स्वबलमुपयुङ्क्ते सम्यक्। वस्तिगुदे च पुरा रिक्तीकृते। सुदीर्घप्रसवे तु प्रतिहोराद्वय नाडीशलाकया मूत्रमस्या निर्हरेत्। भूतघ्नद्रवसिक्तेन च वस्त्रेण पायुद्वारमाच्छादयेत्।

योनिमुखप्रतिपन्नं च गर्भमभिज्ञाय सुख शनैश्च यथा गर्भशिरो लघुतमव्यासेन निर्गच्छेत तथा यतनीयम्। तदर्थञ्च त्रीण्येतानि कारयेत्– (१) स्निग्धभूतघ्नद्रवस्य सतताश्च्योतनेन मधुरौषधसिद्धतैलसन्तर्पणेन वा भगमूलपीठयोर्विस्फारणशैथिल्यसामर्थ्यं वर्धयेत्। (२) ललाटदेशमुन्नमयँश्च भिषक् गर्भशिरसः पूर्णसङ्कोचनमापादयेत। एव हि अनुशीर्षाधरभागो भगसन्धानिकाया अधस्तात् सम्यक् स्थिरीभूय लघुतम शिरोव्यास (अनुशीर्षाधरब्रह्मरन्ध्रिकम्) मुपस्थापयति। ततश्च अवाङ्मुखायमाने शिरसि ललाटमवनम्य अनुशीर्षञ्चोन्नम्य प्रकृत्या जायमाने गर्भशिरःप्रसरणे साहाय्यमाचरेत्। (३) यथा च शिर आव्यो-

---

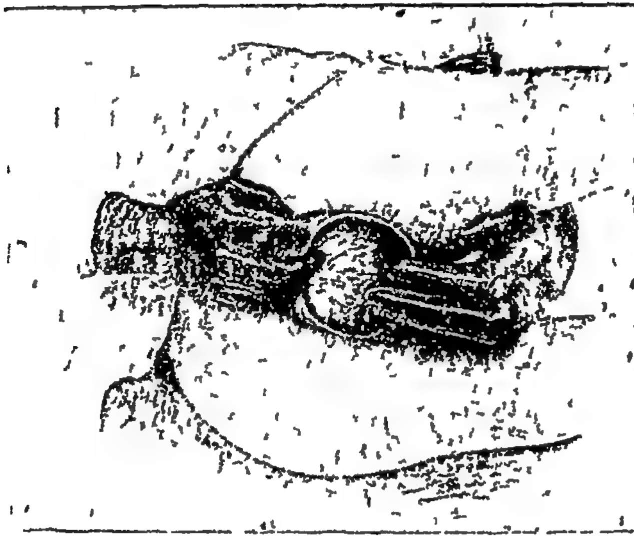
१—Nitrous Oxide + Oxygen Analgesia, Scopolamine—Morphine Anaesthesia.

(१) The Promotion of the Relaxation & Dilatability of the parts स्निग्धभूतघ्नद्रवो *यथा* Lysol (२) *Maintenance* of Plexion of the Head (३) Delivery between the Contractions

-रन्तराले बहिर्भवेत् न त्वावीकाले प्रवाहमाणाया इति तथाऽनुष्ठेयम्। तदा हि मूलाधारोऽनाकुञ्चितपेशीकः शिथिलमवतिष्ठते, गर्भशिरश्च सम्यगागत पुरःकर्षणात्, गुदपश्चिमतो निपीडनात् स्वेच्छाकृतप्रवाहणाच्च बहिष्कर्तुं शक्यम्। यद्यपि न वयं गर्भगतिं रोद्धुं शक्ताः, न चापि तदिष्टम्,

[६६ चित्रम्]

मूलाधाररक्षणम्।



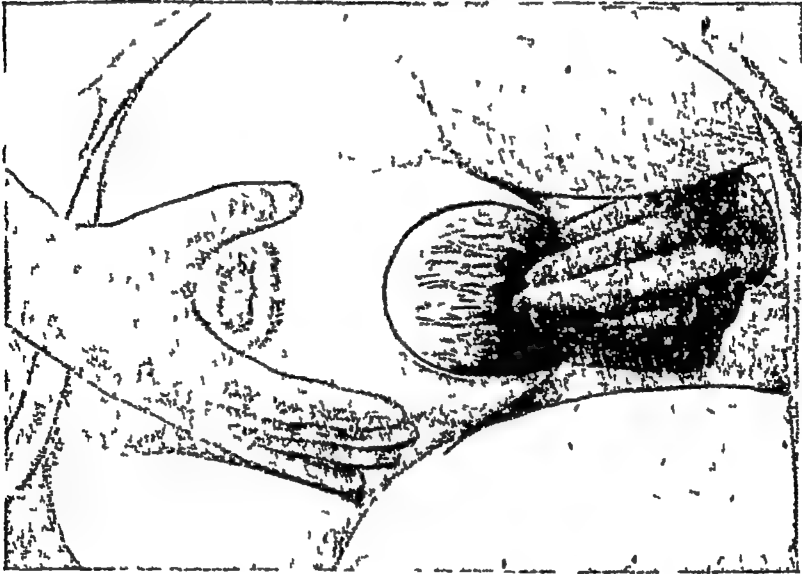
अस्मिन् विधौ वामकरः प्रसूयमानं गर्भशिरोऽङ्गुलीभिर्गृहीत्वाऽग्रतः कर्षति दक्षिणहस्तश्च निश्चेष्टाङ्गुलिर्गुदानुत्रिकाग्रयोर्मध्यमास्थितेन स्वतलमूलेन तदवपीडयति।

तथापि प्रयोजनवशात् गर्भनिर्हारकशक्तिबलं मन्दीकर्तुं तु प्रभवाम एव। तथा च मा प्रवाहिष्ठारुच्चैः क्रन्दस्व गभीरं वान्तः श्वसिहीत्येव स्त्रियमुपदिशेत्। सम्मोहितायास्तु स्त्रिया सहसा गर्भनिर्गममाशङ्कमानो भिषक् मात्राधिकं सञ्ज्ञाहरद्रवं प्रयुञ्जीत। मूलाधारपीठस्य विस्फारातिशयवारणाय साक्षात्पीठपीडनं तु सर्वथा निषिद्धम्। तद्धि

धात्वन्तर्भवा मार्दवकरीं लसीकास्यन्दनक्रियामवरुध्य पीठस्य स्वाभाविकीम् विस्फारणयोग्यता क्षपयति, गर्भाशयसङ्कोचानुत्तेजयति, प्रवाहण प्रेरयति, प्रसारयति चाकाल एव गर्भशिरः ।

[६७ चित्रम्]

मूलाधाररक्षणम् ।



अत्र वामहस्त शिरस. सहसा निर्गमं वारयति दक्षिणश्च गुदस्योभयत. पार्श्वे व्यवस्थितोऽग्रतस्तदवपीडयति ।

सर्वञ्चैतत् मूलावदरण न स्यादित्युद्दिश्य विधीयते । मूलावदरणं हि स्रतो जात विषमद्वारं भवति, न सम्यक् सीव्यते, सङ्क्रमणक्षेत्र वर्धयति, अवस्रसन्याख्ययोनिव्यापदि च कारणायते । तस्मादनागतविधानमेव श्रेयस्करम् । अथ चेच्छिरसो विपुलतया योनिमुखस्य वा सङ्कीर्णतयाऽवश्यभावितया मूलावदरणं शङ्केत, विषमविदीर्णात् समदीर्णे सीवन-सौष्ठवमिति मत्वा स्वयमेव भिषक् मूलपीठस्य पश्चिमपार्श्वभागं कर्त्तर्य्या कर्त्तयेत् एकत उभयतो वा प्राङ्गुलमानम् ।

ततश्च निष्क्रान्ते शिरसि बालस्य ग्रीवा भगोष्ठावपसार्य सम्यक् निभालनीया, अङ्गुल्या स्पृष्ट्वा वा विज्ञेया क्वचिदियं नाभिनालेनावेष्टिता न वेति। बहुधा हि गर्भो नाभिनाड्या परिवेष्टितकण्ठोऽभिजायते। यदुच्यते—"प्रततोत्तानशायिन्या पुनर्गर्भस्य नाभ्याश्रया नाडी कण्ठ मनुवेष्टयति" इति। च० शा० ८। वेष्टनश्चानेकशो दृढमपि च दृष्टम्। तस्मात् झटित्येव ग्रीवा नालपाशेन मोचनीया। अन्यथा तु नालस्य ह्रस्वीभावात् गर्भनिर्गमः प्रतिरुध्यते, अपरा चापि सहैवाकृष्टाऽकाले वियुज्यते गर्भाशयो वा सद्वृत्तो भवति। मोक्षविधिस्तु पुनरित्थम्—

तत्र शिथिलवेष्टने पाशमेकमाकृष्य शिरसोऽपनयेत्। एवमन्यमपि। असति त्वेव गर्भाशयपीडनात् प्रवाहणाद्वावस्रसमानस्य गर्भस्य द्वाभ्यामपि स्कन्धाभ्यामैकैकतः कृत्वाऽपसारयेत्। तथाप्यसम्भवे तु धमीनसन्दंशाभ्यां छेदनावकाशस्य द्वयोरन्तरयोः शनैर्गृहीत्वा कर्त्तरीशस्त्रेण नाल कर्त्तयेत्, गर्भाशयनिपीडनात् कक्षागतयाङ्गुल्या समाकर्षणाच्च सद्य एव गर्भं निर्हरेत्। कर्त्तितमुखे च नालस्य सूत्रेण बध्नीयात्।

निर्गते च शिरसि नाभिनाल यदि स्पन्दते मुखकायवैवर्ण्यादिकं च न विद्यते तदा मध्यकायजन्मने न त्वरणीयम्। प्रपलार्धेनैव गर्भाशय. सङ्कुच्य त निष्कासयति। अथ चेत् प्रपलद्वयेनापि गर्भाशयो निश्चेष्ट एव स्यात्तदा स्कन्धमर्दनेन तं प्रचेष्टयेत्। आवश्यके तु गर्भाशयमप्यधस्तात् पीडयेत्। परिकर्मिणी चैव कुर्यात्। भिषक् तु यथैव नाम स्कन्धावन्तर्वृत्य नि सरतस्तथैव हस्तेन बालं सन्धार्य पश्चिमांसकर्षणाय प्राक् मातुरुदराभिमुख पूर्वांसकर्षणाय च ततस्तत्पृष्ठाभिमुख गर्भशिरो नमयेत्। अंससङ्गे तु निर्दशिन्या पूर्वकक्षां बडिशग्राहं गृहीत्वाऽवकर्षेत्। सद्योगर्भनिर्हरणाय। एवञ्च सक्तांसनिर्हरणस्य विधित्रयं फलितम्, गर्भाशयपीडनम् शिराग्रीवकर्षणं पूर्वकक्षाकर्षणञ्चेति*। न च ते प्रत्येकशो

---

* Pressure on the uterus, Pulling on the head, and Pulling on the anterior axilla.

निर्दोषा.। प्रथमे मूलावदरणस्य द्वितीये ग्रैवनाडीनामुरःकर्णमूलिकाख्य-पेश्याश्चोपघातस्य तृतीयेऽक्षकास्थिभग्नस्य च सम्भावितत्वात्। तस्मात् त्रयाणामपि समवेतानां प्रयोगतः कार्यं निर्वहणीयम्। जातस्य चलोचन-मुखनासाविवराणि पिचुना टङ्कणाम्लद्रवसिक्तेन विशोधयेत्, अपनयेच्च नाडीशलाकया कण्ठाच्छ्लेष्माणमपि।

किञ्च, प्रसूयमानस्य गर्भस्य प्रथमावस्थाया प्रतियाम द्वितीयाव-स्थायां च प्राक् प्रतिहोर ततश्चान्तराऽन्तरा यथाप्रयोजनं हृच्छब्दमाकर्ण-येत्। एव गर्भिण्या अपि काले काले ज्वरधमनीस्पन्दगर्भाशयसङ्कोच-मुखेङ्गितादीन् परिलक्षयेत्।

(४) अनावश्यक योनिपरीक्षण सन्दशप्रयोगश्च कुशलैर्नाद्रियते। तत्र विदीर्णमात्रे जरायौ सकृद्योनिपरीक्षणमावश्यकं नालादिभ्रंशविज्ञाना-येति केचित्। प्रजातास्वेव केवलमित्यन्ये। प्रागूज्ञाते तु गर्भशिरःस्थैर्ये तदप्यनावश्यकमित्यपरे। विलम्बिते तु प्रसवे विलम्बहेतुपरिज्ञानार्थं कार्य-मेव योनिपरीक्षणम्।

नवजातसङ्गोपनम्।

जातमात्रश्च बालः प्रकृत्यैव तारस्वरेण रोदिति श्वसिति च। विपरीते तु पादयोर्गृहीत्वा ऊर्ध्वधारणेनावाङ्मुखीभूतस्य पृष्ठदेशः मन्दं मन्दं करतले-नाऽभिहन्यात्। मुखपश्चिमतश्च स्थित श्लेष्माणं नाडीशलाकयाकृष्य निर्हरेत्। शीतोदककणाभिषेक कुर्यात्। गुदे वास्य मध्यमाङ्गुलिं सहसा प्रवेशयेत्। कृत्रिमश्वसनक्रिया वा वक्ष्यमाणामनुतिष्ठेत् येनाऽयं सङ्क्लेशविहतान् प्राणान् पुनर्लभेत।

प्रत्यागतप्राणं च प्रकृतिभूतमभिसमाक्ष्य मातुरूर्वोर्मध्ये पार्श्वे शाय-येत्। नाभिनाडीश्चास्पन्दमाना कल्पयेत्। एवं कल्पने हि बालः सद्य

आविर्भूतेन फौस्फुसरक्तसंवहनेन समाकृष्ट द्वित्रप्रशुक्तिमान शोणितमधिकमधिगच्छति। तच्चास्य बलबृंहणाय सम्पद्यत इति तथैव कुर्य्यात्। एष च प्रकल्पनविधिः—गर्भनाभितो द्विप्राङ्गुलमभिज्ञान कृत्वा निष्पीड्य तनूकृत नाभिनाल शुद्धसूत्रेण बध्नीयात् इत्येको बन्धः। अन्तर्भगे शिथिलमवस्थित नाभिनालमाकृष्य योनिमुखसमीपेऽपि तथैव बध्नीयादिति च द्वितीय। तत्र द्वितीयो बन्ध. अज्ञातेऽपि यमलगर्भेऽन्तर्गतस्य गर्भान्तरस्य जीवन रक्षति, व्यर्थरक्तस्रुतिकृतं शय्यातलदूषणं वारयति, गर्भाशयाद्वियुज्य स्रस्तां चापरा निर्दिशति। अन्ये त्वाहुर्यदमरातो रक्तस्रुतिस्तद्विमोक्षे सौकर्य्यमावहतीति द्वितीयबन्धो न देयः, अन्यत्र यमलगर्भादिति। ततश्च नाभिनाडीं शनैर्गृहीत्वा प्रथमबन्धनादेकाङ्गुलमूर्ध्वं कर्त्तर्य्या द्विधा कुर्य्यात् आच्छादयेच्च तां भूतघ्नद्रवसिक्तेन कार्पासप्लोतेन। विमुक्तबन्धनश्च बालम् ऋत्वनुकूलेन वाससा परिवेष्ट्य परिकर्मिण्यै अर्पयेत्। सा च तं सुरक्षितस्थले वामपार्श्वे शाययेत्। एव शयानस्य हि मुखाच्छ्लेष्मा च्यवते सम्यक्, शुक्तिच्छिद्रावरोधश्च सुष्ठु सम्पद्यते।

तृतीयावस्था।

(१) प्रसूता चेत् सूतिसङ्क्लेशात् क्षीणबलाऽवसन्ना वा स्यात् हृद्योज्जीवनानां प्रयोगेण हर्षणीया, अभिरक्षितव्या च वस्त्राच्छादनादिभि. शीतवाताभियोगात्।

(२) वेदनाशमनानि सम्मोहनसम्मूर्च्छनानि चात्र नोपयुज्यन्तेऽनपेक्षितत्वात्।

(३) यथा च गर्भाशयो नाकुञ्चनाद्विरमति तथा यतनीयम्। तदभावे हि नामरा वियुज्यते, गर्भाशयसंवरण न जायते, नावरुध्यते रक्तस्रुतिः, वातश्चापि लब्धावकाशो गर्भाशयमाविशति। तथा च सति विश-

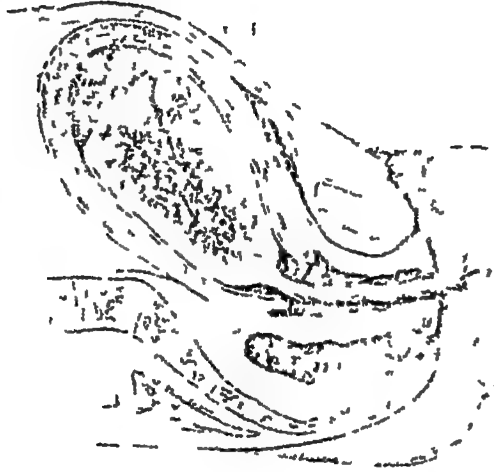
ल्यभावे पार्श्वशयानां स्त्रिय विवर्त्त्य उत्तानां कारयेत् आच्छादयेच्चोदरं वस्त्रेण। करतलञ्च गर्भाशयस्कन्धस्योपरि सम्यगास्थेयं यावदन्तमवस्थायाः। तद्धि गर्भाशयस्य चेष्टनाचेष्टने दृढप्रशिथिलभावौ वृद्धिह्रासौ वा परिज्ञापयति। तत्र नाभेरधः करस्य करभदेशोऽनुप्रस्थमुदरे गर्भाशयस्कन्धस्योपरि तावत्तथा चास्थाय निमज्जनीयो यावदयं पृष्ठवशेन नोपरुध्यते यथा च समग्रगर्भाशयस्कन्धः करतलक्रोडगतो न स्यात्। न चानावश्यके विधिविरहिते च गर्भाशयस्य मर्दनपीडने विधेये, अनेकोपद्रवदर्शनात्। तद्यथा—यदा प्रमादेन गर्भाशयस्य गात्रपूर्वदेश एव हस्तेनाभिस्पृष्टमर्दितः स्यान्न स्कन्धभागस्तदाऽधरगर्भशय्या सङ्कुचति स्कन्धस्तु शिथिल शिथिलप्रायो वाऽवतिष्ठते। एवं स्कन्धस्यानावश्यकम् अतिबलप्रयुक्तञ्च मर्दनमपि गर्भाशयस्य विषमाकुञ्चनाय अपराया आंशिकविच्छेदाय वा स्यात्। विषमाकुञ्चितस्तु गर्भाशयः कदाचिद् बन्दीकरोत्यपरामतिरक्तस्रुतिं च जनयति।

अथास्याः स्वयमेव गर्भाशयस्य सङ्कोचसहरणाभ्यां तल्लग्नाऽपरा वियुज्यते बहिष्क्रियते च योनौ लघुनैव कालेन (प्रपलदशकेनैव)। किन्त्वेवं गर्भाशयाद्बहिर्भूताऽपि योनेर्दौर्बल्यात् तद्गर्भ एव चिरं तिष्ठति न शीघ्रं योनिमुखान्निःसरति। तत्र योनिगताया उपेक्षणं व्यर्थम्। तस्यास्तु वक्ष्यमाणेन विधिना निष्कासनमेव वरं मन्यते कुशलैः। गर्भाशयसंसक्ता तु नैना बलान्मोचयेत् अन्यत्र दृढसंसक्तिसङ्कोचदौर्बल्यादिहेतुभिर्होरान्तेनापि स्वयमवियुज्यमानायाः। बलान्मोक्षे हि खण्डशो विच्छिद्यतेऽपरा, न निःशेषं बहिरायाति, गर्भाशयस्य चासम्यक्संहरणाच्छोणितातिस्रुतिर्जायते।

एभिर्लक्षणैश्चैना मुक्तगर्भाशया विद्यात्—नाभिनालवर्धनम्, स्कन्धोन्नमनम्, गर्भाशयचलता, वस्तिशीर्षपिण्डिका, नालानुत्कर्षणं चेति। तत्र—

[६८ चित्रम्]

अपराविमोक्षः ।



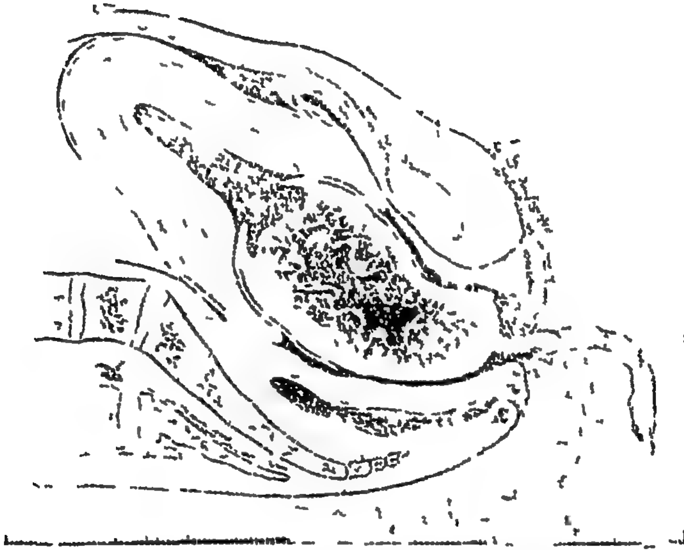
चित्रेऽस्मिन् गर्भाशये वियुज्य स्थिताऽपरा दर्शिता, न तु तद्बहिष्कृता ।

(१) नाभिनालवर्धनम्—यथैवामरा गर्भाशयाद् वियुज्य योनिं प्रतिपद्यते तथैव बहिर्योनिको बद्धसूत्रनालभागः पञ्चषाङ्गुलं यावद्वर्धते । योनौ कुण्डलीभूतस्य निर्गमात् वृद्धिभ्रान्तिर्न स्यादतो द्वितीयबन्धदानात् प्राक् नालमाकृष्य तत्सरलीकरणन्त्वावश्यकम् ।

(२) स्कन्धोन्नमनम्—यो नाम गर्भाशयस्कन्धो निर्गते गर्भे औदर्य्यपेश्यङ्कैर्भिषग्हस्तेन च पीडितो विस्फारिते गात्राधराशे योनौ च निमज्ज्य सन्धानिकायाः किञ्चिदूर्ध्वमेव वर्त्तते, स एव अमरावियोगे वियुक्तापरायास्तद्देशप्रक्रमणात् प्रत्युद्गतः सन् आनाभि ततोऽप्युत्तर वा प्रतिष्ठते ।

[६६ चित्रम्]

अपराविमोक्ष ।



अत्र तु सैव गर्भाशयं परित्यज्य योनिं गता दर्शिता ।

(३) **गर्भाशयचलता**—सापरो हि गर्भाशय एवं निमग्नः श्रोणि-कण्ठे रुद्धत्वान्नेतस्ततो चालयितुं शक्यते । निरपरस्तु स एव तथा प्रत्युद्गतो मुक्तबाधः सन् परिचालनार्हो भवति ।

(४) **वस्तिशीर्षपिण्डिका**—गर्भाशयाद्वियुज्य अधःस्रस्तेयमपरा पुरःस्थितानवयवान् उद्गमय्य सन्धानिकाया उपरि पूर्णवस्तिनिभां काञ्चित् पिण्डिका जनयति । अस्पष्टप्रायञ्चेद लक्षणम् ।

(५) **नालानुत्कर्षणम्**—पादाभिमुखो हि भिषक् गर्भाशयाधरभागं पाणिभ्यां पार्श्वयोर्गृहीत्वा शनैरूर्ध्वं कर्षति । तत्र गर्भाशये ससक्ता चेद-परा, तदाकर्षणेन बहिर्योनिकं नाभिनालमपि सहैवोत्कृष्यते । अन्यथा तु नैवम् ।

त्रयश्चात्र विषयो यैर्गर्भाशयाद्योनितो वाऽप्रपन्नापरा निष्कास्यते—बाह्यतो निपीडनम्, हस्तेनाहरणम्, नाभिनालकर्षणं चेति ।

(१) बाह्यतो निपीडनम्—उदरभित्तिनिहितेन हस्तेन (हस्ताभ्यां वा) गर्भाशयस्कन्धः सङ्कोचकाले ग्रहीतव्यः, द्विशस्त्रिशो वा उत्तराधरक्रमेण मर्दनीयः । एवं हि अपरा योनौ निर्याति । ततश्च गर्भाशयं त्रिकाग्राभिमुखं निम्नतः पृष्ठतश्च प्रपीडयेत् । येन तदग्रतः स्थिताऽपरा योनेर्बहिर्निष्कासिता स्यात् ।

(२) हस्तेनाहरणम्—गर्भाशयगताऽपरा अपत्यपथप्रविष्टेन हस्तेनापि सुखं वियोज्य निष्कास्यते । एवं योनिगताया अपि हस्तेनाहरणं सुशकम् । किन्तु सङ्क्रमणभयात्कष्टकरत्वाच्च यत्र पूर्वविधिना नार्थसिद्धिस्तत्रैव विधिरयं समाश्रयणीयः ।

(३) नाभिनालकर्षणम्—पुरा बहुलप्रचारोऽपि विधिरयं साम्प्रतं न व्यवह्रियते विविधोपद्रवदर्शनात् । इत्थमाकृष्टाऽपरा यदि पूर्णतो बहिरायाति तदा न काचिद्विशेषहानिर्जायते । किन्तु यदा विच्छिन्नः कश्चित् तत्पिण्डैकदेशोऽन्तरेव तिष्ठति हस्तेन च योनिविष्टेन निष्कास्यते तदा महती सङ्क्रमणव्यापत् सम्भाव्यते । किञ्च शिथिले गर्भाशये दृढसक्तापराया बलादाकर्षणे गर्भाशय एव अपावृत्तः स्यात् । योनिस्थापराया निर्हरणेतु मन्दवेदनाकरत्वात् प्रशस्तोऽयं विधिरित्याहुरेके ।

निर्गच्छन्तीञ्चैनां परिकर्म्मिणी पाणिभ्यां सन्धारयेत् जरायुविदारभयात् शय्यायां सहसा निपातभयाच्च । धृतां चैव शनैः शनैरध कर्षेत् येन गर्भाशयान्तर्लग्नो जरायु सम्यग् वियुज्येत । अविच्छिन्नो निरवशेषश्च यथा स प्रपद्यते तथा यतनीयम् । अत्राहुः केचित् "निर्गतामपरां बहुशो विवर्त्तयेत्, तेन रज्जुवत् वर्त्तुलीभूतो जरायुरविदीर्ण एव शनैर्निर्याति"

---

(१) Expression from above (२) Manual removal
(३) Traction upon the cord. अपावृत्त Inverted

इति । यदि तु छिन्न इव जरायुं पश्येत् तदा वर्जयेदपराकर्षणम् । स्वयं च भिषक् अङ्गुलीभिर्यथासम्भवमुच्चकैर्जरायुं गृहीत्वा शनैराकर्षेत् स्तोकेन (प्राङ्गुलप्रायं यावत्)। पुनः पुनश्चैवं विदध्यात् यावत्सकलो जरायुर्न निर्गच्छति । अथ चेत् छिन्नशिष्टो जरायुर्गर्भाशयमुखाल्लम्बते सन्दंशेन गृहीत्वा (अङ्गुलीभिर्न सम्यग्गृहीतो भवति) आहरणीयः कर्त्तनीयो वा मुखाभ्यन्तरतस्तदसम्भवे । योनौ लम्बमानो हि यदि चेत् चिरं तिष्ठति न निर्याति तदा सरणिभूतं तमाश्रित्य दोषसङ्क्रमणमपि गर्भाशयान्तः प्रसरति । अन्त.शिष्टो लघुरंशस्तु नापत्तिकरः सूतिकास्रावेण सह सुखं निर्हार्य्यत्वात् ।

अपराजरायुपरीक्षणम् ।

निर्गतां त्वपरां सजलवर्धमानके प्रक्षिप्य, सम्यक् क्षालिता च करयोः सन्धार्य, तदुत्तरतल परीक्षणीयम् साकल्येनागता न वेति परिज्ञानाय । तत्र पूर्णनिर्गताया एव पिण्डकानिकायः परस्परं सन्वर्त्ते । विदीर्णाऽपि कराभ्यां पीड्यमाना पूर्णावयवत्वादविदीर्णेव प्रतिभाति । न कुत्रापि गर्त्तस्थल दृश्यते । छिन्नशिष्टत्वात् अपूर्णायास्तु पुनः पीडिताया अपि पिण्डकापगमक्षतो गर्त्तस्तथैव तिष्ठति न पूर्य्यते ।

ततश्च पुनरपि जले निक्षिप्य जरायुर्निरीक्षणीय' किमयं पूर्ण आहोस्विदपूर्ण इति । तत्राऽखण्डितो जरायुर्युक्तप्रमाणो महाविवरैकयुत. परितोऽमरां प्रतिबद्धश्च भवति । अतोऽन्यथा तु खण्डितः । सहि छिन्नाशत्वात् हीनप्रमाणो दीर्ण इव च दृश्यते । केवलं बहिर्जरायुरेव च गर्भधरकलया संसक्तत्वादेवं छिन्नः स्यात्, असंसक्तोऽन्तर्जरायुस्तु प्रायेण पूर्ण एव निर्याति । अथ चेत् छिद्रविशेषद्वयम् अमरापार्श्वेतरच्छिद्रान्यतरं यावत् प्रगता रक्तप्रणालिकाश्च जरायौ दृश्येरन्, तदा द्वीपीभूताऽतिरिक्ताऽपराऽपि काचिदन्तस्तिष्ठतीति जानीयात् ।

द्वीपीभूताऽतिरिक्ताऽपरा Placenta Succenturiata (Island) or Secondary Placenta

अन्तःशिष्टोऽमरांशस्तु रक्तस्रुति जनयति गर्भाशयस्यापसंवृति करोति जीवाणुसङ्क्रान्तश्च विषलक्षणान्युत्पादयति। तस्मात् गर्भाशये हस्तं प्रवेश्य तन्निष्कामनमेव वरं मन्यते कुशला ।

मूलाधारवीक्षणम् ।

मूलावदारविज्ञानाय मूलाधारपीठ दोषघ्नद्रवसिक्तेन पिचुना विशोध्य, भगोष्ठौ चापसार्य्य, आलोकावभासितं सम्यक् परीक्षेत। प्रायेण योन्याः पश्चिमभित्तिरेव दीर्य्यते। योनावङ्गुलिं प्रवेश्य स्पृष्ट्वाऽपि तद्विदारान् जानीयात्। सद्यश्च विदारानुसीवन वरम्। दिनान्तेनापि चताननु-सीव्यादेव।

अर्गटोपयोगः ।

गर्भाशयो यथावत् सङ्वृतः स्यात्, छिन्नशिष्टश्च जरायु सूतिकास्रावेण सह निर्हरेदिति हेतो. प्रायेण द्रव्यमेतत् भिषग्भिरुपयुज्यते। पानापेक्षया च तदन्त क्षेपणमेव वरम्। अपरानिर्गमानन्तरं चैतत् प्रयोज्य न पूर्वम्।

प्रसूताया विशोधनम् ।

प्रसवान्ते हि दूषितवस्त्रादिकमपहरेत्, भगदेश परिभगदेश च विशोधयेत् पिचुभि । पिचवस्तु मृदुना दोषघ्नद्रवेण परिषिक्ता. स्युः। पूर्वापर-क्रमेण च तैर्मार्जयेत। न च सकृदुपयुक्तं पुनर्युञ्जीत। भगोष्ठौ पिदधता च यथा नाम द्रवं नान्तर्भगमनुविशेत् तथाऽनुष्ठेयम्। भगान्तर्विशोधनं तु प्राकृतप्रसवेऽनावश्यकम्।

भगकवलिका, उदरवेष्टनञ्च ।

ततश्च रसकर्पूरद्रवानुषिक्त पिचु भगस्योपरिष्टात् विन्यस्य कवलिकां दत्त्वा पट्टेन बध्नीयात्। अग्रपत्रादधोरुं लम्बमानेन च महता वाससा

उदरमस्या वेष्टयेत्। चतुर्भिश्च लघुसन्दंशिकाभिर्यथास्थान तद्वासो धारयेत्, महाशिखरकयोरध', तयोरुपरि, नाभिसमीपे, अग्रपत्रान्तिके च। गर्भाशयश्च तेन श्रोण्यभिमुख तथा पीडनीयो यथा नोर्ध्वं नाभेर्गच्छति। शिथिले स्थूले वा तूदरे बृहद्वस्त्रखण्डमपि उपधानीकृत्य नाभ्यग्रपत्रयोरन्तराले गर्भाशयस्कन्धपीडनाय स्थापयेत्। परिश्रान्तश्रोणिसन्धिपेशीका च स्त्रिय वेष्टनमेतत् सुखयति।

धमनीप्रतिघाताः शारीरोष्मा च।

तत्र धमनीस्पन्दन प्रायेणाशीतिसङ्ख्यातो न्यून शारीरोष्मा चापि नवनवतिकांशमानादून एव भवति। तथैव च भाव्यम्। शताधिको धमनीप्रतिघातस्तु बहिरन्तर्वा जायमाना रक्तस्रुति दर्शयति। सञ्ज्ञाहरद्रव्याणामुपयोगतोऽपि धमनीस्पन्दाना त्वरण सम्भवति, पर नैतद्दुर्लक्षणमिति चिन्त्यमेव। प्रसवोत्तरं च क्रमेण मन्दायमाना एव धमनीस्पन्दवेगाः श्रेयोवहाः। तस्मादप्रमत्त सन् होरा यावत् मातुर्धमनीस्पन्दान् मुखवैवर्ण्यादिकाश्च भावान् अन्तराऽन्तरा परीक्षेत।

बालोपचारः।

अथ बाल बलातैलेनाऽभ्यज्य फेनिकया च सशोध्य कोष्णेन वारिणा स्नपयेत्, आच्छयेच्च विमलेन वाससा सम्यक्। ततश्च सहजौ वैरूप्याभिघातौ कुमारस्य निरीक्षेत। गुदविवर मूत्रप्रसेकद्वारं च विद्यते न वा? अण्डग्रन्थी वृषणयोरवतीर्णौ किम्? तालुस्त्वस्य कच्चिन्न भिन्नः? इत्येवम्। पूयमेहिन्याश्च प्रसूतस्य शिशोः सोरकाम्लीयरजतद्रव प्रतिशतैकशक्तिकं बिन्दुद्वयमानेन नेत्रयोः क्षिपेत्। तथा कुर्वाणो हि दृष्टिविघातकात् दुरभिष्यन्दादेनं रक्षति। नाभिनालश्च सम्यक् परीक्षेत। रक्तञ्चेत् स्रवति पुनर्बध्नीयात्। ततश्च प्रोञ्छ्य, चूर्णटङ्कणं प्रक्षिप्य, कार्पासखण्डेन च सम्यक् पिधाय मूत्रसंसर्गदोषवारणाय ऊर्ध्वमुखमवस्थि-

पार्श्वे शय्याया वाऽन्यत्र क्षौमवस्त्रास्तृतायां शाययेत्। न चातः स्नापयेदानाभिनालपातात्। स्नाने हि तदार्द्रताभय विद्यते। नाभिनाडी पञ्चभिः सप्तभिर्वा दिनै. क्रमेण शुष्यमाणा पतति।

(४) एतानि च तृतीयावस्थायां परिहार्याणि—आदित एव अपरा ध्कासनयत्न', नालाकर्षणम्, योनिपरीक्षणञ्च।

अथाहु प्राञ्च—

सूतिकागारम् —प्राक् चैवास्या नवममासात् सूतिकागारं कार अपहृतास्थिशर्कराकपाले देशे, प्रशस्तरूपरसगन्धायां भूमौ, प्राग्द्व मुदग्द्वारं वा बैल्वानां काष्ठाना तैन्दुकैङ्गुदकानां भल्लातकानां वारुण खादिराणा वा। यानि चान्यान्यपि ब्राह्मणा शंसेयुरथर्ववेदविदः तद्वस लेपनाच्छादनापिधानसम्पदुपेत वास्तुविद्याहृदययोगाग्निसलिलोदूख वर्च्च.स्थानस्नानभूमिमहानसमृतुसुखञ्च सेवयेत्।

—च० शा० ८।

नवमे मासि सूतिकागारमेनां प्रवेशयेत् प्रशस्ततिथ्यादौ। तत्रा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणां श्वेतरक्तपीतकृष्णेषु भूमिप्रदेशेषु बिल्वन्यग्रोध न्दुकभल्लातकनिर्म्मितसर्वागार यथासख्य तन्मयपर्यङ्कमुपलिप्तभित्ति सु भक्तपरिच्छद प्राग्द्वारं दक्षिणद्वार वाऽष्टहस्तायत चतुर्हस्तविस्तृत र मङ्गलसम्पन्नं विधेयम्।

—सु० शा० १०।

प्रवेशविधिः—ततः प्रवृत्ते नवमे मासे पुण्येऽहनि प्रशस्तनक्षत्रं मुपगते प्रशस्ते भगवति शशिनि कल्याणकरे मैत्रे मुहूर्ते शान्ति कृ

शान्ति कृत्वा = शान्तिहोम कृत्वा।

गोब्राह्मणमग्निमुदकञ्चादौ प्रवेश्य गोभ्यस्तृणोदकं मधुलाजांश्च प्रदाय ब्राह्मणेभ्योऽक्षतान् सुमनसो नान्दीमुखानि च फलानीष्टानि दत्वोदकपूर्वमासनस्थेभ्योऽभिवाद्य पुनराचम्य स्वस्ति वाचयेत्। ततः पुण्याहशब्देन गोब्राह्मणमनुवर्त्तमाना प्रविशेत् सूतिकागारम्। तत्रस्था च प्रसवकालं प्रतीक्षेत।

—च० शा० ८।

प्राक् चैव नवमान्मासात् सूतिकागृहमाश्रयेत्।
देशे प्रशस्ते सम्भारैः सम्पन्ने साधकेऽहनि॥
तत्रोदीक्षेत सा सूतिं सूतिकापरिवारिता।

—वा० शा० १।

सम्भारद्रव्याणि :—तत्र सर्पिस्तैलमधुसैन्धवसौवर्चलकालविड्विडङ्गकुष्ठकिलिमनागरपिप्पलीपिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीमण्डूकपिप्पलीलाङ्गलीवचाचव्यचित्रकचिरबिल्वहिङ्गुसर्षपलशुनकतककणकणिकानीपातसीबल्वजभूर्जकुलत्थमैरेयसुरासवाः सन्निहिताः स्युः।

तथाश्मानौ द्वे, द्वे च कुण्डमुसले, द्वे उदूखले, खरवृषभश्च, द्वौ च तीक्ष्णौ सूचीपिप्पलकौ सौवर्णराजतौ शस्त्राणि च तीक्ष्णायसानि, द्वौ च बिल्वमयौ पर्य्यङ्कौ, तैन्दुकैङ्गुदानि च काष्ठानि अग्निसन्धुक्षणानि।

स्त्रियश्च बह्वयो बहुशः प्रजाताः हार्दयुक्ताः सततमनुरक्ताः प्रदक्षिणाचाराः प्रतिपत्तिकुशलाः प्रकृतिवत्सलास्त्यक्तविषादाः क्लेशसहिन्योऽभिमताः।

ब्राह्मणाश्चाथर्ववेदविदो यच्चान्यदपि तत्र समर्थं मन्येत। यच्चान्यच्च ब्राह्मणा ब्रूयुः स्त्रियश्च वृद्धास्तत्कार्यम्।

—च० शा० ८।

नान्दीमुखानि च फलानि = नान्दीमुखश्राद्धोपहितानि फलानि, किम्वा नान्दी मुरजः, तन्मुखाकृतीनि फलानि खर्जूरादीनि। उदकपूर्वम् = आचमनपूर्वकम्।

आवस्थिकोपचारः ।

प्रथमावस्था—आवीप्रादुर्भावे तु भूमौ शयनं विदध्यात् मृद्वास्तरणोपपन्नम्। तदध्यासीत सा। तां ताः समन्ततः परिवार्य यथोक्तगुणाः स्त्रियः पर्य्युपासीरन्नाश्वासयन्त्यो वाग्भिर्ग्राहिणीभिः सान्त्वनीयाभिः।

सा चेदावीभिः सङ्क्लिश्यमाना न प्रजायेत, अथैनां ब्रूयात् "उत्तिष्ठ, मुसलमन्यतरद् गृह्णीष्व, अनेन उदूखलं धान्यपूर्णं मुहुर्मुहुरभिजहि, मुहुर्मुहुरवजृम्भस्व, चङ्क्रमस्व चान्तरान्तरा" इत्येवमुपदिशन्त्येके। तन्नेत्याह भगवानात्रेयः। दारुणव्यायामवर्जनं हि गर्भिण्या सततमुपदिश्यते। विशेषतश्च प्रजननकाले प्रचलितसर्वधातुदोषायाः सुकुमार्य्या नार्य्या मुसलव्यायामसमीरितो वायुरन्तरं लब्ध्वा प्राणान् हिंस्यात्। दुष्प्रतीकारतमा च तस्मिन् काले विशेषेण भवति गर्भिणी। तस्मान्मुषलग्रहणं परिहार्यमृषयो मन्यन्ते। जृम्भणं चङ्क्रमणञ्च पुनरनुष्ठेयमिति।

अथास्यै दद्यात् कुष्ठैलालाङ्गलकीवचाचित्रकचिरबिल्वचव्यचूर्णमुपघ्रातुम्। सा तत् मुहुर्मुहुरुपजिघ्रेत्। तथा भूर्जपत्रधूमं शिंशपाधूमं वा। तस्याश्चान्तराऽन्तरा कटीपार्श्वपृष्ठसक्थिदेशानीषदुष्णेन तैलेनाभ्यज्यानुसुखमवमृद्नीयादित्यनेन कर्मणा गर्भोऽवाक् प्रतिपद्यते।

—च० शा० ८।

प्रजनिष्यमाणां कृतमङ्गलस्वस्तिवाचनां कुमारपरिवृतां पुन्नामफलहस्तां स्वभ्यक्तामुष्णोदकपरिषिक्तामथैनां सम्भृतां यवागूमाकण्ठात् पाययेत्। ततः कृतोपधाने मृदुनि विस्तीर्णे शयने स्थितामाभुग्नसक्थीमुत्तानामशङ्कनीयाश्चतस्रः स्त्रियः परिणतवयसः प्रजननकुशलाः कर्त्तितनखाः परिचरेयुरिति।

—सु० शा० १०।

अथैनामुपस्थितगर्भां कृतकौतुकमङ्गलां पुन्नामफलहस्तां स्वभ्यक्ता-मुष्णोदकपरिषिक्तां सघृतां यवागूं पाययेत्। ततः सुरक्तार्षभचर्मप्रच्छदे मृदुनि भूमिशयने शयानामुत्तानामाभुग्नसक्थिपृष्ठामहतवाससोऽशङ्कनीयाः प्रियदर्शनाः परिणतवयसः प्रजननकुशलाः प्रगल्भाः कृत्तनखाः स्त्रियः सूतिकां सूनृताभिर्वाणीभिराश्वासयन्त्यः पर्य्युपासीरन्।

—सङ्ग्रहशा० ३।

अथोपस्थितगर्भां तां कृतकौतुकमङ्गलाम्।
हस्तस्थपुन्नामफलां स्वभ्यक्तोष्णाम्बुसेचिताम्॥
पाययेत् सघृतां पेयां तनौ भूशयने स्थिताम्।
आभुग्नसक्थिमुत्तानामभ्यक्ताङ्गीं पुनः पुनः॥
अधो नाभेर्विमृद्नीयात् कारयेज्जृम्भचङ्क्रमम्।

—वा० शा० १।

अथ हीमानि रूपाणि गर्भिण्या उपलक्षयेत्।
यानि दृष्ट्वा विजानीयाद्बालजन्मन्युपक्रमम्॥
मुखग्लानि क्लमोऽक्षानामक्षिबन्धनमुक्तता।
कुक्षेश्च स्यादवस्रंसस्त्वधोभागस्य गौरवम्॥
पृष्ठपार्श्वकटीबस्तिवंक्षणं चातितुद्यति।
योनिप्रस्रवणोदार्यभक्तद्वेषारतिक्लमाः॥
एतानि दृष्टवा रूपाणि कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।
प्रविशेयुः स्त्रियो वृद्धाः कुशलाः शस्तधाविताः॥
गर्भिणीं सान्त्वयेयुस्ता हर्षयेयुः प्रियंवदाः।
आश्वासयेयुर्धर्मार्थौ चोदयन्तं प्रजापतिम्॥

विशिष्टकाले यो रक्षाबन्धो बाह्वादौ बध्यते स कौतुकशब्दवाच्यः, कौतुकाख्यं मङ्गलं कौतुकमङ्गलम्।

लोकान् पुत्रवतीनां च सुखानि विविधानि च ।
कीर्त्तयेयुरपुत्राणां दुःखानि निरयादिषु ॥
अदितिं कश्यपं देवमिन्द्राणीमिन्द्रमश्विनौ ।
आयुष्मतां पुत्रवतां मङ्गल्यानां च कीर्त्तनम् ॥
तन्त्रीवर्णोऽल्पशः स्रावः पिच्छिलः पुत्रजन्मनि ।
किंशुकोदकसङ्काशः पुत्रिकाजन्म शंसति ॥
सूतेरूर्ध्वं तु ये स्रावा निन्दितान् शमयेत्तु तान् ।
तस्या अस्यामवस्थायामुपयाचेत देवताः ॥
आव्यावृते स्त्रिया गर्भे विवृते चापराङ्मुखे ।
आह्वीषु वर्त्तमानासु सा विवर्तेत गर्भिणी ॥
तीक्ष्णेषु आह्विशूलेषु क्षिप्रं नारी प्रजायते ।
विलम्बिताभिरावीभिर्गर्भः क्लेशयते स्त्रियम् ॥
केचिदस्यामवस्थायां व्यायाम मुसलादिकम् ।
जृम्भाचङ्क्रमणाद्यञ्च भिषजो ब्रुवते हितम् ॥
वर्जनीयन्तु तत्सर्वं भगवानाह कश्यपः ।
व्यायामः सेव्यमानो हि गर्भिणीमाशु नाशयेत् ॥
अतिचङ्क्रमणेनापि हन्याद्गर्भमुपस्थितम् ।
अत्ययं प्राप्नुयाद्घोरं देहान्तकरणं महत् ॥
उपविष्टाऽसकृत्तस्मादनिर्विण्णाऽन्नपान्विता ।
वृद्धस्त्रीद्रव्यसम्पन्ना प्रजायेत प्रजार्थिनी ॥
वचा लाङ्गलिकी कुष्ठं चिरबिल्वैलचित्रका ।
चूर्णितं मुहुराजिघ्रेत् तथा शीघ्रं प्रजायते ॥
आजिघ्रेद्भूर्जधूपं वा नमेरोर्गुग्गुलोस्तथा ।
अथ प्रपद्यते गर्भस्तथा शीघ्रं विमुच्यते ॥
पार्श्वसन्धिकटीपृष्ठं तैलेनोष्णेन म्रक्षितम् ।
मृद्नीयुरवकर्षेयु शनैः प्राङ्य. स्त्रियः सुखम् ॥

दुर्वेलां पाययेन्मद्यमित्येके, नेति कश्यपः।
पूर्वक्लिष्टा तथैवाऽसौ यवागूं तृषिता पिबेत् ॥

—जातिसूत्रीयशारीरे कश्यपः।

द्वितीयावस्था—अस्यामवस्थायां पर्य्यङ्कमेनामारोप्य प्रवाहितुमुपक्रामयेत्। कर्णे चास्या मन्त्रमिममनुकूला स्त्री जपेत्—

"क्षितिर्जलं वियत्तेजो वायुर्विष्णुः प्रजापतिः।
सगर्भां त्वां सदा पान्तु वैशल्यञ्च दिशन्तु ते ॥
प्रसूष्व त्वमविक्लिष्टमविक्लिष्टा शुभानने।
कार्त्तिकेयद्युतिं पुत्रं कार्तिकेयाभिरक्षितम् ॥" इति।

"इहामृतञ्च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनी।
उच्चैःश्रवाश्च तुरगो मन्दिरे निवसन्तु ते ॥
इदममृतमपां समुद्धृतं वै तव लघुगर्भमिमं प्रमुञ्चतु स्त्री।
तदनलपवनार्कवासवास्ते सह लवणाम्बुधरैर्दिशन्तु शान्तिम् ॥"इति च

ततश्चैनां तथोक्तगुणाः स्त्रियोऽनुशिष्युरनागतावीर्मा प्रवाहिष्ठाः। या ह्यनागतावीः प्रवाहते, व्यर्थमेवास्यास्तत्कर्म भवति, प्रजा चास्या अविकृता विकृतिमापन्ना वा श्वासकासशोषप्लीहप्रसक्ता भवति। यथा हि क्षवथूद्गारवातमूत्रपुरीषवेगान् प्रयतमानोऽपि अप्राप्तकालान्न लभते कृच्छ्रेण वाऽप्यवाप्नोति, तथा नागतकालं गर्भमपि प्रवाहमाणा। यथा चैषामेव क्षवथ्वादीनां सन्धारणमुपघातायोपपद्यते तथा प्राप्तकालस्य गर्भस्याऽप्रवाहणम्। सा यथानिर्दशं कुरुष्वेति वक्तव्या। तथा च कुर्व्वती शनैः पूर्वं प्रवाहेत, ततोऽनन्तरं बलवत्तरम्। तस्यां प्रवाहमाणायां स्त्रियः शब्दं कुर्य्युः—"प्रजाता प्रजाता धन्यं धन्यं पुत्रम्" इति। तथाऽस्या हर्षेणाप्यायन्ते प्राणाः।

—च० शा० ८।

अथास्या विशिखान्तरमनुलोममनुसुखमभ्यज्यानुब्रूयाच्चैनामेका सुभगे प्रवाहस्वेति, न चाप्राप्तावी. प्रवाहस्व, ततो विमुक्ते गर्भनाडीप्रबन्धे सशूलेषु श्रोणिवङ्क्षणवस्तिशिरःसु प्रवाहेथा शनैः शनैः पूर्वम्, ततो गर्भनिर्गमे प्रगाढम्, ततो गर्भे योनिमुख प्रपन्ने गाढतरमाविशल्यभावात्। अकालप्रवाहणात् बधिर मूक कुब्ज व्यस्तहनुमूर्ध्वाभिघातिनं कासश्वासशोषोपद्रुत विकट वा जनयति ।

—सु० शा० १० ।

अथ परिवृत्तगर्भां पर्य्यङ्कमेनामारोप्य कुशला स्त्री पादतोऽस्या निषण्णा योनिमनुलोममनुसुखमभ्यज्य स्फिजौ पादाभ्या पीडयेत्। योनि च पुन पुन प्रसाधयेत्। ब्रूयाच्च सुभगे शनैः शनैः प्रवाहयस्व सुप्रसन्नमुखवर्णं पुत्र जनयिष्यतीति। अन्या तु वामकर्णेऽस्या मन्त्रमिम जपेत्— "क्षितिजेलमित्यादि"। तथाऽपराऽनुशिष्यात् अनागताया वेदनाया मा प्रवाहिष्ठा इत्यादि। तद्वचान्यतमा स्त्री जातमात्रमेव बाल बालोपचरणीयेन विधिनोपपादयेत् ॥

—सङ्ग्रहशा० ३ ।

.... खट्वामारोपयेत्तत ॥
अथ सम्पीडिते गर्भे योनिमस्या प्रसारयेत्।
मृदु पूर्वं प्रवाहेत बाढमाप्रसवाच्च सा ॥
हर्षयेत्तां मुहु पुत्रजन्मशब्दजलानिलैः ।
प्रत्यायान्ति तथा प्राणाः सूतिक्लेशावसादिता. ॥

—वा० शा० १ ।

विशिखान्तरम् = अपत्यमार्गं योनिम्। विमुक्ते गर्भनाडीप्रबन्धे = विगते गर्भमार्गप्रतिरोधे, विवृते गर्भाशयमुखे इति यावत्। ऊर्ध्वाभिघातिनम् = ऊर्ध्वजत्रुगतरोगिणम्। विकटम् = अयथास्थाननिवेशितावयवम्। प्रसारयेत् = अभ्यञ्जनादिदानेन।

तृतीयावस्था—यदा च प्रजाता स्यात्तदैवैनामवेक्षेत काचिदस्या अपरा प्रपन्नाऽप्रपन्ना वेति । तस्याश्चेदपरा न प्रपन्ना स्यात्, अथैनामन्यतमा स्त्री दक्षिणेन पाणिना नाभेरुपरिष्टाद् बलवन्निपीड्य सव्येन पृष्ठत उपसङ्गृह्य सुनिर्धूतं निर्धुनुयात् । अथास्याः स्नपादपाष्र्ण्या श्रोणीमाकोटयेत् । अस्याः स्फिजावुपसङ्गृह्य सुपीडितं पीडयेत् । अथास्या बालवेण्या कण्ठतालु परिस्पृशेत् । भूर्जपत्रकाचमणिसर्पनिर्मोकधूपैश्चास्या योनिं धूपयेत् । कुष्ठतालीशकल्कं बल्बजयूषे मैरेयसुरामण्डे तीक्ष्णे कौलत्थे वा मण्डूकपिप्पलीसम्पाके वा सम्प्लाव्य पाययेतैनाम् । तथा सूक्ष्मैलाकिलिमकुष्ठनागरविडङ्गपिप्पलीकालागुरुचव्यचित्रकोपकुञ्चिकाकल्कं स्वरयूषभस्य वा जीवतो दक्षिणं कर्णमुत्कृत्य दृषदि जर्जरीकृत्य बल्बजयूषादीनामाप्लावनानामन्यतमस्मिन् प्रक्षिप्याप्लाव्य मुहूर्तस्थितमुद्धृत्य तदाप्लावनं पाययेतैनाम् । शतपुष्पाकुष्ठमदनहिङ्गुसिद्धस्य चैनां तैलस्य पिचुं ग्राहयेत । अतश्चैवानुवासयेत । एतैरेव चाप्लावने फलजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवकुटजकृतवेधनहस्तिपिप्पल्युपहितैरास्थापयेत । तदास्थापनमस्याः सह वातमूत्रपुरीषैर्निर्हरत्यपरामासक्ताम् वायोरेवाप्रतिलोमगत्वात् । अन्यान्यपि हि वातमूत्रपुरीषाणि बहिर्गमनशीलानि सज्जन्ति ।

—च० शा० ८ ।

अथापराऽपतन्त्यानाहाध्मानौ कुरुते, तस्मात् कण्ठमस्याः केशवेष्टितयाङ्गुल्या प्रमृजेत, कटुकालावुकृतवेधनसर्षपसर्पनिर्मोकैर्वा कटुतैलविमिश्रैर्योनिमुखं धूपयेत्, लाङ्गलीमूलकल्केन वास्याः पाणिपादतलमालिम्पेत्, मूर्ध्नि वास्या महावृक्षक्षीरमनुसेचयेत्, कुष्ठलाङ्गलीमूलकल्कं वा मद्यमूत्रयोरन्यतरेण पाययेत्, शालमूलकल्कं वा पिप्पल्यादिं वा मद्येन; सिद्धार्थककुष्ठलाङ्गलीमहावृक्षक्षीरमिश्रेण सुरामण्डेन वास्थापयेत्, एतैरेव सिद्धेन सिद्धार्थकतैलेनोत्तरबस्तिं दद्यात्, स्निग्धेन वा कृत्तनखेन हस्तेनापहरेत् ।   सु० शा० १० ।

अथापतन्तीमपरां पातयेत्पूर्ववद्भिषक्।
हस्तेनापहरेद्वापि पार्श्वाभ्यां परिपीड्य वा॥
धुनुयाच्च मुहुर्नारीं पीडयेद्वांसपिण्डिकाम्।
तैलाक्तयोनेरेवं तां पातयेन्मतिमान् भिषक्॥
—सु० चि० १५।

(धूपयेद्गर्भसङ्गे तु योनिं कृष्णाहिकञ्चुकैः।
हिरण्यपुष्पीमूलं च पाणिपादेन धारयेत्॥
सुवर्चलां विशल्यां वा) जराय्वपतनेऽपि च।
कार्यमेतत्तथोत्क्षिप्य बाह्वोरेनां विकम्पयेत्॥
कटीमाकोटयेत्पाष्ण्या स्फिजौ गाढं निपीडयेत्।
तालुकण्ठं स्पृशेद्वेण्या मूर्ध्नि दद्यात्स्नुहीपयः॥
भूर्जलाङ्गलकी तुम्बी सर्पत्वक्कुष्ठसर्षपैः।
पृथग्द्वाभ्यां समस्तैर्वा योनिलेपनधूपनम्॥
कुष्ठतालीशकल्कं वा सुरामण्डेन पाययेत्।
यूषेण वा कुलत्थानां बिल्वजेनाऽऽसवेन वा॥
शताह्वसर्षपाजाजी शिग्रुतीक्ष्णक चित्रकैः।
सहिङ्गुकुष्ठ मदनैर्मूत्रे क्षीरे च साधितम्॥
तैलं सिद्धं हितं पाये योन्यां वाप्यनुवासनम्।
शतपुष्पावचाकुष्ठ कणासर्षपकल्कितः॥
निरूहः पातयत्याशु सस्नेहलवणोऽपराम्।
तत्सङ्गे ह्यनिलो हेतुः सा निर्यात्याशु तज्जयात्॥
कुशला पाणिनाऽक्तेन हरेत्[१] कृत्तनखेन वा।
मुक्तगर्भापरां योनिं तैलेनाङ्गं च मर्दयेत्॥
—वा० शा० १।

१—नालानुसारतोऽपहरेत् इति सग्रहे विशेषः।

सूतायाश्चापि तत्र स्यादपरा चेन्न निर्गता ।
प्रसूताऽपि न सूता स्त्री भवत्येव गते सति ॥
प्रजातमात्रामाश्वास्य सूता शुक्ला विजा (प्रज्ञा) विका ।
न्युब्जा शयानां संग्राह्य पृष्ठे संश्लिष्य कुक्षिणा ॥
पीडयेद्वद्दृमुदरं गर्भदोषप्रवृत्तये ।
महताऽदुष्टपट्टेन कुक्षिपार्श्वे च वेष्टयेत् ॥
तेनोदरं स्वसस्थानं याति वायुश्च शाम्यति ।

—सूतिकोपक्रमणीये कश्यपः ।

बालोपचारः ।

तस्यास्तु खल्वपराया. प्रपतनार्थे कर्मणि क्रियमाणे जातमात्रस्यैव कुमारस्य कार्याण्येतानि कर्माणि भवन्ति तद्यथा—

अश्मनोः संघट्टनं कर्णयोर्मूले । शीतोदकेनोष्णोदकेन वा[1] मुखेन परिषेकः । तथा सङ्क्लेशविहतान् प्राणान् पुनर्लभेत । कृष्णकपालिकाशूर्पेण चैनमभिनिष्पुनीयुः यद्यचेष्टः स्यात् यावत्प्राणानां प्रत्यागमनम् । ततः प्रत्यागतप्राणं प्रकृतिभूतमभिसमीक्ष्य स्नानोदकग्रहणाभ्यामुपपादयेत् ।

अथास्य ताल्वोष्ठकण्ठजिह्वाप्रमार्जनमारभेत अंगुल्या सुपरिलिखितनखया सुप्रक्षालितोपधानकार्पासपिचुमत्या प्रथमं प्रमार्जितास्यस्यास्य च शिरस्तालु कार्पासपिचुना स्नेहगर्भेण प्रतिच्छादयेत् । ततोऽस्यानन्तरम् सैन्धवोपहितेन सर्पिषा कार्यं प्रच्छर्दनम् ।

अथ नाड्यास्तस्य कल्पनविधिमुपदेक्ष्याम.—

नाभिबन्धनात्प्रभृत्यष्टाङ्गुलमभिज्ञानं कृत्वा छेदनावकाशस्य द्वयोरन्तरयोः शनैर्गृहीत्वा तीक्ष्णेन रौक्मराजतायसानां छेदनानामन्यतमे-

---

१ अत्रैवार्थे वाशब्दो ज्ञेय., तेन शीतेनोष्णेनैवोदकेन क्रमेण परिषेक आकण्ठनिमज्जनं वा ।

* A best method of artificial respiration (Resuscitation by rocking)

नार्धधारेण छेदयेत्ताम्। अग्रे सूत्रेणोपनिबध्य कण्ठेऽस्य शिथिलमवसृजेत्। असम्यक कल्पने हि नाड्या आयामव्यायामहुण्डिकापिण्डलिकाविनामिकाविजृम्भिकाबाधेभ्यो भयम्। —च० शा० ८।

अथ जातस्योल्वमपनीय, मुखं च सैन्धवसर्पिषा विशोध्य, घृताक्तं मूर्ध्नि पिचुं दद्यात्। ततो नाभिनाडीमष्टाङ्गुलमायम्य सूत्रेण बध्वा छेदयेत्। तत्सूत्रैकदेशञ्च कुमारस्य ग्रीवायां सम्यग् बध्नीयात्*।

—सु० शा० १०।

अथ कुमारं शीताभिरद्भिराश्वास्य जातकर्मणि कृते मधुसर्पिरनन्तचूर्णमङ्गुल्यानामिकया लेहयेत्, ततो बलातैलेनाभ्यज्य क्षीरवृक्षकषायेण सर्वगन्धोदकेन वा रूप्यहेमप्रतप्तेन वा वारिणा स्नापयेदेनम् कपित्थपत्रकषायेण वा कोष्णेन यथाकालं यथादोषं यथाविभवञ्च।

अथ बालं क्षौमपरिवृतं क्षौमवस्त्रास्तृतायां शय्यायां शाययेत्, पीलुबदरीनिम्बपरूषकशाखाभिश्चैनं परिवीजयेत्, मूर्ध्नि चास्य अहरहस्तैलपिचुमवचारयेत्, धूपयेच्चैनं रक्षोघ्नैर्धूपैः, रक्षोघ्नानि चास्य पाणिपादशिरोग्रीवास्ववसृजेत्, तिलातसीसर्षपकणांश्चात्र प्रकिरेत्। अधिष्ठाने चाग्निं प्रज्वालयेत्, व्रणितोपासनीयञ्चावेक्षेत।

—सु० शा० १०।

अथ खलु जातमात्रमेव बालमुल्वात् सैन्धवसर्पिषा मार्जयेत्। ततोऽस्यातिप्रबलमोहज्वरपरीतसर्वगात्रस्य क्रोशितुमपि रुजानुरूपमसमर्थस्यानवस्थिताशेषदेहधातोरसम्भाव्ययौवनाद्यवस्थस्य क्रकचस्पर्शमिव करवसनशयनसंसर्गं मन्यमानस्याविकल्पितमङ्गानि विक्षिपतः

---

* स्रावपरिहारार्थमिति डल्हण। लम्बत्वपरिहारायेतीन्दु।

रसादिगतिप्रतिबन्धेन त्वरितमुच्छोषयितुमिति हाराणचन्द्र। उल्वं पूर्णो जरायुर्जरायुभागो वा। कदाचित् जरायुवृत एव गर्भो जायते कदाचिच्च जरायुखण्डं मुखे लग्नं श्वासक्रिया सम्बाधते।

पुनरिव मरणमनुभवतो लीयमानसञ्ज्ञस्यातिसम्बाधयोनिपुटावपीडित-प्राणप्रत्यानयनाय बलातैलेन परिषेकं कुर्यात्। कर्णमूले चाश्मनोः सघट्टनम्। यदि वाऽचेष्ट एव स्यात्ततः कृष्णकपालिकया शूर्पेण चैवमभिनिष्पुनीयात्। इत्यादि। अहरहश्चास्य श्रोत्रशृङ्गाटक स्नेहाप्लुतेन प्लोतेन प्रच्छादयेत्। इत्यादि च। —सग्रह० श० १।

जातमात्रं विशोध्योल्बात् बालं सैन्धवसर्पिषा।
प्रसूतिक्लेशितं चानु बलातैलेन सेचयेत्॥
अश्मनोर्वादनं चास्य कर्णमूले समाचरेत्।
अथास्य दक्षिणे कर्णे मन्त्रमुच्चारयेदिमम्॥
अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादभिजायसे।
आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदां शतम्॥
शतायु शतवर्षोऽसि दीर्घमायुरवाप्नुहि।
नक्षत्राणि दिशो रात्रिरहश्च त्वाभिरक्षतु॥
स्वस्थीभूतस्य नाभिं च सूत्रेण चतुरङ्गुलात्।
बद्ध्वोर्ध्वं वर्धयित्वा च ग्रीवायामवसञ्जयेत्॥
नाभिं च कुष्ठतैलेन सेचयेत् स्नपयेदनु।
क्षीरवृक्षकषायेण सर्वगन्धोदकेन वा॥
कोष्णेन तप्तरजततपनीयनिमज्जनैः।
ततो दक्षिणतर्जन्या तालून्नम्यावगुण्ठयेत्॥
शिरसि स्नेहपिचुना प्राश्यं चास्य प्रयोजयेत्।
हरेणुमात्रं मेधायुर्बलार्थमभिमन्त्रितम्॥
ऐन्द्रीब्राह्मीवचाशंखपुष्पीकल्कं घृतं मधु।
चामीकरवचाब्राह्मीताप्यपथ्या रजीकृताः॥
लिह्यान्मधुघृतोपेता हेमधात्रीरजोऽथवा।
गर्भाम्भः सैन्धववता सर्पिषा वामयेत्ततः॥
—वा० उ० १।

चतुर्थोऽध्यायः ।

शिरोऽवतरणे प्राकृतोदय. ।

अथातः शीर्षोदयविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

शिरोऽवतरणे शिरस' पूर्णावनत्या मध्यशिरो यदाऽग्रतः प्रपद्यते तदा शीर्षोदय. । मध्यशिर:पदेन च पूर्वतो ब्रह्मरन्ध्रेण पश्चिमत' शिवरन्ध्रेण पार्श्वयोश्च पार्श्वकुम्भाभ्या सीमितो देशो गृह्यते । तत्र शिरोऽवतरण-

[७० चित्रम्]



शीर्षोदय ।

मवतरणाना शीर्षोदय उदयानां प्रथमासनञ्चासनाना प्रधान बाहुल्य-दर्शनादित्युक्तं पूर्व म् । गुरुत्वबलं गर्भाशयाद्यनुकूलनचेष्टा भुग्नीभावेना-वस्थितिश्च हेतुत्वेनापि तत्रैव दर्शितानि (१५१, १५५, १५७ पृष्ठेषु) ।

आसनानि—चत्वारि तावत् गर्भासनानि भवन्ति, मातुरुदरे गर्भपृष्ठस्य वामपूर्वादिखण्डक्रमेणावस्थानात्। वामपूर्वम्, दक्षिणपूर्वम्, दक्षिणपश्चिमम्, वामपश्चिमञ्चेति च खण्डचतुष्टयम्। नामानि तु तेषां श्रोण्यास्तत्तत्खण्डेषु स्थितान् गर्भाङ्गावयवविशेषानधिकृत्य निर्दिश्यन्ते। यथाऽत्रैव अनुशीर्षमधिकृत्य उच्यते—(१) वामपूर्वानुशीर्षासनम्, (२) दक्षिणपूर्वानुशीर्षासनम्, (३) दक्षिणपश्चिमानुशीर्षासनम्, (४) वामपश्चिमानुशीर्षासनञ्चेति। प्रत्यासनं चेह यथा नाम गर्भोऽवतिष्ठते, तदुक्तं प्राक् (१५७, १५८, १५९ पृ०)।

निर्णयः—उदरस्पर्शनेन योनिपरीक्षया हृच्छब्दश्रवणेन च शीर्षोदयो निर्णीयते। तत्र, उदरस्पर्शनेन गर्भाशयस्योर्ध्वप्रान्ते गर्भनितम्बः, अधरप्रान्ते च गर्भशिरोऽनुभूयते। मध्ये तु गर्भपृष्ठं यथासनं वामतो दक्षिणतो वा पूर्वतः पश्चिमतश्च वा वर्त्तते। तद्विपरीततश्च वर्त्तन्ते हस्तपादावयवाः। तत्र पश्चिमाभिमुखे गर्भे पृष्ठं पूर्वाभिमुखे च हस्तपादभागाः सुस्पष्टमनुभूयन्त इति विशेषः। ग्रीवापरिखा तु तिरश्चीना गर्भपृष्ठदिशि अधोमुखी च प्रतीयते। श्रोणिकण्ठमतिक्रम्य वस्तौ प्रविष्टे तु शिरसि न शिरोविशेषा अधिगम्यन्ते। तत्र चतुर्थग्रहविधिना परीक्ष्यमाणे यस्मिन् पार्श्वेऽन्यपार्श्वात् गभीरतरमङ्गुल्यो निमज्जन्ति तत्पार्श्वगतमेव तिर्य्यक्श्रोणिन्यासं गर्भशिरोऽधितिष्ठतीति विज्ञेयम्।

योनिपरीक्षया—तु स्थिरीभूते शिरसि सुविकसिते च गर्भाशयमुखे सीमन्तरन्ध्राद्युपलक्षितं शिरः श्रोणिकण्ठे वस्तिगुहायां वा सुवृत्तार्बुदमिव प्रतीयते। तत्रादौ मध्यसीमन्तः श्रोण्यास्तिरश्चीनव्यासयोरन्यतरस्मिन् तिष्ठति, ब्रह्मरन्ध्रं शिवरन्ध्रं चापि तत्पूर्वापरप्रान्तयोः समकक्षं वर्त्तते। परतस्तु शिरसः सङ्कोचविवर्त्तनाभ्यां शिवरन्ध्रं ब्रह्मरन्ध्रापेक्षया निम्नतरं भवति। शिवरन्ध्रस्योर्ध्वस्थितिस्तु शिरःसङ्कोचाभाव दर्शयति। शिवरन्ध्रस्य तत्तत्खण्डविशेषावस्थानेन च गर्भासनभेदा अपि निर्णेयाः। रन्ध्रे चैते कदाचित् कपालास्थिपीडनादुपरुद्धे

अपि सन्धेयसीमन्त्रसख्यानेन ज्ञातुं शक्ये। कदाचित् दुःशके त्वनुशीर्षस्य पूर्वपरावस्थानज्ञाने समग्रं करं योनौ प्रणिधाय शिरःपार्श्वे बाह्यकर्णमन्य परीक्षणीयम्। कर्णपालिर्हि अनुशीर्षस्यैवाभिमुख्य विधत्ते।

हृच्छब्दाश्च—पुनर्नाभेरधस्तादन्यतरपार्श्वे गर्भपृष्ठस्योपरि सम्यक् श्रूयन्ते।

निष्क्रमणविधि—निष्क्रमणविधिर्नाम श्रोणिपथाद् बहिरागच्छतो गर्भस्य मार्गानुकूलो व्यापारविधिः, येन यथाप्रयोजन स्वासनाङ्गसन्धित्यो परिवर्त्तन विधाय गर्भः स्वशिरोगात्रयोर्विविधव्यासानां श्रोण्या विविधव्यासै सह सङ्गतिमादधाति। श्रोण्याश्च प्रवेशद्वारेऽनुप्रस्थव्यासो, गुहाभ्यन्तरे तिरश्चीनव्यासो, निर्गमद्वारे चानुदीर्घव्यासो दीर्घतमो भवति। वक्रिमभावश्चापि जननपथस्य पूर्वापरदिशि वर्त्तते। तेन शीर्षोदयेऽवतरद् गर्भशिर स्वस्य ह्रस्वतमव्यासं स्थापयितुं प्रथम सङ्कुचति, ततो गुहाभ्यन्तरत स्वदीर्घतमव्यासं श्रोण्या दीर्घतमे व्यासे नयनाय विवर्त्तते, सहैव च स्वदीर्घाक्षरेखां जननपथशीर्षाक्षरेखया सङ्गमयितु प्रसरत्यपि। एव स्कन्धनिर्गमकाले अंसकूटान्तरालगव्यासं दीर्घतमश्रोणिव्यासे स्थापयितुं पुनरपि विवर्त्तते। तथा च प्रसूयमानस्य गर्भस्य चतस्रो गतय फलिता अवतरणम्, सङ्कोच, आवर्त्तनम् प्रसारश्चेति। आवर्त्तनं पुनस्त्रिविधम्—अन्तरावर्त्तनं प्रत्यावर्त्तन बहिरावर्त्तनञ्च।

अवतरणम्—गर्भाशयाकुञ्चनबलेनाध प्रणुद्यमानो गर्भ सङ्कोचप्रसारविवर्त्तनरूपैर्व्यापारविशेषै श्रोणिपथानुकूलता भजन् शनैः शनैरवतरति।

सङ्कोच—गर्भो नतशिरा एव प्रायेण वर्त्ततेऽन्तःकुक्षाविति सुविदितम्। प्रसवारम्भे च यथैव शिर श्रोणिकण्ठिकामति-

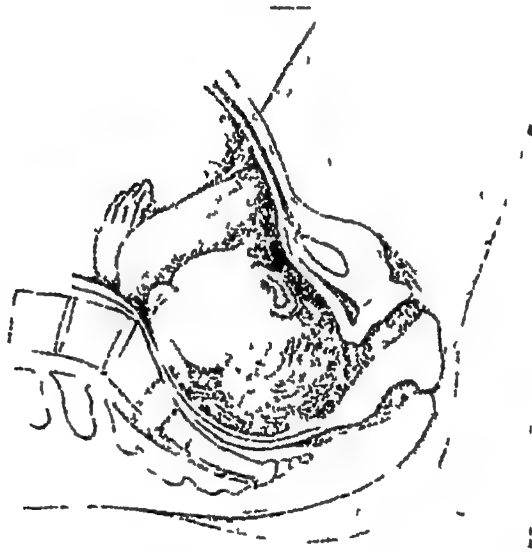
---

निष्क्रमणविधि Mechanism of Labour अवतरणम Descent सङ्कोच Flexion

क्रामति तथैव नमनादिशयतामपि प्रपद्यते। पूर्णावनत्या च शिरसः आनुशीर्षाधरब्रह्मरन्ध्रिको व्यास. प्रतिष्ठितो भवति शिवरन्ध्रञ्चाग्रतः प्रपद्यते। शिरःसङ्कोचकरा भावास्तु पुनरिमे भवन्ति, तद्यथा—(१) पुर.पश्चिमकपालौ यदा जननपथपार्श्वत. प्रपीड्येते तदा प्रोन्नतललाट-भागापेक्षया प्रनतानुशीर्षप्रदेशो हीनप्रतिरोधभागित्वात् द्रुतमवतरन् अग्रगो भवति, इति। (२) अण्डाकार किमपि वस्तु यदा नलिकामध्यतो

[७१ चित्रम्]

शीर्षोदयः।



सङ्कोचः पूर्णता गत, अन्तरावर्त्तनञ्च प्रारब्धम्।

चलान्निष्क्रान्त भवेत्तदा तस्य दीर्घतमो व्यासो नलिकाया दीर्घाक्ष-रेखामनुवर्त्तेत इति नियम.। एतन्नियमानुरोधादेव शिरसः प्रनतिर्जायते येन आनुशीर्षचिबुको नाम तद्दीर्घतमो व्यासो जनननलिकापथस्य दीर्घाक्ष-रेखामनुवर्त्तेत, आनुशीर्षाधरब्रह्मरन्ध्रिको ह्रस्वतमश्च व्यासो नलिका-मुल्लङ्घ्य तिष्ठेत्, इति। (३) शिरोग्रीवसन्धिर्हि ललाटदेशा-

पेक्षया अनुशीर्षभागस्य सन्निहिततरो भवति। यदा च [गर्भाशयस्कन्धभगो गर्भनितम्बं साक्षादध. पीडयति तदा पीडनबलं गर्भाजरेखामनुसरत् शिरोग्रीवसंधिमार्गेण शिरस्यायाति। तेन स्वभावत[1] एव अनुशीर्षं द्रुतमवतरति।

अन्तरावर्त्तनम्—ततो निम्नतरमनुशीर्षं प्रत्यावीकालं गर्भाशयदलेनाध पीड्यमानं प्रतिहन्यन्त्या श्रोणितलभूमे. पश्चिमपार्श्वभाग

[७२ चित्रम्]

शोर्षोदय.



अन्तरावर्त्तनं परिसमाप्तम्, प्रजा प्रारब्ध

तहि पश्चादधश्च पीडयति। आवीनां विरतौ तु तदैव तलभूमेः प्रतिचेष्टनेन अन्त पुरस्तादूर्ध्वञ्च प्रतिहन्यते। मुहुर्मुहुः प्रतिहन्यमानं चैवमन्तर्घूर्णदिव श्रोणा अधिष्ठितदिग्व्यासत्यागमात् पश्चिमाद्वा प्रान्तात् पुर. (चक्राष्टैकभाग चक्राष्टत्रिभाग वा[2]) प्रचलित भगतोरणिकाक्रोडे

शिरोग्रीवसन्धि —occipito spinal joint 1 lever theory अन्तरावर्त्तनम् internal rotation 2 1 8 or 3 8 of a circle घाटा Nape of the Neck

हीनप्रतिरोधाल्लब्धावकाशं स्वात्मानं निर्गमद्वारस्यानुदीर्घे व्यासे प्रतिष्ठापयति । यो ह्यस्य निम्नतरो भवति स एव पुरतो विवर्त्तत इति नियमः । प्रवेशद्वारेऽनुप्रस्थतिरश्चीनौ निर्गमद्वारे चानुदीर्घौ महत्तमव्यासा भवन्तीत्यतोऽपि मार्गानुकूलनसिद्धान्तादन्तरावर्त्तनं जायत इत्येके । तथाभूतस्य च मध्यसीमन्तः श्रोण्या अनुदीर्घव्यासे, अनुशीर्षं शिवरन्ध्रञ्च पूर्वतो भगतोरणिकाया अधस्तात्, ललाटं ब्रह्मरन्ध्रञ्च पश्चिमतस्त्रिकोदरे, घाटा तु सन्धानिकायाः पृष्ठतो वर्त्तन्ते (७२ चित्रम्) ।

प्रसार—अथ सन्धानिकाया अधः सम्यक् प्रतिष्ठितेऽनुशीर्षे गर्भशिरो गर्भाशयोदरपेशीभिरधः, श्रोणितलभूमिपेशीभिश्च प्रचेष्टमाना-

[७३ चित्रम्]
शीर्षोदय ।



शिरोजन्मनि प्रसारप्रक्रिया ।

भिरूर्ध्वं पुरस्ताच्च प्रपीड्यते । परिणामे चोर्ध्वाधःपीडनभरस्य परस्परं प्रतिहतत्वात् पुरस्तादेव शिरसो गतिः । न चैतत् केवलमेकदैव पुरोगन्तु प्रभवेत्, घाटायाः सन्धानिकया गृहीतत्वात् । एवञ्च गत्यन्तराभावात् प्रसरणक्रिययाऽपत्यपथवक्रतामनुसरदेव अग्रेसरं भवति । तथा निरस्यमानस्य च चिबुकं वक्षसा वियुज्यते, अनुशीर्षञ्च भगतोरणिकातो विमुच्य विवृतयोनिमुखात् प्राक् निर्याति । ततो मध्यशीर्षललाटाननचिबुकानुपूर्व्या मूलाधारमुत्तरत् सकलं गर्भशिरो व्यात्तयोनिमुखाद्बहिः प्रपद्यते ।

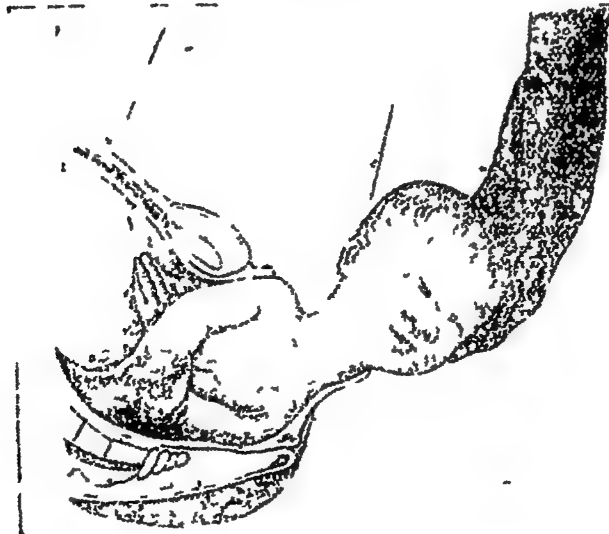
प्रसार Extension

बहिरावर्त्तनम्—कुक्षौ तिर्यगवस्थितस्य गर्भस्य स्कन्धौ शिरश्च स्वानुदीर्घव्यासाभ्यां श्रोण्या विरुद्धतिर्यग्व्यासावधिष्ठाय वर्त्तन्त इति स्थिति । अन्तरावर्त्तनकाले तु केवलं शिरोग्रीवमस्य विवर्त्तते नान्यच्छरीरम् । तदेव च तथाविवृत्तम् वद्वलितग्रीवं श्रोण्या अनुदीर्घव्यासमाश्रित्य प्रसरद्बहिर्निर्याति । निष्क्रान्ते तु स्वतन्त्र शिरो ग्रीवाप्रत्युद्वलनेन (चक्राष्टैकभागं) पुनरावर्त्तमान पुन पूर्वां तिर्यग्व्यावदिग्स्थिति भजते । तथा चास्याधोमुखता पार्श्वमुखतायां परिणमते स्तोकेन । तदेक बहिरावर्त्तनम् प्रत्यावर्त्तनख्यातं गौणञ्च ।

तत शिरोजन्मानन्तर निर्गच्छतो गर्भशरीरस्य शिरोविपरीत—तिर्यग्व्यासमाश्रितौ स्कन्धौ तथैवान्तरावर्त्तनेन श्रोण्या निर्गमद्वारस्यानुदीर्घव्यास प्रपद्येते । तत्र पूर्वः स्कन्धो निम्नतरत्वात् श्रोणितलपेशी-

[७४ चित्रम्]

शीर्षोदय ।



स्कन्धयोरन्तरावर्त्तन शिरश्च बहिरावर्त्तन सञ्जातम् ।

बहिरावर्त्तनम् External Rotation प्रत्यावर्त्तनम् Restitution

भिरनुशीर्षमिव प्रतिहन्यमानः पुरतो विवर्त्तते, भगसन्धानिकाया अध आगत्य च स्थिरीभवति। पश्चिमस्कन्धस्तु सहैव विचलित-स्तिर्यग्व्यासं परित्यज्य पृष्ठतो विवर्त्तनेन त्रिकक्रोडमाश्रयते। एवं श्रोण्या अनुदीर्घव्यासमाश्रयता स्कन्धद्वितयेन सार्धं शिरः पुनरपि चक्रस्यापरमष्टैकभागं तस्यामेव प्रत्यावर्त्तनदिशि विवर्त्तते बहिःस्थितम्। तेन च पूर्णतोऽस्य पार्श्वमुखता सञ्जायते। तदेतत् अपरं बहिरावर्तनं मुख्यञ्च।

अथ विशल्यभावः—ततश्चानुशीर्षमिव भगतोरणिकाया अधः स्थिरीभूते पूर्वांसे गर्भाशयाकुञ्चनबलादवपीड्यमानः पश्चिमस्कन्धो मूलाधारे परिसर्पन् प्राङ् निष्क्रामति योनिमुखात्, ततश्च पूर्वांसः, ततो मध्यशरीरं पाणिश्लिष्टोरस्कं, ततो नितम्बौ सक्थिनी चेति गर्भशल्यापगमः। नितम्बावपि स्कन्धाविवान्तरावृत्य शिखरकान्तरा-लगव्यासेन श्रोण्या अनुदीर्घव्यासमधिश्रयन्तौ तथैव जायेते। अथ च गात्रजन्मनि शिरःप्रसारस्थानीयं जननपथवक्रताकृतं गात्रपार्श्वायमनं, तत्तद्भागानां तिर्यगनुदीर्घव्याससश्रितिकृतं ग्रीवोद्वलनस्थानीयं गात्रो-द्वलनमपि च स्तोकेन भवतः।

अन्यच्चापि प्रासङ्गिकमत्रानुवाच्यम्, शिरोरूपणम् अधिशिरश्च। तत्र—

शिरोरूपणं—नाम श्रोण्या दार्ढ्येन पीड्यमानस्य गर्भशिरस आकारसाधनम्। तच्च शिरोव्यासानां क्षयवृद्धिभ्यां सम्भवति। केचन व्यासाः क्षीयन्ते, कश्चिच्च तन्निष्कृतिकरो वर्द्धतेऽपि। यथाऽत्रैव आनु-शीर्षनासामूलिकस्य आनुशीर्षाधरब्रह्मरन्ध्रिकस्य पार्श्वकपालिकस्य च

बहिरावर्त्तनं मुख्यम् External Rotation proper, विशल्यभावः Expulsion (of the trunk) गात्रपार्श्वायमनम् Lateroflexion of the body गात्रोद्वलनम् Twisting or Torsion of the body, शिरोरूपणम् Moulding of he head

व्यासस्य क्षय आनुशीर्षोत्तरचिबुकस्य च वृद्धिर्दृश्यते। सोऽयमायतनह्रासः शिरःकपालानां परस्परमुत्तराधरप्रपत्त्या जायते। सीमन्तानां कलामयत्वात्, सीमन्तसन्धीनां रन्ध्रमयत्वात्, अस्थिकपालानां मार्दवात्, मस्तुलुङ्गस्य क्षुद्रतनुत्वात्, ब्रह्मवारिणः सौषुम्निकनलिकायां प्रतिगमनात्, सिराकुल्यास्रुजः शारीरसिरासु प्रतिनिवर्त्तनाच्च न तेन काचित् क्षतिः। तत्र पुरःपश्चिमकपालौ पार्श्वकपालयोरधः पार्श्वकपालञ्च पुरतः स्थितं पश्चिमतः स्थितस्य पार्श्वकपालस्योपरि प्रपद्यते। अतिरूपणे तु दात्रिकाया जवनिकायाश्च कलाया अत्यातत्या विदरणेन रक्तस्रवणान्मरणसम्भवः।

अधिशिरः—पुनरववरतो गर्भाङ्गस्य मन्दतरमवपीड्यमाना नाड्युपस्रत्यङ्गाना त्वचि रक्तनिचयात्फलितो गुल्मविशेषः। तदिदं शीर्षोदये प्रथमं मध्यसीमन्तमध्येऽभिनिर्वर्त्तमानं सङ्कोचावर्त्तनकाले शिवरन्ध्राभिमुखम् अपसरति, प्रथमासने सीमन्तस्य दक्षिणतो द्वितीयासने च वामतो (पार्श्वकपालस्य पश्चिमोत्तरकोणे) वर्त्तते प्रायेण। अनुशीर्षस्य पश्चिमावर्त्तने तु पार्श्वकपालस्य पूर्वोत्तरकोणेऽभिनिर्वर्त्तते वामतो दक्षिणतो वा यथासनम्, न च गर्भनिर्गमकाले स्थानात्स्थानं प्रव्रजति। जातस्य चाहोरात्रमात्रेण स्वतः प्रविलीयतेऽधिशिरः।

अथ सामान्येनोक्तं निष्क्रमणविधिं तत्तदासनेषु सवार्थ्यं दर्शयिष्याम, तद्यथा—

वामपूर्वानुशीर्षासनम्—इह हि प्रथमासने गर्भशिरोऽनुशीर्षमग्रेकृत्य स्वेनानुशीर्षनासामूलिकेन व्यासेन श्रोण्याः प्रवेशद्वारस्य दक्षिणतिर्यग्व्यासं पार्श्वकपालिकेन च स्वव्यासेन तदीयं वामतिर्यग्व्यासमधिष्ठाय श्रोणयन्तः प्रविशति। ततः सङ्कोचः, तेन चानुशीर्षाधरब्रह्मरन्ध्रिको व्यासः आनुशीर्षनासामूलिकस्य स्थानमादत्ते। ततोऽन्तरावर्तनम्, तेन चानुशीर्षं दक्षिणतिर्यग्व्यासस्याग्रिमप्रान्तात् पुरतः प्रचलितं भगतोरणिकाया अधः

अधिशिर Caput Saccedaneum

संविशति । तदनन्तर प्रसारः, तेनास्य ललाटमास्यं चिबुकञ्च मूलाधार-पश्चिमतः सरभसं बहिर्भवन्ति । स्वतन्त्रे तु शिरसि प्रत्यावर्त्तनम्, येनास्यानुशीर्षे पुनः पूर्वस्थितिं भजते । ततो ह्यंसौ कूटान्तरालगव्यासेन वामतिर्यग्व्यासमधिरुह्य श्रोण्यां प्रविशतः । पूर्वांसश्च निम्नतरत्वात् श्रोणितलभूमिं स्पृशन् पूर्वतोऽन्तरावर्त्तमानो वामतिर्यग्व्यासाग्रकोटिं परित्यज्य भगतोरणिकाया अध. समापतति । सहैव च तत्कृतेन शिरसो बहिरावर्त्तनेनानुशीर्षं मातुर्वामसक्थ्यभिमुखं प्रपद्यते । परञ्च यथोद्दिष्टक्रमेणाऽप्रकाशितभागोऽपि बहिर्निर्गच्छति ।

दक्षिणपूर्वानुशीर्षासनम्—अत्र द्वितीयासने तु गर्भशिरोऽनुशीर्षमग्रेकृत्य स्वेनानुशीर्षनासामूलिकेन व्यासेन श्रोणिकण्ठस्य वामतिर्यग्व्यास पार्श्वकपालिकेन च दक्षिणतिर्यग्व्यासमधिकृत्य श्रोणौ विशति । सङ्कोचेन चानुशीर्षाधरब्रह्मरन्ध्रको व्यासश्चानुशीर्षनासामूलिकस्य स्थानमाद ॅ । तलभूमिं स्पृशदनुशीर्षन्तु अन्तरावर्त्तमान वामतिर्यग्व्यासाग्रिमकोटितो विचलित भगतोरणिकाया अध॰ प्रपन्नं भवति । तत॰ प्रसारेण शिरोजन्म । प्रत्यावर्त्तनेन पूर्वस्थितिं गच्छदनुशीर्षं तु चक्राष्टैकभागं दक्षिणतो विवर्त्तते । ततो दक्षिणतिर्यग्व्यासे वर्त्तमानयोरंसयोः पूर्वांसस्तलभूमिस्पर्शेनान्तरावर्त्तमानस्तद्व्यासाग्रिमप्रान्त विहाय भगतोरणिकाया अधस्तात् समागच्छति, सहैव च शिरसो बहिरावर्त्तनादनुशीर्षं पुनश्चक्राष्टैकभाग विवृत्तं मातुर्दक्षिणसक्थ्यभिमुखता गच्छति । ततश्च स्कन्धान्तराधिनिर्गमाद्गर्भजन्म ।

दक्षिणपश्चिमानुशीर्षासनम्—इह तृतीयासने गर्भशिरोऽनुशीर्षं पश्चिमत कृत्वानुशीर्षनासामूलिकेन स्वव्यासेन श्रोणिकण्ठस्य दक्षिणतिर्यग्व्यासं पार्श्वकपालिकेन च वामतिर्यग्व्यासमधिश्रित्य श्रोण्यन्तः प्रविशति । सङ्कोचन चानुशीर्षाधरब्रह्मरन्ध्रको व्यास श्चानुशीर्षनासामूलिकस्य स्थान गृह्णाति । ततः श्रोणितलभूम्या संस्पृष्टमनुशीर्षं दीर्घान्तरावर्त्तनेन दक्षिणतिर्यग्व्यासस्य पश्चिमप्रान्तात् वृत्तस्याष्टत्रिभागं पूर्वतो

दूरं प्रचल्य भगतोरणिकाया अधः संविशति । सहैव च वामतिर्यग्व्यासे वर्त्तमानौ स्कन्धावपि विचलितौ प्राक् अनुदीर्घव्यासे ततश्च दक्षिणतिर्यग्व्यासे विवृत्य स्थितिं लभेते । इति पूर्वतो विशेषः । तदेतत् शिरसोऽन्तरावर्त्तने सौकर्यमावहति । अन्यथा ग्रीवाया अत्युद्वलनेन व्यापद् स्यादेव । तत्र मनागसघूर्णनमिति केचित् । विरुद्धतिर्यग्व्यासं यावदित्यन्ये । ततः प्रसरणक्रियया शिरोजन्म । प्रत्यावर्त्तनेन चानुशीर्षं चक्रस्याष्टैकभागं दक्षिणतः प्रपद्यते । ततः पूर्वांसो दक्षिणतिर्यग्व्यासस्य पूर्वाग्रात् पुरोविवर्त्तते, शिरश्च मातुर्दक्षिणतो बहिरपरं वृत्ताष्टैकभागम् । एवञ्चास्य मुखं मातुर्वामसक्थ्यभिमुखम् अनुशीर्षञ्च दक्षिणसक्थ्यभिमुखं सञ्जायते कार्त्स्न्येन ।

वामपश्चिमानुशीर्षासनम्—चतुर्थासने स्वस्मिन् गर्भशिरोऽनुशीर्षं पश्चिमतः कृत्वानुशीर्षनासामूलिकेनात्मव्यासेन श्रोणिकण्ठस्य वामतिर्यग्व्यासं पार्श्वकापालिकेन च दक्षिणतिर्यग्व्यासमध्यास्य श्रोण्या मवतरति । अथ सङ्कोच, तेन चानुशीर्षोपरब्रह्मरन्ध्रिको व्यास आनुशीर्षनासामूलिकस्य स्थाने समापतति । ततः श्रोणितलभूमिस्पर्शनमूलेन दीर्घान्तरावर्त्तनेनानुशीर्षं वामतिर्यग्व्यासस्य पश्चिमाग्रात् पुरतः सुदीर्घं प्रचलितं भगतोरणिकाया क्रोडे विश्राम्यति । सार्धञ्चैव दक्षिणतिर्यग्व्यासश्रितौ स्कन्धौ विचलतः, अनुदीर्घं व्यासमुल्लङ्घ्य वामतिर्यग्व्यासवर्त्तिनौ च भवतः । अनन्तरं प्रसारः शिरोजन्मकरः । निर्मुक्ते तु शिरसि अनुशीर्षे स्तोकेन वामतः प्रत्यावर्त्तते । ततः परं पूर्वांसो वामतिर्यग्व्यासस्य पूर्वकोटितोऽन्तरावर्त्तमानो भगतोरणिकाया अधः प्रपद्यते । शिरश्च बहिरावर्त्तमानं मातुर्वामसक्थ्यभिमुखम् । परं चातोंसगात्रनिर्गमात् गर्भजन्म ।

दीर्घान्तरावर्त्तनम् Long internal rotation

शीर्षोदये वैकृतनिष्क्रमणम् ।

शीर्षोदयस्य निष्क्रमणविधौ यदा कदा विकारा अपि सम्भवन्ति । यथा—

(१) शिरसः प्रतीपावर्त्तनम्—अयं हि पश्चिमानुशीर्षासने यदा शिरसः केनापि हेतुना पूर्णसङ्कोचो न सम्भवति तदा दृश्यते । पूर्वानुशीर्षासनेऽपि नास्य सर्वथाऽसम्भवः । यो ह्यस्य निम्नतरो भवति स एव श्रोण्यां पूर्वतो विवर्त्तत इति सामान्यनियमाद् यदैव शिरसोऽपूर्णावनत्या अनुशीर्षस्थाने ललाटस्य निम्नतरत्वं तदैव तस्य पुरोविवर्त्तनाद् मुखं सन्धानिकायाः पृष्ठे, अनुशीर्षञ्च पश्चिमतोऽपवृत्तं त्रिकोदरे सन्तिष्ठते । तथाभूतस्य च स्वतोनिष्क्रमणं भिन्नेनैव विधिना कदाचित् (श्रोणिशिरसोः कायमान स्वाभाविक चेत्) सम्पद्यते, यथा हि—एवं निष्क्रामतो गर्भस्य नासामूलं ललाटैकदेशो वा भगसन्धानिकाया अधः प्राक् स्थिरी भवति, स्थिरीभूतं च तत् मध्यकीलमिवाश्रित्य गर्भशिरोऽपि चक्रगतिना सङ्कोचं गच्छति, तेन मध्यशीर्षानुशीर्षे मूलाधारदेशादवस्रस्य वहिर्भवतः, ततः स्वल्पप्रसरणगत्या मुखमपि ललाटवदनचिबुकानुक्रमेण बहिर्निर्याति । अतः परं च बहिरावर्त्तनेन पश्चिमतः स्थितमनुशीर्षं पूर्वाधिष्ठितदिग्भागानुक्रमेण पूर्वतो विवृत्य मातृसक्थ्यभिमुखं भवति । शेषं पूर्वेण तुल्यम् ।

स्मर्त्तव्यश्चात्र यत्—वैकृतनिष्क्रमणे प्राकृतनिष्क्रमणापेक्षया द्वित्रहोरामितः कालोऽधिक एव व्ययेति । तत्र शिरसो गतिरोधाद्, जरायोः प्राग्विदरणेन गर्भाशयमुखस्यासम्यग्विकसनाद्, आवीनां दौर्बल्याद् दीर्घतरशिरोव्यासानामुपस्थानाच्च प्रसवे विलम्बः । आनुशीर्षधरललाटिकव्यासस्थाने च आनुशीर्षललाटिको व्यासो योनिमुखं विस्फारयति

वैकृतनिष्क्रमणम् Abnormal mechanism शिरसः प्रतीपावर्त्तनम् Reversed rotation or Malrotation of the head

सम्भावयति च सुभृशं मूलावदरणम् । कदाचित् निरुद्धगतिः स्वतो न निष्क्रामत्येव, 'सम्मूढ पश्चिमानुशीर्षासनम्' इति विशेषसंज्ञया च व्यपदिश्यते ।

यन्त्राद्युपयोगार्हत्वाच्च तत्र सङ्क्रमणमयम् ।

इमे चात्र शिरसोऽपूर्णसङ्कोचकरा भावा भवन्ति—

(क) पश्चिमानुशीर्षासने समुन्नतं गर्भपृष्ठं मातुः समुन्नतस्य कटिवंशस्य पुरस्तात् तिष्ठति । उभयोरुन्नततया प्रतिकूलावस्थानो गर्भः स्वपृष्ठमनुकृत्यैव तत्रात्मानं सङ्क्रमयति । तेन न शिरसः पूर्णसङ्कोचः ।

(ख) पार्श्वकपालिको नाम दीर्घतमोऽनुप्रस्थगर्भशिरोव्यासो यः पूर्वानुशीर्षासने त्रिकजघनसन्धानतो भगसन्धानिका यावदनुगते व्यासेऽवतिष्ठते स एव पश्चिमानुशीर्षासने त्रिकोष्ठमध्यतः श्रोणिकूर्चिकोत्सेधं यावत् गते पूर्वस्मान्न्यूनतरे व्यासे सन्तिष्ठते । येनावतरणकाले शिरसः पश्चिमो भागः पूर्वभागापेक्षया विशालतरत्वेन सङ्कीर्णे पथि श्रोणिशिरसोः कायमानवैषम्यं चेद् विशेषतः, प्रतिरुध्यते विलम्बेन चावाक् प्रतिपद्यते । पूर्वभागस्तु पुरस्थितो मन्दं प्रतिरुध्यमानस्तदपेक्षया द्रुतमवस्तात् प्रपद्य निम्नतरो भवति । एवं शिरसः पूर्णप्रसरणेन सङ्कोचस्यापूर्णतैव । वस्तिकण्टेऽनवगृहीते तु शिरसि पूर्णप्रसरणसम्भावनया मुखोदयोऽपि स्यात् ।

(ग) ह्रस्वं शिरो महती वा श्रोणिः । येन मन्दप्रतिरोधादपि न गर्भशिरः पूर्णसङ्कोचं गच्छति ।

(घ) बहुप्रजातासु दुर्बला श्रोणितलभूमिर्निश्चेष्टप्राया भवति । तेनापि न पूर्णसङ्कोचः । एवम् आवीदौर्बल्यादपि न सङ्कोचस्य पूर्णता स्यात् ।

(ङ) शिरसोऽत्यावर्त्तनम्— यदा कदा पूर्वानुशीर्षासनयोः शिरसोऽ

सम्मूढं पश्चिमानुशीर्षासनम् Persistent occipitoposterior position
शिरसोऽत्यावर्त्तनम् Hyper-rotation of the head

स्यन्तरावर्त्तनं जायते, येन श्रोण्या अधिष्ठिततिर्यग्व्याससयाग्रिमात् प्रान्तात् प्रचलितमनुशीर्षम् अनुदीर्घव्यासमुल्लङ्घ्य अपरतिर्यग्व्यासानुकारिण्यां दिशि भगशृङ्गस्याधः प्रतिष्ठितं भवति न तु सन्धानिकाया अधः । ततश्च प्रसरणादिक्रियया पूर्ववन्निर्गमः । न चानेन प्रसवकर्म व्याहन्यत इति विकारोऽयं चिन्त्य एव ।

(३) अंसापवर्त्तनम्—तत्र सामान्यतः पूर्वः स्कन्धो निम्नतरत्वादग्रतो विवर्त्तत इत्युक्तम् । कदाचित्तु विरुद्धं स्थितः पश्चिमः स्कन्धो निम्नतरः सन् दीर्घान्तरावर्त्तनेन पुरतो विवर्त्तते । तेन च गर्भशिरसो बहिरावर्त्तनमपि पूर्वतो विरुद्धमेव । यथा प्रथमासने यदनुशीर्षं मुख्यबहिरावर्त्तनेन चक्राष्टैकभागं वामपश्चिमतो विवृत्य मातुर्वामाभिमुखं भवति तदेवात्र चक्राष्टत्रिभागं दक्षिणपूर्वतो विवृत्य मातुर्दक्षिणाभिमुखं सम्पद्यते । एषोऽपि प्रसवकर्मणोऽनुपघातकरत्वाच्चिन्त्य एव ।

अथ शिरसः प्रतीपावर्त्तने प्रसवोपक्रमः ।

(१) तत्रेदमवधेयम्—यावज्जरायुर्न भिद्यते तावन्मातुर्गर्भस्य चाकुतो भयत्वम् । पूर्णश्चेत्कालो लभ्येत, अनुशीर्षमपि बहुशः पुरोविवर्त्तते स्वयमेव । तथा चावीभिः शिरश्चेदग्रेसरति न च वास्याः किञ्चिद् विषमं भासते तर्हि नानुष्ठेयं किञ्चित्, केवलं प्रतीक्ष्यम् । अकालानुष्ठानेन सुसाध्यमपि कृच्छ्रसाध्यतां भजेत ।

किञ्च तदात्मीयेभ्यः सम्भाव्यप्रसवोपद्रवाः सूचनीया, हर्षणीया च गर्भिणी सान्त्वनीयाभिर्वाग्भिः, रक्षणीयं च तद्बलं लघुपथ्ययोगेन ।

(२) प्रसवात् प्राक् प्रसवादौ वा पश्चिमासनं निदृत्तं चेद् बहिर्विधानेन तत् पूर्वासने परिवर्त्तनीयम् । दृष्टञ्च बहुधा प्रयत्नस्य साफल्यमपि । तथा चास्यास्तृतीयासने दक्षिणतश्चतुर्थासने च वामतो दण्डाकारमरत्नि-

---

अंसापवर्त्तनम् Reversed rotation of the shoulders

स्थूलं वस्त्रखण्डमेकं पूर्वोर्ध्वकूटस्य पुरस्तादेव गर्भपूर्वस्कन्धस्य पुरःकर्षणाय, दीर्घायतमन्यद्वस्त्रखण्डञ्च यथासनं वामे दक्षिणे वा वङ्क्षणोत्तरदेशे गर्भ-हस्तपादानां पश्चिमतोऽपसारणाय स्थापनीयम्, स्थिरीकरणीयञ्च महता वाससा गर्भिण्या उदरं सवेष्ट्य। एतेन दक्षिणपश्चिमासनं दक्षिण पूर्वासने वामपश्चिमासनं च वामपूर्वासने परिवर्त्तते प्रायेण।

किञ्चात्र मातुस्तथा पार्श्वशयनमपि यथा गर्भपृष्ठमुच्चैर्वर्तेत शिरसः पूर्णावनमनाय कल्पते। तस्मात्तृतीयासने वामपार्श्वशयनं चतुर्थासने च दक्षिणपार्श्वशयनं हितायैव।

(३) सति वैफल्ये तु प्रसवमध्ये योनौ हस्तं प्रवेश्य, आवीकालेऽङ्गुलि साहाय्येन ललाटमुत्क्षिप्यापि शिरःसङ्कोचाय यतनीयम्। सङ्कुचिते शिरस्यनुशीर्षं स्वभावत एव पुरोविवर्त्तते।

(४) अथैवं कृते प्रतीक्षितेऽपि च शिरश्चेन्नाग्रे सरति, न चापि पुरो-विवर्त्तते, मिथ्याविवृत्तो वा त्रिकमाश्रयते, गर्भिणी वा क्षीणबला क्लाम्यति, गर्भो वा हृद्गतिज्ञानेन विपन्न इव लक्ष्यते तदा हस्तेन सन्दंशेन वा गर्भशिरः पुरोविवर्त्त्य निष्कासयेत्। त्रिकसंश्रितेऽनुशीर्षे तथावस्थ-स्यैव निर्हरणं तु न मनस्तोषाय।

हस्तविवर्त्तनम्—तत्र तावद् गर्भिणीं सम्मूर्च्छ्य तृतीयासने वाम पार्श्वशयानाया योनौ दक्षिणहस्तं (चतुर्थासने दक्षिणपार्श्वशयानाया योनौ वामहस्तं) श्रोणिशिरसोरन्तराले प्रवेश्य शिरसि धृत्वा आवीना विरतिकाले पुरतो वामतश्च (चतुर्थासने पुरतो दक्षिणतश्च) चालयेद् गर्भशिरसः पुरोविवर्त्तनाय, सहैव च गर्भिण्या उदरे बहिःस्थितमन्यम् हस्तमपि गर्भस्य पूर्वांसदेशे धृत्वा तद्दिशि एव चालयेद् गर्भशरीरविवर्त्त-नाय, अन्यथा विवृत्तमपि शिरः पुनः प्रतिविवृत्तं तदवस्थमेव स्यात्। सम्यग्विवृत्ते च शिरसि महता वाससा प्रजायिन्या उदरं दृढं परिवेष्ट्य स्वतः प्रसवाय त्यजेत् सन्दंशेन वापहरेद् यथोचितम्।

हस्तविवर्त्तनम् Manual rotation

सन्दंशविवर्त्तनम्—सन्दशोपचारस्तु हस्तविवर्त्तनविधेर्वैफल्य एव कार्यः । सिद्धहस्तस्यापि तत्प्रयोगे योनिविदरणगर्भशिरोऽभिघातादिसम्भवात्। तत्र सम्यग् विवृते गर्भाशयमुखे सन्दशफलके विधिना प्रवेश्य शिरो गृहीत्वा मन्दं मन्द श्रोणिकण्ठ प्रति पीडयेत्। चिरात् क्लिश्यमानाया तु अधरगर्भाशयग्रीवाया विदारभयान्नैवमुत्क्षिपेत्। तत शनै शनै. सावधानतया च यन्त्र दक्षिणतो वामतो वा यथासन्न विवर्त्तयेद् येनानुशीर्षं पुरस्तात् प्रपद्येत। सहायकश्च पूर्ववद् अंशविवर्त्तनाय बाह्यतः प्रयतेत। तदनु गर्भशिर शनैरध श्रोणौ कर्षेत्, सहायकश्च समाकृष्ट तत् सन्धानिकाया उपरि हस्तेन सन्धार्य स्थिरीकुर्यात्। भिषक् तु शिरोविवर्त्तनेनापवृत्ते सन्दंशफलके अपहृत्य पुनश्च यथाविधि त्वरित योजयित्वा गर्भं निर्हरेत्। विवर्त्तन कर्मणि च यन्त्रस्य हस्तदण्डे यथासम्भव महत्तमवृत्तस्य वृत्तखण्डमनुसृत्य चालनीये, येन फलकाग्रे लघुतमवृत्तस्य वृत्तखण्डे विवर्तेत। एव गर्भाशयग्रीवाया योन्या वा विदरणभय स्वल्प भवति। किञ्च सन्दशप्रयोगाद्धौ सम्भवति चेच्छिरोनमनमपि कार्यमेव। कदाचित्तु शिर सन्दंशेन धृत्वा यथैवाकृष्यते तथैव श्रोणितलभूम्या स्पृष्ट स्वयमेव विवर्त्तमानमपि दृष्टम्।

पश्चिमत्तोऽपवृत्ते तु शिरसि तदवस्थ यैव बलादाकर्षणे महती मूलावदरणभीति.। तथापि सम्यग् अवाक् प्रतिपन्न शिर आवीकाले प्रत्यक्षं भवति चेन्नैव विवर्त्तनीयम्, एकत उभयतो वा मूलपीठकर्त्तन विधाय महता यत्नेन तथाभूतमेवोद्धरेत्। मृते तु गर्भे सन्दशविवर्त्तनापेक्षया शिरोवेधनमेव कार्यम्, अल्पतरोपघातकरत्वान्मातु.।

अस्मद्देशे तु पश्चिमासने प्रायोभाविनं प्रसवविलम्बमभिसमीक्ष्य गर्भस्यावतरणे शिरसोऽवनमने विवर्त्तने च सौकर्याय प्रसाविकाभि

सन्दशविवर्त्तनम् Rotation by forceps

'उत्कटुकासनमास्थिता प्रसूस्व' इत्युपदिश्यते। दृष्टञ्च बहुधा तत्साफल्यमपि।

शीर्षोदये शिरोरूपणम्—प्राकृतनिष्क्रमणयानुशीर्षाधरललाटिक आनुशीर्षाधरब्रह्मरन्ध्रिकश्च व्यासौ सर्वाधिकं पीड्यमानौ क्षीयेते वर्धेते चानुशीर्षाचबुकिक आनुशीर्षोत्तरचिबुकिकश्च व्यासौ तन्निष्कृतिकरौ। तत्राधोहनु आकाररूपणस्यासम्भवाच्छिर एव ऊर्ध्वं पश्चिमतश्च वर्धितं दीर्घायते। वैकृतनिष्क्रमणेनापवृत्ते तु शिरस्यानुशीर्षनासामूलिको व्यास क्षीयते, आनुशीर्षाधरब्रह्मरन्ध्रिकश्च वर्धते। शिरश्च केवलमूर्ध्वं दीर्घीभूय वर्धते।

पञ्चमोऽध्यायः

शिरोवतरणे वैकृतोदयाः ।

अथातो मुखोदयविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

तत्र शिरोऽवतरणं श्रोण्यवतरणं पार्श्वावतरणञ्चेत्यङ्गविशेषकृतमवतरणत्रयं भवति । अवतरणकाले चैषामङ्गाना सङ्कोचप्रसाराद्यवस्थाभेदेन तानि तानि प्रत्यङ्गोपाङ्गान्यग्रत प्रतिपद्यमानानि उदयाख्यान् तांस्तान् अवान्तरभेदान् जनयन्तीति प्राग् (१५४ पृ०)

[७५ चित्रम्]



मुखोदयः ।

उक्तम् । तथा च यदा शिरसः पूर्णप्रसरेणावाङ्मुखो गर्भः श्रोणया विशति तदा मुखोदय । एवम्भूतस्य च पृष्ठं खातोदरं भवति वक्षश्च

वैकृतोदया Abnormal presentations मुखोदयः Face presetation

प्रोन्नतम् अनुशीर्षं ग्रीवापृष्ठमनुस्पृशति चिबुकञ्च वक्षसा वियुज्य पुरस्तादुन्नीयते। माधवेनापि मूढगर्भगतिसङ्ख्यान उक्तम्—'तिर्यग्गतो भवति कश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः' इति। त्रिविधा हि मूढगर्भा भवन्ति, असम्यगागता अनिरस्यमाना सम्मोहिताश्च। यथोक्तं सुश्रुतेन—"तमेव कदाचिद् विवृद्धमसम्यगागतमपत्यपथमनुप्राप्तमनिरस्यमान विगुणापानसम्मोहित गर्भं मूढगर्भ इत्याचक्षते" इति। (नि० ८) तत्र मुखोदयोऽसम्यगागतो मूढगर्भ एव।

हेतुविज्ञानम्—तत्र ये ये भावा शिरस प्रसरणे सहाया सङ्कोचे वा परिपन्थिभूता भवन्ति ते सर्वे मुखोदयस्य हेतव। तद्यथा—

(१) गलगण्डादयो गलार्बुदाः, मातुः श्रोणिकण्ठवर्त्तिन क्षुद्रार्बुदा, उरस्तोय, ग्रीवापृष्ठपेशीनां स्तम्भ, चिबुकस्याधस्ताद् हस्तयोर्द्विगुणीभूयावस्थानम्, ग्रीवां बहुश परिवेष्ट्य स्थित नाभिनालञ्च। हेतव इमे स्वल्प लभ्यन्त, प्रसवारम्भत प्रागेव च मुखोदयं जनयन्ति।

(२) सङ्कुचिता श्रोणि, पुरत पार्श्वतो वा वक्रीभूतो गर्भाशय, उद्गतानुशीर्षं (सहज, न तु शिरोरूपणकृतम्) महाप्रमाण वा गर्भशिरश्च। प्रचुर लभ्यमाना प्रधानाश्च हेतव इमे प्रसवकाले यदानुशीर्षस्यावतरणक्रियां प्रतिरुन्धन्ति न ललाटस्य तदा शिरस प्रसरणान्मुखोदयो जायते।

मूढगर्भ Abnormal labour असम्यगागता Malpresentated अनिरस्यमाना Obstructed सम्मोहिता Asphyxiated

उरस्तोय Hydrothorax स्तम्भ Spastic Condition संकुचिता श्रोणिः Contracted pelvis पु० पा० वक्रीभूतो गर्भाशय Anterior or posterior obliquity of the uterus, उद्गतानुशीर्षं शिर Dolicho-cephalic head

(३) गर्भोदकवृद्धिः, अपुष्टगर्भः, मृतगर्भः, यमलगर्भः, महागर्भः. अद्भुतगर्भः, पुरःस्थाऽपरा, बहुप्रजातात्वञ्चेति । त इमे गर्भस्य गर्भाशयस्य वा प्राकृताकृतिदूषणेन हेतवो भवन्ति । अत एवामी मिथ्यावतरणोदयानां सामान्या हेतवो न तु केवलं मुखोदयस्यैव ।

गर्भासनानि—अत्रापि पूर्ववच्चत्वारि गर्भासनानि, मातुरुदरे गर्भपृष्ठस्य वामपूर्वादिखण्डचतुष्टयान्यतरस्मिन्नवस्थानात् ।

नामनिर्देशस्तु चिबुकमधिकृत्य क्रियते । तान्यनुशीर्षासनान्येव शिर प्रसरणेन तेषु चिबुकासनेषु परिणमन्ति, प्रथमं प्रथमे द्वितीयञ्च द्वितीये, इत्येवम् । केवल नामसु वामदक्षिणपदयो· पूर्वपश्चिमपदयोश्च विपर्य्यासो भवति । तद्यथा—

(१) दक्षिणपश्चिमचिबुकासनम्—तदेतद् वामपूर्वानुशीर्षासनस्य शिर.प्रसारकृतो विशेष । अत्र लालाटचिबुकिकः शिरोव्यासः श्रोणि-कण्ठस्य दक्षिणतिर्य्यग्व्यास, चिबुक दक्षिणत्रिकजघनसन्धानं, ललाट-भागश्च वामश्रोणिगवाक्षमधितिष्ठति ।

(२) वामपश्चिमचिबुकासनम्—दक्षिणपूर्वानुशीर्षासनस्यैव परिणामविशेषः । अत्र तु लालाटचिबुकिको व्यासो वामतिर्यग्व्यास, चिबुकं वामत्रिकजघनसन्धि, ललाटञ्च दक्षिणश्रोणिगवाक्षमधिशेते ।

(३) वामपूर्व चिबुकासनम्—तदेतत् प्रसृतशिरसो दक्षिणपश्चिमानुशीर्षासनादभिन्नमेव । इह लालाटचिबुकिको व्यासो दक्षिणतिर्यग्व्यासे, चिबुक वामश्रोणिगवाक्षे ललाटभागश्च दक्षिणत्रिकजघनसन्धौ सन्तिष्ठते ।

गर्भोदकवृद्धि. Hydramnios अद्भुतगर्भ. Monstor पुरास्थाऽपरा Placenta praevia दक्षिणपश्चिमचिबुकासनम् Right mento-posterior (R M P)

(२) Left mentoposterior (L M P). (३) Left mento-anterior (L M A)

(४) दक्षिणपूर्व चिवुकासनम् — वामपश्चिमानुशीर्षासनस्य विकार। अस्मिन् लालाटचिवुकिको न्यासो वामतिर्यग्न्यास, चिवुकं दक्षिणश्रोणिगवाक्ष, ललाटञ्च वामत्रिकजघनसन्धानमाश्रयते।

तत्रैषा तृतीयचतुर्थयोरेव बहुलता, गर्भपृष्ठस्य मातृपृष्ठाभिमुखत्वे शिरःप्रसरणस्य स्वाभाविकत्वात्। केचित्तु प्रथमतृतीययोर्बाहुल्यम् वदन्ति।

निर्णय —तत्र उदरस्पर्शनेन गर्भाशयस्योर्ध्वभागे गर्भनितम्ब प्रतीयते स्वलक्षणलक्षित, मध्यभागे तु गर्भपृष्ठं यथासन वामतो दक्षिणतो वा पूर्वत पश्चिमतश्च वा वर्त्तते, तद्विपरीततश्च पाणिपादम्। तत्र पश्चिमतो वर्त्तमाने गर्भपृष्ठे हस्तपादं शीर्षोदयापेक्षयाऽति-स्पष्टमनुभूयते शिरोवशप्रसरणेनोन्नमितगर्भोदरवक्ष शाखाना गर्भाशय-पूर्वभित्त्या सह परमसन्निकर्षात्। पूर्वत स्थिते तु पृष्ठे शाखानां गभीरतरमवस्थानात् कष्टतरैव प्रतीति। गर्भाशयाधरभागे च गर्भ-शिरोऽनुभूयते नातिक्रान्तश्रोणिकण्ठम्। आरब्धेऽपि प्रसवे न गर्भशिर श्रोणिकण्ठकरेखया कालेऽवगृह्यते, अस्थिरमेव तिष्ठति। तत्रानुशीर्ष गर्भपृष्ठदिशि वृत्तोन्नतार्बुद इव सुखमवबुध्यते, चिवुक च शाखादिशि खुरसदृश कष्टेन। अनुशीर्षं चिवुकापेक्षया उच्चैस्तरा च तिष्ठति। शिर पश्चान्नत्या ग्रैवपरिखाऽपि गभीरायते, गर्भपृष्ठञ्च केवलमूर्ध्वमेव सुखेन स्पष्ट प्रतीयते न त्वव।

योनिपरीक्षणम्—उदीयमानभाग आदौ न सुखेन प्राप्यते ऊर्ध्व-मवस्थानात्, अस्थिरश्च तिष्ठति। गोस्तनाकारञ्च वारिपुटकम्। परीक्षणकाले यथा जरायुर्न भिद्येत तथा यतनीयम्। ततोऽवाक् प्रति-पन्ने नेत्रकोटरतीरणिके गण्डास्थिनी नासिका मुख हनुश्चेति लक्षण-विशेषाणामभिज्ञानात् सुकर मुखोदयस्य परिज्ञानम्। अधिशिरोनिर्मा-णेन शूने मुखे तु नितम्बोदयात् सम्यग् व्यावृत्तिदुःशकैव लक्षणविशे

(४) Right mento-anterior (R M, A)

षाणां सम्यग्ज्ञानाऽसम्भवाद्, मुखस्य गुदत्वेन गण्डकूटयोः कुकुन्दर-पिण्डत्वेन नासिकाया उपस्थत्वेन ग्रहणसम्भवाच्च । तत्र मुखं गु वेति निश्चयस्तु भिषजा विवरे कराङ्गुल्यग्रं शनैः प्रवेश्य तद्विशेष-विज्ञानेन कर्त्तुं शक्यः । मुखे प्रतीयेते दन्तमांसपङ्क्ती जिह्वा च, न चोष्ठाभ्यामङ्गुलिरवगृह्यते मन्दं मन्दमाचूषणप्रयत्नश्चापि स्यात् । गुदे तु न तादृशपङ्क्ती, नापि जिह्वा, गुदपेशीसंवरणेनाङ्गुलिर्गृह्यते, मलेनावलिप्यते च । न च मुखे गुदे वा रभसाङ्गुलिः प्रवेश्या, तथा-प्रवेशिता हि श्वासप्रश्वासक्रियां सञ्जनय्य कण्ठगतश्लेष्मणोऽन्तः-कर्षणेन श्वासकर्म रुध्वा गर्भमुपहन्ति । किं वा सन्देहस्थले किञ्चिद् ऊर्ध्वमङ्गुलीर्नीत्वा बहिःकर्णज्ञानेन मुखोदयस्य वङ्क्षणपरिखा-जघनधाराविज्ञानेन च नितम्बोदयस्य सुकरो विनिर्णयः । नेत्रकोटर-तीरणिकयोर्मुखस्य च श्रोण्याः खण्डविशेषैः सह सम्बन्धविशेषदर्शनाद् गर्भासनानामभिज्ञानमपि सुखेन कर्त्तुं पार्य्यते । तद्यथा—प्रथमासने तीरणिके वामपूर्वखण्डे मुखं च दक्षिणपश्चिमखण्डे तिष्ठतीत्येवम् । परीक्षणकाले च यथास्य नेत्रोपघातो न स्यात् तथा व्यवहर्त्तव्यम् ।

हृच्छब्दाश्च प्रसवादौ नाभेरधस्ताद् यथापार्श्वं यथास्थानञ्च गर्भव-क्षस उपरि स्पष्टमनुश्रूयन्ते । पश्चिमचिबुकासनयोर्हृच्छब्दश्रवणं किञ्चिद् बाधितमपि पूर्वचिबुकासनयोरतीव स्पष्टं भवति ।

निष्क्रमणविधिः—अत्रापि प्रसूयमानस्य गर्भस्य ता एव मार्गानुकूलाः पञ्च गतयो भवन्ति । सङ्कोचप्रसारयोः क्रमविपर्यास-मात्रस्तु विशेषः । तद्यथा—

अवतरणम्—गर्भाशयाकुञ्चनबलेनाधः प्रणुद्यमानं गर्भशिरः स्वानु-दैर्घ्यव्यासं तिर्यग्व्यासे (अनुप्रस्थव्यासे वा) कृत्वा श्रोणिकण्ठेऽवतरति । यथैव च शिरोऽवतरति तथैव प्रसरत्यपि ।

प्रसारः—प्रथमत एव प्रसृतप्रायं शिरः सम्प्रति पूर्णतया प्रसृत्य अवाङ्मुखतां गर्भस्य करोति । अर्धप्रसृते शिरसि यदा शिरसः

पश्चिमभागोऽग्रिमभागापेक्षयाऽधिक एव प्रवृद्धो भवति तदा गर्भाक्षरेखानुग पीडनवल न शिरःसङ्कोचाय स्यात् किन्तर्हि तमुपस्थितप्रसारमेव वर्धयेत्। किञ्च मध्यशीर्षानुशीर्षापेक्षया स्वल्प प्रतिरुध्यमान चिबुक-मपि द्रुतमवतरच्छिरः प्रसारयति। एवम्भूतस्य च हनुर्निम्नतरा भवति, ग्रैवाग्रब्रह्मरन्ध्रिको नाम लघुतमो व्यासश्च श्रोण्यास्तिर्यग्व्यासे समापतति। व्यासश्चायम् आनुशीर्षाधरब्रह्मरन्ध्रिकेण तुल्यप्रायमानोऽपि न तद्व-च्छिरोरूपणकाले ह्रस्वायते।

[७६ चित्रम्]

मुखोदय ।



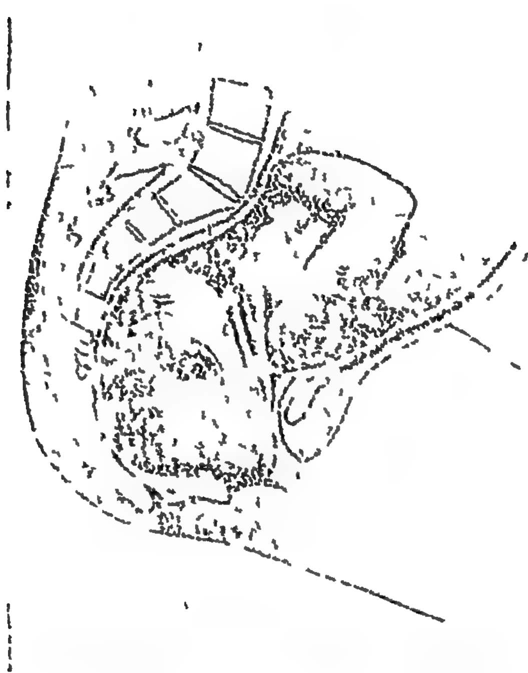
प्रसार पूर्णता गत, अन्तरावर्त्तन च प्रारभ्यते।

अन्तरावर्त्तनम्—यो ह्यस्य निम्नतरो भवति स एव श्रोणितलभूमि-प्रचेष्टनेन पुरतो विवर्तत इति सामान्यनियमान्निम्नतरा हनुर्ह्रस्वा दीर्घं वा यथासनमावर्त्तमाना पुरतो विघृत्य सन्धानिकाया अधो

विश्राम्यति। अन्तरावर्त्तनं चैतद् मध्यशीर्षोदयापेक्षया अग्रे गत्वा चिरेण च सम्पद्यते येनावर्त्तनारम्भत पूर्णमेव शून गर्भमुखं योनिद्वार-मापद्यते।

[७७ चित्रम्]

मुखोदयः।



अन्तरावर्त्तनं समाप्तम्, सङ्कोचः प्रारभ्यते।

सङ्कोच —ततः स्थिरीभूतं चिबुकं मध्यकीलमिवाश्रित्य चक्रगतिना सङ्कोचं गच्छद् गर्भशिरो बहिर्निर्याति। पूर्वं मुखं, ततो ललाटब्रह्मरन्ध्र-मध्यशीर्षाणि, अन्ते चानुशीर्षम् (७८ चित्रम्)।

बहिरावर्त्तनम्—गौणं मुख्यं च बहिरावर्त्तनमत्रापि मध्यशीर्षोदय इवैव भवतः। बहिर्गतं च चिबुकं पूर्वाधिष्ठितदिगनुक्रमेण पश्चिमतो विवर्त्तते। शेषं शरीरजन्म पूर्वतुल्यमेव।

अत ऊर्ध्वं प्रत्यासनं निष्क्रमणक्रमो वक्ष्यते शिष्यबुद्धिवैशद्याय—

प्रथमासनम्—अत्र गर्भशिरो ग्रैवाब्रह्मरन्ध्रिकानुशीर्षोत्तर-चिबुकिकयोर्मध्यगेन स्वव्यासेन श्रोण्या दक्षिणतिर्यग्व्यासमधिष्ठाय तदन्त प्रविशति । तत प्रसारः, तत्र च ग्रैवाब्रह्मरन्ध्रिको व्यासस्तिर्यग्व्यासमा-

[७८ चित्रम्]

मुखोदय ।



सकोच. समाप्तप्रायः, शिरश्च प्रसूयते ।

श्रयते । ततोऽन्तरावर्तनम्, येन चिबुक दक्षिणतिर्यग्व्यासस्य पश्चिमप्रान्ताद् वृत्तस्याष्टत्रिभाग पुरतो दीर्घ प्रचलय भगतोरणिकाया अध स विशति सहैव च वामतिर्यग्व्यासे वर्त्तमानौ स्कन्धावपि विचलितौ प्रागनुदैर्घ्यव्यासे ततश्च दक्षिणतिर्यग्व्यासे विवृत्य स्थितिं लभेते । तत सङ्कोचगतिना शिरोजन्म । तदनु प्रत्यावर्त्तनम्, तेन चिबुक चक्रस्याष्टैकभागं मातुर्दक्षिणतो विवर्त्तते । तत पूर्वांसो दक्षिणतिर्यग्व्यासस्य पूर्वप्रान्त

पुरतोऽन्तर्विवर्त्तते, चिबुकं च पुनश्चक्राष्टमभागं दक्षिणतो बहि.। अनन्तरं च स्कन्धादीनां निर्गमाद् गर्भजन्म।

द्वितीयासनम्—सर्वं प्रथमासनमिवैव। केवल वामदक्षिण-पदयोर्विपर्य्यास विधाय पठनीयम्।

तृतीयासनम्—इह खलु गर्भशिरो ग्रैवाब्रह्मरन्ध्रिकानुशीर्षोत्तर-चिबुकिकयोर्मध्यगेन व्यासेन श्रोण्या दक्षिणतिर्यग्व्यासमधिश्रित्य तस्या मवतरति। तत. प्रसारेण ग्रैवाब्रह्मरन्ध्रिको व्यासस्तिर्यग्व्यासे सुस्थित भवति। अन्तरावर्त्तनेन च चिबुकं दक्षिणतिर्यग्व्यासस्याग्रिमप्रान्ताद् वृत्तस्याष्टैकभागं पुरतो विवृत्य भगसन्धानिकाया अधः प्रपद्यते। ततः सङ्कोचेन शिरोजन्म। प्रत्यावर्त्तनेन च पूर्वस्थितिं गच्छच्चिबुक चक्राष्टैकभागं मातुर्वामतो विवर्त्तते। तदनु स्कन्धान्तरावर्त्तनेन पूर्वांसो वामतिर्यग्व्यासस्याग्रिमकोटिं विहाय सन्धानिकाया अध समागच्छति, चिबुक च बहिरावर्त्तमानं पुनश्चक्राष्टैकभागं विवर्त्तते मातुर्वामोरुं प्रति।

चतुर्थासनम्—सर्वं तृतीयासनेन तुल्यम्। वामदक्षिणपदयोर्विपर्य्यासस्तु कार्य एव।

मुखोदये वैकृतनिष्क्रमणम्।

शिरस प्रतीपावर्त्तनम्—यदा कदा पश्चिमचिबुकासनयो. शीर्षोदयेऽनुशीर्षमिव चिबुकमपि पश्चिमतस्त्रिकोदरेऽपवर्त्तते। शिरसो हीन-प्रसरणेन नीचै स्थित ललाट पुरतो विवर्त्तते हनुश्च पश्चिमतः। तथाभूतः स्वतो निष्क्रान्तुं तु न कथमपि प्रभवेत्। यतोऽपत्यपथ-स्याकृति पूर्वतः क्रोरोदरा वक्रनलिकेव भवति। गर्भशिरश्च प्रसरणेन (यथा शीर्षोदयस्य प्राकृते निष्क्रमणे) सङ्कोचेन वा (यथा मुखोदयस्य प्राकृते शीर्षोदयस्य च वैकृते निष्क्रमणे) तदनुकूलं भूत्वैव निर्गच्छति। अत्र चेदनुकूलनत्वं स्याच्छिरसः प्रसारेणैव स्यात्। न च तच्छक्यम्,

शिरसः प्रथमत एव प्रसूतत्वात् अनुशीर्षस्य (पुरःकपालस्य वा) सन्धानिकापृष्ठे दुर्निविष्टत्वाच्च। एवं शिरःसङ्गेन मूढभूतश्च गर्भः "सम्मूढं पश्चिमचिबुकासनम्" इति विशेषनाम्ना निर्दिश्यते। कदाचित्तु यदाऽतिशयेन क्षुद्रं शिरो महती वा श्रोणिमूर्तोऽपुष्टो वा गर्भस्तदा यथा-

[७६ चित्रम्]

मुखोदये सम्मूढता।



शिरसः प्रतीपावर्त्तनेन शिरःसङ्गो जातः।

कथञ्चिद् हनुरवम्नस्य अनुत्रिकास्थ्नोऽधः प्रपद्यते, तत्र च तां मध्य-

सम्मूढं पश्चिमचिबुकासनम् Persistent Mento-posterior Case

कीलमिवाश्रित्य शिर ईषत्सङ्कोचं गच्छति, ललाटमध्यशीर्षाणि क्रमशो बहिर्भवन्ति, शेष च शिर. शीर्षोदय इव निर्याति।

शिरोरूपणम्—सुखोदये हि श्रोणिकृतनिपीडनात् करोटिपटलमवपीड्यते ललाटानुशीर्षं च प्रत्युद्गच्छतः। तेन ग्रैवाब्रह्मरन्ध्रिक., आनुशीर्षाधरब्रह्मरन्ध्रिक, आनुशीर्षोत्तरचिबुकिकः पार्श्वकपालिकश्चेत्येते व्यासा:परिक्षीयन्ते परिवर्धेते चानुशीर्णनासामूलिक आनुशीर्णचिबुकिकश्च व्यासौ। अधिशिरश्च मुखस्य कोमलत्वात् प्रसवस्य च विलम्बितत्वात्स्फुटतरमभिनिर्वर्त्तते विरूपयति च सविशेषं गर्भमुखाकृतिम्।

शुभाशुभम्—मातृगर्भयोरुभयस्यापि कृते मुखोदयः कष्टायैव स्याद् उपद्रुतप्रसवत्वात्प्रायेण। कालातीतप्रसवः, मूलावदरणम्, सङ्क्रमणभयम्, गर्भोपघातः, मूढगर्भतेति च पञ्च प्रसवोपद्रवाः। तत्राङ्गुल्याकृतिजरायोरकालविदरणाद् मुखस्य च चिपिटायतत्वेन दुर्विकासित्वान्न ग्रीवासरणि. कालेन विकसति, मुखास्थना रूपणाऽसम्भवाद् दीर्घतरव्यासा योनिमुखं प्रसारयन्ति, प्रसृते शिरसि गर्भाशयशक्तिरपि न यथावदुपयुज्यते, हस्तादीनां प्रवेशो योनिं सङ्क्रामति, प्रसवविलम्बः शिरसोऽतिप्रसरणं मृढभूतस्य यन्त्रादिना हरण च गर्भमुपहन्ति।

उपक्रमः—त्रिविधो हि मुखोदयोपक्रमः, उदयपरिवर्त्तनमविधाय तथाभूतस्यैव चिकित्सितम्, काले परिज्ञातस्य शीर्षोदये परिवर्त्तनम् स्थानापवर्त्तनेन वा नितम्बोदये परिवर्त्तनम्, शस्त्रावचरणं चेति। तत्र—

(१) यदि सङ्कुचिता श्रोणिर्न स्यात्, न च कष्टप्रसूतेः पूर्वेतिवृत्तम्, नापि च परिवर्त्तनानुगुण. कालः, तथाभूतस्यैव च जन्मेष्टं भवेत्तर्हि वक्ष्यमाणविधिना प्रजायिन्युपक्रान्तव्या। मुखोदयस्य कृच्छ्रता तदात्मीयेभ्यः सूचयेत्। आदित एव चङ्क्रमणादिकं परिहृत्य शय्यां दापयेत्। जरायुश्चाकालविदरणात् परिरक्षेत्।

यस्मिन् पार्श्वे हनुः स्यात्तस्मिन्नेव शयीत, तद्धि हनोः पुरोविवर्त्तने साहाय्यमाचरति। मूलपीठं प्रपन्नेऽपि गर्भमुखे हनुश्चेदग्रतो न

विवर्त्तते तदाऽवीकाले ललाटमस्योत्क्षिपेद् येन हनुर्निम्नतरा सती पुरोविवर्त्तेत । अथैवमपि नैव विवर्त्तते चेद् योन्यां हस्तं प्रवेश्य तदङ्गुल्या हनुं गृहीत्वा लघुतममार्गेण ता विवर्त्तेत । सहैव च बाह्यहस्तेन पूर्वांसेोऽपि तद्दिशि विवर्त्तनीय । विवर्त्तनाय सन्दंशप्रयोग तु भिषजो नैव शसन्ति गर्भमुखावयवानामभिघातसम्भवात् । अमतो विवृत्तायां विवर्त्तिताया वा हनौ पुनरपि गर्भाशयदौर्बल्येन प्रसवे विलम्बं चेत् पश्येत् सन्दंशेनाहरणं युक्तमेव ।

(२) काले ज्ञातस्य शीर्षोदये परिणमनमेव यदुचित पश्येत् तदा निम्नोक्तैर्विधिभि शिर सङ्कोचयेत्—

बाह्यविधि—अस्य साफल्यार्थं शिरसोऽनवग्रहः जरायोरविदार, औदर्य्यपेशीनाञ्च शैथिल्य परमावश्यकम् । तत्र पूर्वोक्तौ द्वौ भाग्येन लभ्येते शैथिल्य तु सम्मूर्च्छनेन सर्वदा सुलभम् । ईषन्नवनतशिरसि शयने उत्तान शयानाया स्त्रिया. पार्श्वे तत्पादाभिमुखमुपविश्य एकेन पाणिना गर्भम् पूर्वा सेऽपरेण च नितम्बस्याधः पृष्ठदेशे गृहीत्वाऽऽवीनां विरतिकाले श्रोण्या बहिर्गर्भाशयस्कन्ध प्रति कर्षेत् । एतेन गर्भशिर सङ्कोचप्रसारयोर्मध्यावस्थामापद्यते । तत., पाणिना पूर्वांसधृतेन वक्ष.स्थल पृष्ठाभिमुख पृष्ठधृतेन च नितम्बदेशमुदराभिमुख पीडयेत् । एवं हि शिरोऽस्य सङ्कुच्य शीर्षोदये परिणमते । अन्ते च नितम्बस्थेन हस्तेन गर्भोऽधस्तात्प्रपीडनीयो मध्यशीर्षस्य श्रोणौ प्रवेशाय । यावच्च शिरस्तत्र न स्थिरीभवति तावद्धस्तेन दृढोदरबन्धेन वा तत्स्थिरीकरणमावश्यकम् । अन्यथा पुनरपि मुखोदय प्रसज्येत । गर्भाशयमुख सुविकसित चेदभिन्नमपि जरायुं स्वय दारयेत् , येन शीघ्रमेव गर्भशिर स्थिरीभवेत् ।

अन्यच्च, यदा स्त्रीश्रोणि प्राकृता स्वल्प वा सङ्कुचिता स्यात् , गर्भशिरश्च मध्यममानं, कालश्चापि योग्यस्तदा व्यवहर्तव्योऽयं विधि ।

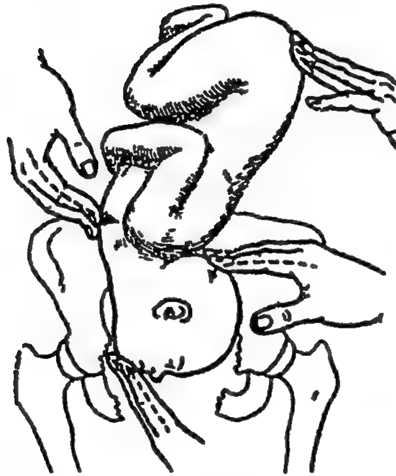
बाह्यविधि—External manipulation (Schatz methods)

संयुक्तविधि'—सोऽयं विधिर्यदा बाह्यविधिनं सिध्यति, गर्भाशयमुखं विकसित भवति, शिरश्च श्रोण्यां नातिगभीरं प्रविष्ट, मातृगर्भयोर्व्यापत्तिभयात्सद्य.क्रिया चापेक्षते तदा, स्त्रिय सम्मूर्च्छयैव च समाश्रयणीयः । तत्र—

(क) द्व्यङ्गुलं विकसिते गर्भाशयमुखे उत्तान शयानाया यस्मिन् पार्श्वे हनुः स्यात् तत्पार्श्ववर्त्तिन करं योनौ प्रणिधाय गर्भाशये चाङ्गुली प्रवेश्य ताभ्यामस्य पुराधरहनु तत उत्तरहनुं तदनु च ललाटमूर्ध्वं पीडयेत्,

[८० चित्रम्]

मुखोदयोपक्रम. ।



संयुक्तविधिना मुखोदय. शीर्षोदये परिवर्त्त्यते ।

सहैव च बाह्यत उदरस्थेन पाणिनाऽनुशीर्षं पीडयेदधस्तात् । परिचारकश्च बाह्यविधिरिव गर्भस्य वक्षोदेश पृष्ठं प्रति, नितम्बदेशञ्च तद्विपरीतत उदर प्रति बाह्यतः पीडयन् साहाय्यमाचरेत् ।

संयुक्तविधिः Combined manipulation

(क) The Baudelocque—Schatz method

यदा तु गर्भाशयमुखं सुविकसितं स्यात् तदा समस्तमेव करं गर्भाशये प्रवेश्य मुखं गृहीत्वा प्राक् श्रोणिकण्ठाद्बहिराकर्षेत् तदनु च विविनोक्तेन शिरो नमयेत् । तदिदं मुखेनैवाग्रगृहीते शिरसि विशेषतोऽवश्यकं भवति ।

(ख) किं वा सुविकसिते गर्भाशयमुखे स्त्रियं सम्यक्स्थं उत्तानं शयानायाः यस्मिन् पार्श्वेऽनुशीर्षं स्यात् तस्यापरस्यैव हस्तमेव समग्रं करं गर्भाशयेऽनुशीर्षस्योपरि प्रवेश्य शिरो गृहीत्वाऽनुशीर्षं निम्नतोऽपकर्षेत् सहैव च बहिःस्थितेन पाणिनोदरस्थजलमस्योर्ध्वं पृष्ठं प्रति पीडयेत् ।

यथा च शिरसोऽपूर्णावनत्या ललाटोदये परिणतिने स्यादिदं यतनीयम् । ललाटोदयो हि मुखोदयादपि कृच्छ्रसाध्यो भवति । अनयैव नीत्या मुखोदयस्य शीर्षोदये परिणतिं नातिप्रशंसन्ति भिषजः ।

अथैवमपि न चेच्छिरः संकुचति सङ्कुचितमपि वा पुनः प्रसरति शिरश्च श्रोणिकण्ठेऽनवगृहीतम्, असङ्कुचिता मन्दं वा सङ्कुचिता श्रोणिः स्वतो निष्क्रमणञ्चासम्भवं तदा स्थानापवर्त्तनेन नितम्बोदय विधानमपि प्रशस्यते ।

(३) सम्पूर्णे पश्चिमचिबुकोदये तु शल्यकर्मैव परमोपायः । तत्र जीवति गर्भे सङ्कुचितश्रोणिकाया भगास्थिच्छेदनमुदरविपाटनं वा विधीयते प्रायेण, मृते मृतप्राये वा तु शिरोवेधनम् ।

—

(ख) The Playfair—partridge Method

स्थानापवर्त्तनम् Podalic Version भगास्थिच्छेदनम् Pub otomy

उदरविपाटनम् Caesarean Section शिरोवेधनम् Craniotomy.

षष्टोऽध्यायः ।

शिरोऽवतरणे वैकृतोदयाः (पूर्वतोऽनुवृत्ताः)

अथातो ललाटोदयविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

शिरो यदावतरणकाले सङ्कोचप्रसारयोर्मध्यमां स्थिति लभते तदा ललाटोदयः । दुर्लभप्रायश्चायमुदय., श्रोणिप्रवेशकाले शिरसः प्रसारेण मुखोदये सङ्कोचेन शीर्षोदये वा बहुधा परिणमनात् ।

[८१ चित्रम]



ललाटोदय॰ ।

हेतुविज्ञानम्—पूर्वं ये मुखोदयस्य हेतव. सङ्ख्याता ललाटोदयस्यापि त एव हेतवो भवन्ति ।

ललाटोदय Brow presentation

गर्भासनानि—अत्र गर्भशिरः स्वानुशीर्षोत्तरचिबुकिकेन व्यासेन श्रोण्यनुप्रस्थव्यासमेवाधिष्ठाय तदन्तर्विशति। अतो द्वे एव गर्भासने, दक्षिणललाटासनं वामललाटासनं च। बाहुल्य तु दक्षिणललाटासनस्यैव।

निर्णय.—तत्रोदरपरीक्षणेन न कश्चन विशेष उपलभ्यते। ग्रैवपरिखानुप्रस्थ तिष्ठति न तिरश्चीना। एकतो हनुरन्यतश्चानुशीर्षं तुल्यसीम्नि वर्त्तते नोच्चावचम्। अनुशीर्षञ्च शीर्षोदयापेक्षया प्रोन्नतमपि न मुखोदय इवात्युन्नत भवति। आरब्धेऽपि प्रसवे सुदीर्घव्यासोपस्थानान्न गर्भशिर श्रोणिकण्ठेऽवगृह्यते। गर्भपृष्ठञ्च मध्यरेखाया वामतो दक्षिणतो वाऽनुभूयते यथासनम्।

योनिपरीक्षणकाले च प्रसवादौ शिरस श्रोणिकण्ठादूर्ध्वमवस्थानेन न तत्प्रत्यङ्गानि सुखेन प्रतीयन्ते। अविदीर्णो जरायुर्गोस्तनाकारेण योनौ प्रलम्बते। ततोऽवाक् प्रतिपन्ने त्वेकतो ब्रह्मरन्ध्रं ललाट गूढसीमन्तिका प्रतीयन्तेऽन्यतस्तु नेत्रकोटरतीरणिके नेत्रकोटरे गण्डकूटे च। ब्रह्मरन्ध्रललाटमुखाना दिक्परिज्ञानेन च गर्भासनविनिर्णय। तत्र ललाट समतल मुखञ्च विषमतलं ज्ञायते स्पर्शेन। बृहत्तराधिशिरोनिर्माणे तु दु.शकमेव परिज्ञानम्।

गर्भहृच्छब्दश्च श्रूयते यथासन मध्यरेखाया वामतो दक्षिणतो वा गर्भपृष्ठस्योपरि कृच्छ्रेण गर्भशरीरस्य गर्भाशयसुमध्येऽवस्थनात्। प्रथमासनापेक्षया द्वितीयासने तु ध्वनि. स्पष्टतरा भवति।

निष्क्रमणविधि—श्रोणीशिरसो. प्रमाण प्राकृतं चेद् गर्भस्य स्वतो निष्क्रमणमसम्भवम्। बृहत्तरशिरोव्यासस्य श्रोणिकण्ठे उपस्थानात् शिर. श्रोण्या विशत्येव न। यदा तु शिरसो हीनप्रमाणत्वात्, श्रोण्या वा विशदत्वात्, शिरसोऽतिरूपणाद्वा श्रोणिकण्ठमतिक्रामति गर्भशिरस्तदा चतुर्धा तत्परिणतिर्दृष्टा, (१) ललाटोदयरूपेणैव कथञ्चिन्निर्गम, (२) मुखोदये परिवर्त्तनम् (३) शीर्षोदये परिवर्त्तनम (४) शिरःसङ्गेन मूढभावश्च। तत्र ललाटोदयरूपेण निर्गच्छति गर्भे ललाटस्य पुरोविवर्त्तन

भवति तेनोत्तरहनुः सन्धानिकाया अध. प्रपद्यते । ततः सङ्कोचगतिना ललाटमध्यशीर्षानुशीर्षाणि क्रमशो बहिर्भवन्ति, मुखञ्चापि सन्धानिका-प्रष्ठत. स्खलन्निर्याति । ततः प्रत्यावर्त्तनं पूर्वस्कन्धस्यान्तः पुरोविवर्त्तनेन शिरसो बहिरावर्त्तनञ्च जायते । स्पष्ट च तत् ।

कदाचित्तु मुख पश्चिमतोऽवृत्तं प्रसवकृच्छ्रतां पुनरपि वर्धयति । असम्भवमेव तदा गर्भजन्म । लघुकोमले तु शिरसि कदाचित् प्रसरण-क्रियया नासामुखचिबुकानि क्रमेण मूलपीठाद्बहिर्भवन्ति, परिस्खलतश्च ततो मध्यशीर्षानुशीर्षे अपि सन्धानिकापृष्ठत ।

उपद्रवाः—मुखोदये य उपद्रवाः सम्भावितास्तानत्रापि जानीयात् । प्रसवातिविलम्बेन गर्भाशयविदारभीतिश्च ।

शिरोरूपणम्—ललाटोदये भृशं पीडितस्य शिरस एते व्यासाः परी-क्षीयन्त आनुशीर्षाधरब्रह्मरन्ध्रिक आनुशीर्षोत्तरचिबुकिकः पार्श्व-कपालिकश्च, आनुशीर्षनासामूलिक आनुशीर्षचिबुकिक आनुशीर्षा-धरललाटिकश्च तन्निष्कृतिकरा वर्धन्ते । तेन ललाटमस्यातीवोन्नतं भवति करोटिपटलञ्चावनतम् । अधिशिरश्च बृहत्तरं ललाटस्योपरिष्टा-न्निर्वर्तते ।

उपक्रम.—यथावस्थं व्यवहर्त्तव्यम्, तत्र—

(१) अनवगृहीते शिरसि—ललाटोदयं ज्ञात्वा न तथैव त्यजेत् । अवश्यमेव शीर्षोदये मुखोदये नितम्बोदये वा परिवर्त्तनीयः । तत्र शीर्षोदये परिवर्त्तनाय मुखोदयचिकित्सिते व्याख्यातेन बाह्येन विधिना यत्नोऽनुष्ठेय', तदसाफल्ये तु संयुक्तेन । एवमप्यशक्ये नातिसङ्कु-चिता श्रोणिश्चेत् स्थानापवर्त्तनेन नितम्बोदयं विधाय पादैकमाकर्षेत् ।

(२) सद्योऽवगृहीतेऽपि शिरसि उदयान्तरकरणाय प्रयत्यते पूर्व-वत् । तत्र शीर्षोदयस्य श्रेष्ठतरत्वेऽपि मुखोदय एव कालेऽस्मिन् सुख-साध्यो भवति । तदर्थञ्च प्रत्याक्षीकाल ब्रह्मरन्ध्रदेशो योनिगताङ्गुलीभिः

पृष्ठाभिमुखमूर्ध्वमुन्नेय, बहिरुदरभित्तिस्थेन च पाणिना चिबुकं नीचैः कर्षणीयम्।

(३)गभीरं प्रविष्टे शिरसि—पूर्वोक्तोपक्रमाणामसाफल्येऽपि न भग्नाश स्यात्। यस्मिन् पार्श्वे मुखं स्यात्तस्मिन्नेव शयानायाः पुरोविवर्त्तनाय यथोचितकालं प्रतीक्षणीयम्। प्रकृतिर्यथा दुरवस्थितमपि सङ्क्रमयति न तथा वयम्। यदि चेत्ततोऽपि शिरो नाग्रे सरति, आवीभिस्त्वर्यते विलम्बातिशयेन गर्भाशयविदारभीतिश्च तदा सन्दंशेनैनं निहरेत्। केचित्तु सन्दंशप्रयोगं नाभिशंसन्ति। अपवृत्ते तु मुखे तत्प्रयोगो व्यर्थ एव। सङ्कुचितश्रोणिकाया उदरविपाटनं भगास्थिच्छेदनं वा क्रियते, अशक्ये शिरोवेधनमपि। मृते तु गर्भे शिरोवेधनमेव कार्यम्।

सप्तमोऽध्यायः ।

वैकृतोद्गया (पूर्वतोऽनुवृत्ता) अवतरणमपि वैकृतम् ।

श्रोण्यवतरणम् ।

अथातो नितम्बोदयविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

नितम्बोदयो नाम स्फिक्पूर्वा गर्भनिष्क्रान्ति । अधःशाखयोरवस्थानविशेषात् स चतुर्धा भिद्यते स्फिक्पादोदय, स्फिगुदयः, पादोदय, जानूदयश्चेति । तत्राद्य. पूर्णनितम्बोदय , शेषाश्चापूर्णनितम्बोदयाः ।

पूर्णनितम्बोदय —अत्र गर्भाङ्गसंस्थिति. प्राकृता तिष्ठति । अधःशाखे वङ्क्षणसन्धौ जानुसन्धावुभयत्रापि सङ्कुच्य वर्त्तेते । श्रोणिकण्ठे स्थितौ स्फिचौ तदासन्नौ पादौ च सहैव श्रोणिगुहामुत्तरन्ति । अत एवास्य स्फिक्पादोदय इति सञ्ज्ञानम् ।

अपूर्णनितम्बोदयः—अत्राध'शाखयोरङ्गसस्थितिर्विकृता भवति । यदोरुद्वय (वङ्क्षणसन्धौ) सङ्कुचित जङ्घाद्वय च (जानुसन्धौ) प्रसृत स्यत्तदा केवल स्फिचो प्राक् प्रतिपत्ते स्फिगुदयः । यदा तु जङ्घोरुयुगलमेकशो द्विशो वा पूर्णत (जानुवङ्क्षणसन्धिषु) प्रसरेत्तदा पादस्य पादयोर्वा प्रतिपत्ते पादोदय । एव यदा जङ्घाद्वय (जानुसन्धौ) सङ्कुचित भवेत्, ऊरुरूरुद्वय वा च (वङ्क्षणसन्धौ) प्रसृत तदा

श्रोण्यवतरणम् Pelvic presentation नितम्बोदय Breech presentation पूर्ण नितम्बोदय. Complete pelvic presentation स्फिक्पादोदय. Full breech presentation अपूर्ण नितम्बोदय Incomplete pelvic presentation स्फिगुदय. Frank breech presentation

जानुनो जानुनोर्वा प्रतिपत्तौ जान्वुदय । कदाचित्तु मिश्रप्रतिपत्तौ जानुपादोदयोऽपि सम्भवति।

हेतुविज्ञानम्—तत्र ये ये भावा गर्भस्य गर्भाशयस्य वाकृति बलं च विकुर्वन्ति ते सर्वे श्रोण्यवतरणस्य हेतवो भवन्ति। गर्भस्य तिर्यग्भावेनावस्थितिस्तु जान्वुदयस्य पादोदयस्य वा मुख्यो हेतु । ते च पुन —

(१) बहुप्रजाताना गुरु-शिथिलो गर्भाशय, गर्भोदकवृद्धया यमलगर्भेण वाऽतिविस्फारितो गर्भाशय, विरूपो गर्भाशय, वक्रीभूतो गर्भाशय, गर्भाशयार्बुदा, सङ्कुचिता श्रोणि, द्वारस्थाऽपरा च।

(२) वृहत्प्रमाण शिर, अपुष्ट, शुष्क, मृत, यमल, अद्भुत, विरूपश्च गर्भ ।

गर्भासनानि—अत्रापि पूर्ववच्चत्वारि गर्भासनानि भवन्ति, मातुरुदरे गर्भपृष्ठस्य वामपूर्वादिखण्डचतुष्टयान्यतरस्मिन्नवस्थानात्। नामनिर्देशस्तु त्रिकमधिकृत्य क्रियते, तद्यथा—

(१)वामपूर्वत्रिकासनम्—अत्र मातु पृष्ठाभिमुखस्योर्ध्वशिरसो गर्भस्य त्रिक वामश्रोणिगवाक्ष, नितम्बान्तरालपरिखा दक्षिणतिर्यग्व्यास, शिखरकान्तरालीयो व्यासश्च वामतिर्यग्व्यासमधिश्रित्य वर्त्तन्ते। अस्यैव च बाहुल्येनोपलब्धि ।

(२) दक्षिणपूर्वत्रिकासनम्—सर्वं सुगमम्। वामदक्षिणपदयोर्विपर्यास विधाय पूर्ववत् पठनीयम्।

(३) दक्षिणपश्चिमत्रिकासनम्—अत्र तु मातुरुदराभिमुखस्य गर्भस्य त्रिक दक्षिणत्रिकजघनसन्धान, नितम्बान्तरालपरिखा दक्षिणतिर्यग्व्यास, शिखरकान्तरालीयो व्यासश्च वामतिर्यग्व्यासमधिकृत्य तिष्ठन्ति।

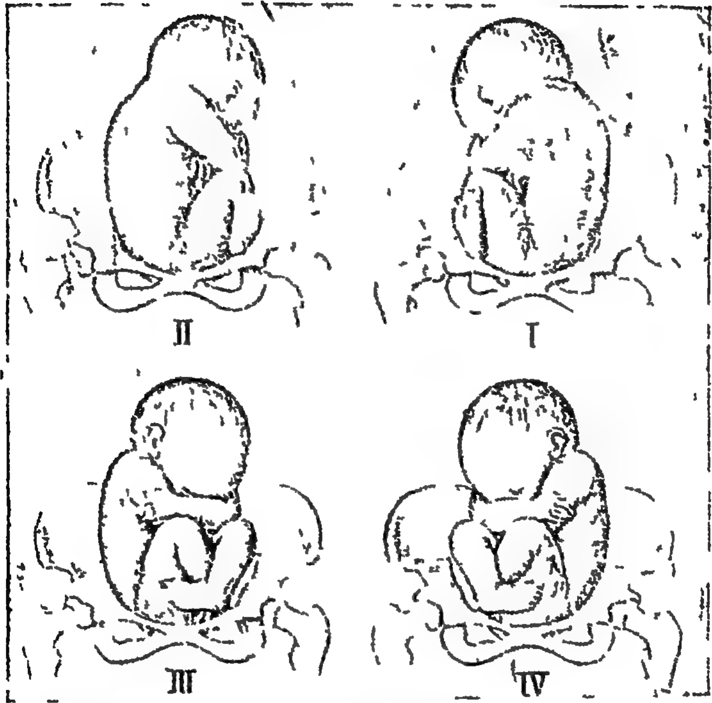
पादोदय Foot or footling presentation जान्वुदय Knee presentation जानुपादोदय Knee & foot presentation

(1) Left Sacro anterior (L S A) (2) Right Sacro-anterior (R S A) (3) Right Sacro-Posterior (R S R)

(४) वामपश्चिमत्रिकासनम्—सर्वे तृतीयासनेन तुल्यम्, वामदक्षिणपदयोर्विपर्य्ययमात्रं तु भेदः ।

[८३ चित्रम्]

श्रोण्यवतरणे गर्भासनानि



१. वामपूर्वत्रिकासनम् । २. दक्षिणपूर्वत्रिकासनम् ।
३. दक्षिणपश्चिमत्रिकासनम् । ४. वामपश्चिमत्रिकासनम् ।

निर्णयः—तत्रोदरपरीक्षणेन गर्भाशयस्योत्तरभागे प्रतीयते समवृत्तं कठिन बहुचेष्टं ग्रैवपरिखोपलक्षित च शिरः, मध्यमागे एकत पृष्ठम् अन्यतश्च हस्तपादम्, अधरभागे तु बृहत्तरो नितम्ब शिरोविपरीतलक्षणः । श्रोणिकण्ठातिक्रमणे तु नैव नितम्बप्रतीतिः । शीर्षोदयापेक्षया चात्र गर्भाशय-

(4) Left Sacro posterior (L S,P)

स्योत्तरभागो (अध शाखे प्रसृते न चेत्) लघुतर , अधरभागश्च बृहत्तरो भवति ।

यानिपरीक्षया तु—प्राग् अत्यूर्ध्वमवस्थानाभितम्बस्य दुष्प्राप्यत्वेऽपि यथैव सोऽवाक् प्रतिपद्यते तथैव तद्विशेषा परिज्ञेया, अनुत्रिकाग्रम, कुकुन्दरपिण्डे, गुदविवरम् , बाह्यजननाङ्गानि चेति । मुखादस्य व्यावृत्तिस्तु पूर्व दर्शिता । अथ चेत् कापि शाखा तदवयवो वा योनौ अष्टागत उपलभ्यते तदा का नाम सा शाखा ? दक्षिणा वामा वा ? कश्चाय मवयव ? इति सर्वं सम्यग् निर्णेयम । जानु कूर्परात् , पाद कराद् , वङ्क्षणदेशश्च कक्षादेशाद् व्यावर्त्तनीय । तत्र जानु बृहत्तर वृत्ततर प्रतरणशीलेन (प्रसृते जानुनि न तु सङ्कुचिते स्थिरीभूतत्वाराद्ा तस्य) जानुकपालेन, जङ्घास्थिकूटेन जानुकपालबन्धन्या स्नाय्वा चोपलभ्यते, पादश्च दीर्घतर पार्ष्ण्या समक्षुद्रसरलाङ्गुलीभि पादाङ्गुष्ठेन च । पादाङ्गुष्ठो हि कराङ्गुष्ठ इवापकृष्टो नाङ्गुलिभ्यो दूर वियुज्यते न चाप्याकृष्टमूलस्तद्वत् संयुज्यते कनिष्ठामूलेन । वङ्क्षणदेश पर्शुकाभी रहितो भवति न कक्षादेश । कक्षाभावज्ञानेन नितम्ब स्कन्धादपि व्यावर्त्यते । स्फिगुदये पृष्ठवशानमनाद् गर्भाशयमुखोपस्थितं त्रिक कदाचित् शिर इव प्रत्ययमावहेत् किन्तु त्रिककण्टकानामुपस्थित्या सीमन्त-रन्ध्र केशानाञ्चाभावेन तद्भ्रमो निरस्तो भवति । त्रिकोपस्थयोर्दिक्परि-ज्ञानेन च गर्भासनमपि निर्णेतु शक्यते ।

हृच्छब्दश्च—यथ पृष्ठ मध्यरेखाया वामतो दक्षिणतो वाऽनुभूयते नितम्बस्य श्रोणिनिमज्जनात्पूर्वं नाभेरुपरिष्टात् , परञ्च तदधस्ताद् इति ।

रश्मिचित्रपरीक्षणम् षण्मासात्परं सन्देहस्थले 'क्ष'रश्मिचित्रदर्शने-न सुकरो निर्णय ।

निष्क्रमणविधि —तत्राय विशेषः—शिरोवतरणे सङ्कोचप्रसारौ नाम ये द्वे आरम्भिके गती, श्रोण्यवतरणे तयो सर्वथैवाभाव, अनावश्य-कत्वात् । ते ह्यस्थिर शिर पृष्ठवशे स्थिरीकृत्य मुहूर्त्तं दण्डवत्तत्स्वभाव

नयतः । इह तु नितम्बस्य पृष्ठवशेन स्थिरानुबन्धत्वात् सिद्धैव स्तब्धता । यस्तूत्तरकालीनो वक्रजननपथमनुकूलयितु सङ्कोच प्रसारो वा भवति तदर्थमिह मध्यगात्रस्य पार्श्वावनमनं नाम गतिविशेषो मन्तव्य । एवञ्चात्र अवतरणम्, अन्तरावर्त्तनम्, पार्श्वावनमनम्, बहिरावर्त्तनञ्चेति चतस्रो गतयः फलिताः ।

[८४ चित्रम्]

श्रोण्यवतरणम् ।

गर्भश्रोणि. स्त्रीश्रोण्या उत्तरभागतोऽधोऽवतरति ।

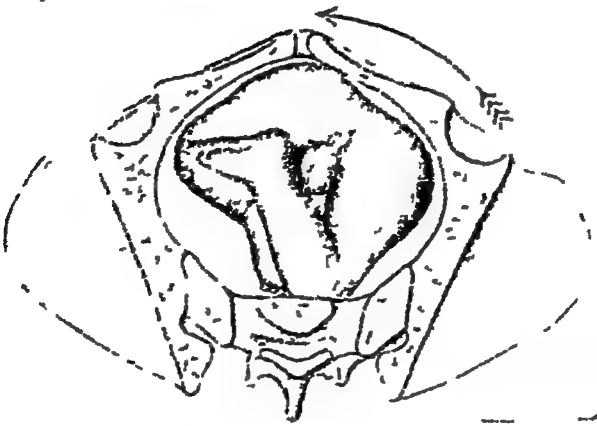
अवतरणम्—गर्भाशयबलेनाधः प्रणुद्यमानस्य गर्भस्य नितम्बदेशः श्रोण्यामवतरति । तत्र यदि स्फिक्पादोदयस्तदा सङ्कुचिताप्यधः शाखा निपीडनबलात् पुनरतिशयं सङ्कुच्य गात्रेण सह भृशं ससज्यते । कदाचित्तु पादयोः श्रोणिकण्ठेन निग्रहात् स्फिगुदये परिणतिर्दृष्टा । अवतीर्णस्य च पूर्वो नितम्बः पश्चिमापेक्षया नीचैर्गच्छति ।

पार्श्वावनमनम् Lateral Flexion of the breech on the trunk

अन्तरावर्त्तनम् - अनेन पूर्वो नितम्बः (नतु त्रिकम्) पुरतो विवृत्य भगसन्धानिकाया अध प्रपद्यते । शिखरकान्दरालीयश्च व्यासस्तिर्य-व्यासात् श्रोण्या अनुदैर्घ्यव्यासे समायाति । पूर्वनितम्बस्यैव सर्वदा पुरतो विवर्त्तनात चतुर्ष्वेपि गर्भागमनेषु ह्रस्वमेवान्तरावर्त्तनमिति विशेषः स्मर्त्तव्य ।

[८५ चित्रम]

श्रोण्यवतरणम ।



अन्तरावर्त्तनेन पूर्वा नितम्ब पुरतो विवर्त्तते । (शरस्तु मिथ्यादिशि प्रयुक्तो व्यावृत्य शोधनीय)

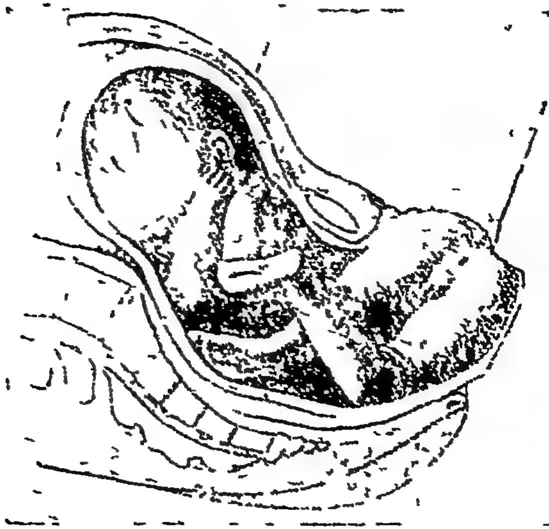
पार्श्वावनमनम —जननपथवक्रतामनुकूलयितुं गात्रस्य प्रबल पार्श्वा-वनमन जायते । तत्र सामान्यत पूर्वो नितम्ब सन्धानिकातलादवस्तस्य योनिमुखात्प्रथममाविर्भवति, पश्चिमस्तु मूलपीठमुत्तरन् तत परम । यदा तु मूलपीठ दीर्णद्वार शिथिलं वा भवेत् तदा पश्चिमनितम्बस्याग्रनिर्गति क्षुद्रमाने गर्भे नितम्बद्वयस्य सहनिर्गतिर्वापि दृष्टा । स्फिक्पादोदये पादा-वपि नितम्बदेशेन सार्धमेव निर्गच्छत ।

बहिरावर्त्तनम् —ततो निर्मुक्तस्य नितम्बदेशस्य गात्रप्रत्युद्वलनेन प्रत्यावर्त्तनात् शिखरकान्तरालीयो व्याम एकवारं पूर्वा अवस्थिति

(तिर्यग्व्यासस्थिति) क्षणाय लभते, अन्वेव च पूर्वस्कन्धस्यान्तरावर्त्तनेन यथैव नितम्बदेशास्तत्साधं बहिरावर्त्तते तथैव स भूयः परावर्त्ततेऽनुदैर्घ्य-व्यास एव । गतिश्चैषा शिरोवतरण इव न स्पष्टा भवति, मुख्यं बहिरा-वर्त्तनमपि च प्रत्यावर्त्तनाद् विपरीतमेव जायते ।

[८६ चित्रम्]

श्रोण्यवतरणम् ।



पूर्वतो विवृत्ता गर्भश्रोणिः पार्श्वावनमनेन मूलाधारपीठमुत्तरति ।

गात्र-शिरोनिर्गमः—आगते नितम्बे शेषगात्रमपि क्रमेण निर्याति । पादौ नितम्बेन हस्तौ च वक्षसा सार्धं निर्गच्छतः । तत्र स्कन्धयोरस-कूटान्तरालीयो व्यास शिखरकान्तरालीयव्यासेनाधिष्ठिते समान एव तिर्यग्व्यासे भूत्वाऽवतरति, यथैव च स्कन्धौ निर्गमद्वारे प्रपद्येते तथैव पूर्वां-सस्य पुरोविवर्त्तनात् स श्रोण्या अनुदैर्घ्यव्यासे समायाति । ततो गर्भाशयबलेन सङ्कुचित हि शिरः स्वानुदैर्घ्यव्यासे स्कन्धविपरीतं तिर्य-ग्व्यासमधिकृत्य श्रोणौ विशति । तलभूमिं स्पृष्ट्वाऽनुशीर्ष पुरतो विवर्त्तते ।

धाटा च सन्धानिकातल प्रपद्यते । तदनु शिरसो जन्म । तत्र पुनः हनुमुख ललाटमध्यशीर्षाणि क्रमेण बहिर्भवन्ति, अनुशीर्षञ्च सर्वपाग्ने ।

अत्रेदं स्मर्त्तव्यम्—श्रोणौ प्रविष्ट शिरः वस्तगर्भशय्यां परित्यजति, अतो न तत्सङ्कोचबल तस्मिन् क्रियाकरम्, केवल प्रवाहणबलेनैव (श्रोणितलभूमिबलेन औदर्य्यपेशीबलेन च) तन्निष्कामनं । तत्, यत न सर्वदा कर्मणि समर्थं भवतीत्यविश्रामभूमिरेव । विलम्बात् गर्भोपघातभयम् । अत एव नितम्बोदयेऽग्यागच्छत शिरसो जननि भिषजा स्मर्य्यते ।

अथ सामान्यत उक्त निष्क्रमणविधि तत्तदासनेषु विशेषतस्य वक्ष्याम —

प्रथमासनम्—अत्र गर्भश्रोणि स्वशिरस्कान्तरालीयव्यासेन स्त्री-श्रोण्या वामतिर्य्यग्व्यासमधिष्ठाय वस्तिगुदायामवतरति । ततस्तल-भूमिस्पर्शनादन्तरावर्त्तनम्, तेन पूर्वनितम्बो वामतिर्य्यग्व्यासस्याग्रिम प्रान्तात् पुरतो निवृत्य सन्धानिकाया अध संविशति, शिरस्कान्त रालीयश्च व्यास, श्रोण्या अनुदैर्घ्यव्याम प्रपद्यते । तदनु गात्रस्य स्ववामपार्श्वे नमनम्, नितम्बजन्म च । तत प्रत्यावर्त्तनम्, तेन शिरस्कान्तरालीयव्याम पुन पूर्वस्थितिं लभते । अथ मध्यकायप्रवृत्ति । तत्र पूर्वस्कन्धस्यान्तरावर्त्तनादंसकूटान्तरालीयो व्यासो वामतिर्य्यग्व्याम परित्यज्य निर्गमद्वारस्यानुदैर्घ्यव्यासमाश्रयते, तद्वच्च शिरस्कान्तराली-योऽपि, नितम्बदेशस्य तत्साधमेव समष्टिश परिवर्त्तनात् । ततोऽस्य शिर स्वानुशीर्षकव्यासेन श्रोणिकण्ठस्य दक्षिणतिर्य्यग्व्यासमाश्रित्य श्रोणौ विशति । तलभूमिस्पर्शाच्चानुशीर्षं दक्षिणतिर्य्यग्व्यामस्य पूर्वप्रान्तात् पुरतो विवृत्य सन्धानिकाया अध स्थिरीभवति । स्थिरी-भूतश्च तत् कीलमिवाश्रित्य चक्रगतिना विवर्त्तमान गर्भशिरो निर्याति ।

द्वितीयासनम्—सब प्रथमासनेन तुल्यम् । केवलं वामदक्षिण पदयोर्विपर्य्यास विधाय पठनीयम् ।

तृतीयासनम्—अत्र शिखरकान्तरालीयो व्यासो वामतिर्यग्व्यासमधिष्ठाय श्रोणिकण्ठेऽवतरति। पूर्वनितम्बश्च तथैवान्तरावर्त्तमानस्तद्व्यासाग्रकोटितः पुरतो विवृत्य सन्धानिकाया अधः प्रपद्यते। ततो गात्रस्य स्वदक्षिणपार्श्वेऽवनमनाद् नितम्बजन्म। प्रत्यावर्त्तनन्त्विह बहुधा पूर्वतो विपरीत दृश्यते। अर्थात् प्रथमद्वितीयासनयोः पूर्वनितम्बोऽन्तरावर्त्तनाद् यस्य तिर्यग्व्यासस्य पूर्वकोटिं त्यक्त्वा पुरोविवर्त्तते, बहिरागत्य प्रत्यावर्त्तमानः स पुनस्तामेव कोटिं सश्रयते। इह तु न तथा प्रतिनिवर्त्तते त्यक्तपूर्वां कोटिम्, किन्तर्हि परपार्श्वे विवर्त्तमानस्ततो विपरीतामेव तिर्यग्व्यासाग्रकोटिं भजते। एवञ्चात्र सन्धानिकातलान्निर्गतः, पूर्वनितम्बो मातुर्वामतो विवर्त्तते दक्षिणतिर्यग्व्यासस्य पूर्वकोटौ। मातृपृष्ठवंशेनात्मानं सङ्गमयितुम् अवसरे कृतो गर्भगात्रप्रयत्नश्चात्र हेतुः। फलतश्चास्य स्कन्धौ श्रोणिकण्ठस्य दक्षिणतिर्यग्व्यासमधिकृत्य श्रोणौ विशतः, पूर्वस्कन्धश्च तदग्रकोटित. पुरतोऽन्तरावृत्य सन्धानिकाया अधो विश्राम्यति। ततोऽस्य शिरः स्वानुदैर्घ्यव्यासेन वामतिर्यग्व्यासमधिकृत्य श्रोणिपथमुत्तरति, अनुशीर्षञ्च श्रोणितलपृष्ठ वामतिर्यग्व्यासस्य पूर्वप्रान्तात् प्रचल्य पुरतो विवर्त्तते सन्धानिकाया अधः। स्कन्धान्तरावर्त्तनकाले शिरोऽन्तरावर्त्तनकाले वा निर्गत गात्रमपि बहिरावर्त्तते स्तोकेन। ततश्चक्रगतिना शिरोजन्म तु प्राग्वदेव।

कदाचित्तु नितम्बः पूर्ववत् स्वाभाविकदिशि प्रत्यावर्त्तते। तदा स्कन्धौ वामतिर्यग्व्यासं शिरश्च पश्चिमानुशीर्षं स्वानुदैर्घ्यव्यासेन दक्षिणतिर्यग्व्यासमाश्रित्य श्रोण्यामवतरन्ति। अत्रानुशीर्षं दक्षिणतिर्यग्व्यासस्य पश्चिमप्रान्तात् पुरतः प्रचलितं चक्राष्टत्रिभागं दीर्घमन्तरावर्त्तते इति विशेषः। शेष स्पष्टम्।

चतुर्थासनम्—सर्वं तृतीयासनमिवैव। वामदक्षिणपदयोर्विपर्य्यय विधाय पठनीयम्। अन्यश्चापि विशेषो वक्तव्यः—"कदाचित्तु नितम्बः पूर्ववत् स्वाभाविकदिशि प्रत्यावर्त्तते। तदा स्कन्धौ दक्षिणतिर्यग्व्यासं

शिरश्च पश्चिमानुशीर्ष स्वानुदैर्घ्यन्यासेन वामतिर्यग्न्यासं, वामतोऽनुशीर्षं कृत्वाऽनुप्रस्थन्यास वाऽऽश्रित्य श्रोण्यामवतरन्ति। अत्रानुशीर्ष वामतिर्यग्न्यासस्य पश्चिमप्रान्ताद् अनुप्रस्थन्यासस्य वा वामप्रान्तात् पुरत. प्रचलितं चक्राष्टत्रिभागं चक्रार्धं वा दीर्घमन्तरावर्त्तते" इति।

श्रोण्यवतरणे वैकृतं निष्क्रमणम्।

अत्रापि शिर प्रतीपावर्त्तनमेव मुख्यो विकार। पादोदयजानूदयरूपा विकृतिस्त्वकिञ्चित्करत्वाचिन्त्यैव।

शिर प्रतीपावर्त्तनम्—यदा कदा विशेपतस्तु तृतीयचतुर्थासनयोरनुशीर्ष पुरतो न विवृत्य पश्चिमतस्त्रिकोदरेऽपवर्त्तते। पूर्वाभिमुखश्च गर्भो भवति। कदाचित्तु चिवुकस्य सन्धानिकाया उपरि निग्रहात् स्वसूची वैयाकरण इव ऊर्ध्वमुखोऽपि सञ्जायते। एवम्भूतस्य भिपक्साहाय्यं विना स्वतो निष्क्रमणं तु न कथमपि सम्भाव्यते।

शिरोरूपणम्—अन्वागच्छतः शिरसो रूपण मन्दमेव भवति, श्रोणिकृतपीडनाद् द्रुतमेव मुक्तत्वात्। तत्रानुशीर्पनासामूलिक आनुशीर्पचिवुकिकश्च न्यासौ हीयेते, ग्रैवाग्रब्रह्मरन्ध्रिक आनुशीर्पाधरब्रह्मरन्ध्रिकश्च वर्धेते। पूर्णनितम्बो बहिर्जननाङ्गानि च तत्राधिशिर:स्थानीयशोफस्य भूमय., वृषणौ तु विशेपेण। कदाचित्तु त्वङ्नीलिम्ना वृषणयो. कृष्णवर्णताऽपि दृष्टा, अचिरेणैव च सा जन्मोत्तरं विलुप्यते।

शुभाशुभम्—तत्र नितम्बोदये मातु. कृते नास्ति किमपि विशेपभयम्। अधरगर्भशय्याया गर्भनितम्बस्य दु स्थितत्वादकाले जरायुभेद, अक्षुद्रकाये गर्भे दीर्घकालीनः प्रसव, बलादाहरणे गर्भाशयमुखस्य

अधिशिर:स्थानीय: शोफ Representative of the Caput succedaneum. त्वङ्नीलिमा Subcutaneous Ecchymosis

(अविकसित चेत्) योनिमुखस्य (मूलपीठं न कर्त्तितं चेत्) वा विद्रणम्, हस्तादिसंसर्गात् सङ्क्रमणभयम् इति सामान्योपद्रवास्तु सम्भाव्यन्ते ।

बालास्त्वत्र विशेषतो व्यापद्यन्ते । प्रतिशतं दश विंशतिर्वा मृत्युसङ्ख्या दृष्टा । बलादाहरणेऽस्थिभङ्ग-सन्धिविश्लेष-सिरास्नायुपेशी-नाड्यभिघातादय उपद्रवा अपि सम्भवन्ति । तद्यथा—जघनसङ्गे सक्थि-कर्षणेनोरुभग्नम् अङ्कुशास्त्वङ्मांसादिघातश्च, अंससङ्गे बाहुकर्षणेन प्रगण्डाक्षकभग्नं कक्षानुगनाडीप्रवेशिकाभिघातश्च, शिरःसङ्गे गात्रादि कर्षणेन पृष्ठवंशाभिघात. सुषुम्नावदरण शिरोग्रीवसन्ध्यभिघातो वराशिका-वदरण मस्तिष्कान्तारक्तस्रुतिः उरःकर्णमूलिकपेश्यन्तः क्षुद्ररक्तप्रणालि-कानां त्रुटनाद् रक्तग्रन्थिश्च, मुखभूमिं धृत्वा कर्षणे तु हनुभग्नं हनुभ्रंशो जिह्वाभिघातश्चेति ।

जन्मकाले गर्भमृत्युहेतवस्त्विमे भवन्ति—

(१) अकालान्तःश्वसनम्—नितम्बोदये यदा विलम्बेन गर्भिणी सूते तदाऽपरारक्तसवहनस्य बाधनाद् नाभिनालस्य वा प्रपीडनाद् आंशिकः प्राणरोधो गर्भस्य जायते । तेन निर्गतशरीरार्धे शीतवायुस्पर्शेन च गर्भ क्षुभ्यति । एवञ्चोभयथैव श्वसनकेन्द्रस्योत्तेजनाद् अनिर्गतशिरो गर्भोऽकाल एव कदाचिदन्तरुच्छ्वसेत् श्लेष्मासृग्गर्भोदकानामन्तःकर्षणेन स्रोतोरोधाच्च म्रियेत ।

(२) शिरोऽभिघातः—अप्राप्तावसरतया मन्दं रूपितमेव शिर. श्रोणिगुहातः सहसा विनिर्गच्छदभिहन्यते । दात्रिका जवनिका च कला

---

(१) Premature inspiration आंशिक प्राणरोधः Partial asphyxia (२) Cerebral injury दात्रिका Falx cerebri जवनिका Tentoriumn cerebelli.

(विशेषतस्तयोः संयोगस्थलम्) प्रायश्छुट्यति शिरोऽन्तारुद्धस्रुतिश्च जायते । सोऽय प्रधानो हेतुर्नितम्बोदये गर्भमरणस्य ।

(३) नाभिनालपीडनम्—नितम्बोदये यदि शिरस्त्वरित न प्रजायते तर्हि शिरःश्रोणयस्थ्नोर्मध्ये नाभिनालस्य पीडनाद् गर्भरक्तसंवहनमुपरुध्यते । तेन च प्राणरोधाद् गर्भोपघातः सुनिश्चितः ।

(४) अपराया अकालवियुक्तिः—कदाचिद् गर्भाशय परित्यज्य योनौ विलम्बमाने शिरसि उत्तरगर्भशय्यायाः प्रबलात्मसङ्कोचनाद् अकाल एवापरा वियुज्यते । एवमपि प्राणरोधाद् गर्भमृत्युः ।

अथ प्रतिविधानम् ।

द्विधा हि नितम्बोदय उपक्रम्यते स्थानस्यापवर्त्तनेनानपवर्त्तनेन वा यथावस्थम् ।

स्थानापवर्त्तनम्—तत्र शिशोःकृते शीर्षोदय शुभयुर्भवति नितम्बोदयस्तु व्यापत्तिकरत्वादशुभयुरिति पूर्वमिह दर्शितमेव । तथा च सति सम्भवे नितम्बोदय शीर्षोदये परिवर्त्तनीयोऽन्यत्र श्रोणिसङ्कोचाद्, अपरापुरःस्थिते, यमलगर्भाच्च । तत्र तु खलु नितम्बोदय एव हितावहो भवति । किञ्च प्रसवारम्भात् प्रागेव स्थानापवर्त्तनार्थं यतनीयम् । स एव तस्यानुगुणः कालः । तत्र यदि गर्भिण्या एव नितम्बोदयो निर्णीतो भवेच्छ्रोणिसङ्कोचादिकं च न स्यात्तर्हि व्यतीतेऽष्टमे मासि बाह्येन वर्त्तनविधिना स्थानमस्यापवर्त्तयेत् । अफले श्रमे पश्चादपरं पुनर्यतनीयम् । अपवृत्ते तु शिरसि बलाच्छिरः श्रोणौ प्रवेश्य दृढोदरबन्धनेन स्थिरीकुर्यात्,

---

(३) Pressure on the cord (४) Premature separation of the placenta

बाह्यो वर्त्तनविधिः External Version.

येन तत्रैव प्रत्यावर्त्तेत। अन्तरान्तरा च स्थितिरस्य निभालनीया। प्रत्यावृत्तं च पुनरपवर्त्तयेत्। प्रजायिन्यास्तु कृतेऽपवर्त्तने स्थिरीकरणाय जरायुरपि विदार्य्येत। अल्पे गर्भोदके प्रसृतजङ्घे गर्भे सङ्कीभूते च जघने दुःशकं चेदपवर्त्तनम्, उदरभित्तिशैथिल्याय सम्मूर्च्छनं सङ्गविनिवृत्तये चावाक्‌शिरःशयनमावश्यकम्।

स्थानानपवर्त्तनम्—यदा तु नितम्बोदय एवेष्टः स्याद् व्यर्थी-भवति वा स्थानापवर्त्तनयत्नस्तदा समाहितचेतसा भिषजा प्रतिप्रसवावस्थ-मित्थमुपक्रान्तव्या प्रजायिनी। निपुणं परीक्ष्यतेऽत्र भिषजा चातुरी। इदन्त्ववधेयम्—यदि चेत् स्त्रीरप्रजाता स्याद् गर्भोऽपि महाप्रमाणः प्रसृत-जङ्घश्च तर्हि मूलावदरण-गर्भमरणभाविवम्भ्यात्वाद्याशङ्कनादुदरविपाटनमेव श्रेयस्करं स्यादिति।

प्रत्यवस्थमुपक्रमस्त्वयम्—

प्रथमावस्था—अधरगर्भशय्याया नितम्बदेशेनासम्यग्पूरणात् प्रायोऽत्र जरायुरकाले भिद्यत, इति विदितचरम्। तथा न स्यादित्याद्य उपक्रमः। अन्यथा दुर्विकसितं गर्भाशयमुखं गर्भस्यांसशिरोगतिं बाध-यद् गर्भं घातयति। तस्मादारम्भादेव स्त्री पर्य्यङ्कशायिनी स्याद्, विशेष-तश्च तदा यदा जरायुरावीकाले योनौ दुर्लम्बते। न च सा प्रवाहेत। वस्तिं न ग्राहयेत्। आवीकाले योनिपरीक्षणं तु न जातुचित् कारयेत्। परीक्षणेऽपि यथायं न दीर्य्येत तथाऽऽचरणीयम्।

द्वितीयावस्था—यथैव गर्भस्य नितम्बदेशो योनिमुखं प्रपद्यते तथै-वोत्तान शयानां स्त्रियं खट्वान्ताहितश्रोणीं[1] स्थापयेद्, येनाग्रे शिरोजन्मनि चिकित्सासौकर्यं स्यात्। त्वरितं विशल्यभावाय चेष्टमानेन तु यथास्य

अवाक्‌शिरःशयनम् Trendelenburg positon.

१ In Cross bed position

प्राकृतगतिर्न व्याहन्यते तथा यतनीयम्। अन्यथा फलं विपरीतमेव स्याद्, विलम्बः सङ्गो वा भवेत्। तस्मान्न जातुचिदपि गर्भगात्रमाकर्षेत्, सति प्रयोजने केवलमंसपिण्डिकां पीडयित्वैव गर्भं निर्हरेत्। गात्राकर्षणेन तु गर्भगतिर्व्याहन्यते। भुजौ प्रसृत्य शिरःसङ्गं जनयतः।

दृष्टे नितम्बे स्फिक्पादोदयश्चेद् योनावङ्गुलीं प्रवेश्य गर्भपादौ धारणीयौ येन न तौ मूलपीठस्योपरि निगृह्येयातां न च निगृहीतावयदारयेतां मूलपीठम्।

तत आनाभि निःसृते गर्भगात्रे नाभिनालैकदेशमाकृष्य एकतः कुर्यात्, सतत तत्स्पन्दनाऽवबोधेन गर्भस्य प्राणोपरोधभयं च विदाङ्कुर्वीत। एवं शिथिलीकृता नाभिनाडी नावदर्यतेऽपि। अन्यथा कदाचिद् गर्भगात्रश्रोणिकण्ठयोर्मध्ये पीडनान्निरुद्धप्रसरा गात्रनिर्गत्याऽऽकृष्यमाणा दीर्येत। निर्गत गर्भगात्रमुष्णेन वाससा पिदध्यादपि, येन शीतवातादिस्पर्शं क्रकचस्पर्शमिव मन्यमानो नोच्छ्वस्यान्ताम्रयेत। न चातः परं किमपि कर्त्तव्यम्। प्रकृत्यैव गर्भमध्यमात्र बाहू च संश्लिष्टोरसौ निर्यान्ति, शिरश्च श्रोणिकण्ठे प्रविश्य गुहायामवतरति। शिरोजन्मनि तु साहाय्यमपेक्ष्यते प्रायेण। यथा, भिषग् गर्भाशयस्कन्धमध पीडयेत् स्त्री चैव प्रवाहेत। अत्रोपदिशन्त्येके, शिरोजन्मनि सौकर्य्यार्थं योनिमुखान्निर्गतं गर्भगात्र शय्यापादत आलम्बनीयम्, येन शरीरभराच्छनैराकृष्यमाणं शिर सुखेन सङ्कुचित च बहिः प्रपद्येत इति।

अथ चेदाकृष्टं नाभिनालं न स्पन्देत, स्कन्धनिर्गमात् प्रागेव वा क्षीणस्पन्दं स्याद्, आशुप्रसवाय प्रयतनमावश्यकम्। तत्रादौ भिषग् गर्भाशयस्कन्ध दृढमधः पीडयेत्। एवं हि गर्भवक्षः संश्लिष्टबाहुक बहिर्निःसरति, श्रोणिगुहायामवतीर्य वा तिष्ठति तथाभूतम्। तथागतस्य च गात्राकर्षणेऽपि न विशेषहानिः। यदा तु स्कन्धपीडनमात्रेण नार्थसिद्धिस्तदा निषिद्धमपि गात्राकर्षणं विधीयत एव। बाहुभ्यां गर्भगात्रं नितम्बयो-

गृहीत्वा यावच्छक्यं निम्नतः कर्षेत् । पैच्छिल्येन भ्रश्येते चेत्करौ गर्भगात्रं वाससा वेष्टनीयम् । सहायश्चापि गर्भाशयस्कन्धं परिगृह्यावपीडयेद् हस्तानुद्भ्रंशाय तेनैव समम् । ततो योनिपरीक्षया हस्तयोः स्थितिं निद्दीत । अवतीर्णौ चेत् कूर्परकोणेऽङ्गुलिं दत्वाऽऽकृष्य क्रमश आहरेत् । यदा तु प्रसृत्योर्ध्वं गतौ योन्या न लभ्येते तदा गर्भशिरस आहरणात् प्रागेव तावुभौ कर्षणीयौ विधिना वक्ष्यमाणेन ।

सम्प्रति शिष्यते शिरस आहरणम् । परमं चरमञ्चैतद् भिषजः कर्त्तव्यम् । यतो गर्भाशयस्य क्षेपणबल गर्भाशयाद् बहिर्भूते गर्भशिरसि न मूर्च्छेति प्रायेण । आशयाद् बाह्यर्योनौ शिरसोऽवस्थानं तु नाभिनालपीडनाद् अपरान्तर्विमोक्षाद् अकालश्वसनाद्वा हेतोर्गर्भोपघाताय स्यात् । तस्मादंसनिर्गतया सहैव शिरश्चेन्न बाहरायाति विधिविशेषैस्तदाहरणस्य युक्तता स्पष्टैव ।

केचित्त्वाहुः—यदा गर्भो न लास्पन्दाङ्गविक्षेपादिना विपन्न इव लक्ष्येत, आशुप्रसवश्च शक्यो न स्य त्तदा गर्भाशयस्थेऽपि गर्भशिरसि विधिनानेन गर्भो रक्षितु शक्यः । तद्यथा बाह्वाराहरणानन्तरं भिषग् हस्तमेकं गर्भस्यानुवक्षोमुखमुपरि नीत्वा, मध्यमाङ्गुलिं नासासेतावनामिकाङ्गुलीश्च गण्डोर्ध्वहन्वस्थिषु धृत्वा, मध्यपर्वणां सङ्कोचेन करतलहृदयं शरावीकृत्य स्थापयेत् । येनापत्यपथस्य मृदुभागा गर्भमुखमण्डलादपसरेयुर्वायुश्चान्तः कृष्टो बालमुज्जीवयेत् ।

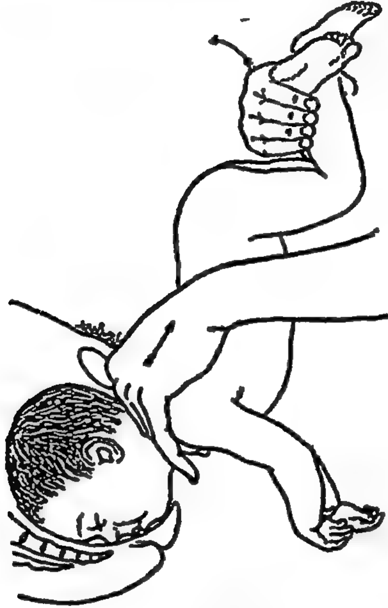
अथ शिरोबहिष्करणविधयः

तत्रैकः—(१) यत्र स्त्रिया एकतः स्थितो भिषग् हस्तैकस्य तर्जनीमध्यमाभ्यां बालं ग्रीवामूलेंऽसदेशयोरुपरि बडिशाग्र ह गृहीत्वा पुरतो बलात्त-

1 Prague's method

द्गात्रमाकर्षति येनास्य शिरः सन्धानिकायाः पश्चिमतः पीडितानुशीर्षं सङ्कुच्य तिष्ठेद्, अपरेण च हस्तेन तत्पादयुगलमवगृह्य मातुरुदराभि-

[८७ चित्रम्]
शिरसो बहिष्करणम् ।



प्रथमो विधिः ।

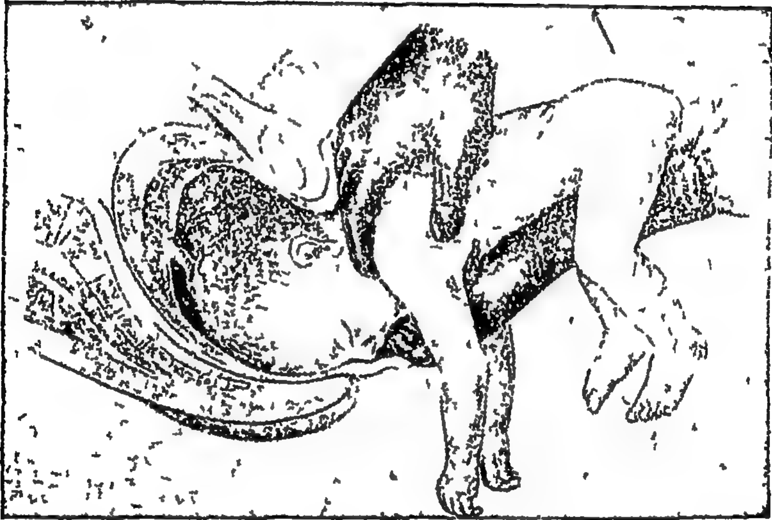
मुखं पूर्वोर्ध्वतो दोलयति त्वरया येनास्य शिरो मध्यकीलमिव स्थिरीभूतानुशीर्षमाश्रित्य चक्रगतिना सुखं द्रुतं च योनिमुखान्निर्गच्छेत् । सामान्योऽयं विधिः श्रोणिकण्ठस्याधो गुहायां स्थित एव शिरसि क्रियाकरो भवति

द्वितीयः—(२) अत्र तु भिषग् गर्भमुखादग्वर्त्तिनं स्वकरं योनौ प्रवेश्य गर्भगात्रञ्चोष्णवाससावृतं प्रकोष्ठपुरस्तल आरोह्य तदङ्गुलिद्वयं (तर्जनीमध्यमे) गर्भमुखकुहरस्यान्तर्यथाशक्यं पश्चिमतो जिह्वापृष्ठे निवेशयति येन मुखं सुगृहीतं स्याद् न चाकर्षणकाले हनुभङ्गः प्रसज्येत ।

2 Smellie's method

इतरहस्तस्य च तर्जनीमध्यमाभ्यां ग्रीवावामूलमुभयतः स्कन्धौ गृह्णाति। ततश्च मुखस्थाङ्गुलिनिर्देशेन गर्भशिरसोऽनुदैर्घ्यव्यासं श्रोण्यास्तिर्यग्व्यासेऽनुप्रस्थव्यासे वा (आयतश्रोणीकायाः) समानीय हनुं नमयति

[८८ चित्रम्]
शिरसो बहिष्करणम् ।

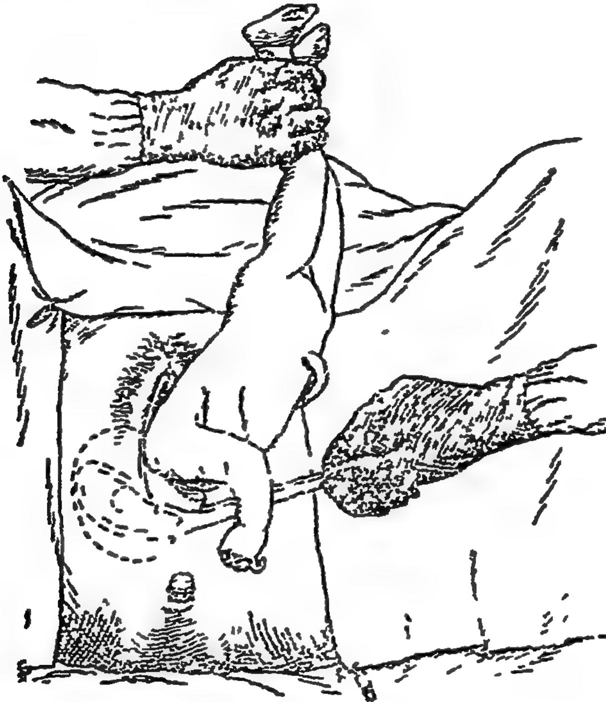


द्वितीयो विधिः ।

येन शिरः सङ्कुचितं स्यात् । सहायश्चापि जठरभित्तिस्थेन पाणिना शिरोऽधः पीडयन् (ललाटभागं विशेषेण , तत्सङ्कोचे साहाय्यमाचरेत् । अतः परञ्च भिषक् प्रागनुश्रोण्यक्ष निम्नतः पश्चिमतश्च गर्भमाकर्षति येन शिरोऽस्य श्रोणिकण्ठान्निरस्तं स्यात्, ततो निम्नतः, प्राप्ते तु निर्गमद्वारे शिरोऽनुदैर्घ्यव्यासं तिरश्चीनव्यासतोऽनुप्रस्थव्यासतो वा निर्गमद्वारस्यानुदैर्घ्यव्यासे कृत्वा गर्भगात्र पूर्वोर्ध्वतो दोलयति प्राग्वत् । कर्षणं तु स्कन्धयोरेव कार्यं न तु हनौ मुखहन्वभिघातभयात् । प्रबलाकर्षणे तु तत्रापि कक्षानुगनाडीप्रवेण्या विदारभयमस्त्येव । अपर्याप्ते तु तद्बले सहायोऽधिवस्तिदेशपीडनेन शिरोजन्मनि साहाय्यं विदधीत ।

तृतीय.—(३) गर्भो यदि चेन्मृतः पूर्वोक्तविधिभिर्निर्हर्त्तुमशक्यश्च तदा सन्दंशेन गृहीत्वा निष्कासनीय । यन्त्रन्तु गर्भगात्रं मातुरुदरा-

[८९ चित्रम्]
शिरसो वहिष्करणम्।



तृतीयो विधि.।

भिमुखमूर्ध्वमुन्नीय तस्याध कृत्वा शिरसि निवेश्यते। मातु. पिच्चिता-भिघातादिभयाच्च शिरोवेधन विधायैव सन्दशः प्रयोक्तव्य ।

अथापद्रवास्तेषां चिकित्सितञ्च ।

जघनसङ्ग —अतिकायमाना गर्भश्रोणि. ह्रस्वकायमाना वा स्त्रीश्रोणिः प्रसृतजङ्घ स्फिगुदयो दुर्बला श्राव्यश्च जघनसङ्गं जनयन्ति। त्रिविधश्च

(१) By forceps जघनसङ्ग Impaction of breech

तत्रोपक्रमः, उदरविपाटनं, जङ्घाकर्षण जघनकर्षणञ्च। तत्र, अप्रजातासु महाकायमाने वा गर्भे उदरविपाटनं क्रियते। स्फिक्पादोदयश्चेद् उत्तान-स्थितां सम्मूर्छ्य, मूलपीठं चैकत उभयतो वा सङ्कृत्य, पादपार्श्वानुकूलञ्च हस्तं योनौ प्रणिधाय, सक्थिगर्भाशययोरन्तराले ऊर्ध्वमुन्नीताभ्यामङ्गुलिभ्यां पादमेकं गर्भस्य धृत्वा बहिः कर्षेद् येन गर्भश्रोण्या आयतन ह्रस्येत। स्फिगुदये तु यत्र प्रसृतजङ्घयोः कुशावबन्धेन मध्यगात्रं दृढीभवति कटिवंशस्य पुरोनमनाच्च गर्भस्य श्रोण्यनुदैर्घ्यन्यासो दीर्घायने जघनं च योनिद्वारमनुप्राप्तमपि सज्जते (पश्चिमत्रिकासनयोस्तु विशेषेण), तत्राप्युभयतो मूलपीठं सङ्कृत्य ऊर्ध्वे स्थिते जघने पूर्वस्मिन् सक्थ्नि आजानु हस्तं नीत्वा जानुकपालिकाया अधो जङ्घामवगृह्य जानु सङ्कोचयेद् येन जङ्घाऽस्य जानुनि सङ्कुचिता नीचैरवतरेत्। ततः पादं धृत्वा योनिमुखाद् बहिः कर्षेत्। सर्वञ्चैतद् आवीनामन्तरान्तरा कुर्यात्। आवीकाले तु निश्चेष्टपाणिः स्यात्। अथ निर्गतं पादमस्यावगृह्य नीचैः कर्षेत्। प्राप्ते जानुनि पाणिनाऽन्येन तदूरुमपि धृत्वानुश्रोण्यञ्च कर्षणीयम्। यदा तु पश्चिमो नितम्ब. प्रपद्यते तदा निर्गतस्य सक्थ्न उन्नमनं कार्यम्। ततो बहिरागतं गर्भश्रोणिं हस्ताभ्यां गृहीत्वा शेषमपि गात्रभागमाकृष्य निर्हरेद् विधिना निर्दिष्टेन। अथ चेदेव गर्भश्रोणिर्न निर्याति पुनस्त-दायतनह्रासाय द्वितीयमपि पादं निर्हरेदेवमेव। कर्षेच्च ततः परम् उभौ धृत्वा पूर्ववत्।

श्रोणिगुहायामधः प्रविष्टे तु गर्भजघनेऽनवकाशतया पादस्याहरण-मशक्यं चेत्पश्येद्, अङ्गुल्याऽङ्गुलिद्वयेन वा (तर्जनीमध्यमाभ्यां, पूर्व-वङ्क्षणाविष्टेन पूर्वं वङ्क्षणदेशं पुरा शनैराकर्षेन्नतु पश्चिमम्, तदाकर्षणे पूर्वो नितम्बः सन्धानिकया उद्गृहीत आबाधकरः स्यात्। ईषदाकृष्टे तु पूर्वे नितम्बे परमपि तथैवाकर्षेत्। एवञ्च पर्य्यायेण वङ्क्षणद्वय-

---

कुशावबन्धः splinting action

माकर्षता गर्भश्रोणिः स्त्रियाः श्रोणितलभूमौ प्रापणीया। तत्र स्थिते च उभयोरपि वङ्क्षणयोः सार्धमेवाङ्गुलिप्रवेशः कर्तुं शक्यः। ऊर्वस्थिभग्न-सन्धिविश्लेषभिया च सर्वदा वङ्क्षणकोण एव कर्षणं विधेयम्। एव-मशक्ये तु प्रबलाकर्षणाय द्विगुणीकृतव्रणवस्त्रपट्टिकापाशेन (अष्टादश प्राङ्गुलदीर्घेण द्विप्राङ्गुलायतेन) पूर्ववङ्क्षणं गृहीत्वा कर्षणीयम्। एतदर्थे कुण्ठितवडिशस्य तु प्रयोगो दृष्टप्रायोऽपि न शस्यते मांससिराद्य-भिघातभयात्। एवं सन्दंशप्रयोगोऽपि न बहु मन्यते बहुभिः। यतो मन्दं प्रयुक्तं स्रंसते निगडं पीडितश्च गर्भमभिहन्ति। तस्माद्यदा गर्भो मृतः स्यादन्ये वा कर्षणविधयो विफलाः स्युस्तदैव वडिशसन्दंशयोः प्रयोगो विधेयः।

एवमप्यशक्ये गर्भं व्यापाद्य निर्हरेत्। तीक्ष्णेन वडिशेन घातन-कर्त्तर्या वा पूर्ववङ्क्षणे शाखामाच्छिद्य, आच्छिन्नां चापनीय, इतरपादं च दर्शितेन विधिनाऽवतार्य गर्भमाहरेत्। किम्वा शीर्षपीडकेन गुदविवरा-विष्टमध्यफलकेन गर्भश्रोणिं सम्पीड्य निष्कासयेत्।

उद्बाहुता—कदाचिद् गर्भभुजौ स्वस्थानादपसृतावंसकूर्परसन्ध्योः प्रसृत्य शिरसः पार्श्वयोरुद्गमनेनाबाधकरौ स्याताम्। शिरस आहरणा-त्पूर्वं तयोरधोनयनमावश्यकम्। दुष्करं चैतत्कर्म। अविधिना कृते तु गर्भस्यांसविश्लेषः प्रगण्डाक्षकयोर्भग्नश्च सम्भवति। कदाचित्तु भुज एकः स्कन्धसन्धौ प्रसृतः कूर्परसन्धौ च सङ्कुचितः शिरसः पुरस्तात् पृष्ठतो वापि तिष्ठेत्। स्मर्त्तव्यश्चात्र यत् पूर्वस्थापेक्षयोर्ध्वं स्थितस्यापि त्रिकोदरस्य महावकाशत्वात् पश्चिमस्थस्यैव भुजस्य पूर्वमधोनयनं सुकरम्। अयञ्च तद्विधि —

व्रणवस्त्रपट्टिकापाशः Fillet of gauze कुण्ठतवडिशः Blunt hook गर्भव्यापादनम् Embryotomy तीक्ष्णवडिशः Sharp hook घातनकर्त्तरी Embryotomy Scissors शीर्षपीडकम् Cephalotribe उद्बाहुता Upward displacement of the arms

भिषक् स्त्रियाः पुर उपविश्य स्थित्वा वा गर्भगात्रं पाणिनैकेन जङ्घयो-गृहीत्वा मातुरुदराभिमुखमुन्नयेद् येन योनौ हस्तप्रणिधाने सौकर्य्यं

[९० चित्रम्]



उद्गतस्य बाहोः प्रतीकारविधिः ।

भवेत् । पश्चिमश्च भुजो नीचैः कृष्टः सुखेन लब्धः स्यात् । ततो गर्भमुख-दिगनुवर्त्तिनं हस्तमपरं योन्यां प्रवेश्य गर्भपृष्ठस्योपरितः पश्चिमांसेऽङ्गली-र्नीत्वा प्रगण्डनलकमनुवर्त्तमानः कूर्परदेशमभिस्पृशेत् । तत्र पूर्णप्रसृत-श्चेद् गर्भभुजः, स्वाङ्गुलीमुखैः प्रगण्डपूर्वाधोदेशं तथा नमयेद्यथा प्रकोष्ठः सङ्कुचितः स्यात्, सहैव च समग्रां बाहुं मुखोरःपूर्वतः शनैरवतारयेत् ।। अपूर्णप्रसृतश्चेत्, कूर्परकोणेऽङ्गुल्याङ्गुलिद्वयेन वा धृत्वा वक्षसोऽग्रा-न्नीचैरवतारयेत् ।

अथ शिष्यते पूर्वभुजस्याधोनयनम्। तच्च द्विधा सम्भाव्यते तथास्थितस्याहरणं, गात्रविवर्त्तनेन पश्चाद्गतस्य वाहरणमिति।

तत्राद्यं सन्धानिकाया पश्चिमे हीनावकाशतया भुजस्य दुःसक्तत्वान्न सुकरम्। न च निर्बाध द्वितीयमपि, स्थिरीभूते गर्भशिरसि चक्रचतुर्थोर्द्धधिकं गात्रविवर्त्तने शिरोग्रीवसन्धिस्नायूनां विदारभयात् सुषुम्नाकाण्डपीडनाद्गर्भमृत्युभयाच्च। अथ चेद् विदारादिभयात् पूर्वांसस्य लघुविवर्त्तनं वक्षोदिशि क्रियते तदा बाहो' शिरसः पश्चाद् गमनेन पूर्वतोऽपि कृच्छ्रतराऽवस्था प्रसज्येत। विवर्त्तनं लघु वा स्याद् दीर्घं वा स्यात् सर्वदा गर्भपृष्ठदिश्येव विवर्त्तनं श्रेयोवहम्।

अन्यच्चापि—तृतीयचतुर्थासनयोर्यत्र गर्भपृष्ठं पश्चिमाभिमुखं भवति वक्षोदिशि विवर्त्तनं नावश्यकम्, तदा गात्रस्य चक्रचतुर्थं पृष्ठदिशि लघुनिवर्त्तनेनैव पूर्वांसः पश्चिमांसो भवेत्। एवं प्रथमद्वितीयासनयोर्यत्र गर्भपृष्ठं पूर्वाभिमुखं भवति शिरश्च श्रोणिकण्ठादुपरि स्थितमस्थिरं, तत्र चक्रार्धं यावदपि विवर्त्तनेन पूर्वस्थोंऽसः पश्चिमस्थः कर्त्तुं शक्यते। किन्तु यदा शिरः स्थिरं स्याद् आसनं च प्रथमं द्वितीयं वा, स्नाय्वाद्यभिघातभयाच्च पृष्ठदिशि दीर्घविवर्त्तनं कर्त्तुमशक्यम्, तत्र वक्ष्यमाणेन विधिना पूर्वबाहोस्तथास्थितस्यैवाहरणं श्रेयस्करम्। तृतीयचतुर्थासनयोस्तु स्थिरीभूतेऽपि शिरसि पृष्ठदिशि लघुविवर्त्तनेनैव ससिद्धिः।

पूर्वबाहोस्तथास्थितस्यैवाहरणे गर्भगात्रं यावच्छक्यं मातुः पृष्ठाभिमुखमवनयेत्, हस्तञ्च गर्भमुखदिगनुकूलं गर्भगात्रभगसन्धानिकयोर्मध्ये यावदर्धमूर्ध्वं नीत्वा कूर्परमभिस्पृशेत्, प्रकोष्ठं च कूर्परसन्धौ सङ्कोचयन् बाहुं गर्भमुखस्य पुरः कृत्वाऽवतारयेत्।

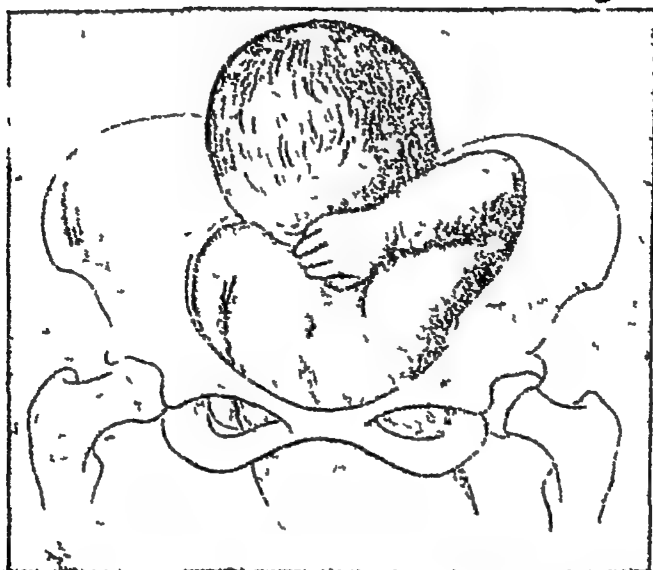
भुजस्य ग्रीवायाः पश्चिमतोऽपसरणम्*—कदाचित्तु गर्भस्योद्गता बाहुः

---

* Dorsal displacement of the arm (Nuchal position).

कूर्परसन्धौ सङ्कुच्य पश्चिमतो भ्रष्टाऽनुशीर्षेभ्याधः प्रपद्यते । महाँश्चैष उपद्रव । तत्र भ्रष्टकरनिर्दिष्टाया दिशि गर्भगात्रविवर्त्तनेन पश्चाद् गता बाहु. शिरस: पार्श्वे प्रपद्यते । तथाप्रपन्नां च पूर्ववद् (योनितो हस्तेन

[९१ चित्रम्]



ग्रीवाया. पश्चिमतोऽपसृता गर्भबाहुः ।

कूर्परेऽवगृह्य पुरतोऽधस्ताच्चावतार्य) आहरेत् । संशयश्चात्र, यतोऽनुशीर्षेण प्रपीडितत्वाद् भुजस्यापि सहैव विवर्तनं सम्भाव्यते । तत्र गर्भं रक्षितुकामो बाहु भङ्क्त्वा छित्वा वा गर्भमाहरेत् ।

शिरोनिर्गमे विलम्ब हेतवः *

(क) शिरःसङ्ग.–तत्र प्राय. शिरस. प्रसरणमेव प्रधानो हेतु. । प्रसरणं च सन्धानिकोत्तरपीडनं विनैव गात्राकर्षणेन बाह्वोः प्रसरणमिव जायते ।

* Causes of delay in Aftercoming Head (क) Impaction of the Aftercoming Head

शिरसो बृहत्कायमानता श्रोण्या वा सङ्कीर्णताऽपि शिरः प्रसारयति। पूर्वोक्तैः शिरोवहिष्करणविधिभिश्चात्र प्रतिकुर्वीत ।

(ख) शिरोग्रह—कदाचिद् गर्भस्य शिरोधराऽऽकुञ्चनवलयेन दुर्विकसितग्रीवामुखेन वा निगृह्यते। विपद्यते च तेन गर्भः। तत्रैनां सम्यग् मूर्च्छयेत्, पेशीनां शैथिल्याय। शिरोदारणं वा कार्यम्। जीवन्तं च गर्भे गर्भाशयग्रीवां सङ्कृत्य निर्हरेत्। कर्म चैतन्मातुर्व्यापत्तिकरमिति तु स्मर्त्तव्यम् ।

(ग) शिरस प्रतीपावर्त्तनम्—यदा कदा प्रतीपावर्त्तनेन गर्भस्यानुशीर्षं त्रिकोदरं मुख च सन्धानिकायाः पश्चात् प्रपद्यते। तत्र यथा हनोर्जन्म पूर्वं स्यात्तथा यतनीयम्। पूर्वोक्तः प्रेगभिषजो विधिरत्रापि कार्यकरो भवति। निर्गतगात्रं मातुः पृष्ठाभिमुखमवनमयेदिति तु विशेषः। किं वा विवर्त्तनेनानुशीर्षं पुरस्तादानीय प्रेगादिविधिभिर्निष्कासयेत् ।

(ख Gripping of the Head (ग) Malrotation of the Head

अष्टमोऽध्यायः।

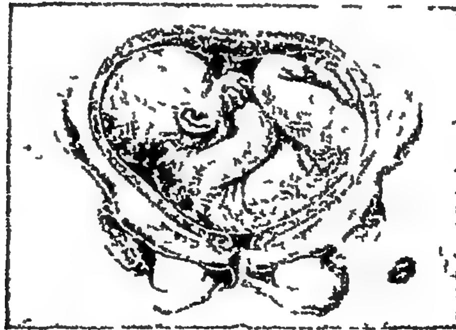
वैकृतावतरणोदया (पूर्वतोऽनुवृत्ताः)।

पार्श्वावतरणम्।

अथातः स्कन्धोदयविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।

पार्श्वावतरणं नाम गर्भाशये परिघवत् तिर्यगनुप्रस्थं वा स्थितस्य गर्भस्य पार्श्वैकदेशेनावतरणम्। तत्रास्य शिर एकस्मिन् जघनोदरे तिष्ठति, श्रोणिदेशश्चान्यस्मिन् मनागूर्ध्वतरं च। स्कन्धश्चात्र प्रायेणोदेति। कदाचित् प्रसवारम्भे उरःपार्श्वपृष्ठानां करकूर्परपादानां चान्यतमेनोदीयमानोऽपि परिणतिकाले स्कन्धोदय एव पर्यवस्यति। प्रतिशतसङ्ख्यामानञ्चास्यार्धप्रतिशतम्।

[६२ चित्रम्]
पार्श्वावतरणम्।

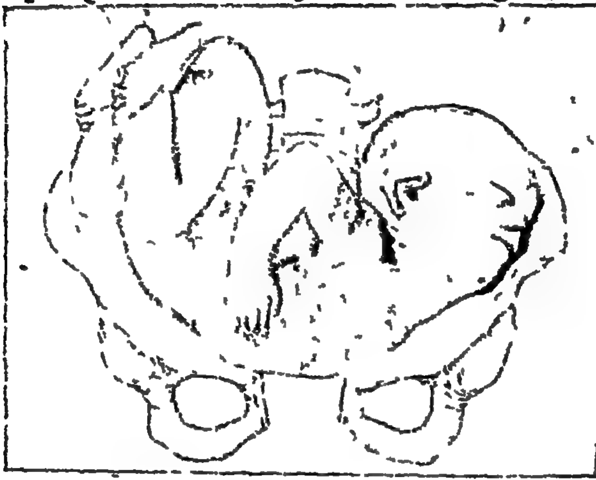


अनुप्रस्थमास्थित ऊर्ध्वमुख. परिघः।

पार्श्वावतरणम् Transverse–oblique–shoulder presentation or cross birth.

हेतुः—अत्रापि गर्भगर्भाशययोराकृतिबले विकुर्वाणा श्रोण्यवतरणोक्ता (३३०तमे पृष्ठे) भावा एव हेतवो भवन्ति ।

[९३ चित्रम्]
पार्श्वावतरणम् ।



तिर्यगास्थितोऽवाङ्मुख. परिध ।

गर्भासनानि—चत्वारि गर्भासनानि भवन्ति । नामनिर्देशस्तु अस (कूट) पृष्ठमधिकृत्य क्रियते । तद्यथा—

(१) वामपूर्वांसपृष्ठासनम्—अत्र मातु. पृष्ठाभिमुखस्य गर्भस्य शिरो वामजघनोदरं, दक्षिणासकूटश्च निम्नगो वाम श्रोणिगवाक्षमाश्रित्य वर्त्तते । बाहुल्यदर्शनादेतत्प्रधानम् ।

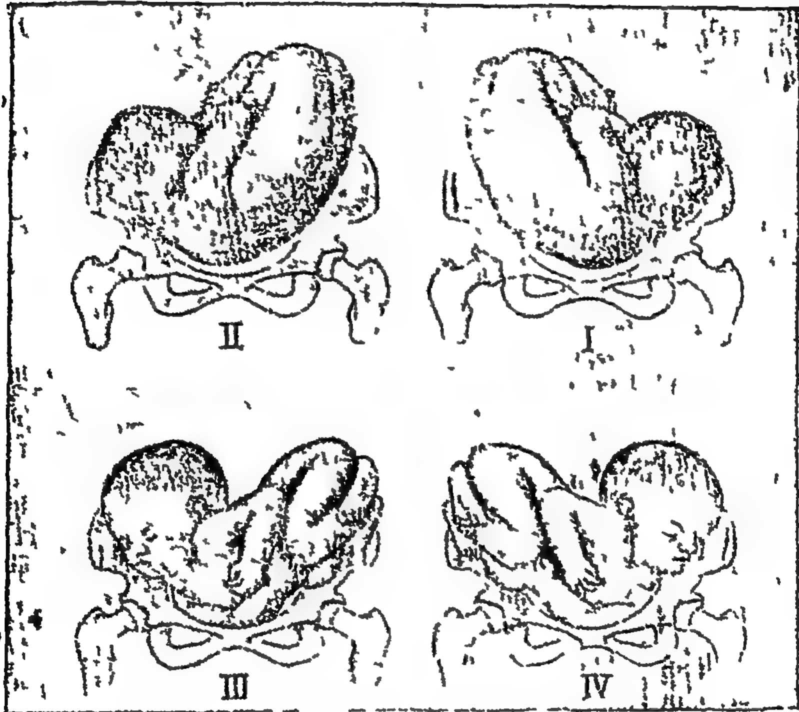
(२) दक्षिणपूर्वांसपृष्ठासनम्—मातृपृष्ठाभिमुखस्य गर्भस्य शिरो दक्षिणजघनोदर, वामांसकूटश्च निम्नगो दक्षिण श्रोणिगवाक्षमधिकृत्य तिष्ठति ।

---

(1) Left Acromio Anterior (2) Right Acromio Anterior.

(३) दक्षिणपश्चिमांसपृष्ठासनम्—इह मातुः पूर्वाभिमुखस्य गर्भस्य शिरो दक्षिणजघनोदरं, दक्षिणांसकूटश्च निम्नतो दक्षिणगवाक्षमधिशेते ।

[६४ चित्रम्]
पार्श्वावतरणम् ।



स्कन्धोदये गर्भासनचतुष्टयं यथासङ्ख्यमनुदर्शितम् ।

(४) वामपश्चिमांसपृष्ठासनम्—गर्भे पूर्वाभिमुखे । शिरो वामं जघनोदरं, वामांसकूटश्च निम्नतो वामगवाक्षमाश्रयते ।

केचित्तु गर्भपृष्ठस्य पूर्वाभिमुखत्वं पश्चिमाभिमुखत्वं चाधिकृत्य द्वे एव गर्भासने व्याख्यानयन्ति, पूर्वपृष्ठासनम् पश्चिमपृष्ठासनं चेति ।

---

(3) Right Acromio Posterior (4) Left Acromio Posterior
पूर्वपृष्ठासनम् Dorso—anterior, पश्चिमपृष्ठासनम् Dorso—posterior.

निर्णयः—

उदरपरीक्षणम्—तत्र दर्शनेन परिघवत् स्थिते गर्भे गर्भाशयोऽधिक-मायतः स्तोकमुन्नतश्च लक्ष्यते। स्पर्शनेन च गर्भाशयस्कन्धे प्रतीयते न शिरो नापि नितम्बः (तिर्यक् स्थिते त्वनु)(पार्श्विकप्रदेशयोरन्यतर-स्मिन् प्रायेण नितम्बः कदाचिच्च शिरो वाप्यनुभूयते)। तयोः प्रतीति-र्वङ्क्षणोदरयोर्भवति। एकतोऽस्थिरं गर्भशिरोऽन्यतश्च स्थिरा गर्भश्रोणिः प्रतीयते। उभयोर्मध्ये च गर्भस्य पृष्ठं हस्तपादा वा यथासनमनु-भूयन्ते। श्रोणिकण्ठमपि प्रायेण रिक्तं तिष्ठति। आसन्ने स्थितो गर्भस्यासदेशोऽपि विभावयितुं शक्यः। श्रोणिकण्ठमतिक्रान्ते तु गर्भांसे तदाकृतिविज्ञानं दुःशकम्। शिरस्तु तदापि महाश्रोण्यां स्थितं प्रायेण प्रतीतियोग्यं भवति। परीक्षणं चैतत् प्रसवारम्भात् प्राग् जरायुविदरणात्पूर्वं वा सम्भवति। विदीर्णे तु जरायौ गर्भशरीरे दृढमा-श्लिष्टो गर्भाशयः स्पर्शपरीक्षां बाधयति।

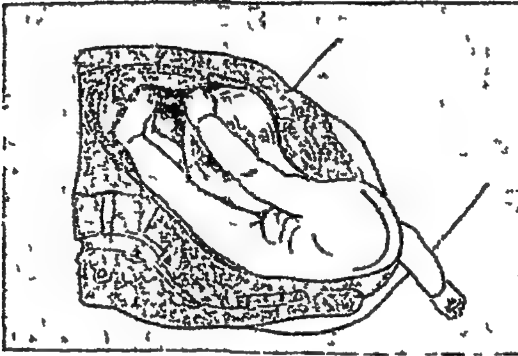
योनिपरीक्षणम्—आदौ न किमपि ज्ञापयति, दूरवर्तित्वाद् गर्भा-ङ्गानाम्। प्रवृत्ते तु प्रसवे गोस्तनवल्लम्बमानं वारिपुटकं तदन्तर्भ्रष्टा गर्भबाहुर्नाभिनाडी वाऽवगम्यते। बाहुश्च शाखा स्कन्धोदयनिदर्शकः। विदीर्णे जरायौ कतरोऽयं बाहुरिति गर्भेण सह करमेलनेन जानीयात्। वामो वामेन दक्षिणश्च दक्षिणेन यथावन्मिलति। उत्तानितश्च करोऽङ्गु-ष्ठेन यतो निर्दिशति तस्यामेव दिशि गर्भशिरः स्यात्, करपृष्ठाभिमुखञ्च गर्भपृष्ठम्। अंसफलकाचकपर्शुकाना कक्षादर्व्याश्च स्थितिरपि शिरोदिशं ज्ञापयति। कदाचित्तु विलम्बेन शूनोऽसदेशो नितम्ब इव प्रत्ययमावहन् स शाययति चेत। पार्श्वावतरणं च श्रोण्यवतरणाच्चिकित्सिते भिद्यते। तस्मात् त्रिय सम्मूर्च्छ्य सुष्ठु च परीक्ष्य निर्णेयम्। अंसनितम्बयो कक्षावङ्क्षणयोर्जानुकूर्परयोः करपादयोश्च पार्थक्यं पूर्वं (३३२ पृष्ठे) दर्शितम्।

रश्मिचित्रणं त्वत्र विशेषार्थकरम्। श्रवणपरीक्षा तु निर्णयदृशा व्यर्थैव।

निष्क्रमणविधिः—परिघनामाऽय मूढगर्भ. स्वतो निष्क्रान्तुमशक्तः। कदाचिदेव स्त्रिया महाश्रोणितया स्वस्य च (मृतोऽपुष्ट शुष्को वा चेत्) हीनप्रमाणतयाऽवकाशलाभात् त्रिधा निर्गच्छति।

[९५ चित्रम्]

स्कन्धोदय ।



स्वतोऽनुकूलनम् ।

(१) स्वत. स्थानापवर्त्तनम्—कदाचन जरायुविदरणात् प्राग् आवीबलात् स्वाङ्गचेष्टनबलाच्च अपस्रस्तपार्श्वदेश शिरोऽवतरणे श्रोण्य-वतरणे वा परिणमति।

(२) स्वतोऽनुकूलनम्—कर्हिचित्र जरायुविदरणादनन्तरमावी-

---

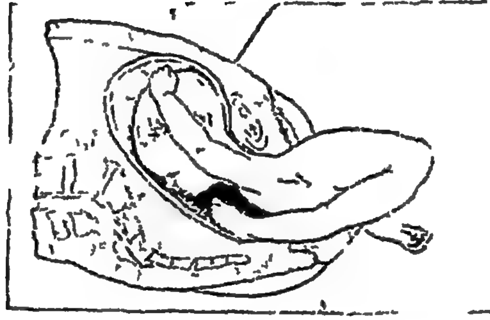
(1) Spontaneous Version or Spontaneous Rectification

(2) Spontaneous Evolution

वलाद् वस्तिगुहायां प्रविष्टे गर्भस्कन्धे सामान्यतस्तदनुबन्धी करो योनि-मुखादवस्रंसते। स्कन्धः स्पृष्टतलभूमिरन्तरावृत्त. सन्धानिकाया अधः प्रपद्यते। ग्रीवा च सन्धानिकाया पश्चादवपीड्यते। शिरस्तु श्रोणि-कण्ठादुपरि स्थित ग्रीवाव शस्योत्तरपृष्ठवंशस्य च प्रभूतावनमनाद् गात्रेण

[१६ चित्रम्]

स्कन्धोदय ।



स्वतोऽनुकूलनम् ।

युज्यते। ततस्तीव्रावीवलेन मूलपीठ विस्तार्य्य क्रमेण पर्शुका श्रोणि सक्थिनी च बहिरायान्ति। तदनु प्रपद्यते पश्चिम. स्कन्धो बाहु शिरश्च। तीव्रपीडनावनमनाभ्या च प्रायोऽत्र गर्भो विपद्यते ।

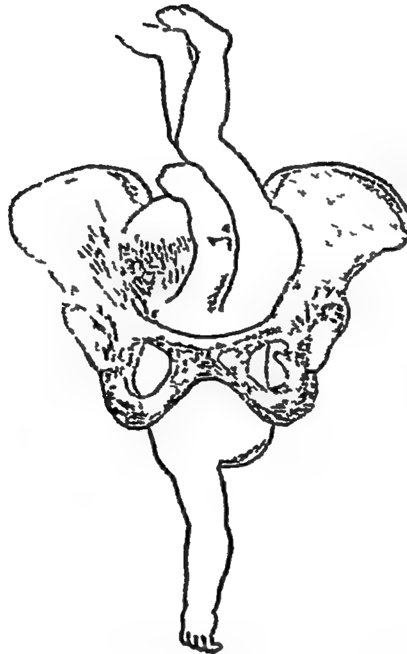
(२) जटिलनिर्गति'—कदाचित्तु स्वतोनुकूलनवत् प्रवृत्ते गर्भनिर्गमे शिरोऽपि गात्रेण सह वलाद् वस्तिगुहायां निक्षिप्यते बहिष्क्रियते च द्विगुणीभूत एव गर्भो योनिमुखात्। तदेतद् मृते शुष्के चैव गर्भे सम्भवति।

(२) Spontaneous Expulsion (Corpore Conduplicato)

शुभाशुभम्—(क) उपेक्षया गर्भसङ्गः। सङ्गेनानिरस्यमानस्तु गर्भो भृशमापीडितो रसाऽवहनान्म्रियते। (ख) गर्भेण भृशमाध्माता तनूकृता

[१७ चित्रम्]

स्कन्धोदय



जटिलनिर्गतिः।

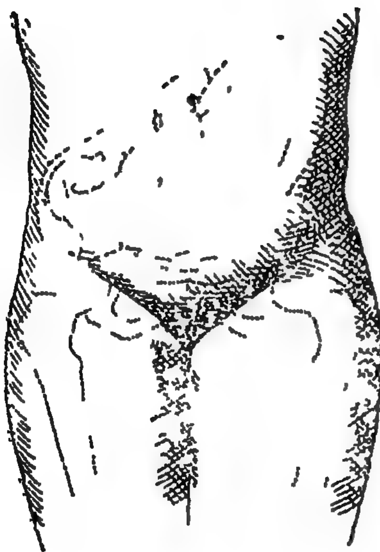
चाधरगर्भशय्या दीर्यति। (ग) हतबलो वा गर्भाशयः सङ्कोचाद्विरमति। (घ) गर्भाशयविदरणादावीप्रणाशाद्वा पूर्वमेव बलातिक्षयेन मातुर्मरणम्।

(क) Impaction of a neglected shoulder presentation
(ख) Rupture of the Uterus (ग) Secondary Inertia of the Uterus (घ) Death of the mother from sheer exhaustion.

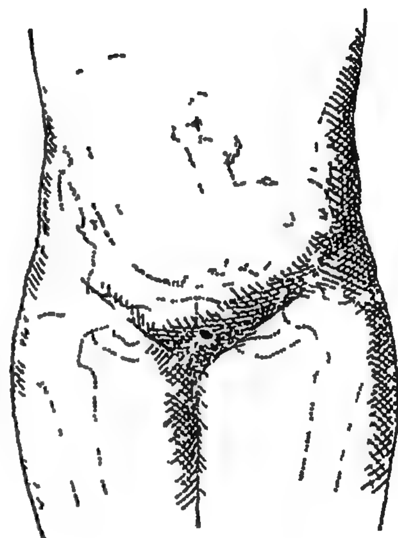
(ङ) जरायोरकालदरण नाभिनालभ्रंशः सङ्क्रमणभीतिः प्रसवोत्तरा रक्तस्रुतिश्चेति सामान्योपद्रवा अपि भवन्ति।

[६८ चित्रम्]

आसनोपक्रम ।



(क)



(ख)

एव गर्भस्थिता अग्रिमचित्रदर्शित उत्कटुकासनविधिर्यथाक्रममाश्रयणीयः।

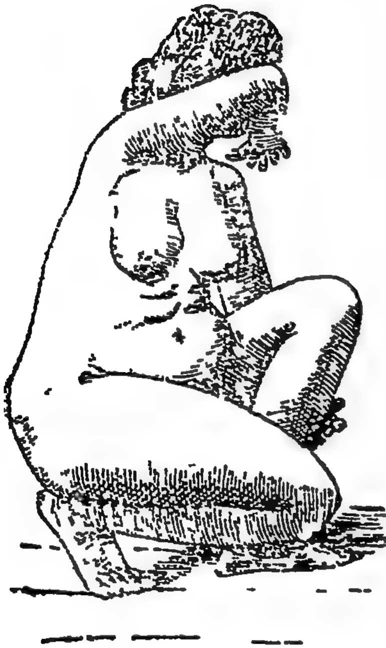
उपक्रम.—प्रसवारम्भात् प्राक् तदादौ वा निर्णीते स्कन्धोदये स्थानापवर्तनेन तत्प्रसाधन (शिरोऽवतरणे श्रोणयवतरणे वा परिवर्तनम्) सुखसाध्यम। जरायुविदरणादनन्तरमाशु विज्ञातेऽपि तत् साध्यमेव। विलम्बेन ज्ञाते तु कृच्छ्रसाध्यमसाध्य वा मन्तव्य भयावहं च। तदा स्कन्धसङ्गादन्यद् गर्भच्छेदनादिकं कर्मापि दुःशकं व्यापत्तिकरं च स्यात्।

तदेतत् स्थानापवर्त्तन—त्रिधा सम्पाद्यते आसनविशेषै. शीर्षावर्त्तनेन श्रोण्यावर्त्तनेन च । तत्र—

आसनोपक्रम.—प्रसवस्य प्रथमावस्थाया यदा जरायुरविदीर्णो उदीयमानभागश्च श्रोणिकण्ठादुपरि वर्त्तते तदा यस्मिन् पार्श्वे गर्भस्याधर-

[६६ चित्रम्]

आसनोपक्रम ।



(क)



(ख)

उत्कटुकासनविशेषौ ।

पूर्व चित्रदर्शितयोर्गर्भस्थित्योर्यथाक्रममुपयुज्येते ।

ध्रुवभाग (शिर एव प्रायेण भवति) स्यात् तस्मिन्नेव पार्श्वे प्रजायिनीं शाययेत्। तथाशयानाया गुरुत्वबलादवस्रस्ते गर्भाशयस्कन्धे गर्भः स्वयमेव विवृत्त शिरोऽवतरणे परिणमति। एवं सति नातः परं किमपि कार्यम्। कदाचित्तु पुनरावर्त्तनशङ्कया गर्भाशयपार्श्वयोर्वर्त्तीकृते वस्त्रखण्डे निवेश्य दृढोदरपट्टबन्धनेन स्थिरीकरणमपेक्षते। विवृते तु गर्भाशयमुखे जरायुं दारयेच्छिरस स्थैर्य्याय।

किंवाऽष्टानवतितमे नवनवतितमे च चित्रे दर्शितेनोत्कटुकासनविशेषेण गर्भो विवर्त्तनीय। अत्र यतोऽस्य गर्भश्रोणि स्थात्तत्पार्श्वगत सक्थि वङ्क्षणसन्धौ सङ्कोचयेत् पादतल च भूमौ स्थापयेत्, तदितर तु सक्थि वङ्क्षणसन्धावर्धं प्रसार्य पादाङ्गुलिबलेन तिष्ठेदिति।

शीर्षावर्त्तनम्—किंवा जरायुविदरणात् प्राग् बाह्यानुष्ठानेन पार्श्वावतरण शिरोऽवतरणे परिवर्त्तनीयम्। उत्तमोऽपि विधिरयं प्रायो न सम्यक् सिध्यति विफलीभवति वा गर्भस्य पुनः स्कन्धोदये विवर्त्तनात्।

श्रोण्यावर्त्तनम्—पूर्वोक्तविधीनामसम्भवे वैफल्ये वा विधिरयमुपदिश्यतेऽन्यत्रातीतकालतया गर्भाशयविदरणशङ्कनात्। तत्र द्वयङ्गुलमान विकसित ग्रीवामुख, हस्तादिकमभ्रष्टं, प्रचुर च गर्भोदक तदा संयुक्तानुष्ठानेन, पूर्णतो विकसित ग्रीवामुख चेद् आभ्यन्तरानुष्ठानेन श्रोण्यावर्त्तन विधीयते। श्रोण्यवतरणे परिवर्त्तितस्य च पाद एको योनौ कर्षणीय., येन प्रतिवर्त्तनात्पुन पार्श्वावतरणं न प्रसज्येत। आभ्यन्तरे तु विधौ स्त्रियं मूर्च्छयित्वा ग्रीवामुखे च हस्तं प्रणिधाय पृष्ठाभिमुखस्याधस्तन पूर्वाभिमुखस्य चोर्ध्वतनं पादमाकर्षेत्।

वर्त्तीकृते वस्त्रखण्डे Rolled Towels उत्कटुकासनविशेषेण By King's method शीर्षावर्त्तनम् Cephalic Version बाह्यानुष्ठानम् External method श्रोण्यावर्त्तनम् Podalic Version संयुक्तानुष्ठानम Bi—Polar method आभ्यन्तरानुष्ठानम् Internal method

एवमस्यानुशीर्षं सर्वदा पुरतो विवर्त्तते न तु पश्चिमत: । पादाकर्षणात्प्राक् च योनौ स्रस्तं करं वस्त्रेण बध्वा धारयेद् यथायं कर्षणावसरे पुनर्नोद्गच्छेदित्येके । भ्रष्टं करमुद्गमय्य पादं कर्षेदित्यपरे । अत: पर प्रकृतौ त्यजेत् । विपन्नां तु गर्भिणी गर्भं वा मत्वा सपदि निर्हरेत् ।

गर्भच्छेदनम् - यदा तु श्रोण्यावचोनमशक्य निषिद्ध दु:शकं वा पश्येत्तदा ग्रीवाच्छेदन—पृष्ठच्छेदन—कोष्ठाङ्गच्छेदनानामन्यतमेन छित्वा गर्भमाहरेत् ।

उदरविपाटनम्—तु नात्राभिमतम् । काले स्थानापवर्त्तनेनैव ससिद्धे । कालात्ययेऽपि गर्भच्छेदनमेव हितावहम्, उदरविपाटनस्य सङ्क्रमणभीत्या भयावहत्वात् । केवल यदा श्रोणिसङ्कोचेन गर्भाशयार्बुदादिना वा योनितो जनने बाधां पश्येत् तदैवोदर पाटयित्वा समुद्धरेत् ।

जटिलावतरणम् ।

जटिलावतरणम्—नाम तद्यत्र शिरसा सह हस्त: पादो वा पादद्वय वा हस्तपादौ हस्तपादा वाऽवभ्रश्य निर्यान्ति । एष एव प्रतिखुर: । यथोक्त सुश्रुतेन—"नि सृतहस्तपादशिरा कायसङ्गी प्रतिखुर." इति । गर्भशिरसः स्त्रीश्रोण्या वाऽऽकृतिप्रमाणविकारे यदा श्रोणिकण्ठं न सम्यगापूर्यते

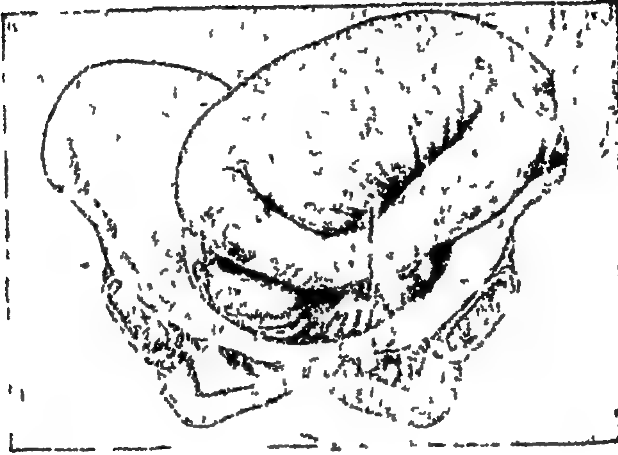
गर्भच्छेदनम् Embryotomy ग्रीवाच्छेदनम् Decapitation पृष्ठच्छेदनम् spondilotomy, कोष्ठाङ्गच्छेदनम् Evisceration

उदरविपाटनम्—Caesarian Section जटिलावतरणम् Complex or Compound Presentation,

शिरसा तदाऽप्य सम्भवति । गर्भनिर्गतिश्च प्रायोऽत्र निर्बाधा । तथाप्येवं

[१००] चित्रम्

प्रतिखुर ।



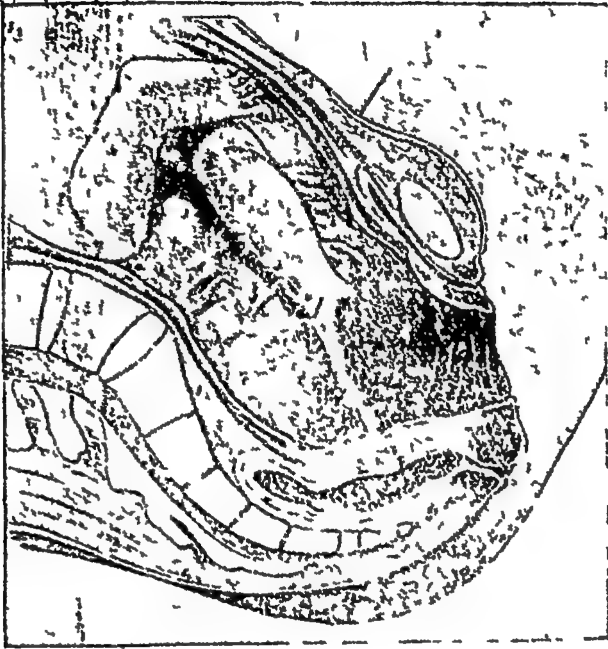
जटिलावतरणम् । शिरसा सह पादद्वयमवतरति ।

प्रतिपन्नस्य हस्तपादावूर्ध्वमुत्पीड्य शिरोऽनुलोममानीयापहरेत् । किं वा पादाकर्षणेन गर्भस्याधराधेम् अपत्यपथमानीयापहरेत् ।

---

[१०१] चित्रम्

प्रतिखुरः ।



जटिलावतरणम् । शिरसा सह पादोऽवतरति ।

नवमोऽध्यायः ।

अथातो बह्वपत्यताविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

तत्र बहुधा (अशीतावेकः) द्वौ, कदाचित् (षट्सहस्रेष्वेक) त्रय चत्वार पञ्च षडपि वा गर्भाः सहैव कुक्षिमागच्छन्तीति बह्वपत्यताऽपि प्रायो दृश्यते । आनुवंशिकश्चाय विशेष । तत्र यमो जीवति, इतरे तु प्रायेण विपद्यन्ते । ते ह्यकाले स्रंसन्ते, जाता अपि च न चिरं जीवन्ति । प्रायोदर्शनाच्च यमलगर्भ एवेह वर्णनीय. ।

हेतु प्रकारश्च —

[क] एकस्य बीजग्रन्थेर्बीजपुटकाद् बीजपुटकाभ्यां वा निर्गते द्वे स्त्रीबीजे, किं वा उभयोर्बीजग्रन्थ्योर्बीजपुटकान्निर्गते द्वे स्त्रीबीजे यदा शुक्रेण संसृज्येते तदा यमस्योत्पत्ति. । अतुल्यबीजश्चायं यम. ।

[ख] एकमपि स्त्रीबीज यदा युग्मचिरकेन्द्रवद् भवति, एकचिरकेन्द्रवदपि वा पुम्बीजेन संसर्गादनन्तर यदा गर्भस्थल्यां पूर्णतो द्विधा भिद्यते तदापि यमोत्पत्तिर्जायते । तुल्यबीजोऽय यम इति तु विशेष ।

(ग) एव त्रिकचतुष्कादिष्वपि स्वयमूह्यम् । तद्यथा—यद्येकस्मात् स्त्रीबीजात् तुल्यबीजौ यमौ द्वितीयाच्चैक एव गर्भस्त्रिभिर्वा बीजेरेकैकस्तदा गर्भत्रिकम् , यदा तु बीजद्वयाद् द्वौ द्वौ तुल्यबीजौ यमौ तदा गर्भचतुष्कम् , यदा च त्रयाणां स्त्रीबीजाना बीजद्वयाद् द्वौ द्वौ तुल्यबीजौ यमौ

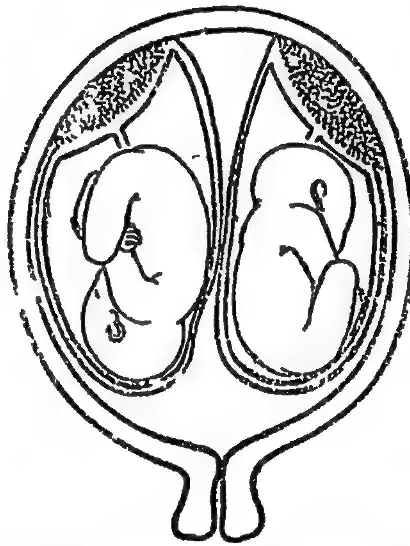
बह्वपत्यता Multiple Preg nancy द्वौ = Twins त्रय = Triplets, चत्वार = Quadruplets, पञ्च = Quintlets षट् = Sexlets, आनुवंशिको विशेष Inherited Tendency द्विधाभेद· Cleavage or Fission of embryonic area (divides into two blastoderms)

तृतीयाश्चैकस्तदा गर्भपञ्चकम्, यदा तु त्रिभिरपि द्वौ द्वौ यमौ तदा गर्भषट्कम् ।

एवं च तुल्यातुल्यबीजभेदेन द्विविधो यमः फलित. । एतच्च तयोर्वै लक्षणम् ।

[१०२ चित्रम्]

अतुल्यबीजो यमः ।



द्वे अपरे, द्वौ बहिर्जरायू द्वौ चान्तर्जरायू ।

अतुल्यबीजो यमः—

[१] द्वावपि सुतौ, द्वे अपि सुते, एका सुताऽपरश्च सुत इति लिङ्गसाम्यं लिङ्गवैषम्यं वा ।

[२] अपरा बहिर्जरायुरन्तर्जरायुश्च तयो. पृथक् पृथग् भवन्ति । अतः सम्पर्कस्थले चत्वारः कलास्तरा लभ्यन्ते । कदाचित्तु तत्र बहि-

---

अतुल्यबीजो यमः Bi—ovular Twins.

जराय्वोः स्तरद्वयमाश्लिष्य कालेन विलुप्यतेऽपि, एक एव च बहिर्जरायु-गर्भकोषद्वयं परिवृण्वन् लक्ष्यते । एवमतिसन्निकर्षेणाऽपृथग्भूतेव लक्ष्यमाणाऽप्यपरा न परमार्थेन तथा ग्राह्या, रक्तसवहनपार्थक्यस्य तत्र स्फुटत्वात् ।

[३] उभावपि प्राय समकायमानभारौ स्वस्थौ कालजन्मानौ च ।

तुल्यबीजो यम —

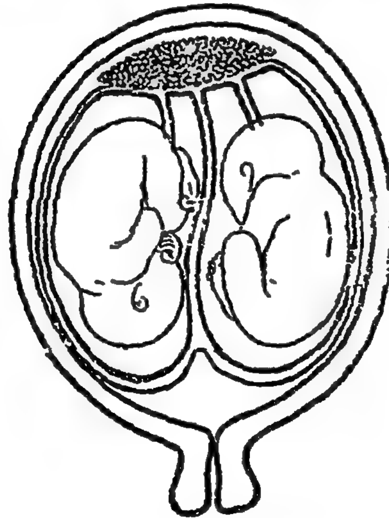
युग्मचित्केन्द्रवतो बीजाज्जातश्चेत्—

[१] उभयोर्लिङ्गसाम्यमाकृतिसाम्यं च दृष्टम् ।

[१०१ चित्रम्]

तुल्यबीजो यम

[युग्मचित्केन्द्रवतो बीजाज्जातः]



एकाऽपरा, एक एव बहिर्जरायु,

अन्तर्जरायू च द्वौ ।

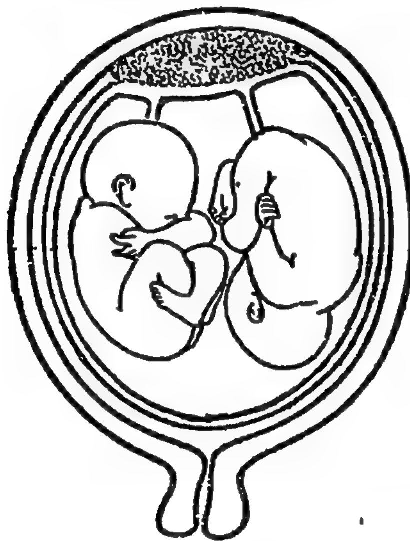
तुल्यबीजो यम Uni ovular twins (Homologous)

(२) एकाऽपरा, एक एव च बहिर्जरायुः। अन्तर्जरायुनिर्मितो गर्भकोषस्तु पृथक् पृथग्भवति। कदाचित्तु सयोगस्थलेऽन्तर्जरायुद्वय ससज्यते, दीर्यते च कालान्तरेण मध्यफलक तत्। एवमेक इव भासमानोऽपि गर्भकोषो दीर्णकलावशेषैर्भेत्तुं शक्यते।

[१०४ चित्रम्]

तुल्यबीजो यमः।

[संसृष्टबीजस्य द्विधाविभागाज्जातः]



एकाऽपरा, एको बहिर्जरायुः, एक एव चान्तर्जरायुः।

(३) हीनप्रमाणौ, विषमकायमानभारौ, अस्वस्थौ, अकाल-(कालात्पूर्वम्) जन्मानौ च प्रायेण।

द्विधाविभागाज्जातश्चेत्—

(१) उभयोर्लिङ्गसाम्यम्।

(२) एकाऽपरा, एको बहिर्जरायुः, एक एव चान्तर्जरायुः।

(इ) हीनविषमप्रमाणावस्थाविकारजन्मानौ च ।

तत्रैवमत्र—(अ) यदा संसृष्टबीजं न पूर्णतो भिद्यते तदा वियोन्याकृतिगर्भाणां जन्म ।

(आ) विषमप्रमाणत्वे यदेको न सम्यक् पुष्यति तदा त्रियतेऽपरेण पीडितः शुष्यति च ।

अन्यच्च—

अधिगर्भाधानेनापि यमोत्पत्तिर्दृष्टा । शुक्रसंसर्जनवैचित्र्यकृतश्चास्य विशेषः । द्विविधं च तत् तुल्यर्त्तुकं भिन्नर्त्तुकञ्चेति । तत्र —

तुल्यर्त्तुकमधिगर्भाधानं नाम एकस्मिन्नेव ऋतौ निर्गतयोर्द्वयोः स्त्रीबीजयोरेकदा पुरुषयोगादेकस्य, ऋतुनैव कालेनान्यदा पुरुषयोगाद्द्वितीयस्यापि च पुम्बीजेन संसर्जनम् । गौराङ्ग्या एकदा गौराङ्गयोगादन्यदा च कृष्णश्यामपुरुषयोगाज्जातौ गौरश्यामौ यमौ तत्र प्रमाणम् । तिर्यग्योनिष्वपि च दृष्टमेतत् ।

भिन्नर्त्तुकमधिगर्भाधानं नाम, एकस्मिन्नृतौ जाते गर्भाधाने मासान्तरं तदाधिकं वा परस्मिन्नृतौ निर्गतस्य द्वितीयस्त्रीबीजस्य पुम्बीजेन संसर्जनम् । तत्र यमयोरेकः पूर्णतां गतः परश्च न तथा, किन्त्वेककाले जातः परश्च द्वित्रमासात् परम्, तावुभावपि भिन्नर्त्तुकस्याधिगर्भाधानस्य ज्ञापकौ । तृतीये चतुर्थे वा मासि कौषिक्या शैषिक्याश्च गर्भावरकलाया योगाद् यावत् पन्था नावरुध्यते बीजागमश्च जायते तेनासम्भवमिदमित्याहुरेके । नेत्यन्ये ।

वियोन्याकृतिगर्भा Pathological embryos

मृतशुष्क Faetus papyraceous or Faetus Compressus

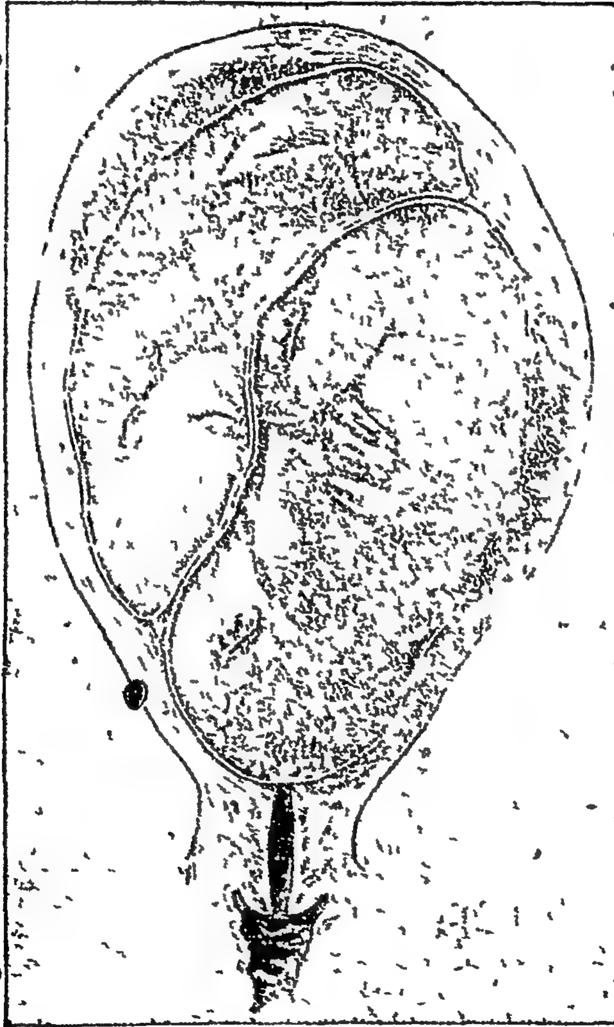
तुल्यर्त्तुकमधिगर्भाधानम् Superfecundation.

भिन्नर्त्तुकमधिगर्भाधानम् Superfaetation

बीजवाहिस्रोतःकलायाः स्थौल्येन स्रोतोऽवकाशस्य श्लेष्मार्गलिकया बीजासरणेश्च शीघ्रमेवावरोधाद्, रजःस्रुतिरिव गर्भिण्या बीजागम-

[१०५ चित्रम्]

यमलगर्भ. ।



द्वावपि शिरसाऽवतरत. ।

क्रियानिरोधाच्च, एकः पूर्ण इतरस्त्वपूर्ण इत्यस्य रसाऽसम्यग्वहनादि-भिरन्यथाप्युपपत्तेश्च ।

केवल यदा युग्मगर्भाशया स्त्री भवति बीजागमश्चापि कथञ्चिज्जायते तदैव भिन्नत्तु कस्याधिगर्भाधानस्यावसर.। इत्यम्भूतस्यैव चैक कालेऽन्यश्च कालात् पर जायते। किंवा यदा प्रथम स्त्रीबीज बीजवहस्रोतसि लग्न वर्धते परं च द्वितीयमपि पुम्बीजेन संमृज्य गर्भाशयमवाप्नोति तदापि भिन्नत्तु काधिगर्भाधानस्य सम्भव.।

गर्भावतरणानि—अत्र शिर श्रोणिपार्श्वावतरणाना समद्वन्द्वविपम-द्वन्द्वभेदात् षड् गर्भावतरणानि भवन्ति। तद्यथा—

[१०६ चित्रम्]

यमलगर्भ ।



द्वयोरपि पार्श्वावतरणम् ।

[१] द्वे शिरोऽवतरणे ४७·४% [१०५ चित्रम्]

[२] द्वे श्रोण्यवतरणे ८·४%

[३] द्वे पार्श्वावतरणे ० ४%

[४] एक शिरोवतरणम्, एकश्च श्रोण्यवतरणम ३४·२% [१०७ चित्रम्

[५] एकं शिरोवतरणम, एकश्च पार्श्वावतरणम ५·८%

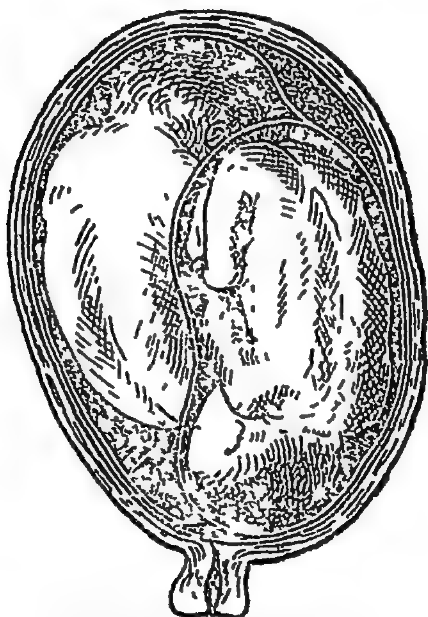
[६] एकं श्रोण्यवतरणम्, एकश्च पार्श्वावतरणम ३·६% [१०८ चित्रम्]

निर्णयः—तत्र मिथः पार्श्ववर्त्तिनौ यमौ सुकरनिर्णेयौ भवतः पूर्वापरतश्च स्थितौ दुर्विज्ञेयौ। ऊर्ध्वाधःस्थितिस्तु सुविज्ञेयाऽपि कदाचिदेव दृष्टा।

गर्भाशयश्च यमोपस्थितौ प्रायेणातिप्रवृद्ध उत्तांसितश्च भवति। "यस्या मध्ये निम्नं द्रोणीभूतमुदरं सा युग्मं प्रसूयते" इति सुश्रुतः (शा० ३)। नाभिसमीपे जठरपरिणाहश्चत्वारिंशदङ्गुलस्ततोऽप्यधिको वा दृष्टः।

[१०७ चित्रम्]

यमलगर्भः ।



एकः शिरसाऽन्यश्च श्रोण्याऽवतरति ।

सामान्यमानतो द्वित्र्याङ्गुलं सोऽधिकायत एव। अनैकान्तिकञ्चैतल्लक्षणम्, गर्भोदकवृद्धावपि दर्शनाददर्शनाच्च न्यूनमानयोर्यमयोरपि।

उदरस्पर्शेन चेद् द्वे शिरसी द्वे पृष्ठे द्वौ नितम्बौ बहुलानि च क्षुद्रशाखाङ्गानि प्रतीयन्ते तदा युग्मस्थितिर्निश्चितैव।

मध्ये निम्नम् a difinite groove between the two faetal trunks

एवं श्रुतिपरीक्षया पृथक् पृथक् स्थानद्वये द्वाभ्यां भिषग्भ्यां सम निपुणं च परीक्षणे गर्भहृदयद्वयस्य विषमसङ्ख्यानं शब्दश्रवणमपि यमलगर्भं निश्चाययति ।

रश्मिचित्रणं—तु सर्वसन्देहान् व्यपोहति ।

योनिपरीक्षणं तु नार्थकरम् । प्रसवकाले च निर्गतेऽपि प्रथमे शिशौ गर्भाशयो नातिहीयते प्रतीयते च स्पर्शादिना द्वितीयोऽपि गर्भः ।

[१०८ चित्रम्]

यमलगर्भः ।



एकः श्रोण्याऽन्यश्च पार्श्वेनावतरति ।

प्रसवक्रम —तत्र हीनकायमानौ चेद्गर्भौ सुखेन प्रसूयेते । प्रायेण पूर्वमेकः प्रपद्यते ततो द्वितीयस्ततश्च क्रमेण तयोरमरे । कदाचित्तु पूर्वमेकस्ततस्तदमरा ततोऽन्यस्तदनु च तस्यामरा । पूर्वमेको गर्भस्तदपरा च ततो द्वितीयाऽमरा तद्गर्भश्चेति क्रमस्तु द्वितीयशिशोः कृते प्राणसंशयकरः । तत्र सद्य एव द्वितीयं गर्भमाहरेत् ।

किञ्च निर्गते प्रथमे शिशौ गर्भाशयः क्षणं [दश पञ्चदश वा प्रपलानि] विश्राम्यति । द्रुतमेव च ततो विकसितादपत्यपथाद् द्वितीयः प्रपद्यते

होराधमात्रेण कालेन । कदाचित्तु कतिपयहोरा दिनं द्विनद्वय सप्ताह वा यावद् अन्तर्गतो विलम्बतेऽपि ।

उपद्रवाः—

[१] सम्बाधलक्षणानि—पादशोफार्श सिराकौटिल्यकष्टश्वसनादीनि ।

[२] गर्भजरक्तविषता—वृक्काशीना कार्योतियोगाद् गर्भवान्ति-लालामेहगर्भाक्षेपकादिरूपा ।

[३] गर्भोदकवृद्धिः—तुल्यबीजयोर्विशेषेण दृश्यते । एकस्मिन्नेव गर्भकोपे प्रायो वर्धते, उभयोर्वापि कदाचित् ।

[४] द्वारस्थाऽपरा—अपरादेशस्य विशालत्वाद् विस्थानेऽपि सा प्रसरति ।

[५] अकालप्रसूति —सप्ताहात् पश्चाद्वा पूर्वमेव प्रायेण यमयोर्जन्म ।

[६] वैकृतावतरणानि —उक्तान्येव ।

[७] परस्परासङ्ग —अनुपदमेव वक्ष्यते ।

[८] दीर्घप्रसूति —गर्भाशयदौर्बल्याद्वैकृतावतरणाच्च हेतो ।

[९] आवीप्रणाश —अतिवर्धनाद् दुर्बलो भवति गर्भाशय. ।

[१०] प्रसवोत्तरा रक्तस्रुतिः—अतिवर्धनेन गर्भाशयपेशीसूत्राणा दौर्बल्याद्, अपरास्थलस्य विशालत्वाद्, अपराया दुर्बलतराधर-गर्भशय्यायामास्थितत्वाच्च सम्भवति ।

[११] वियोन्याकृतिगर्भा.—प्रायो दृश्यन्ते ।

[१२] सङ्क्रमणभीति —प्रसूतिदैर्घ्याद् हस्तादियोगादपरास्थलस्य विशालत्वाज्जराय्वादिशेषाच्चोपसर्गभयम् ।

---

[१] Pressure Symptoms [२] Pregnancy Toxaemia [३] Hydramnios [४] Placenta Praevia [५] Premature Delivery [६] Malpresentations. [७] Interlocking [८] Prolonged Labour [९] Inertia [१०] Post-partum Haemorrhage [११] Faetal Malformations [१२] Risk from Sepsis

शुभाशुभम्—उपद्रुतत्वेऽपि मातुः कृते नास्ति विशेषभयम् । शिशुस्तु विपद्यते प्रायः, अचिरजातत्वाद् हीनमानत्वाद् दुर्बलत्वाद्वैकृतावतरणत्वाच्च । कदाचिद् रक्तालाभादन्तर्गतोऽपि कश्चिच्च् छुप्यति ।

सामान्यप्रसवोपक्रम.—आदौ प्रथम निर्गच्छत शिशोरवतरण परिज्ञेयम् । शिर श्रोणिर्वा चेत्तत्र एव स प्रपत्स्यते । निर्गते तु तन्नाभिनाल नियमेन द्वयोरन्तरयोर्बध्वा छेदनीयम् अन्यथा तुल्यबीजयोर्यमयोरपरारक्तसंवहनानुबन्धेनापरो गर्भ शोणितक्षयाद् व्यापद्येत । न च नालमाकर्षेदपि, कदाचिद् मिथोग्रथितत्वे कृष्टं तत् परनाभिनाल पीडयित्वा द्वितीयगर्भस्य मृत्युहेतु स्यात् ।

ततो द्वितीयशिशोरवतरण स्पर्शेन योनिपरीक्षया वा निर्दिशेत । शिरसा श्रोण्या वाऽवतरति चेदुपेक्ष्य । पार्श्वावतरणे तु गर्भोदकनिर्गमात् पुनरावीप्रादुर्भावाच्च प्रागेव स्थानापवर्तनं विधीयते ।

अतः परं होरार्धं होरैकं वा प्रतीक्षणीयं यावद् गर्भाशयो विश्रम्य सबलो भूत्वा पुन सङ्कोचानारभते । ततो द्वितीयं गर्भकोष दारयेत् । अथ चेत् प्रथमापराया अकालवियोगेन रक्तस्रुतिर्द्वितीयगर्भस्य हृच्छब्दानां वा मन्दता च स्यात्तदा तु पुनरावीप्रादुर्भावं न प्रतीक्षेत । झटित्येव जरायुकोषं विदार्य सवाहनोन्मर्दनादिना गर्भाशय समुत्तेजयेत । श्रोण्यावर्तनं वा विधाय सक्थिनी धृत्वा समाकर्षेत् । सन्दंशेन वा गृहीत्वा सद्य समाहरेत् । अतोऽन्यथा त्वाशुहरण न शस्यते यतो दुर्बलो गर्भाशयः सम्यगाकुञ्चनायाऽलब्धावसरो न प्रभवति सम्भाव्यशोणितातिस्रावरोधाय। एवं होरैकं प्रतीक्षितेऽपि यदा नाव्य प्रादुर्भवन्ति तदापि जरायुं दारयेद् उपमर्दयेदवपीडयेच्च गर्भाशयस्कन्धम्, अन्यथा कतिपयदिवसानन्तर प्रसविष्यमाणो द्वितीयगर्भः पुन. सूतिकाक्लेशाय स्यात् । एवं स्थितौ पोषणकसत्त्वस्योपयोगोऽपि हितावहो भवति । तद्धि गर्भाशयसङ्कोचान्

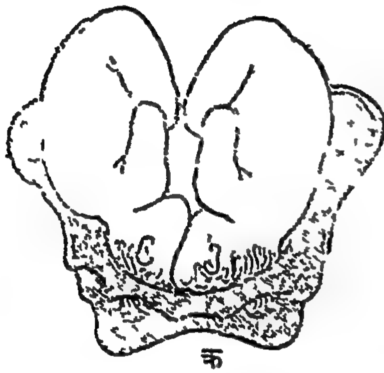
पोषणकसत्त्वम् Pituitary extract

प्रवर्त्य द्वितीयगर्भं स्रावयति दूरीकरोति च प्रसवोत्तररक्तस्रुतेर्भीतिम् । केचित्त्वाहु —"अकालजातः प्रथमशिशुरपुष्टश्चेद् द्वितीयगर्भनिर्हरणाय न त्वरणीयम्, यतः कालान्तरेण स्वयं प्रजातः स पुष्टो भविष्यतीति" ।

विशल्यभावात्परं च तृतीयावस्थायां प्रसवोत्तररक्तस्रुतेः सम्भावनातिशयेन तत्प्रतीकारदृशा सर्वथा सन्नद्धो भवेत् । गर्भाशयस्कन्धस्योपरि

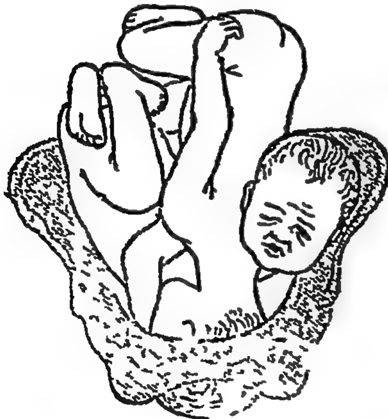
[१०९ चित्रम्]

यमयोः परम्परासङ्गः ।



क





(ख)

(ग)

परम्परासङ्गस्य त्रयः प्रकारा अत्र दर्शिताः।

(क) यदा द्वावपि शिरसाऽवतरत (ख) यदा प्रथमः शिरसाऽवतरति द्वितीयश्च पार्श्वेन । (ग) यदा प्रथमः श्रोण्यावतरति द्वितीयश्च पार्श्वेन ।

तदुत्तेजनाय सर्वदा निहितपाणिः स्यात् । अपराप्रपत्त्यनन्तरं त्वग्वेधेन "अर्गटा"ख्यं नव्यमेषजं दद्यात् । यावद्धयं प्रत्यासन्न एव च भिषक् तिष्ठेत् ।

यदा तु हीनप्रमाणौ यमौ सहैव निष्क्रमितुं प्रवृत्तौ तदोर्ध्वं स्थितो मनागुत्क्षिप्य प्रतिरोधनीयः । अथ चेदेकः शिरसाऽन्यश्च श्रोण्या योनिमुखं प्रपद्यते तदा श्रोण्याऽवतरन्तमग्रस्थमपि रोद्धुमुत्क्षिपेत् ।

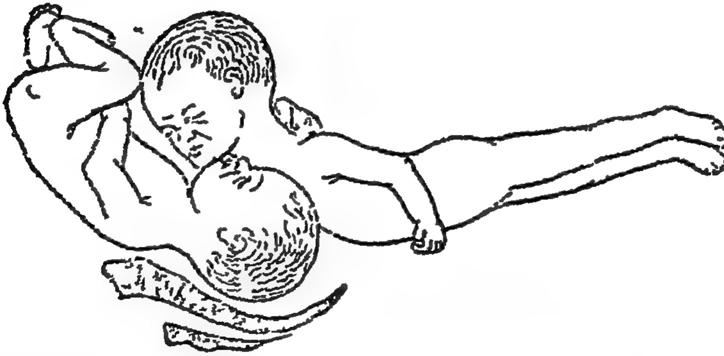
परस्परासङ्गस्तदुपक्रमश्च ।

कदाचिद् यमयोः परस्परासङ्गोऽपि दृष्टः । चतुर्विधश्च सः । तद्यथा—

[१] यदा द्वावपि शिरसाऽवतरतः, लघुनी च शिरसी सहैव श्रोणीं विशतस्तदाऽनवकाशतया गतिरोधादासङ्गः । अत्रोदरपरीक्षयाऽ-

[११० चित्रम्]

यमयोः परस्परासङ्गः ।



यदा प्रथमः श्रोण्यावतरति द्वितीयश्च शिरसा ।

तुलग्वस्थितं मध्यकायद्वयं योनिपरीक्षया च शिरोलक्षणमवुदद्वयं प्रतीयते । तत्रैकस्य शिरः श्रोणिकण्ठाद् बहिरुत्क्षिपेद् येनान्यो नीचैरागत्य प्रसूयेत । उत्क्षेपणासम्भवे तु नीचैः स्थितं शिरः सन्दशेन गृहीत्वा कर्षेत् । एवमप्यशक्ये शिरो विदार्य तं गर्भमाहरेत् ।

[२] अथ चेत् प्रथमः श्रोण्याऽवतरति द्वितीयश्च शिरसा, शिरश्च तत

प्रथमस्य गात्रेण सह श्रोण्यां संविश्य तस्य शिरसोऽग्रे प्रपद्यते, तदाऽपि स्थानाभावाद्वा, चिबुकेन चिबुकस्य निग्रहाद्वा [११० चित्रम्] चिबुकेनानुशीर्षस्य निग्रहाद्वा, अनुशीर्षेणानुशीर्षस्य निग्रहाद्वा गतिसङ्गः। अत्रोदरपरीक्षया द्वितीयशिशोर्मध्यकाय योनिपरीक्षया च तस्यैव शिरः प्रतीयते। तत्र द्वितीयगर्भस्य शिरो बन्धादुन्मोच्य ऊर्ध्वमपसारयेद् आकर्षेच्च प्रथमस्य शिरः। अशक्ये तु हीनप्रमाणौ चेद्यमौ द्वितीयमेव पुरा सन्दशेनाकृष्य निर्हरेत्। एवमप्यशक्ये प्रथमस्य शिरश्छित्वा तद्गात्रमाहरेत्। ततश्छिन्नं शिर ऊर्ध्वमुत्क्षिप्य द्वितीयगर्भं गर्भाशयस्कन्धावपीडनेन सन्दशकर्षणेन वा निर्हरेत्। तदनु च प्रथमस्य छिन्नं शिर आहरेत्। सर्वत्र च नाभिनालादिपीडनान्मृतप्रायः प्रथमशिशुरेव व्यापादनीय इति नियमः।

[३] शिरोभ्यामवतरतोर्यदैक इतरापेक्षया मनागग्रेसरो भवति तदा द्वितीयस्य शिरस्तद्ग्रीवायामाविश्य गतिं रुणद्धि। निदानं त्वस्य न सुकरम्। यतः सामान्ययोनिपरीक्षणेन दूरस्थितो गतिरोधहेतुर्न प्रतीयते, उदरपरीक्षया च केवलं युग्मस्थितेरेवावबोधः। यदा प्रसवविलम्बं दृष्ट्वा श्रोणिगतं शिरः सन्दशेनाकृष्यते प्रतिरोधश्च प्रतीयते तदा मनः संशेते। यथैव च योनौ हस्तं प्रवेश्य कराङ्गुलीः शिरस ऊर्ध्वं नीत्वा विमृश्यते तथैव सर्वं स्पष्टं भवति। तत्र द्वितीयस्य शिर ऊर्ध्वं क्षिप्त्वा प्रथमो यमः सन्दशेनाहरणीयः।

[४] अथ चेत् प्रथमः शिरसा श्रोण्या वाऽवतरति द्वितीयश्च पार्श्वेन, प्रथमस्य स्कन्धो (शिरोऽवतरणे) हनुर्वा (श्रोण्यवतरणे) च द्वितीयस्य ग्रीवया निगृह्यते तदाप्यासङ्गः [१०९ चित्रम् (ख) (ग)]। निदानं त्वस्यापि यद्यपि न सुकरं तथापि जठरपरीक्षणेनैकस्य विज्ञाते पार्श्वावतरणे पार्श्वावतरणं प्रायेणोपद्रवजुष्टं भवतीति कृत्वा पूर्ववत् सम्यग् योनिपरीक्षणेन सर्वं विज्ञातं भवति। तत्र द्वितीयगर्भस्य गात्रं मार्गतोऽपसार्य्य प्रथमगर्भं शिरसा प्रपन्नं सन्दशेन श्रोण्या प्रपन्नं च सक्थ्यादिकर्षणेन निर्हरेत्, ततश्च द्वितीयो गर्भो विवर्त्य निष्कासनीयः।

श्रोण्या प्रपन्न प्रथमो यद्येवं न निष्क्रामति तदा शिरश्छित्वा तद्गात्र पूर्वमाहरेत्, ततो द्वितीयं विवर्त्य निष्कासयेत्, तदनु च प्रथमस्य छिन्न शिर ।

प्राञ्चोप्याहुः —

(१) कन्या सुत वा सहितौ पृथग्वा, सुतौ सुते वा तनयान् बहून् वा ।
कस्मात् प्रसूते सुचिरेण गर्भम्, एकोऽभिवृद्धिश्च यमेऽभ्युपैति ॥
रक्तेन कन्यामधिकेन पुत्र, शुक्रेण तेन द्विविधीकृतेन ।
बीजेन कन्यां च सुत च सूते, यथास्वबीजान्यतराधिकेन ॥
शुक्राधिक द्वैधमुपैति बीजं, यस्या· सुतौ सा सहितौ प्रसूते ।
रक्ताधिक वा यदि भेदमेति, द्विधा सुते सा सहिते प्रसूते ॥
भिनत्ति यावद् बहुधा प्रपन्न·, शुक्रार्त्तव वायुरतिप्रवृद्ध ।
तावन्त्यपत्यानि यथाविभागं, कर्मात्मकान्यस्ववशात् प्रसूते ॥
कर्मात्मकत्वाद् विषमांशभेदाच्, शुक्रासृजोर्वृद्धिमुपैति कुक्षौ ।
एकोऽधिको न्यूनतरो द्वितीय, एव यमेऽप्यभ्यधिको विशेष ॥

—च० शा० २ ।

(२) बीजेऽन्तर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ ।
यमावित्यभिधीयेते धर्म्मेतरपुर सरौ ॥

—सु० शा० ३

(३) यदा तु कलल वायुस्तद् द्विधा कुरुते बली ।
यमौ तदा सम्भवत कृष्णात्रेयवचो यथा ॥
वायुस्त्वश्ववराहाणा देहेपु बलवान् पुन· ।
स तत्र कलल भित्वा करोति बहुपुत्रताम् ॥

—भेल० शा० १ ।

(४) · · · · ···· ·· शुक्रार्त्तवे पुनः ।
वायुना बहुशो भिन्ने यथास्वं बह्वपत्यता ॥

—वा० शा० १ ।

दशमोऽध्यायः ।

अथातो मूढगर्भविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

मूढो विलोमगतिनिरुद्धगतिर्विगुणापानमूर्च्छितो वा यो गर्भः स मूढगर्भः । उच्यतेऽपि—"तमेव कदाचिद् विवृद्धम् असम्यगागतम् अपत्यपथमनुप्राप्तमनिरस्यमान विगुणापानसम्मोहितं गर्भं मूढगर्भ इत्याचक्षते"—सु० नि० ८। "त तु गर्भं कदाचिद् असम्यगपत्यपथमनेकधा प्रतिपन्नं विगुणेनेव वायुना पीडित मोहित च मूढगर्भं इत्याहु.। विगुणानिलप्रतिपीडनवैचित्र्यादसङ्ख्यगतिश्च"—सङ्ग्र० शा० ४।

तथा च त्रिविधो मूढगर्भ. फलित.—(१)असम्यगागत:(२) अनिरस्यमानः(३) सम्मोहितश्चेति ।[1]

असम्यगागतो मूढगर्भः ।

त्रिविधा हि गर्भगतिः सङ्ग्रहकारेण निर्दिष्टा, ऊर्ध्वा (श्रोण्यवतरणम्) तिर्यग् (पार्श्ववितरणम्), न्युब्जा (शिरोऽवतरणम्) चेति। तत्र सङ्कुचितेन शिरसा श्रोणौ प्रविश्य, उचितेन पथा यदा स्वय गर्भो निष्क्रामति तदा सम्यगागतो भवति। विपरीत निष्क्रान्तस्तु असम्यगागतो मूढगर्भ.। उक्तमपि—"स चोपस्थितकाले जन्मनि प्रसूते। मारुतयोगात् परिवृत्यावाक्शिरा निष्क्रामत्यपत्यपथेन। एषा प्रकृतिर्विकृतिः पुनरतोऽन्यथा।"—च० शा० ६।

नाना विपरीतगतयश्च "वैकृत निष्क्रमणम्, वैकृतावतरणम्, वैकृतोदया:' इत्यादि प्रसङ्गेषु पूर्वं सहेतुकं व्याख्याताः। तथा च प्रतीपावृत्त-

---

[1] मूढगर्भ: Abnormal delivery (१) Malpresented (२) Partialy or Completely obstructed (३) Asphyxiated or still born

शिरः शीर्षोदयः, ललाटोदयः, मुखोदयः स्फिक्पादोदयः, स्फिगुदयः जानूदयः, पादोदयः, स्कन्धोदयः, कूर्परोदयः, हस्तोदयश्चेति सर्व एवैते विलोमगत्या प्रतिपन्ना असम्यगागता मूढगर्भा भवन्ति। प्राञ्चस्तु मूढगर्भगतिं चतुर्धाऽष्टधा च विभज्य वर्णयन्ति। वस्तुतस्तु—"स यदा विगुणानिलप्रपीडितोऽपत्यपथमनेकधा प्रतिपद्यते तदा सङ्ख्यया हीयते"

—सु० नि० ८।

गर्भस्य गतयश्चित्रा जायन्तेऽनिलकोपतः।

तत्रानल्पमतिर्वैद्यो वर्त्तेत विधिपूर्वकम् ॥ सु० चि० १५।

चतुर्धा गतिः—

[१]कीलः—"ऊर्ध्वबाहुशिरःपादो यो योनिमुखं निरुणद्धि कील इव स कीलः"। अयं जघनसङ्कोपद्रुतः, स्फिगुदयः।

[२] प्रतिखुरः—"निःसृतहस्तपादशिराः कायसङ्गी प्रतिखुरः।" अयं जटिलोदयः।

[३] बीजकः—"यो निर्गच्छत्येकशिरोभुजः स बीजकः"। अयमपि जटिलोदयः।

[४] परिघः—"यस्तु परिघइव योनिमुखमावृत्य तिष्ठेत् स परिघः"। अयं स्कन्धोदयः

अष्टधा गतिः—

(१) "तत्र कश्चिद् द्वाभ्यां सक्थिभ्यां योनिमुखं प्रतिपद्यते"। स्फिक्पादोदयः। (४० चित्रे द्वितीयः, ८४ चित्रं च)।

(२) "कश्चिदाभुग्नैकसक्थिरेकेन"। पादोदयो जानूदयो वा (४० चित्रे तृतीयचतुर्थौ)।

(३) "कश्चिदाभुग्नसक्थिशरीरः स्फिग्देशेन तिर्यगागतः"। स्फिगुदयः। (४० चित्रे प्रथमः, ८६ चित्रं च)।

---

[१] Frank breech presentation with impaction,

[२] Complex or Compound presentation.

(१) Full breech presentation (२) Footling or Knee presentation (३) Frank breech presentation

[४] "कश्चिदुरःपार्श्वपृष्ठानामन्यतमेन योनिद्वारं पिधायावतिष्ठते"। पार्श्वावतरणम्। (९३, ९४, ९२ चित्राणि)।

[५] "अन्तःपार्श्वापवृत्तशिराः कश्चिदेकेन बाहुना"। हस्तभ्रंशयुतः स्कन्धोदयः। (९५ चित्रम्)

[६] "कश्चिदाभुग्नशिरा बाहुद्वयेन"। जटिलोदयः।

[७] "कश्चिदाभुग्नमध्यो हस्तपादशिरोभिः"। जटिलोदयः प्रतिखुरः।
(१०० चित्रम्)

[८] "कश्चिदेकेन सक्थ्ना योनिमुखं प्रतिपद्यतेऽपरेण पायुम्"। पादोदयजानूदयौ।

—सु० नि० ८।

सप्तमाष्टमौ वाग्भटेन विष्कम्भसञ्ज्ञया निर्दिष्टौ। तद्यथा—

हस्तपादशिरोभिर्यो योनिं भुग्नः प्रपद्यते।
पादेन योनिमेकेन भुग्नोऽन्येन गुदञ्च यः॥
विष्कम्भौ नाम तौ मूढौ शस्त्रदारणमर्हतः।—वा० शा० १।

माधवप्रभृतिभिस्त्वष्टधा गतिः किञ्चिदन्यथैव दर्शिता। तद्यथा—

भुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः स गर्भः,
सङ्ख्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम्।
[१]द्वारं निरुध्य शिरसा [२]जठरेण कश्चित्,
[३]कश्चिच्छरीरपरिवर्तितकुब्जदेहः॥
[४]एकेन कश्चिदपरस्तु[५] भुजद्वयेन,
[६]तिर्यग्गतो भवति कश्चिद[७]वाङ्मुखोऽन्यः।
[८]पार्श्वापवृत्तगतिरेति तथैव कश्चिद्,
इत्यष्टधा गतिरियं ह्यपरा चतुर्धा॥

तत्र (१) निरुद्धशिराः = प्रतीपापवृत्तशिरस शीर्षोदयादयः। (७९ चित्रम्) (२) निरुद्धजठरः = अधोमुखः परिवो यदा जठरेण द्वारं निरुध्य तिष्ठति।

---

(४) Transverse Presentation (५) Transverse Presentation with prolapse of the hand (६), (७) Complex or Compound Presentations (८) Foot and knee presentation.

(३) कुब्जदेह = पूर्वोक्त सप्तमप्रकारः। (४) प्रपन्नैकभुजः = पूर्वोक्त पञ्चमो भेद । (५) प्रपन्नभुजद्वय = पूर्वोक्ता षष्ठी गति. । (६) तिर्यग्गत = पूर्वोक्तस्तृतीयः प्रकारः । (७) अवाङ्मुखः = मुखोदयः । (७१ चित्रम्)(८) पार्श्वापवृत्तगति. = स्वतोऽनुवृत्तनक्रमेण यदा परिघो निर्याति ।

अनिरस्यमानो मूढगर्भः ।

प्रवृत्ते प्रसवे गर्भिण्यङ्गवैगुण्याद् गर्भाङ्गवैगुण्याद् वाऽवरुद्धो गर्भो यदा निष्क्रमितुमसमर्थस्तदा निरुद्धगतित्वादनिरस्यमानो मूढगर्भो भवति । तत्र—

(क) गर्भिण्यङ्गवैगुण्य —यथा, (१) सङ्कुचितश्रोणि (२) योनिगर्भाशयश्रोणिवीजग्रन्थीनाम् अर्बुदानि (३) योनिसंवरणम् (४) गर्भकोषपरासङ्ग (५) योनिगर्भाशययोराकृतिदोषा. (६) गर्भाशयस्य अयथास्थितिः ।

(ख) गर्भाङ्गवैगुण्य —यथा, (१) अवतरणासनाङ्गसंस्थितीनां विकारा (२) ह्रस्वदीर्घस्थूलकृशादिरूपा कायमानदोषा (३) वियोन्याकृतय (४) यमलादिसङ्ख्याविकारा. (५) अर्बुदानि च ।

तत्रैषां केचिद् गर्भाशयसङ्कोचान् दुर्बलीकृत्य उपहत्य वा, केचिद् गर्भावतरणक्रियां व्याहत्य, केचिच्च विकृतोदयान् वैकृतनिष्क्रमणान् अन्यान् वोपद्रवान् संजनय्य सङ्गं जनयन्ति ।

[क] Abnormalities on the part of the mother (१) Contracted pelvis (२) Tumours (३) Stenosis & Atresia of the Cervix or Vagina (४) Retraction ring dystochia (५) Malformations of the Uterus & Vagina (६) Malpostion of the uterus

[ख] Abnormalities on the part of the foetus (१) Abnormal presentations, positions & attitudes (२) Abnormal size of entire foetus or its parts (३) Malformations (४) Twins. (५) Tumours

सम्मोहितो मूढगर्भः ।

जातमात्र एव बालः प्रकृत्या श्वसिति । कदाचित्तु निरुद्धश्वसनः क्षीणश्वसनो वा प्राणोपरोधान्मोह गतोऽपि दृष्टः। प्राणोपरोधकरा भावास्त्विमे भवन्ति—

(१) बाधित रक्तसवहनम्, यथा—(क) नाभिनालपीडनम् (ख) अपरायाः अकालवियुक्तिः (ग) गर्भाशयस्य प्रबलाकुञ्चनम् (घ) मातुस्तीव्र-रक्तक्षयः।

(२) शिरोभिघातः शिर पीडन वा, यथा—सङ्कुचितश्रोणौ सन्दंशा-कर्षणे च । श्वसनकेन्द्रमत्रोपहन्यते ।

(३) अकाले श्वसनप्रयत्नः, यथा—नितम्बोदयेऽनागतशिरा अपि शीतस्पर्शादिभिरुत्तेजितो यदान्त. श्वसितु चेष्टते तदा गर्भोदकादिकर्षणा-च्छ्वासोपरोधः।

(४) मातुर्गम्भीरमूर्च्छनञ्च।

दारुणादारुणभेदेन च द्विविधो गर्भमोह., तद्यथा—

> तत्र चेत्पाण्डुवर्णः स्याद्विषण्णो रुद्धहृद्गतिः ।
> शिथिलाङ्गो लुप्तप्रत्यावर्त्तनोऽस्पन्दनालकः ॥

---

(१) Interference with placental circulation (क) Pressure on the cord, (ख) Premature separation of the placenta (घ) Tonic Contraction of the uterus (ग) Anaemia of the mother as in severe haemorrhage (२) Severe injuries or compression of the head (३) Premature inspiratory effort (४) Deep maternal Anaesthesia दारुणमोह. Asphyxia pallida or White asphyxia अदारुणमोहः Asphyxia livida or Blue asphyxia विषण्णो रुद्धहृद्गतिः = Suffering from shock & heart failure.

शिथिलाङ्गो लुप्तप्रत्यावर्त्तनः = Muscles are flaccid and the

नष्टपायुग्रहो बालो विस्फारितकनीनकः ।
मन्दा क्षीणा अक्रमाश्च हृच्छब्दा सो हि दारुणः ॥
अथ चेन्नीलवर्णः स्यात् सरुद्धश्वसनक्रियः ।
कठिनाङ्ग स्थितप्रत्यावृत्ति सस्पन्दनालकः ॥
दृष्टपायुग्रहो बाल आकुञ्चितकनीनकः ।
मन्दा दृढा सक्रमाश्च हृच्छब्दा सो ह्यदारुणः ॥

स्मर्त्तव्यञ्चात्र—

सम्यगनुपक्रान्तश्चाऽदारुणो दारुणे पर्यवस्यतीति । अथ च प्रजायिन्या स्त्रिया श्रुतिपरीक्षयाऽऽवीनामन्तरापि गर्भहृदय मन्दमेवावबुध्येत, मन्दतरमेव चोत्तरोत्तर स्यात् (प्रतिप्रपल शतादपि न्यूनम्), शीर्षोदयेऽपि गर्भोदक गुदशैथिल्याद् गर्भविड्दूषितं स्यात् तदा गर्भोऽयं नियत मोहपरीत इति विद्यात् ।

साध्यासाध्यता—

(१) "तत्र द्वावन्त्यावसाध्यौ मूढगर्भौ" ।—सु० नि० ८ ।
"विष्कम्भौ नाम तौ मूढौ शस्त्रदारणमर्हतः" ।—वा० शा० १ ।
"तौ मूढौ हस्तेनाहर्तुमशक्याविति शस्त्रमवचारयेत्" ।—अ० स० ४ ।

(२) "शेषानपि विपरीतेन्द्रियार्थाक्षेपकयोनिभ्रंशसंवरणमक्कल्लश्वासकासभ्रमनिपीडितान् परिहरेत्" ।—सु० नि० ८ ।

(व्याख्या)—विपरीतेन्द्रियार्थादिभिर्निपीडिता जननी यैस्ते तथाविधास्तान् परिहरेदिति । विपरीतेन्द्रियार्थता = अर्थानां हीनातियोगेनानुभवनम् । अरिष्टलक्षणञ्चैतत् । आक्षेपक = गर्भाक्षेपकनामा विशिष्टो गदः । योनिभ्रंशः = गर्भाशयस्य अयथास्थिति । योनिसंवरणम् =

---

reflexes are lost. नष्टपायुग्रह = with relaxed sphincter, मन्दा. क्षीणा अक्रमाः = Slow, feeble and irregular स रुद्धश्वसनक्रियः = The respiratory function is mainly at fault

गर्भाक्षेपकः Eclampsia

योनिद्वारस्य संवृतिः। तन्त्रान्तरादुद्धृत्य डल्हणेन संवरणस्य स्वरूपमपि दर्शितम्। यथाहि—

मातरिश्वा प्रकुपितो योनिद्वारस्य संवृतिम्।
कुरुते रुद्धमार्गत्वात् पुनरन्तर्गतोऽनिलः॥
निरुणद्ध्याशयद्वारं पीडयन् गर्भसंस्थितिम्।
निरुद्धवदनोच्छ्वासो गर्भश्चाशु विपद्यते॥
बद्धां स रुद्धहृदयां नाशयत्याशु गर्भिणीम्।
योनिसंवरणं विद्याद् व्याधिमेनं सुदारुणम्॥ इति॥

मक्कल्लः = गर्भाशयस्य मूढगर्भनिरसनार्थं क्रियमाणात् प्रबलाकुञ्चनादुत्थितं दारुणं शूलम्। यद्यपि मक्कल्लप्रकरणे (सु० शा० १०) "प्रजातायाश्च नार्याः" इत्यादिना प्रजाताया व्याधिरयमिति दृश्यते तथाऽपि चकाराद् अप्रजाताया अपि भवतीति "गर्भकोषपरासङ्ग." इति वक्ष्यमाणपद्यावसरे डल्हणेन व्याख्यातम्।

(३) प्रविध्यति शिरो या तु शीताङ्गी निरपत्रपा।
नीलोद्धतसिरा हन्ति सा गर्भं स च तां तथा॥
—सु० नि० ८।

(४) गर्भकोषपरासङ्गो मक्कल्लो योनिसंवृतिः।
हन्यात् स्त्रियं मूढगर्भे यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः॥
—सु० सू० ३३।

मक्कल्लः Complete Tonic or Tetanic Contraction of the uterus

(३) Exhausted condition of the mother.

गर्भकोषपरासङ्गः = गर्भकोषस्य गर्भाशयस्य परोऽत्यर्थमासङ्गोऽतिशयेन निरोध इति डल्हणः।

Partial tonic contraction of the uterus (Retracction ring dystochia,) निरोधः क्रियानिरोध इति कृत्वा Uterine Inertia इत्यपि केचित्।

चिकित्सा

(१) "तस्य गर्भशल्यस्य जरायुपातनकर्म संशमनमित्येके, मन्त्रादिकर्माथर्ववेदविहितमित्येके, परिदृष्टकर्मणा शल्यहर्त्रा हरणमित्येके"

—च० शा० ८ ।

[आशुकारित्वात् प्रत्यक्षोपायत्वाच्च शल्यहर्त्रा हरणमेवात्र प्रधानम्]

(२) "नातः कष्टतममस्ति यथा मूढगर्भशल्योद्धरणम्, अत्र हि योनियकृत्प्लीहान्त्रगर्भाशयानां मध्ये कर्म कर्त्तव्यं स्पर्शेन, उत्कर्षणापकर्षणस्थानापवर्त्तनोत्कर्त्तनभेदनच्छेदनपीडनर्जूकरणदारणानि चैकहस्तेन, गर्भं गर्भिणीं चाहिंसता, तस्मादधिपतिमापृच्छ्य परं च यत्नमास्थायोपक्रमेत"

—सु० चि० १५ ।

"तद्विद्यसहितस्तमुपक्रमेत् । अक्रियायां ध्रुवं मरणम् । उपक्रमे संशयः"

इति सङ्ग्रहे विशेषः ।

(३) "अथ हस्तप्राप्यं शल्यं हस्तेनाहरेत् । तदशक्यं यथायथं यन्त्रेण । तथाप्यशक्यं शस्त्रेण विशस्य . "—सङ्ग्रहसू० ३७ ।

तथा च द्विविधा शल्यक्रिया फलिता, यन्त्रकृता शस्त्रकृता चेति । तत्र यन्त्रक्रियायामुत्कर्षणापकर्षणस्थानापवर्त्तनपीडनर्जूकरणानि शस्त्रक्रियायाञ्चोत्कर्त्तनभेदनच्छेदनदारणानि प्रयुज्यन्ते ।

---

(२) कर्म कर्त्तव्यं स्पर्शेन=स्पर्शदोषस्य च उद्क्रमणजनकत्वेन कष्टतमत्वं व्यक्तम् । उत्कर्षणादीनि—तत्र उत्कर्षणम्=उत्पीडनम् अधोगतस्योर्ध्वीकरणम् (Pushing up), अपकर्षणम्=ऊर्ध्वगतस्याधः कर्षणम् (Traction), स्थानापवर्त्तनम्=स्थानव्यावर्त्तनम् उत्तानस्यावाङ्मुखीकरणम् अवाङ्मुखस्य चोत्तानीकरणम् (Version—Cephalic or podalic), उत्कर्त्तनम्=ऊर्ध्वस्य कस्यचिदङ्गस्य छेदनम् , भेदनम्=आध्मातस्य गर्भकुक्ष्यादेर्विदारणम् (Evisceration), छेदनम्=सक्तस्य तत्तदङ्गस्य छेदनम् (Division, cutting, Excision), पीडनम्=चम्पनम्, वलनम् (Compression) ऋजूकरणम्=कुटिलस्य सरलीकरणम्(straightening) दारणम्=विदारणम्(Section or Incision)

असम्यगागतमूढगर्भोपक्रमः ।

[क] "तस्मात्तत्सङ्गे सूत्यः प्रयतेरन् । त्रिविधस्तु सङ्गो भवति, शिरस्यंसे जघने वा" ।　　　　　—सग्रह शा० ४ ।

"स्वभावगता अपि त्रयः सङ्गा भवन्ति, शिरसो वैगुण्याद्सयोजघनस्य वा । जीवति तु गर्भे सूतिका गर्भनिर्हरणे प्रयतेत ।"

—सु० चि० १५ ।

[प्रयतेत = नानाविधै प्रसवोपक्रमोक्तनस्यधूमजृम्भणाचङ्क्रमणप्रवाहणोत्कटुकासनादिभिरुपायैर्यतेत]

[ख] "निर्हर्त्तुमशक्ये च्यावनान् मन्त्रानुपश्रृणुयात्, तान् वक्ष्यामः—

इहामृतं च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनि ।
उच्चैःश्रवाश्च तुरगो मन्दिरे निवसन्तु ते ॥

इदममृतमपां समुद्धृतं वै,
तव लघु गर्भमिमं प्रमुञ्चतु स्त्रि ।
तदनलपवनार्कवासवास्ते,
सह लवणाम्बुधरैर्दिशन्तु शान्तिम् ॥

मुक्ताः पशोर्विपाशाश्च मुक्ताः सूर्येण रश्मयः ।
मुक्तः सर्वभयाद्गर्भ एह्येहि चिरमाविर ॥'

—सु० चि० १५ ।

क्षितिर्जलं वियत्तेजो वायुर्विष्णुः प्रजापतिः ।
सगर्भां त्वां सदा पातु वैशल्यं वा दिशन्त्वपि ॥
प्रसूष्व त्वमविक्लिष्टमविक्लिष्टा शुभानने ।
कार्तिकेयद्युतिं पुत्रं कार्तिकेयाभिरक्षितम् ॥ इति

संग्रह शा० ३ ।

[ग] "औषधानि च विदध्याद् यथोक्तानि"　　　　—सु० चि० १५ ।

[यथोक्तानि = अपरापातनोदितानि, यानीह प्रसवोपक्रमे २८९, २९० पृष्ठयोर्दर्शितानि]

[घ] "वृथाभूते च —उत्तानाया आभुग्नसक्थ्या वस्त्राधारकोन्नमित-कट्या धन्वननगवृन्तिकाशाल्मलीमृत्स्नघृताभ्यां म्रक्षयित्वा हस्त योनौ प्रवेश्य गर्भमुपहरेत् । तत्र—

(१) सक्थिभ्यामागतमनुलोममेवाञ्छेत् ।

(२) एकसक्थ्ना प्रपन्नस्येतरसक्थि प्रसार्यापहरेत् ।

(३) स्फिग्देशेनागतस्य स्फिग्देशं प्रपीड्योर्ध्वमुत्क्षिप्य सक्थिनी प्रसार्यापहरेत् ।

(४) तिर्यगागतस्य परिघस्येव तिरश्चीनस्य पश्चादर्धमूर्ध्वमुत्क्षिप्य पूर्वार्धमपत्यपथं प्रत्याजवमानीयापहरेत् ।

(५) पार्श्वापवृत्तशिरसमसं प्रपीड्योर्ध्वमुत्क्षिप्य शिरोऽपत्य-पथमानीयापहरेत् ।

(६) बाहुद्वयप्रतिपन्नस्योर्ध्वमुत्पीड्यांसौ शिरोऽनुलोममानीयापहरेत्

(७,८) द्वावन्त्यावसाध्यौ मूढगर्भौ । —सु० चि० १५ ।

[तौ मूढौ हस्तेनाहर्तुमशक्याविति शस्त्रमवचारयेत्—सग्रहशा० ४, विष्कम्भौ नाम तौ मूढौ शस्त्रदारणमर्हत —वा० शा० १]

अनिरस्यमानमूढगर्भस्योपक्रमः ।

[ङ] "एवमशक्ये शस्त्रमवचारयेद्" ।*

[१] तत्र स्त्रियमाश्वास्य मण्डलाग्रेणाङ्गुलीशस्त्रेण वा शिरो विदार्य,

---

[घ] वृथाभूते = निष्फले मन्त्रौषधिव्यापारे । धन्वनो धनुर्वृक्ष , नगवृन्तिका शल्लकी, मृत्स्नं = पिच्छा ।

(१) आञ्छेत् = आञ्छनमात्मदिक्कर्षणम्, सक्थिनी प्रसार्य तन्निर्हरेदिति ।

(४) पूर्वार्धम् = शिरोभाग , आर्जवमानीय = ऋजुभावमानीय ।

* Embryotomy [१] craniotomy— शिरोविदार्य = Perforation

शिरःकपालान्याहृत्य, शङ्कुना गृहीत्वा [चिबुके तालुनीति स ग्रहेऽधिकम्] उरसि कक्षायां वापहरेद्, अभिन्ने शिरसि चाक्षिकूटे गण्डे वा।

[२] अंससंसक्तस्यांसदेशे बाहु छित्वा,

[३] दृतिमिवाततं वातपूर्णोदरं वा विदार्य निरस्यान्त्राणि शिथिलीभूतमाहरेत्, जघनसक्तस्य वा जघनकपालानीति"।

—सु० चि० १५।

भवन्ति चात्र—

मण्डलाग्रेण कर्त्तव्यं छेद्यमन्तर्विजानता।
वृद्धिपत्रं हि तीक्ष्णाग्रं नारीं हिंस्यात्कदाचन॥
यद्यदङ्गं हि गर्भस्य तस्य सज्जति तद्भिषक्।
सम्यग्विनिर्हरेच्छित्वा रक्षेन्नारीं च यत्नतः॥
सचेतनञ्च शस्त्रेण न कथञ्चन दारयेत्।
दार्यमाणो हि जननीमात्मानञ्चैव घातयेत्॥
अविषह्ये विकारे तु श्रेयो गर्भस्य पातनम्।
न गर्भिण्या विपर्यासं प्राप्तकालं न हापयेत्॥
नोपेक्षेत मृतं गर्भं मुहूर्त्तमपि पण्डितः।
स ह्याशु जननीं हन्ति निरुच्छ्वासं पशुं यथा॥

—सु० चि० १५।

[च] "यथामार्गं दुराहरमन्यतोऽप्येवमाहरेत्"। —सङ्ग्रह सू० ३७।

(१) वस्तमारविपन्नाया कुक्षिः प्रस्पन्दते यदि।
तत्क्षणाज्जन्मकाले तं पाटयित्वोद्धरेद्भिषक्॥

—सु० नि० ८।

शिरःकपालानाहृत्य = Comminution or crushing शङ्कुना गृहीत्वापहरेत् = Extraction शङ्कु = आकुञ्चिताकारो वडिशविशेषः Blunt hook or crochet [२] cleidotomy [३] Evisceration

(१) Caesarian Section मण्डलाग्रम् Sharp hook

अथ निर्हृतशल्याया उपचारविधिः—

एवं निर्हृतशल्यां तु सिञ्चेदुष्णेन वारिणा ।
ततोऽभ्यक्तशरीराया योनौ स्नेहं निधापयेत् ॥
एवं मृद्वी भवेद् योनिस्तच्छूलं चोपशाम्यति ।

कृष्णातन्मूलशुण्ठ्येलाहिङ्गुभार्गी सदीप्यका ।
वचातिविषां रास्ना चव्यं सञ्चूर्ण्य पाययेत् ॥
स्नेहेन दोषस्यन्दार्थं वेदनोपशमाय च ।
काथं चैषां तथा चूर्णं कल्कं वा स्नेहवर्जितम् ॥

शाकत्वग्हिङ्ग्वतिविषापाठा कटुकरोहिणी ।
तथा तेजोवती चापि पाययेद् पूर्ववद् भिषक् ॥
त्रिरात्रं पञ्चसप्ताहं वत स्नेहं पुनः पिबेत् ।
पाययेद्वासवं नक्तमरिष्टं वा सुसंस्कृतम् ॥
शिरीषककुभाभ्यां च तोयमाचमने हितम् ।
उपद्रवाश्च येऽन्ये स्युस्तान् यथास्वमुपाचरेत् ॥
सर्वतः परिशुद्धा च स्निग्धपथ्याल्पभोजना ।
स्वेदाभ्यङ्गपरा नित्यं भवेत् क्रोधविवर्जिता ॥
पयो वातहरैः सिद्धं दशाहं भोजने हितम् ।
रसं दशाहं शेषे तु यथायोगमुपाचरेत् ॥
व्युपद्रवां विशुद्धां च ज्ञात्वा च बलवर्णिनीम् ।
ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यो विसृजेत् परिहारतः ॥

योनिसन्तर्पणेऽभ्यङ्गे पाने वस्तिषु भोजने ।
बलातैलमिदं चास्यै दद्यादनिलवारणम् ॥

—सु० चि० १५ ।

सम्मोहितमूढगर्भस्योपक्रमः

ततोऽस्यातिप्रबलमोहज्वरपरीतगात्रस्य क्रोशितुमपि रुजानुरूपमसमर्थस्य...पुनरिव मरणमनुभवतो लीयमानसञ्ज्ञस्य अतिसम्बाधयोनिपुटावपीडितप्राणप्रत्यागमनाय...कुर्यात् (अ० स०)—

(क) सुपरिलिखितनखया सुप्रक्षालितोपवानया कार्पासपिच्चवगुण्ठितया दक्षिणप्रदेशिन्या जिह्वोष्ठकण्ठमनुसुखं प्रमृज्यात् ।

(ख) अश्मनो: सङ्घट्टनं कर्णयोर्मूले ।

(ग) शीतोदकेनोष्णोदकेन वा सुखेन परिषेक । तथा सङ्क्लेशविहतान् प्राणान् पुनर्लभेत ।

(घ) यदि वाऽचेष्ट एव स्यात्ततः कृष्णकपालिकया शूर्पेण चैनमभिनिष्पुनीयात् ।

(ङ) दक्षिणकर्णमूले च मन्त्रमस्योच्चारयेत् "अङ्गादङ्गात्सम्भवसि" इत्यादि पूर्वोक्तम् । यद्यचेष्ट: स्याद् यावत्प्राणानां प्रत्यागमनात् । तत्तत् सर्वमेव कुर्युः । प्रत्यागतप्राणस्य च प्रकृतिभूतस्य नाभिनालं नालाभिबन्धनाच्चतुरङ्गुलस्योर्ध्वं क्षौमसूत्रेण बध्वा तीक्ष्णेन शस्त्रेण वर्धयेत् ।

सङ्ग्रह० उ० १ । च० शा० ८ ।

अथ विशेष.—

दारुणमोहोपक्रमः ।

(१) अस्पन्दमान नाभिनालं कल्पयेत् ।

(२) गुल्फौ धृत्वाऽवाङ्मुखीकरणेन कण्ठादिगतं द्रवं वामयेत् । वस्त्रगुण्ठितया कनिष्ठिकया श्लेष्मविशोधिन्या वा च कण्ठनासं प्रमार्जयेत् ।

(३) उष्णवाससाऽवृतं च गर्भम् उष्णे (११२° फा०) जले गाहयेद् होरार्धमपि यावद् वक्ष्यमाणविधिनोपक्रम्यमाणो बालो न रोदिति । विषादभयाच्च खरशीतस्पर्शादिभि. सततं तत्परिरक्षणं कार्यम् ।

अतएव वगाहानन्तरं सम्यक् प्रोञ्छनम् उष्णवाससां निचये शायनं च विधीयते।

(४) हृद्यौषधानि च प्रयुञ्जीत त्वग्वेधेन।

(५) मा व्यधात् कृत्रिमश्वसनक्रियाम्। केवलं जले गाहमानस्य वक्षःस्थलं प्रतिप्रपलं दशवारं पीडयेत्। पश्चिकावश्च कराङ्गुल्या हृदयमुपमर्दयेत्। मणिच्छदं स्फारयेद्, गुदे वा मध्यमाङ्गुलिमर्पयेत्। तालुदन्तच्छदेषु च सुरामवघर्षयेत्। जिह्वां वा गृहीत्वा कर्षेत्। पञ्च प्रतिशतप्राङ्गारिकाम्लवायुयुक्तं वा विष्णुपदामृतमाघ्रापयेद्। आधमेद्वा बालवक्त्रस्तदर्थंकारिणि स्वनिःश्वसितवायो रुद्धनासस्य तन्मुखस्यान्तः कृत्करणेन* ।

एवं हि क्षिप्रमुपक्रान्त प्रायः श्वसिति, अदारुणे वा मोहे पर्य्यवस्यति।

अदारुणमोहचिकित्सा—

(१) पादयोर्धृत्वाऽवाङ्मुखीकृत्य कण्ठनासादिकं पूर्ववच्छोधयेत्

(२) प्रतिसङ्क्रमितचेष्टा च प्रवर्त्तयेत्—स्फिचौ करतलेन मुहुर्मुहुरभिहत्य, पृष्ठवंशं वा सुरयाऽभ्यज्य, वक्षो वा कराङ्गुलिभिरवघृष्य, मुखं वा च शीतोदककणैः परिमार्ज्य, उष्णोदके शीतोदके च पर्य्यायेण वाऽवगाह्य। इति।

४—(क) Coramine 1cc into muscle or ½ cc into the umbilical vein,

(ख) Pituitrin 2 mins

(ग) Adrenalin 5 mins into the heart through the 3rd or 4th interspace close to sternum

* Mouth to mouth insufflation

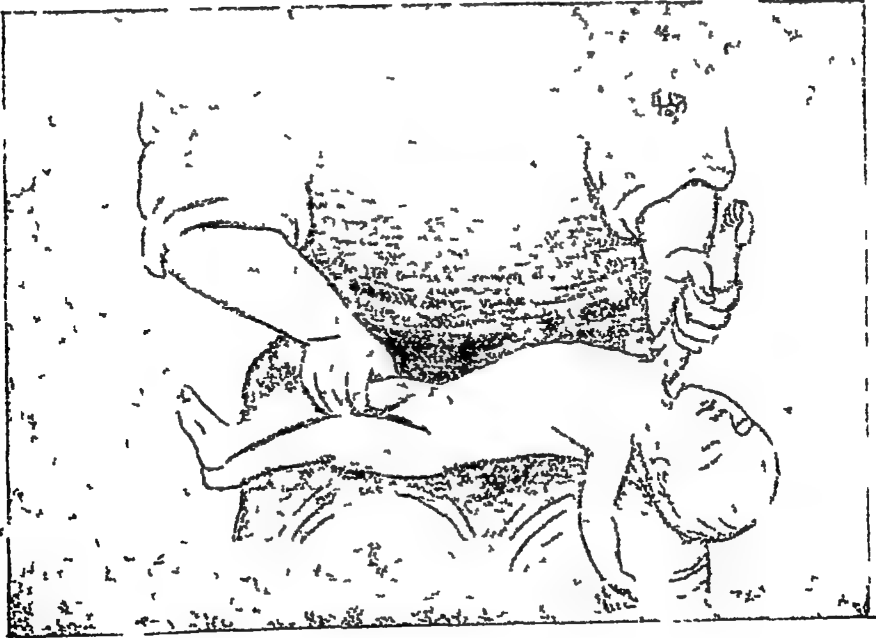
(३) यावच्च नाभिनाडी स्फुटं स्पन्देत, नैनां कल्पयेत्। अपरा हि तन्मुखेन किञ्चित् २ प्राणवातमस्य वहति।

(४) व्यर्थीभूतेषु चैषु, हृदय चेद् दृढ स्पन्दते कृत्रिमश्वसनेन पुनरुज्जीवयितु यतेत। तत्रेमे कृत्रिमश्वसनस्य विधयो भवन्ति-

(क) प्रथमविधि —चरकोक्त शूर्पेण कृष्णकपालिकया वाऽभिनिष्पवनम्।

[१११ चित्रम्]

तृतीयविधि



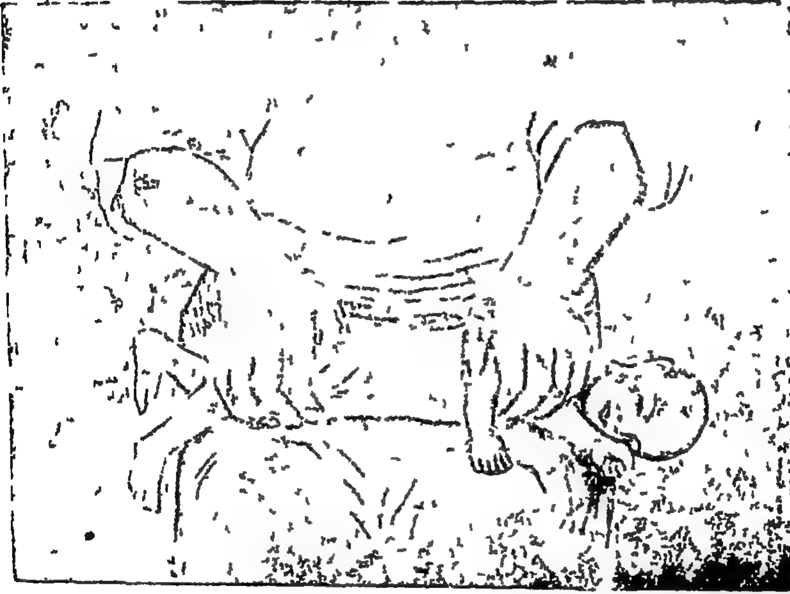
उच्छ्वसनम्

(क) Rocking method

(ख) द्वितीयविधि —उत्तानशयानस्य शिशोः पादयुगलं सहायको धत्ते । भिषक् च शिरसि स्थितः कूर्परयोः प्रगाढौ धृत्वा क्रमेणोर्ध्वं बहिरन्तश्चाकृष्य शिरःपार्श्वयोर्नयति वक्षोविकसनाय ।

[११२ चित्रम्]

तृतीयविधि ।



निःश्वसनम् ।

ततश्च नीचैरानीय ताभ्यामेवास्योरः प्रपीडयति वक्षोनिमीलनाय । दशवारं च प्रतिप्रपलं कुर्यात् ।

(ख) Sylvester's method

(ग) तृतीयविधि.—शिशु क्रोडेऽनुप्रस्थ शाययित्वा १११,११२ चित्रयो. सन्दर्शितविधिना संवलनोद्वलनाभ्यां निःश्वासोच्छ्वासौ प्रवर्त्तयेत् ।

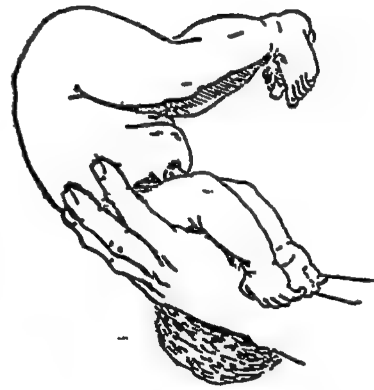
(घ) चतुर्थविधिः—११३,११४ चित्रयोदर्शित., स्पष्टश्च । प्रशस्तोऽपि विधिरयम् अकुशलेन प्रयुक्तः सन्धिविश्लेषादिक जनयति ।

[११३ चित्रम्]
चतुर्थविधिः ।



उच्छ्वसनम् ।

[११४ चित्रम्]
चतुर्थविधिः



नि.श्वसनम् ।

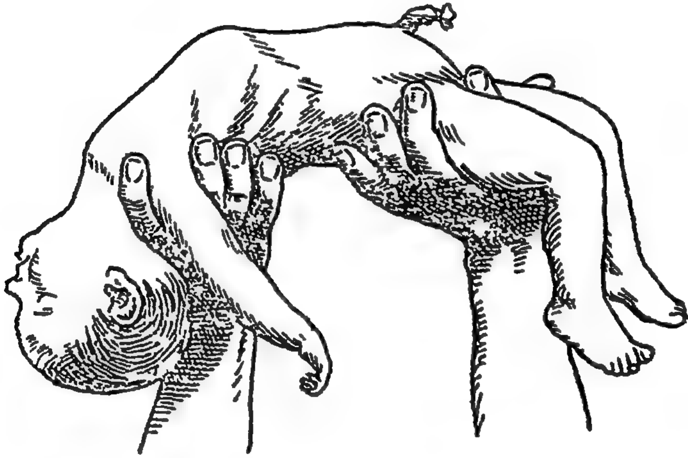
कदाचित् विषादं वर्धयित्वा सुषुम्नान्त.शोणितस्रुति च सञ्जनय्य शिशुमुपहन्त्यपि ।

(ग) Marshall Hall's method (घ) Schsultze's method

(ङ) पञ्चमविधिः—अयमपि प्रशस्तो विधिः (११५,११६ चित्रयोः) ; किन्तु न द्वितीयवद् अधिक वायु कर्षति विक्षिपति च।

[११५ चित्रम]

पञ्चमविधि' ।



उच्छ्वसनम् ।

(ङ) Byrd's method.

(च) षष्ठविधि —वस्त्रेणावेष्ट्य सन्दंशेनाङ्गुष्ठाङ्गुलिभ्यां वा जिह्वां गृहीत्वा शनैर्बहिः कर्षेत् पुनरन्त. प्रवेशयेच्च। प्रतिप्रपलं च दशवारमेव कुर्यात् ।

[११६ चित्रम]

पञ्चमविधि. ।



निःश्वसनम् ।

भवन्ति चात्र, सुख प्रसूतिकृद्योगाः—

पाठालाङ्गलिसिंहास्य मयूरकजटैः पृथक् ।
नाभिवस्ति भगालेपात् सुखं नारी प्रसूयते ॥
मातुलुङ्गस्य मूलानि मधुक मधुसंयुतम् ।
घृतेन सह पातव्य सुख नारी प्रसूयते ॥
जल च्यावनमन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितम् ।
पीत, गृहाम्बुना गेहधूमो वा सुखसूतिकृत् ॥
पुटदग्धसर्पकञ्चुक मसृणमसीकुसुम सारसहिताक्षी ।
झटिति विशल्या जायते गर्भिणी मूढगर्भाऽपि ॥
स्नुहीक्षीर तथा स्तोकं गर्भिण्याः शिरसि क्षिपेत् ।
मृतगर्भं तदा सूते गर्भिणी रमणी द्रुतम् ॥
उभपञ्चदर्शं यन्त्र यन्त्रं वोभयत्रिंशकम् ।
शरावलिखित दृष्ट्वा सुख नारी प्रसूयते ॥

उभयपञ्चदशकं यन्त्रम् ।

८	३	४
१	५	९
६	७	२

उभयत्रिंशक यन्त्रम् ।

१६	६	.
२	१०	१८
१२	१४	४

अथ सूतिकाखण्डम्

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातः सूतिकाविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः

सूतिकाकालो—नाम प्रसवानन्तरं सार्धमासमितो द्विमासमितो वा कालो यत्र सूतिकाया गर्भधारण-प्रजननप्रभावाद् वैषम्य गता धातवः कोष्ठाङ्गानि च यथास्वं परिसस्थितिं प्रत्यागच्छन्ति, स्तन्यं च प्रवर्त्तते । क्रियाशारीरदृशा तु यावत् पुनरार्त्तवदर्शनं न स्यात् तावदस्यावधिर्मन्तव्यः। उच्यतेऽपि—

(१) "अनेन विधिनाऽध्यर्धमासमुपसंस्कृता विमुक्ताहाराचारा विगत-सूतिकाभिधाना स्यात, पुनरार्त्तवदर्शनादित्येके"—सु० शा० १० ।

(२) षड्भिर्मासैः प्रसूताया धातवो रुधिरादयः ।
प्रत्यागच्छन्त्यरोगाया यथास्वं परिसंस्थितिम् ॥
—काश्यपसंहिता ।

(३) व्युपद्रवां विशुद्धां च विज्ञाय बलवर्णिनीम् ।
ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यो नियमं परिहापयेत् ॥—भावमिश्र ।

लोकव्यवहारे तु दशाहेन द्वादशाहेन वा (सूतिकास्रावोपरोधे तात्पर्यम्) स्नानादिकं कारयित्वा कालः समाप्यते । वर्त्तनाक्रमश्च सूतिकायास्त्रिधा विभज्य वर्ण्यते—अपत्यपथपरिवर्त्तनानि, स्तनपरिवर्त्तनानि, अन्य-परिवर्त्तनानि च ।

जननाङ्गपरिवर्त्तनानि ।

गर्भाशयसंवरणम्—गर्भाशयसंवरणं नाम परिवृद्धस्य गर्भाशयस्य पुनर्ह्रस्वीभवनम् । गर्भनिर्गमाद् रिक्तीभूतो गर्भाशयो नीचैरागत्य नाभिदेशे (सन्धानिकातः पञ्चप्राङ्गुलमूर्ध्वं) तिष्ठति। तस्योत्तर-

---

सूतिकाकालः Puerperium.
गर्भाशयसंवरणम् Involution of the uterus

भागः स्थूलकठिनो वर्त्तुलप्रायः, अधरभागस्तु तनुशिथिलो रूपहीनः। ग्रीवाभागोऽप्यधरगर्भाशय्यालक्षण एव, किञ्चित् स्थूलतर इति तु विशेषः। शिथिलोऽधरभाग उत्तरभाग न धारयतीति प्रसवानन्तर गर्भाशयस्य-दैर्घ्यं सहसा ह्रीयते।

आभ्यन्तरतस्तु गर्भाशयस्याऽपरादेशोऽण्डाकृतिश्चतु प्राङ्गुलदीर्घ-स्त्रिप्राङ्गुलायतो विच्छिन्नकलावशेषैरुन्नावनश्च लक्ष्यते, शेषो देशश्च मसृणप्राय. (केवल यत्र तत्र कलाया शुषिरस्तरावशेषैर्विषम इव भवति)। उत्तरशय्या पाण्डुवर्णा दृश्यतेऽधरशय्या ग्रीवा च रक्तोच्छूना। किञ्च स्फारीभूता ग्रीवाऽधरशय्यया तथैकीभावमापद्यते यथा ह्युभय्योः सीमान्त-बोधनमन्तर्मुखमपि न स्पष्टतो लक्षीभवति। अध्यर्धमासेन तु संवृतो गर्भाशयः पुनः प्रकृतिस्थो जायते। केवलं स्तोकेन प्रवृद्धतनु, कठिनतरः, अतिवर्त्तुल, क्षुद्रतरग्रीवः, दीर्घायतबहिर्मुखश्चेत्येवाऽप्रजातावस्थातो भिद्यते। संवरणे च परिवृद्धगर्भाशयस्य सर्व एव ते कलापेश्याद्यवयव-भागा परिवर्त्तन्ते। तद्यथा—

उदर्या कला—गर्भनिर्गमेन शिथिलीभूता वलिततनुश्च कलेयं शनैः शनैर्वृद्धधातुपरिचयात् प्रकृतिस्था भवति।

पेशीसूत्राणि—गर्भाशयस्य प्रवलाकुञ्चनेन पीडिता बहवो रक्तवह-प्रणालिका अवरुध्यन्ते। प्रवृद्धायतनानि च पेशीसूत्राणि रसालाभादव-शीर्यन्ते गलन्ति च। गलनोत्थिता मलाश्च सूतिकास्रावमार्गेण लसीकामार्गेण मूत्रमार्गेण चापनीयन्ते। अत एवाद्येषु दिवसेषु सूतिकाया मूत्रे नात्र-जनिकद्रव्याणि प्रचुरं लभ्यन्ते। रक्तसञ्चरणावरोधादविशुद्ध्यमानं परं परमुपचीयमानं च तक्राम्ल गलनक्रिया सम्पादयति। त्रिचतुरदिनात्परं तु यदा गर्भाशयमार्दवाद् रक्तसञ्चारः पुनर्व्यवतिष्ठते किञ्चित् तदा मलशुद्ध्या तक्राम्लक्षयाद्गलनक्रिया मन्दीभवति, मूत्रे मलद्रव्याणि हीयन्ते, संवरणक्रियाऽपि च मन्दायते। एवङ्कारं च सूत्राणां दैर्घ्यस्थौल्ययोर्ह्रसनात् पूर्ववद्भावः।

श्लेष्मधरा कला—गर्भधरकलासंसक्तो जरायुरावितया सह यदाशयाद् वियुज्यते तदा कलायाः शुषिरस्तरो विच्छिद्यते। छिन्न-शिष्टायाश्च कलाया उपरितनभागा गलित्वा सूतिकास्रावेण सह निर्यान्ति आशयान्तर्देशश्च चतुर्दशाहेन समतलप्रायो जायते। ततो मूलदेशात् पुनरुद्भूयमाना नवनवा कला प्रणष्टभागमापूरयति मासेन। अपरादेशस्तु विलम्बेन पूर्यते।

सिराधमन्यादय—सम्पीडनबलाद् धमनीनां कायमान ह्रसति। वृतीनां स्थौल्य तु न विनश्यति। क्षुद्राणां तु कासाञ्चित् पेशीमध्यवर्तिनां लुप्यते स्रोतश्चावरुध्यते संयोजकधातुपूरितः। केशप्रतीकाशाना तु बहूनां प्रणालिकाना सर्वथैव विलोपः। सिराकुल्याश्च रक्तस्कन्दरुद्धाः शनैः शनैः पीतपिण्डमिव परिणमन्ते। रसायन्यो नाड्यश्चापि च प्रकृतिं गच्छन्ति।

भारः कायमानञ्च—गर्भाशयो हि सद्यः प्रसूतायाः प्रायेण षट्-प्राङ्गुलदीर्घः सार्धचतुःप्राङ्गुलायतः, सार्धत्रिप्राङ्गुलवेधः शेटकाधिक-भारो भवति, सन्धानिकातः पञ्चप्राङ्गुलमूर्ध्वं च वर्तते। क्रमेण हीयमानश्च यथाकालमरोगायाः प्रकृतिभाव (३"×२"×१") मापद्यते प्रकृतिभूतस्य भारस्तु द्विप्रशुक्तिमितो दृष्टः। सन्धानिकाया उपरि गर्भाशय-स्कन्धस्य सीमावेक्षणेन च क्षयक्रमो निर्धार्य्यते। मापनकाले मलमूत्रा-शययोः शुद्धिरावश्यकी, अन्यथा गर्भाशयस्योद्गमनाद् भ्रान्तिः स्यात्। प्रत्यहं च प्राङ्गुलार्धमानेन गर्भाशयः क्षीयते। समान्यतश्चतुर्थे दिवसे गर्भाशयस्कन्धो नाभेरध आयाति, दशाहेन सन्धानिकायाः पृष्ठतः, पञ्चदशाहेन च श्रोणिकण्ठस्याधः प्रपद्य सर्वथा वस्तिगतो भवति। क्षयो-परोधस्तु विकृतिलक्षणम्। एव सहसा परिक्षयोऽपि गर्भाशयस्य स्थान-विच्युतिं दर्शयति।

बहिर्मुखं च गर्भाशयस्य शीघ्रं सङ्कोचं गच्छदपि कियत्काल मृदु विस्फारणार्हं च तिष्ठेत्। सप्ताहान्तेऽपि तस्मिन्नङ्गुलिप्रवेशः कर्त्तुं शक्यः।

किञ्च सकृत्प्रजाताया दृढो गर्भाशय प्राचीरिकाणां सम्यङ् मेलनेन न शेषदोष स्यात् । बहुप्रजातायास्तु शैथिल्येन कदाचिद् रक्तस्कन्दाद्यवशेषरूपो दोषस्तिष्ठेत् । शेषदोषनिर्हरणाय यतमाने तु गर्भाशये मक्कल्लाख्यशूलमस्या उपजायते । स्तन्यचूषणकाले प्रवृत्तः स्तनहर्षः शूलमेनं वर्धयति । शाम्यति च शूलमेतद् दिनैकेन दिनद्वयेन वा प्रायः ।

बीजवहस्रोतसी स्नायवश्च—यथा यथा गर्भाशयो विपरिणमते तथा तथा स्थानसंस्थानादिषु विपरिणममाना इमेऽवयवा अपि स्वभावमापद्यन्ते ।

योनि—मृद्वी विस्तीर्णा कदाचन (सकृत्प्रजातायां) दीर्णाऽपि च योनि पक्षेण मासेन वा विपरिणममाना स्वस्था भवति ।

सूतिकास्रावः—सूतिकास्रावो नाम प्रसवानन्तरं सप्ताहं द्विसप्ताहं वा योनिमुखाज्जायमानो व्रणास्रावविशेषः । स चादौ त्रिचतुरदिनं सरुधिरो निर्गच्छति शोणितबहुत्वात्, ततः पञ्चषदिनं पीतावभासो रक्तमस्तुप्राचुर्याद्, दशाहात्परञ्च सततं क्षीयमाणो रक्तमस्तुमात्रः श्वेतकणश्लेष्मस्रावप्राचुर्याच्छ्वेतपिच्छिलः । सामान्ये योन्यास्रावे च तत एष पर्यवस्यति । छिन्ना गलिताश्च जराय्वादिकलाभागा अपि सूतिकास्रावे लभ्यन्ते ।

अदुष्टश्च सूतिकास्राव उग्रगन्धोऽपि न पूतिगन्धो दृष्टः । तत्र गर्भाशयाद् गृहीत आस्रावो जीवाणुविरहितो भवति । दशाहात्परं योन्या गृहीते तु विविधा अपूयजनना जीवाणवो लभ्यन्ते । अनम्लत्वाच्च सूतिकास्रावस्य योनौ सङ्क्रमणसम्भव । परिमाणन्त्वस्य न नियतम्, अर्धशेटकत शेटकं यावद्दर्शनात् । गर्भस्य गुरुत्वमानम्, अपरायाः परिणाहमानम्, स्त्रिया रजःस्रावमानम्, प्रसवकाले स्रुतरक्तमानञ्च सूतिकास्रावमानं प्रभावयन्ति । तत्राद्यत्रिकस्य वृद्धिः सूतिकास्रावमानं वर्धयति क्षयश्च क्षपयति । चतुर्थस्य तु वृद्धिस्तन्मानं ह्रसयति क्षयश्च वर्धयति । एवं स्तनपायनेनापि सूतिकास्रावमानं हीयते । काले लुप्तशोणितायाः

रक्तस्य पुनर्दर्शनन्तु संवरणक्रियाया व्याघातं सूतिकाया अकालचेष्टितं वाख्यापयति ।

तथा च पुरा निर्बाधा स्रुतिः, ततः क्रमेण परिच्चयः, यथोक्तो वर्णभेदः, अविस्रगन्धिता चेत्स्यात् सूतिकास्रावं निर्दुष्टमादिशेद्; अतोऽन्यथा तु विकृतम् । सहसा निरुद्धस्तु सङ्क्रमणारम्भं द्योतयति । वासोरञ्जनविशेषेणापि दुष्टमदुष्टं वा विनिर्दिशेत् । तद्यथा—दुष्टे रञ्जनलक्ष्मणः केन्द्रभागो मन्दरक्तवर्णः केन्द्रबहिर्भाग आरक्तवर्णः प्रान्तभागश्च स्फुटवर्णतया सम्यक् परिच्छिन्नो भवति । निर्दुष्टे तु केन्द्रभागो रक्तवर्णः केन्द्रबहिर्भागो मन्दतरवर्णः प्रान्तभागश्च हीनवर्णतयाऽपरिच्छिन्न इव लक्ष्यते ।

स्तनपरिवर्तनानि ।

तृतीयेऽह्नि चतुर्थेऽह्नि वा स्तन्यमस्याः प्रवर्त्तते वास्तविकम् । प्रवर्त्तनोन्मुखं च स्तन्य स्तनयोरपीनत्वं काठिन्यं स्पर्शाक्षमत्वं सिराहर्षं कक्षाग्रन्थीना वृद्धि ज्वरं चापि करोति । आदौ दिनद्वये तु यत् क्षीरं स्रवति, तद् वास्तविकक्षीराद् भिन्नमेव । पीयूषमिति च तत्संज्ञानम् । तदेतत् सुपीतं तीव्रक्षारस्वभावं भवति, तप्तमतप्तं वापि च कदाचित् सङ्घातभावं भजते । सूक्ष्मवीक्षणेन स्थूला वसाकणिका वर्त्तुलप्राया द्वित्रिचित्केन्द्रवन्तः पीयूषकणाश्च दृश्यन्ते । त्रिचतुरदिनेष्वेव च पीयूषकणानां विलोपः । वास्तविक स्तन्य तु मृदुक्षारस्वभावं पीयूषकणरहितं शङ्खावभासं च भवति, प्रतनकं शर्करा खनिजद्रव्याणि लवणानि च विद्रुतानि स्तन्यमस्तुनि वर्त्तन्ते । परिमाणं त्वस्य न नियतम्, आहारानातुर्यसौमनस्याचूषणादिभावापेक्षत्वात् । नवमासावधि यथोत्तरं वर्धते इति तु प्रकृतिः । सहसा मानक्षयस्तु सङ्क्रमणदशाया ज्ञापकः ।

पीयूषम् = Coostrum पीयूषकणा = Colostrum = Corpusles

शंखावभासम् = Pale blue

भवन्ति चात्र—

रसप्रसादो मधुरः पक्वाहारनिमित्तजः ।
कृत्स्नदेहात् स्तनौ प्राप्तः स्तन्यमित्यभिधीयते ॥
धमनानां हृदिस्थानां विवृतत्वादनन्तरम् ।
चतूरात्रात्त्रिरात्राद्वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्त्तते ॥
तदेवापत्यसंस्पर्शाद् दर्शनात् स्मरणादपि ।
ग्रहणाच्च शरीरस्य शुक्रवत् संप्रवर्त्तते ॥
स्नेहो निरन्तरस्तत्र प्रसवे हेतुरुच्यते ।

—सु० नि० १० ।

करोति स्तनयोः स्तन्यं पिपासां हृदयद्रवम् ।
कुक्षिपार्श्वकटीशूलमङ्गमर्दं शिरोरुजाम् ॥
एतत्स्तन्यागमोत्थस्य ज्वरस्योक्तं स्वलक्षणम् ।
स हि पीयूषसंशुद्धौ क्षममात्रेण तिष्ठति ॥

—काश्यपसंहिता

शेषाङ्गपरिवर्त्तनानि

रक्तवहसंस्थानम्—गर्भिणीहृदयस्य या स्वल्पस्थूलता दृष्टा, सूतिकाकाले सा क्रमशो लुप्यति, शिखरप्रतिघातश्च स्वस्थानं प्रपद्यते । मर्मरध्वनिरपि बहुधा श्रूयते । धमनीप्रतिघाता. (नाडीगतिः) स्वाभाविकप्रमाणादपि मन्दायन्ते (पञ्चाशत् षष्टिः) । सुलक्षणञ्चैतत्, सर्वं सुष्ठिवति ज्ञापनात् । हेतुत्वेन च भण्यते प्राणदाख्यनाड्याः समुत्तेजितत्वम्, धमनीनां परिवृद्धवतित्वम्, सूतिकायाः शय्याश्रितत्वम्, गर्भाशयात् प्रसृतस्य मेदसो रुधिरे समुपस्थितत्वम्, प्रसवे शोणितस्रावेण रक्तधातोर्दौर्बल्यञ्च । ज्वरादृते परिवृद्धा (नवत्यधिका) नाडीगतिस्तु

स्तन्यागमोत्थो ज्वर. Milk-fever, मर्मरध्वनि. Soft blowing murmur

रक्तस्रुतिं हृद्रोगं मनोऽभिघातं वा ज्ञापयति। आदौ श्वेतकणोत्कर्षः स्कन्दकद्रव्यप्राचुर्यं च रक्ते दृष्टम्।

तापक्रम.—प्रसवोत्तरं प्रथमे दिने प्रायेण मन्दज्वरः (प्राकृतमानादर्धांशाधिकः, एकांशाधिको वा) सञ्जायते। आयासजन्यश्चायम् अचिरेणैव हीयमानः कतिपय (द्वादश) होराभ्यन्तरमेव शाम्यति। तृतीये चतुर्थे वा दिने एकोत्तरशतांशप्रायः स्तन्योत्थज्वरोऽपि दृष्टः। दृश्यते च सूतिकाकाले तापक्रमस्य स्वल्पोऽस्थिरश्च न्यूनाधिकभावः सामान्यैरपि हेतुभिः। किन्तु नवनवत्यंशादधिको नवनवत्यंशोऽपि द्वादशाहोराधिकस्थायी चेदवश्यमनुसन्धेयः। इत्थम्भूतो हि ज्वरः सङ्क्रमणदशा विकारान्तरं वा सूचयति।

स्मृत्त्व्यङ्चात्र—तीव्रेऽपि ज्वरे सुखं चेत् स्वपिति, अविकृतदर्शना च सौख्यमेवात्मनः प्रकत्थते, तदा शुभम्। न तत्र सङ्क्रमणभयम्। अन्यथा (दुःस्वापा विकृतदर्शना क्लान्तमनस्का चेत्) त्वशुभम्। दुःस्वापा विकृतदर्शनाऽपि स्वस्थाऽहमिति चेदाचष्टे, अरिष्टमेव विद्यात्।

मूत्रवहसंस्थानम्—तत्र सूतिकाया मूत्रमानम् आदौ सार्धैकगुणप्रायं वर्धते। वर्धमानं विशिष्टगुरुत्वमपि चतुर्थदिवसे १०२२ प्राय भवति। नात्रजनिकद्रव्याणामभिवृद्धिर्भूम्ना जायते। दुग्धशर्कराऽपि स्तन्यप्रवृत्तेः परं लभ्यते। संवरणक्रियया सम्बद्धं पेप्टोनाख्यद्रव्यं तु द्वितीये तृतीये वा दिने समुद्भूय क्रमशः क्षीयमाणं दशाहेन द्वादशाहेन वा लुप्यति। सद्यःप्रसूतायाश्च सार्धैकदिनाय प्रसवायासमूलाऽण्डलालाशल्कविशेषाश्च दृश्यन्ते।

कदाचिच्च, आंशिकः पूर्णो वा मूत्ररोधोऽपि सूतिकाया दृष्टः, विशेषतश्चाप्रजानाम्। उत्तानशयनं भीरुत्वं शिथिलोदरत्वं प्रसवक्लेशो मूलावदरणं मूत्रस्रोतसः शूनपिच्छिलत्वं च मूत्ररोधस्य हेतवो भवन्ति।

सार्धैकगुणप्रायम् = 71 C C शल्कविशेषाः Hyaline Casts, मूत्ररोधः Retention of urine

मूत्ररोधाच्च सम्भवन्ति गर्भाशयस्य भ्रंशो, हीनसंवरणम्, रक्तस्रुतिः, मूत्रक्षरणं वस्तिशोफश्चेति भूरिश उपद्रवाः।

पक्तिसंस्थानम्—आदौ द्वित्रदिनेषु क्षुधा किञ्चिद्धीयते, स्तन्यागमात् परं च प्रयोजनवशाद् वर्धते। तृष्णावृद्धिरपि पुरा रक्तक्षयात् परं च स्तन्यप्रवर्त्तनात् स्वाभाविकी। एवं स्तन्यमूत्रादिभिर्जलांशक्षयाद् गर्भनिर्गमेन जठरान्तर्भारक्षयात्, शय्याश्रयणादुदरभित्तिशैथिल्याच्च विड्बन्धोऽपि स्वाभाविकः। अथ च वृक्कवचो कार्यवर्धनाद् गर्भाशयस्य कायमानह्रसनात् प्रमिताशनाच्च हेतो सूतिकायाः शरीरभारोऽपि प्रथमसप्ताहे त्रिचतुरशेटकं यावत् चीयते। बहुप्रजाताया स्तन्यपायनशीलाया यमलापत्यायाश्च,भारक्षयो विशेषेण भवति।

श्वसनसंस्थानं त्वक् च—श्वासक्रिया न विशिष्यते। किञ्चिदेव (२० त. २२) वर्धते। स्वेदः प्रचुरं निस्रवति। रञ्जनकणचयः शीघ्रं विलीयते। अरुणाभा किक्किसरेखा अपि श्वेताभा जायन्ते। अथ च कक्षास्वच्चि मुद्गाद्यारभ्य कुक्कुटाण्डपर्यन्ता नानाप्रमाणा उत्सेधा अपि कदाचिल्लभ्यन्ते। त एते गर्भिण्या एव नवमदशममासयोः सम्भूय सूतिकादशायां स्पष्टतरा भवन्ति। विपरिवर्त्तिताः स्वेदग्रन्थय इमे स्वतः न प्रस्रवन्ति। पीडितास्तु प्राक् कणवद् मलद्रव्यं, ततः पीयूषनिभं द्रवं, परं च पयोनिभं रसं स्रवन्ति। आर्तवस्रावकाले त्विमे शूना सवेदनाश्चापि जायन्ते।

उदरभित्तिः श्रोणिसन्धयश्च—प्रसवोत्तरं प्रशिथिला वलीसवलिता चोदरभित्तिः सामान्यतो मासद्वयेन प्राकृतेव सञ्जायते। अतिविप्लुतोदराया बहुशः प्रजातायाश्च स्त्रिया उदरच्छदाख्यमध्यमचरमयो पेश्योः सामान्यकण्डरा आततीभूय उदरदण्डिकास्यपेश्योत्रपसारयति, येन दारुणचेष्टादिषु तन्मध्यतः क्षुद्रान्त्रोद्गमः प्रजायते।

मूत्रक्षरणम् Incontinence of urine

उत्सेधा Lumps विपरिवर्त्तिताः Modified कणवद् मलद्रव्यं Granular debris

श्रोणिसन्धयोऽपि क्रमेण नष्टमार्दवा. काठिन्य भजन्ते।

सूतिकाया स्ववेद्यलक्षणानि—

(१) शर्मोपलब्धि —यथैव सूते तथैव सा निर्मुक्तशल्येव सौख्य-मनुभवति।

(२) क्षुत्पिपासे—प्रस्रवणश्रमैः खिन्नशरीरा प्रथम जलमेव याचते। होरैकानन्तरं च बुभुक्षाऽपि जागर्त्ति।

(३) मूत्रणेच्छा—प्रायो द्वादशहोराभ्यन्तरमेव स्त्रिया मेहनेच्छा जायते। मूत्रणमावश्यकमिति विज्ञापिते तु सा कदाऽपि तथाकर्त्तुं प्रभवति। अथ च बहुधा मूत्रणेच्छा नाप्यभिजायते, विशेषतश्चाप्रजातानाम्। इच्छन्त्योऽपि वा न तथाकर्त्तुं प्रभवन्ति, औदरिकभारक्षयाद् उदरभित्तिशैथिल्याद् मूत्रस्रोतसः पिच्चितत्वेन सवेदनत्वाच्च। द्वादशहोरात' पर तु मूत्रसङ्गं नोपेक्षेत। विड्विसर्गस्तु यावदिय शेते तावत्प्रायो न जायते।

(४) मक्कल्लशूलानि—गर्भाशयसङ्कोचजनितानि प्रसवोत्तरशूलान्यपि बहुधा दृश्यन्ते। सूतिकायाः स्वभावतो जायमाना अपि गर्भाशयसङ्कोचा यदा केनाऽपि हेतुना विशिष्य प्रवर्त्तन्ते तदैव शूलं जनयन्ति। प्रसवकालो यदि यथोचितदैर्घ्य स्याद् गर्भाशयश्च तृतीयावस्थायां तदनुबन्धिनि काले च सुदृढं संवृतः, तदा न शूलानां सम्भव। यदैव प्रसवकालो ह्रस्वो भवति गर्भाशयश्च हीनसंवृतोऽविशोधितरक्ततया सान्तर्दोषस्तदैव शूलानां जन्म। अतश्च बहुप्रजातास्वेव प्रायेण मक्कल्लदर्शनम्। सामान्य-तश्च प्रथमाह्नः सायकाले शूलानि विशेषेणानुभूयन्ते, अनुबध्नन्ति च कदाचन पञ्चषदिनानि परमपि। स्तन्यपानकाले च गर्भाशयप्रबला-कुञ्चनाच्छूलानि तीव्रायन्ते। सुश्रुतश्चात्र—

(क) "प्रजातायाश्च नार्या रूक्षशरीरायास्तीक्ष्णैरविशोधित रक्त वायुना तद्देशगतेनातिसरुद्ध नाभेरधः पार्श्वयोर्वस्तौ वस्तिशिरसि वा ग्रन्थिं करोति, ततश्च नाभिवस्त्युदरशूलानि भवन्ति, सूचीभिरिव निस्तुद्यते

(क) After pains due to retention of blood clot (Lochiometra

भिद्यते दीर्य्यत इव च पक्वाशयः, समन्ताद्‌ध्मानमुदरे मूत्रसङ्गश्च भवतीति मक्कललक्षणम्" (शा० १०)

(ख) स्त्रीणामप्रजातानां प्रजातानां तथाऽहितैः।
दाहज्वरकरो घोरो जायते रक्तविद्रधिः॥
अपि सम्यक् प्रजातानामसृक् कायाद्‌निःसृतम्।
रक्तजं विद्रधिं कुर्यात् कुक्षौ मक्कल्लसञ्ज्ञितम्॥
सप्ताहान्नोपशान्तश्चेत्ततोऽसौ संप्रपच्यते॥
(नि० अ० ९)

(५) स्तनव्यथा—स्तन्यप्रवृत्त्या सहैव स्तनौ पीनौ मन्दव्यथौ च भवतः। स्तन्यातिपूर्णत्वे तु भृशं तुद्येते। सबलश्चेच्छिशुः, तत्कृत-स्तन्याचूषणचेष्टयाऽपि बहुधा वेदनाऽनुभूयते।

(६) दौर्बल्यानुभवः—यदा स्त्री सर्वप्रथमं शयनासनादुत्तिष्ठति, किमप्यप्रत्याशितं दौर्बल्यं तयाऽनुभूयते। अचिरेणैव च तन्निवर्त्तते। गतसूताऽभिधानाऽपि दौर्बल्यं क्लान्तिं चेदनुभवति, विकृतिविशेषमाशङ्क्य तस्य स्वरूपो हेतुश्च निर्णेतव्यः।

सूतिकोपक्रमः।

तत्र सद्यः प्रसूता स्त्री शिशुश्च सद्योजातो यथोपचर्य्येते तथा प्रसवस्य तृतीयावस्थोपक्रमे पुरा व्याख्यातम्। अत्र तु तदनन्तरं कर्त्तव्यकर्मणां व्याकरणम्। पाचनादिस्वाभाविककर्मणां सवरणादिविशिष्टकर्मणां च सम्यक् सिद्धिर्यथा स्यात्तथा लक्ष्यीकृत्य च सूतिकोपक्रमो विधीयते। उच्यतेऽपि—

(१) तदुपक्रमसामान्यं विशेषोपक्रमं तथा।
वक्ष्यामि व्यासतो देशविद्धाकुलसात्म्यतः॥

—कश्यपः

¹(ख) Septic or putrid endometritis

(२) भौतिकजीवनीयबृंहणीयमधुरवातहरसिद्धैरभ्यङ्गोत्सादनपरिषेकावगाहनान्नपानविधिभिर्विशेषतश्चोपचरेत्, विशेषतो हि शून्यशरीराः स्त्रियः प्रजाता भवन्ति।

—च० शा० ८।

(३) प्रसूता हितमाहारं विहारं च समाचरेत्।
व्यायामं मैथुनं क्रोधं शीतसेवां विवर्जयेत्॥
सर्वतः परिशुद्धा स्यात् स्निग्धपथ्याल्पभोजना।
स्वेदाभ्यङ्गपरा नित्यं भवेन्मासमतन्द्रिता॥

—भावमिश्रः।

अथ विस्तरः

(१) स्नेहादिपानम्, उदरवेष्टनं च—सूतिकां बलातैलेनाभ्यज्य स्नेहं पाययेत् पञ्चकोलचूर्णयुतम् उष्णगुडोदकानुपानेन, वातघ्नौषधक्वाथं वा पाययेत् स्नेहायोग्याम्। पीतवत्याश्चोदरं वेष्टयेन्महता वाससा। वचांस्यपि—

(क) अथ सूतिकां बलातैलेनाभ्यञ्ज्यात्। बुभुक्षितां च पञ्चकोलचूर्णेन यवान्युपकुञ्चिकाचव्यचित्रकव्योषसैन्धवचूर्णेन वा युक्तामहःपरिणामिनीं यथासात्म्यं स्नेहमात्रां पाययेत्। स्नेहायोग्यां वातहरौषधकाथं ह्रस्वपञ्चमूलकाथं वा। इति

—सङ्ग्रहशा० ३।

(ख) सूतिकांतु खलु बुभुक्षितां विदित्वा स्नेहं पाययेत् परमया शक्त्या सर्पिस्तैलं वसां मज्जानं वा सात्म्यीभावमभिसमीक्ष्य पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेरचूर्णसहितम्। स्नेहं पीतवत्याश्च सर्पिस्तैलाभ्यामभ्यज्य वेष्टयेदुदरं महता वाससा। तथा तस्या न वायुरुदरे विकृतिमुत्पादयत्यनवकाशत्वात्। —च० शा० ८।

उदरवेष्टनम् = Binder.

(ग) सूतिका क्षुद्वती तैलाद् घृताद्वा महतीं पिबेत् ।
पञ्चकोलकिनीं मात्रामनु चोष्णं गुडोदकम् ॥
वातघ्नौषधतोयं वा तथा वायुर्न कुप्यति ।
विशुध्यति च दुष्टास्रं द्वित्रिरात्रमयं क्रम ॥
स्नेहायोग्या तु निःस्नेहममुमेव विधिं भजेत् ।
पीनवस्त्याश्च जठरं यमकाक्तं विवेष्टयेत ॥

—धा० शा० १ ।

(घ) प्रजातमात्रामाश्वास्य सूतां शय्यां विजाविक्ता ।
न्युब्जा शयाना सवाग्रे पृष्ठे संश्लिष्य कुक्षिणा ॥
पीडयेद् घट्टमुदरं गर्भदोषप्रवृत्तये ।
महताऽदुष्टपट्टेन कुक्षिपार्श्वे च वेष्टयेत् ॥
तेनोदरं स्वसंस्थानं याति वायुश्च शाम्यति ।

—सूतिकोपक्रमणीये कश्यपः ।

(२) विश्रान्तिः—शारीरो मानसश्च विश्रामो गर्भवृद्धिक्षपितशिथिल-सर्वधातुकाया. प्रवाहणवेदनाक्लेदरक्तनिःस्रुतिविशेषशून्यशरीरायाश्च सूतिकायाः परं हितावह इति यथाऽस्या विश्रान्तिलाभः स्यात्तथा यतनीयम् । नैनामायासयेद् उद्वेजयेच्च ।

"प्रियङ्गुकानां कृसरैः स्वभ्यक्तां स्वेदयेत्ततः ।
स्विन्नामुष्णाम्बुना स्नातां विश्रान्तां विगतक्लमाम् ॥
कुष्ठगुग्गुल्वगुरुभिर्धूपयेद् घृतसंयुतैः ।"

—कश्यपः ।

निद्रायमाणा च सुखं विश्राम्यति । अतो निद्रोपघातकरेभ्यो भावेभ्यः सर्वथा परिरक्षेदेनां रात्रौ मध्याह्ने चापि । शिशुं सूतिकागारतः कुमारागारमपनयेत् । द्वारि पटाक्षेपं कुर्यात् । मन्दालोकं च तद्वेश्म कार्यम् ।

विश्रान्ति = Rest

अथ च दशरात्रं पञ्चदशरात्रं वा शय्यारूढैव स्यात्, उत्थानचङ्क्रमणादिषु त्वरां न विदधीत, संवरणक्रियायाः सम्बाधभयात्। गुरुभारो हि गर्भाशयस्तथा कुर्वन्त्या. प्रायोऽवस्रंसते, जायते च रक्तस्कन्दभ्रंशेनोपरुद्धस्रोतसां विवरणाद् रक्तस्रुतिः। श्रमजीविनीनां त्वरणादेव हीनसवरण बहुशो दृश्यतेऽपि।

सर्वथा उत्तानशयनमपि न हितावहम् सूतिकास्नावस्यासम्यक्प्रवृत्त्या सङ्क्रमणावहत्वादुदरपेशीनां दौर्बल्यकरत्वाच्च। तस्मात् स्वस्थाया अविदीर्णमूलपीठाया नातिस्रुतशोणितायाश्च सूतिकाया उत्थानचङ्क्रमणादिकमचिरेणापि विधिना कृतं प्रशस्यत एव। तथा च द्वितीयेऽह्नि वारैकं तृतीये च वारद्वयमुपधानादिबलेन चणमेनामुत्थापयेत्। एवमेव चतुर्थपञ्चमयोः। परञ्च स्वयमुत्थाय तिष्ठेद् यथेच्छम्। भोजनं स्तन्यपायनञ्चोत्थायैव कुर्वीत। मलमूत्रोत्सर्जनमपि उत्कटुकासनेनैव कार्यम्। कतिचित्पदानि प्रक्रामेदपि। आसन्दीं वा समासीत प्रत्यहं होरैकवर्धनक्रमेण। गतागतानि तु विंशाहात्परं विदधीत।

गर्भाशयस्य पश्चान्नतिवारणाय च सप्ताहात्परं सायं प्रातः पञ्चदश प्रपलानि न्युब्जा जानुकूर्परासना वा शयीत। मूत्रवेगांश्च न धारयेत्। काश्यपस्त्वाह—

प्रजातमात्रामाश्वास्य सूतां शङ्का विजाविका।
न्युब्जां शयानां संवाह्य पृष्ठे संश्लिष्य कुक्षिणा॥
पीडयेद् घट्टमुदरं गर्भदोषप्रवृत्तये॥ इति॥

शय्यागताऽपि च तृतीयरात्रात्परं मुहुर्मुहुः पार्श्वपरिवर्त्तनेन हस्तपादयोश्चेष्टाविशेषेण दीर्घोच्छ्वसनेन च व्यायामं कुर्वीत, येन श्रोण्यां रक्तस्य मन्दसञ्चरणम् अन्तःस्कन्नतादयस्तज्जा उपद्रवाश्च न स्युः।

रक्तस्य मन्दसञ्चरणम् Pelvic blood stasis अन्तःस्कन्नतादयः Thrombosis and pulmonary embolus

अभ्यङ्गोत्सादनादिकं च सप्ताहात्परं समाचरेत् । न चैनां दर्शयेत्कस्यचिद् आसप्तरात्रम्, अन्यत्र मातुः श्वश्रूजनात् पत्युर्भिषजश्च ।

(३) निद्रा—सुखं चिरं च निद्रायमाणा स्वस्था भवति । निद्रा हि प्रधानं श्रमघ्नेषु भावेषु । दिवास्वापोऽपि हितावहः । निद्राविघातकेभ्यश्च भावेभ्यः सर्वथेयं रक्षणीया । निद्रोपघातकरास्त्विमे भावा भवन्ति, सद्यया-मूलपीठसीवनसूत्राणि, दुर्नामरोगः, स्तनसंरम्भः, अर्भकश्चेति । अतोऽन्यथा निद्रानाशस्तु दुर्लक्षणम्, पूयारम्भमनोविघातयोः प्राग्व्यञ्जनत्वात् । सति प्रयोजने तु द्वित्ररात्रं निद्राकरभेषजान्यपि प्रयुञ्जीत । फणिफेनं तु स्तन्यं पाययन्त्या निषिध्यते प्रयुज्यते वा स्वल्पमात्रम् ।

(४) बुभुक्षा—तत्र स्नेहादिपानं पूर्वमुक्तम् । जीर्णे तु स्नेहे बुभुक्षितां ज्ञात्वा साधारणं सुजरं मात्रावद् हृद्यं स्निग्धं द्रवप्रायं चाहारं दद्यात् । द्रवबहुलो ह्याहारः स्तन्यजननो मलमूत्ररेचनश्च परमस्या हितमाधत्ते । फलशाकानि प्रचुरं प्रयुञ्जीत । तत्रादौ द्वित्रदिवसं क्षीरं यूषमण्डं पेयां द्रवयवागूं क्षीरयवागूं वा स्नेहयुतां मात्रशः पाययेत् । परं च विड्बन्धरहितां विविधैः कठिनप्रायैः रुचिरैश्चाहारद्रव्यैः क्रमश आप्याययेत । त्रिचतुरहोरात्रान्तरेण मुहुर्मुहुः स्वल्पं स्वल्पं यथाकामं च भोज्यमस्यै दद्यादाशय्यासनस्थितेः । स्वस्थाया हीनमात्रमशनं तु निषिद्धम् । स्तन्यपायनात् पूर्वं च सूतिकया पादमितं क्षीरं नीरं वा नियमेन पातव्यम् । प्रचुरक्षीरो मिश्राहारश्च तस्यै विशेषेण हितः । अम्लफलानि नोपयुञ्जीत, स्तन्यक्षारीयताविघातकत्वेन कुमारस्यानारोग्यकरत्वात् । व्याधिना रक्तस्रुत्या वा दुर्बलां तु मद्यमपि पाययेत् । पाण्डुरोगिणी च शंखमण्डूरादिभिरुपक्रमणीया । भवन्ति चात्र—

(क) जीर्णे तु स्नेहे पूर्वौषधैरेव सिद्धां विदार्यादिगणक्वाथेन क्षीरेण वा यवागूं सुस्निग्धां द्रवां मात्रया पाययेत् । एवं · ·अनुपाल्य

निद्राकरभेषजानि Hypnotics such as Veronal, Medinal or Bromidia,

ततो यवकोलकुलत्थयूषेण लघुना चान्नपानेन, द्वादशरात्रात्परं जाङ्गलरसादिभिश्च क्रमादाप्याययेदग्निबलादीन्पेक्ष्य । क्वथितशीतं च तोयं पाययेत ।

—सङ्ग्रह शा० ३ ।

(ख) [अथ सूतिकां बलातैलाभ्यक्तां वातहरौषधनिष्क्वाथेनोपचरेत् । सशेषदोषां तु तदह: पिप्पलीपिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीचित्रकशृङ्गवेरचूर्णं गुडोदकेनोष्णेन पाययेत । एवं द्व्यहं त्र्यहं वा कुर्यादादुष्टशोणितात् ।]

विशुद्धे ततो विदारिगन्धादिसिद्धां स्नेहयवागूं क्षीरयवागूं वा पाययेत्त्रिरात्रम् । ततो यवकोलकुलत्थसिद्धेन जाङ्गलरसेन शाल्योदनं भोजयेद्बलमग्निबलं चावेक्ष्य । धन्वभूमिजातां तु सूतिकां घृततैलयोरन्यतरस्य मात्रां पाययेत् पिप्पल्यादिकषायानुपानम् । स्नेहनित्या च स्यात्त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा बलवती । अबलां यवागूं पाययेत त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा । अत ऊर्ध्वं स्निग्धेनान्नसंसर्गेणोपचरेत । प्रायशश्चैनां प्रभूतेनोष्णोदकेन परिषिञ्चेत् । क्रोधायासमैथुनादीन् परिहरेत् ।

—सु० शा० १० ।

(ग) जीर्णे तु स्नेहे पिप्पल्यादिभिरेव सिद्धां यवागूं सुस्निग्धां द्रवां मात्रशः पाययेत् । उभयतश्च कालमच्छेन चोष्णोदकेन च परिषेचयेत् प्राक् स्नेहयवागूपानाभ्याम् । एवं पञ्चरात्रं सप्तरात्रं वाऽनुपाल्य ततः क्रमेणाप्याययेत् । स्वस्थवृत्तमेतावत्सूतिकायाः ।

—च० शा० ८ ।

[घ) जीर्णे स्नाता पिबेत्पेयां पूर्वोक्तौषधसाधिताम् ।
त्र्यहादूर्ध्वं विदार्यादिवर्गक्वाथेन साधिता ॥
हिता यवागूः स्नेहाढ्या सात्म्यत पयसाऽथवा ।
सप्तरात्रात्परं चास्यै क्रमशो बृंहणं हितम् ॥
द्वादशाहेऽनतिक्रान्ते पिशितं नोपयोजयेत् ।

—वा० शा० १ ।

[ङ] ततोऽग्निबलवद् वीक्ष्य त्र्यहं पञ्चाहमेव वा ।
मण्डानुपानमन्वच्छं पिबेत् स्नेहं हिताशिनी ॥

स्नेहव्युपरमेऽश्नीयाद् अल्पस्नेहामसैन्धवाम्।
यवागूं त्र्यहमेवात्र पिप्पलीनागराश्रिताम्॥
स्याद्व्यपेतौषधा पश्चात् सस्नेहलवणोत्तरा।
कुलत्थयूषः सस्नेहलवणाम्लस्ततः परम्॥
तथैव जाङ्गलरसः शाकानीमानि चाप्यतः।
घृतभृष्टानि कुष्माण्डमूलकैर्वारुकानि च॥
स्नेहस्वेदौ च सेवेत मासमेकमतन्द्रिता।
उष्णोदकोपचारं च स्वस्थवृत्तमतः परम्॥

त्रिविधं देशमाश्रित्य वक्ष्यामि त्रिविधं विधिम्।
आनूपदेशे भूयिष्ठं वातश्लेष्मात्मका गदाः॥
तत्राभिष्यन्दभूयस्त्वादादौ स्नेहो विगर्हितः।
मण्डादिरत्र कर्त्तव्यः संसर्गोऽग्निबलावहः॥
स्वेदो निवातशयनं सर्वमुष्णं च शस्यते।
नियतं जाङ्गले देशे वातपित्तात्मका गदाः॥
तदत्र स्नेहसात्म्यत्वात् स्नेहादिः स्यादुपक्रमः।
कार्यः प्रजातमात्राया विशेषश्चात्र वुच्यते।
कुमारप्रसवे तैलं कुमारीप्रसवे घृतम्॥
पिबेज्जीर्णे यवागूं च दीपनीयोपसस्कृताम्।
पञ्चाहं सप्तरात्रं वा ततो मण्डाद्युपक्रम.।
देशे साधारणे चास्या हितः साधारणो विधि.॥

वैदेश्याश्च प्रयच्छन्ति विविधा म्लेच्छजातयः।
रक्त मांसस्य निर्यूहं कन्दमूलफलानि च॥

कुलसात्म्यञ्च बुध्येत यस्मिन् यस्मिन् यथा यथा ।
औचित्यात् कुलसात्म्यस्य तत् तथैवानुवर्त्तते ॥

—सूतिकोपक्रमणीये कश्यपः ।

(५) विण्मूत्रप्रवृत्तिः—सूतिकाया विड्बन्ध उदरशैथिल्यात् स्वाभाविक इत्यतो द्वितीयदिवसे सायं तृतीयदिवसे वा प्रातः एरण्डतैलादीनामन्यतम रेचनमस्यै दद्यात् । तद्वैफल्ये वस्तिं प्रणिदध्यात् । परमपि विड्बन्धे मृदुस्रंसनमेकान्तरेण प्रयुञ्जीत । तीव्ररेचनानि तु स्तन्यक्षयगाढकरत्वान्निषिद्धानि ।

मूत्राशयदशाऽपि परिचारिकयाऽवश्यं निभालनीया । षड्ढोरातोऽधिक मूत्रसङ्गो नोपेक्षणीयः । सङ्गस्य हेतुर्मूत्रस्य मानादिकं च निर्णेयम् । क्षालामेहो रक्तविषतां वृक्कशोथं वा निर्दिशति । मूत्रसङ्गे वस्तिशिरसि स्वेदयेन्मन्द पीडयेच्च क्षिप्र वाऽधोमुखं जानुकूर्परासने विवर्त्तयेदन्यत्र हृद्दौर्बल्यमूलावदरणाभ्याम् । व्यर्थीभूते त्रिचतुरहोराकालं प्रतीक्ष्य स्वेदासनविवर्त्तनाभ्यां पुनः प्रयतेत, मूत्ररेचनं वा पेशीवेधेन प्रयुञ्जीत । तथाप्यशक्ये भगं मूत्रप्रसेकद्वारं च सम्यग् विसङ्क्रामकद्रवेण विशोध्य परिशुद्धया धातवनाडीशलाकया स्रावयेत् । द्वितीयदिवसात्परं मुहुर्मुहुः शलाकाप्रयोगस्तु न शस्यते सङ्क्रमणभयादभ्यसनभयाच्च । तदा प्रभृति शय्यायां शय्यातो वा समुत्थाय स्वतोऽपि मूत्रयितु शक्यते । प्रयुक्तमर्गेट' पीयूषसत्वं वाऽपि मूत्राशयपेशीबल वर्धयति ।

(६) सङ्क्रमणवारणम्—सूतिकोपक्रमे प्रसवोपक्रमेऽपि च यथा नाम योनिगर्भाशयौ निर्दुष्टौ तिष्ठतः, प्राप्तस्यापि च दोषस्य प्रसरो न स्यात्तथा यतनीयम् । तद्यथा (क) यन्त्रादिप्रणिधान योनिपरीक्षणं च यथाशक्यं वर्जनीयम् । सङ्क्रमणप्रतिरोधदशा योनिवस्तिरपि न बहु

मूत्रसङ्गः Retention of urine स्वेदनम् warm stupes. जानुकूर्परासनम् Knee-albow position मूत्ररेचनम्, | यथा—Preparation of acetyl choline (Doryl .

मन्यते, ऊर्ध्वं प्रसृते जले गर्भाशयदुष्टिभयात्। उत्तरवस्तेरवसरस्तु यदा सूतिकास्रावो विस्रगन्धी स्यात्, अपराजरायवादीनां कश्चदंशोऽन्तः शिष्येत, संवरणक्रमो यथावन्न प्रचलेत्, गौणी प्रसवात्त। रक्तस्रुतिश्च जायेत तदा ज्ञेय.। (ख) मूलपीठविशोधनकाले पिचुप्लोतादीनां योनिमुखप्रवेशो वारणीय। अग्रतः पश्चिमाभिमुखं सकृदेव च ते प्रयोक्तव्याः। (ग) भगमूलपीठयोर्विशुद्धाऽनार्द्रा च स्थितिरावश्यकी। तथा च प्रतिदिनमेकवार विसङ्क्रामकद्रवेण तद्देशं सम्यक् परिमार्ज्य वाष्पशुद्धां कवलिकां दत्त्वा कौपीनबन्धेन बध्नीयात्। सूतिकास्रावदुष्टां मलमूत्रदुष्टां च कालेकाले परिवर्त्तयेत्, द्वित्र्यहारात आदौ द्विवारमेकवारं वा तत. परम्। एव ह्यविकारिजीवाणवोऽपि विघटमानसूतिकास्रवाल्पत्वात् बहिर्भगाच्छय्यावसनाद्वा समुत्थाय नोर्ध्वं प्रसरन्ति यत्र तु परिवर्त्तनादिव्यवस्था दुःशका तत्र योनिमुखस्यामुद्रणमेव प्रशस्तम्। (घ) संशोधनादिकाले च परिचारिकाभिमुखत्राणं धार्यम्। विभक्तागारे च तां स्थापयेत्। नवमे दिवसेऽपहर्त्तव्यानि च मूलपीठसीवनसूत्राणि मन्दबलेन विसङ्क्रामकद्रवेण प्रत्यह शोधनीयानि। (ङ) योनौ सञ्चितः सूतिकास्रावो जीवाणूनां वर्धनभूमिरिति तस्य सम्यग् निर्हरणमावश्यकम्। काले शय्योत्थानचङ्क्रमणादिभिश्च तद् व्यवस्थेयम्।

अत्र च भवन्ति—

(१) चर्मावनद्धामासन्दीं वस्त्रातैलोष्णपूरिताम्।
अध्यासीत सदा सूता तथा योनिः प्रसीदति॥

काश्यपः।

(२) पञ्चकोलादिपानेन दुष्टास्रस्य विशोधनम्।
क्षतभिन्नोपचारश्च परिशुद्धिश्च सर्वथा॥

(३) शतपुष्पातैललेपाच्चवरीदलजात्तथा।
पेटिकामूललेपेन योनिभ्रंशा प्रशाम्यति॥ (भै० र०)

कौपीनबन्धः T Bandage

(७) स्तनपालनम्—प्रथमं प्रजायिन्याश्चूचुकौ सुखप्रपानौ निवृत्तखरहर्षौ च तथा स्यातां तथा प्रसवात् प्रथमत एव यतनीयम्। तथा चैवमुपदेष्टव्या गर्भिणी नवमे मासि—"फेनिकया लिप्त्वा खरवसनेन चूचुकौ घर्षणीयौ शूकरमहिषगजमांसचूर्णयुतया मूषिकवसया वाऽभ्यज्य मर्दनीयौ, पिच्चितौ च श्रीपर्णीतैलेन कासीसाद्यतैलेन वाऽभ्यज्य कुब्जा कुब्जोन्नमयेत्, स्नुतरसखुरण्डाश्च शीघ्रमपनेयाः" इति। अन्यथा कठिनीभूता अपनयने चूचुकमुखं व्रणयन्ति। एवम्भूतांस्तु प्रागहोरात्रं स्नेहदानेन मृदूकृत्य, क्षालयित्वा मोचयेत्।

स्तन्यपायनात् पूर्वं पश्चाच्च स्तनौ प्रक्षालयेद् विशुद्धोष्णजलेन। कवलिकां दत्वा बध्नीयादपि। उत्तोलनं हि सूतिकां सुखयति। अक्षालनात्तु चूचुकमुखे स्नुतव्युषितं स्तन्यं बालस्याऽहितमाधत्ते मातुरपि च स्तनरोगाय कल्पते।

पायनविधिः—गतक्लमा च सूतिका बालं स्तनयोर्योजयेत काले काले। एतद्धि स्तन्यं प्रवर्त्तयति, संवरणक्रियामुत्साहयति, शिशुं विरेचयति स्तन्यपानं शिक्षयत्यपि च। तत्र द्विरात्रं त्रिरात्रं वा, यावत् पीयूषं क्षरति, चतुर्होरातः स्तनौ पाययेत्, प्रतिस्तनं पञ्चप्रपलप्रमाणेन। ततो होरात्रयेण पानम्, सप्त सप्त प्रपलानि च पानकालः। प्रचुरक्षीराया एकेनैव स्तनेन तुष्यति चेत् पर्यायेण पञ्चदश प्रपलानि कृत्वा पाययेत्। रात्रौ तु दशवादनतः परं षड्वादनावधि स्तन्यं निवार्यते। न च माता शिशुर्वा स्तन्यपानकाले निद्रां सेवेत शिशुपीडनभयाच्चूचुकमार्दवभयाच्च। दीर्घकालपायनं तु चूचुकविदारभयम्।

क्षीणस्तन्या दुष्टस्तन्या हीनगुणास्तन्या च स्त्री स्तन्यं न पाययेत्, न च रक्तस्रुतिक्षीणा फिरङ्गिणी ज्वरार्त्ता यक्ष्मिणी स्तनरोगग्रथिताऽपि, या ह्यात्मनो बालस्य च हितं पश्यति। अकामायाश्च यथा स्तन्यं प्रवर्त्तेतैव न तथा यतेत, तद्यथा—कर्षणमर्दननिर्दोहनानि वर्जयेत्, स्तनयोर्न

योजयेत्, कवलिका दत्त्वा पट्टं बध्नीयाद्, वेदनादनपरिस्तरमुपदिश्यात् कामं विरेचयेच्च। परिपूर्णौ स्पर्शाक्षमौ च स्तनौ सकृन्निर्दुहीत स्तोकम्।

भवन्ति चात्र—

(क) तत्रेयं स्तनसम्पत्—नात्यूर्ध्वौ नातिलम्बावनतिकृशावनतिपीनौ युक्तपिप्पलकौ सुखप्रपानौ चेति। स्तन्यसम्पत्तु प्रकृतवर्णगन्धरसस्पर्शमुदपात्रेऽवदुह्यमानमुदकं व्येति प्रकृतिभूतत्वात् तत् पुष्टिकरमारोग्यकरं चेति।

—च० शा० ८।

(ख) तच्चेच्छीतलममलं तनु शङ्खावभासमप्सु न्यस्तमेकीभावं गच्छत्यफेनिलमतन्तुमत् नोत्प्लवतेऽवसीदति वा तच्छुद्धमिति विद्यात्। तेन कुमारस्यारोग्यं शरीरोपचयो बलवृद्धिश्च भवति।

—सु० शा० १०।

अव्याहतबलाङ्गायुररोगो वर्धते सुखम्।
शिशुर्धात्र्योरनापत्तिः शुद्धक्षीरस्य लक्षणम्॥

—काश्यप० सू० १९।

(ग) कषायं सलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम्।
पित्तादम्लं च कटुकं राज्योऽम्भसि तु पीतिका॥
तन्तुमत् कफदुष्टं तु तोये मज्जति पिच्छिलम्।
स्तन्यदोषाद्गदास्ताय यथोक्तं तत् पिबेदतः॥

(तन्त्रान्तरम्)

(घ) क्रोधशोकावात्सल्यादिभिश्च स्त्रिया. स्तन्यनाशो भवति।

[सु० शा० १०]

रूक्षान्नपानकर्शन क्रोधशोककामादिभि. स्तन्यनाशः।

[सं० उ० १]

अवात्सल्याद् भयाच्छोकात् क्रोधादत्यपतर्पणात्।
स्त्रीणां स्तन्यं भवेत्स्वल्पं गर्भान्तरविधारणात्॥

—भावमिश्रः।

वेदनादनपरिस्तरः Belladona plaster

(ङ) अथास्याः क्षीरजननार्थं सौमनस्यमुत्पाद्य यवगोधूमशालिषष्टिकमांसरससौवीरकपिण्याकलशुनमत्स्यकशेरुकशृङ्गाटकबिसविदारीकन्दमधुकशतावरीनालिकालाबूकालशाकप्रभृतीनि विदध्यात् ।

—सु० शा० १० ।

क्षीरजननानि तु मद्यानि सीधुवर्ज्यानि ग्राम्यानूपौदकानि शाकधान्यमांसानि द्रवमधुराम्ललवणभूयिष्ठाश्चाहाराः क्षीरिण्यश्चौषधयः क्षीरपानमनायासश्चेति । वीरणषष्टिशालिकेक्षुवालिकादर्भकुशकाशगुन्द्रेत्कटमूलकषायाणां च पानमिति क्षीरजननानि ।

—च० शा० ८ ।

हरिद्रादिं वचादिं वा काकोल्यादिं पिबेच्च वा ।
वज्रकाञ्जिकपानं वा परमं क्षीरवर्धनम् ॥

(च) शिशुमुपवेश्य दक्षिणं स्तनं धौतमीषत् परिस्रुतमभिमन्त्र्य मन्त्रेणानेन पाययेत् ।

चत्वारः सागरास्तुभ्यं स्तनयोः क्षीरवाहिणः ।
भवन्तु सुभगे नित्यं बालस्य बलवृद्धये ॥
पयोऽमृतरसं पीत्वा कुमारस्ते शुभानने ।
दीर्घमायुरवाप्नोतु देवा प्राश्यामृतं यथा ॥

अपरिस्रुतेऽप्यतिस्तब्धस्तन्यपूर्णस्तनपानादुत्सुहितस्रोतसः शिशोः कासश्वासवमीप्रादुर्भावः ।

—सु० शा० १० ।

(छ) न च क्षुधितशोकार्तश्रान्तप्रदुष्टधातुगर्भिणी ज्वरितातिक्षीणातिस्थूलविदग्धभक्ताविरुद्धाहारतर्पितायाः स्तन्यं पाययेत्, नाजीर्णौषधं च बालम्, दोषौषधमलानां तीव्रवेगोत्पत्तिभयात् ।

—सु० शा० १० ।

(ज) शोकाकुला क्षुधार्ता च श्रान्ता व्याधिमती सदा ।
गर्भिणी ज्वरिणी पथ्यवर्जिताऽजीर्णभोजिनी ॥

अत्युच्चा नितरां नीचा स्थूलातीव भृशं कृशा।
आसक्ता क्षुद्रकार्येऽपु दुःखार्त्ता चञ्चलाऽपि च॥
एतासां स्तन्यपानेन शिशुर्भवति सामयः।

—भावमिश्रः।

(८) मक्कलशूलानि—रक्तस्कन्दादिशेषदोषमूला हि प्रसवोत्तरवेदना भवन्ति तत्र दुष्टास्रनिर्हरणाय पञ्चकोलादिकं पाययेत्। गर्भाशयमुपमर्दयेदवपीडयेच्च वास्तिशिरः स्वेदयेत्। अविपक्वे विकारे तु वेदनाशमनानि प्रयुञ्जीत।

भवन्ति चात्र—

(क) तत्र सर्पिषा सुखोष्णेन लवणचूर्णेन वा वीरतर्वादिसिद्धं जलमुषकादिप्रतीवापं पाययेत् यवक्षारचूर्णं वा पिप्पल्यादिक्वाथेन, पिप्पल्यादिचूर्णं वा सुरामण्डेन, वरुणादिक्वाथं वा पञ्चकोलैलाप्रतीवापं पृथक्पर्ण्यादिक्वाथं भद्रदारुमरिचसंसृष्टं, पुराणगुडं वा त्रिकटुकचतुर्जातककुस्तुम्बुरुमिश्रं खादेद्, अच्छं वा पिबेदरिष्टमिति।

—सु० शा० १०।

(ख) व्योषचित्रकणामूलमासीभार्गीकषायतः।
पिप्पल्यादिगणक्वाथयुतं वा रविलौहकम्॥
शीलितं नाशयत्याशु शूलं मक्कलसंज्ञितम्। (रसतरङ्गिणी)
शोणं बोलं सघृतं सगुडं गुटीकृतं गिलितम्।
मक्कालाभिधशूलं हन्ति समूलं सशोणितातङ्कम्॥
हिङ्गु शुद्धं ससर्पिष्कं भुक्तं मक्कलशूलनुत्। (योगरत्नाकरः)

(९) भिषक्कृतनिरीक्षणम्—निवृत्ते प्रसवे द्वादशाहोराभ्यन्तरमेव पुनरेनां पश्येत् तत्तज्ज्ञेयभावानां विज्ञानाय। ततस्त्रिरात्रं यावत् प्रतिदिनं

वेदनाशमनानि, यथा—Tincture of opium 20-30 ms, Tr Hyoscyamus 30-60 ms, Chloral hydrate 10-20 grs

परं चैकान्तरेणाद्वादशरात्रं नियमेनेक्षेत। व्याधितां तु प्रत्यहमेकवार द्विवारमपि वा पश्येत्। तत्रेमे भावा ज्ञातव्या भवन्ति—

(१) सूतिकाया आकृतिः, तापक्रम, नाडीगतिः, श्वसनक्रमः, उदरम्, गर्भाशयसीमान्तः, विण्मूत्रस्थितिः, स्तनौ, स्तन्यमानम्, अग्निबलम्, निद्रास्थितिः, योन्यास्रावस्य मानं स्वरूपं च।

(२) कुमारस्यारोग्यम् शरीरोपचयो, वृद्धिः, वातमूत्रपुरीषाणां स्वप्नजागरणायासास्य रुदितस्तनग्रहणानां प्रकृतिः नेत्रयोर्नाभिनालस्यावस्था च।

(३) अतीते च तृतीये च पक्षे वा मासाहे योनिव्यापदोऽस्या निदद्दीत। यथोचितं च तत्र प्रतिकर्तव्यम्। दुःस्थितां योनिं सद्यः स्थापयेत्। पायु-धारणयोः शैथिल्यं च प्रत्यहं त्रिशतं कृत्वा पायूत्थानपुरःसरं तत्सङ्कोचन-चेष्टया निराकुर्यात् योनिदार्ढ्यकरान् योगांश्चापि प्रयुञ्जीत।

भवन्ति चात्र—

(क) दुष्प्रजातामयाः सन्ति चतुःषष्टिरिति स्थितिः।
तेभ्यः सर्वेभ्य एवासौ रक्षितव्या कथञ्चिदि॥
तद्विदामपि सम्मोहो भिषजामुपजायते।
किं पुनर्येऽल्पमतयः परतन्त्रापरीक्षिताः॥
तस्मात् सुनिश्चितार्थेन तद्विद्येनानुदर्शिना।
अप्रमत्तेन भाव्यं सूतिकानामुपक्रमे॥
तस्यास्तीव्राभिरावीभिः प्रततं वाहनश्रमैः।
शैथिल्ये चागते देहे संक्षुब्धेष्वनिलादिषु॥
क्लान्तष्विन्द्रियमार्गेषु साशून्येषु धातुषु।
एकोऽपि दोषः कुपितः कृच्छ्रतो वहते महत्॥
परिजीर्णं यथा वस्त्रं मलदिग्धं समन्ततः।
क्लेशेन शोध्यते तज्ज्ञैः प्रहृत्य तत्तदाश्रयम्॥
तथा शरीरं सूतायाः परिक्लिष्टं परिस्रुतम्।
भृशं दोषबलैर्दिग्धं क्लेशेन परिशोध्यते॥

यथा च जीर्णं भवनं सर्वतः श्लथबन्धनम् ।
वर्षवातविकम्पानामसहं स्यात्तथाविधम् ॥
तथा शरीरं सूतायाः खिन्नं प्रस्रवणश्रमैः ।
वातपित्तकफोत्थानां व्याधीनामसहं भवेत् ॥

—सूतिकोपक्रमणीये कश्यपः ।

(ख) तस्यास्तु खलु सूतिकाया यो व्याधिरुत्पद्यते स कृच्छ्रसाध्यो भवत्यसाध्यो वा गर्भवृद्धिक्षपितशिथिलसर्वधातुत्वात् प्रवाहणवेदना-क्लेदरक्तनिःस्रुतिविशेषशून्यशरीरत्वाच्च । तस्मात्तां यथोक्तेन विधि-नोपचरेत् । —च० शा० ८ ।

मिथ्याचारात् सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते ।
स कृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेदत्यपतर्पणात् ॥
तस्मात्तां देशकालौ च व्याधिसात्म्येन कर्मणा ।
परीक्ष्योपचरेन्नित्यमेवं नात्ययमाप्नुयात् ॥

—सु० शा० १० ।

यत्नेनोपचरेत्सूतां दुःसाध्या हि तदामयाः ।
गर्भवृद्धिप्रसवरुक्क्लेदास्रस्रुतिपीडनैः ॥

—वा० शा० १ ।

(ग) तस्याश्चेत् स्वस्थानतो योनिर्भ्रंश्येत् ततो यस्य कस्यचिच्छ्लो-णितेनाभ्यज्य योनिं यथास्थानं कुशला स्त्री निवेशयेत् । निविष्टां चाशो-करोहिणीबर्हिपोशीरप्रियङ्गुदेवदारुकल्कविपक्वेन तैलेन बहुशः स्वेदयेत् पूरयेद् ब्रूयाच्च गच्छ सुभगे स्वस्थानमिति ।

—सङ्ग्रह शा० ३ ।

योनिर्मूषकवसाभ्यक्तान्ति सूता प्रविशेदपि ।
लोध्रतुम्बीफलालेपो योनिदार्ढ्यं करोति च ॥
वेतसमूलनिःक्वाथक्षालनेन तथैव च ।
मूषिकावागुलीवसाभ्रक्षणं योनिदार्ढ्यकृत् ॥

वचा नीलोत्पलं कुष्ठं मरिचानि तथैव च ।
अश्वगन्धा हरिद्रा च गाढीकरणमुत्तमम् ॥
यष्टीमदनकर्पूरपूरणं योनिदार्ढ्यकृत् ।
सुरगोपाब्यतोऽभ्यङ्गो योनिश्लथविनाशनः ॥

(भैषज्यरत्नावली)

पलाशोदुम्बरफलं तिलतैलं समन्वितम् ।
योनौ विलिप्तं मधुना गाढीकरणमुत्तमम् ॥
प्रसूता वनिता वृद्धकुचिहानाय सम्पिबेत् ।
प्रातर्मथितसम्मिश्रं त्रिसप्ताहात्कणाजटाम् ॥

(भावमिश्रः)

(घ) स्निग्धस्विन्नां तथा योनिं दुःस्थितां स्थापयेत्पुनः ।
पाणिना नामयेज्जिम्हां संवृतां वर्धयेत्पुनः ॥
प्रवेशयेन्निःसृतां च विवृतां परिवर्त्तयेत् ।
योनिः स्थानापवृत्ता हि शल्यभूता स्त्रिया मता ॥

—च० चि० ३० ।

(ङ) स्फटिकां तोलकमितां पञ्चाशत्तोलकोन्मिते ।
जले विद्राव्य युञ्जीत यत्नेनोत्तरवस्तिना ॥
गर्भाशयं प्रसूतायाः सन्यर्थं स्थानविच्युतम् ।
सङ्कोचयत्याशु तथा रक्तस्रावं रुणद्धि च ॥
योनिश्च शिथिलीभूता स्वस्थानन्तु प्रपद्यते ॥

—रसतरङ्गिणी ।

(१०) पुनरार्त्तवदर्शनम्—प्रायेण त्रिचतुरमासाभ्यान्तर एव रजोदर्शनं भवति। यास्तु स्तन्यं न पाययन्ति तासा सार्धमासेन मासद्वयेनैव वा रजोलाभः ।

एवञ्च मासादूर्ध्वर्धान्मुक्ताहारादियन्त्रणा ।
गतसूताभिधाना स्यादथवार्त्तवदर्शनात् ॥

—०—

सोऽयम्

इन्दोरियाव शावतंसस्य, भारद्वाजगोत्रस्य,
प्रतिपद राष्ट्रशौर्य्येण सुरभितसंस्थाने महाराजस्थाने
जयपुरमण्डलान्तर्गत 'मुकुन्दगढ़' ग्रामवास्तव्यस्य,
जीवनरामशर्मतनुजनुषा श्रीरामलालमहोदयाना पौत्रस्य,
महादेवोपमानां स्मेरमुखाना श्रीहरदेवशर्मणात्मजस्य,
महामानिन्या गौर्या इवापरायाः श्रीसुन्दर्य्या गर्भसम्भूतस्य,
विद्यार्जने गौरीपुत्रस्येव वरदहस्तप्रदातॄणामादिविद्यागुरूणाम्
पण्डितमूर्धन्याना श्रीगजाननशर्ममहोदयानामनुजस्य,
काशीस्थे हिन्दुविश्वविद्यालये चाध्यापकपदमलङ्कुर्वतः,

श्रीदामोदर-शर्म-गौड़.ए एम्. एस् महाशयस्य

अभिनवकृतौ

प्राकृतप्रसववर्णनपरः प्रसूतिग्रन्थ.

समाप्तः ।

शब्दानुक्रमणिका

शब्दानुक्रमणिका

(अ)

(आ)

(ऋ)

(ओ)

(औ)

(क)

(घ)

(च)

(द)

दुष्टिकेन्द्रम्	Septic focus	२००
द्रावकवस्तुविशेष.	Fibrolysin	६२
द्वारस्थाऽपरा	Placenta praevia	३७५
द्वितीय ध्रुवगात्रम्	Second polar body	४८
द्वितीया विशल्यभावावस्था	Second stage or stage of expulsion	२४५
द्वीपभूता, अतिरिक्ताऽपरा	Placenta Succenturiata (Island) or Secondary placenta	२५१
द्वैतीयकमध्यस्तर	Secondary mesoderm	८८
द्वैतीयक स्त्रीबीजम्	Secondary Oöcyte	४७

(ध)

धरा	Uterus	२७
धातुविलायकशक्ति	Histolytic action	८०

(न)

नाभिधमन्यौ	Umbilical arteries	१३१
नाभिनाडी	Umbilical cord or Funis	१२५
नाभिनालकर्षणम्	Traction upon the cord	२७८
नाभिनालपीडनम्	Pressure on the cord	३४०
नाभिनालम्	Umbilical cord or Funis	१२८
नाभिमण्डलम्	Umbilical Areola	१५०
नालध्वनि	Funic souffle	१८६
नालिपुटकम्	Umbilical Vesicle	९१
निद्राकरभेषजानि	Hypnotics	४१६
निविडस्तर.	Compact layer	९५
निरावरणकोषाणुमयी पोषकस्तरिका	Plasmodial trophoblast (Syncytium)	८६
निर्गमद्वारम्	Outlet	६
निर्गलनिका	Funnel	६
निर्दुष्टम् (दूषकजीवाणुरहितम्)	Aseptic	१,२६५
निर्देशपत्रकम्	Eustachian Valve	१३१
निष्क्रमणविधि.	Mechanism	२९६
निष्क्रिय.	Passive	२५६

(प)

(ब)

मक्कल्ल	After pains (Lochiometra)	४१३
मक्कल्लविद्रधि	Septic or Putrid endometritis	४१८
मस्डनाग्रम् (तीक्ष्णबडिशाविशेषः)	Sharp hook	३४८
मध्यजननस्तर.	Embryonic mesoderm	८८
मध्यबललक्षणानि	Probable signs	१७६
मध्यमा गुदान्त्रिका धमनी	Middle rectal artery	२५
मध्यसीमन्त.	Sagittal or Interparietal suture	१४७
मर्मरध्वनि	Soft blowing murmur	४०८
मलहरी	Excretory	१२१
महाधमनीस्पन्दनम्	Aortic pulse	२३१
महावकाश	Magma Cavity or Extra-embryonic Coelom	८८
महाश्रोणि	Greater or False pelvis	६
मातृभाग	Maternal Part	११५
मा-लश्रोणि (चलश्रोणिः)	Dynamic pelvis	१
मिथ्याव्य	False pains	२४७
मुखमण्डलम्	Face	१४५
मुखो.य	Face presentation	३११
मुख्य पुटकम्	Follicle proper	४३
मूढगर्भ	Abnormal delivery	३८१
मूत्र जननत्रिकोणम्	Urogenital triangle	७
मूत्रद्रव्यम्	Urea	१२३
मूत्रप्रसेक	Urethra	७
मूत्रप्रसेकद्वारम्	External urethral orifice	१६
मूत्रप्रसेकपार्श्विकौ नलिकाग्रन्थी	Para-urethral tubular glands	१६
मूत्ररोधः	Retention of urine	४०६
मूत्रसग	" "	४१६
मूत्रक्षरणम्	Incontinence of urine	४१०
मूत्राशयक्षुब्धता	Irritability of the bladder	१७८
मूर्च्छनम्	Anaesthesia, Complete, general or Surgical	२६८

(श)

(स)

सङ्कुचिता श्रोणि	Contracted pelvis	३१२
सङ्कोच. (आकुञ्चनम्)	Flexion, Contraction	२६६
सङ्क्रमणभीतिः	Risk from Sepsis	३०५
सङ्क्रमणम्	Infection	२६५
सङ्क्षोभ	Direct irritation	२५१
सङ्ग	Impaction	३४६,३५८
सञ्जननत्वक्	Germinal epithelium	३८
सन्दशाविवर्त्तनम्	Rotation by forceps	३०८
समवृद्धि	Uniform enlargement	१६२
सम्पोषणी	Nutritive	१२१
सम्बाधलक्षणानि	Pressure symptoms	३७५
सम्मूढ पश्चिमचिबुकासनम्	Persistent mento-posterior case	३२०
सम्मूढ पश्चिमानुशीर्षासनम्	Persistent Occipito-posterior position	३०६
सम्मोहित.	Asphyxiated or Still born	३८५
सरलीकरणम्	Straightening	३८८
संयुक्तविधिः	Combined manipulation	३२३
संयुक्त योन्युदरपरीक्षणम्	Combined abdomino-vaginal examination	२३४
संयुक्तानुष्ठानम्	Bi-polar method	३६२
संयोजकधातुः	Connective tissue—the para-metrium	३२
संवर्त्तनद्रव्याणि	Metabolic product	२५२
संवाहिन्यौ धमन्यौ	Hypogastric arteries	१३१
संवाहिनी महासिरा	Umbilical Vein	१३१
संसृष्टवीजम्	Fertilised Ovum	६०
संहृ॰गवलयम् (आकुञ्चनवलयम्)	Retraction ring, Contration ring or Bundles ring	२५७
साधारणी परिसरीया वा गर्भधरकला	Decidua Vera or Parietalis	९५
सान्द्रचिद्रम	Deutoplasm	४३
सापक्षनिश्चिति	Differential diagnosis	१६०

(स)

(ह)

(क्ष)

——

A

F

Fimbrae or Fringe like process	पुष्पाङ्कुराणि	37
Frontal Suture	गूढमोमन्तिका	147
Fronto mental	लालाटचिबुकिक	149
Fronto parietal Suture	पुर सीमन्त	146
Full breech presentation	स्फिक्पादोदय	154,329
Full ripe or Fully mature follicles	परिपक्कानि पुटकानि	40
Full term foetus	प्रगल्भगर्भ	145
Fundus	स्कन्ध	27
Funic Soufle	नालध्वनि	186
Funis	नाभिनाडी, नाभिनाल वा	125
Funnel	निर्गलनिका	6

G

Gasarian Fontanelles	शङ्खरन्ध्रौ	147
Genetic period	ऋतुकाल	66
Germinal Epithelium	सञ्जननत्वक्	38
" Layer	जननस्तरा	85
" Spots	चित्कणिका	43
" Vesicle	चित्केन्द्रम्	43
Glans	शिश्निकामुण्डम्	19
Glycogenic	ओजोद्रव्यनिचायिनी	121
Gonadotrophic Hormone	गर्भबीजानुगुणो रस	60
Graffian Follicles	बीजगर्भपुटकानि (बीजपुटकानि)	38
Greater Pelvis	महाश्रोणि	6
Greater Vestibular Glands	योनिद्वारिकौ ग्रन्थी	20
Grip	ग्रह	224
Gripping of the head	शिरोग्रह	352

H

Hand Presentation	हस्तोदय	154
Head Cap	शिर पिधानकम् (तीक्ष्णम्)	85
Hegar's Sign	गर्भाशयमार्दवम्	179
Heterotypical division	क्षयविभजनम्	46
Highest point of the crest	जघनचूडा	2

I

M

N

O

U